6.

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

श्रीमठ स्मारिका

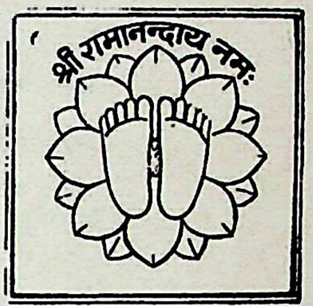

कर्मनाशकलां भव्यां पंचगंगातटे स्थिताम् ॥
काश्यां मुक्तिप्रदां वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥

संवत् २०४५ फरवरी १९८९

श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ)
पंचगंगा घाट, वाराणसी

प्रकाशक

स्वामी रामानन्दाचार्य
अनुसंधान संस्थान
श्रीमठ पंचगंगाघाट
वाराणसी

प्रकाशन सहयोगी

(१) महन्त श्री अवध बिहारीदास जी, काशी
(२) महन्त श्री रामनारायणदास जी, हरिद्वार
(३) श्री शिवरतन पुरोहित, राजस्थान
(४) श्री विश्वम्भर पुरोहित, राजस्थान
(५) श्री रामचन्द्र चैन सुख पुरोहित, राजस्थान
(६) श्री सत्यनारायण अग्रवाल, राजस्थान
(७) श्री संतराम गोयल, पंजाब
(८) श्री रामधारी सिंघल, पंजाब
(९) सुश्री यशोदा जी, पंजाब
(१०) डा० हेमराज गोयल,पंजाब
(११) डा० के० के० गर्ग, पंजाब
(१२) श्रीमती डा० सुरेन्द्रा गर्ग, पंजाब
(१३) श्री टेकचन्द जिन्दल, पंजाब
(१४) श्रीमती भगवान देवी, पंजाब
(१५) श्री जय किशन भट्टर, मद्रास

सहयोग राशि २५) पच्चीस रुपये

मुद्रकः रत्ना प्रिटिंग वर्क्स (आफसेट-विभाग), कमच्छा, वाराणसी, फोन : ५६९५८

प्रधान सम्पादक

डा० रामकुमार दास जी महाराज मानसतत्त्वान्वेषी

सम्पादक

डा० शुकदेव सिंह
दयासिन्धु शर्मा

सम्पादक मण्डल

अग्रदेवपीठाधीश्वर श्री राघवाचार्य
डा० रामेश्वर दास
डा० मारुति नन्दन तिवारी
डा० गंगा सागर राय
पं० हृदय नारायण द्विवेदी

डा० श्याम दास
श्री गंगा शरण शास्त्री
डा० मोहन लाल तिवारी
आचार्य वेंकटेश शर्मा
पं० राजेन्द्र कुमार उपाध्याय

★

परमसंरक्षक

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य स्वामी रामनरेशाचार्य जी महाराज

★

संरक्षक समिति

(१) महान्त श्री बलराम दास जी महाराज, गुजरात
(२) महान्त श्री नारायणदास जी महाराज, राजस्थान
(३) महान्त श्री रामदास जी महाराज, अयोध्या
(४) संत प्रभुदास जी महाराज, हरिद्वार
(५) महान्त श्री रामानन्ददास जी महाराज, हरिद्वार
(६) महान्त श्री बलरामदास जी महाराज, बिहार
(७) महान्त श्री राम रघुबीर दास जी, वाराणसी।

दुर्ग रामनगर, वाराणसी
दिनांक : ३० सितम्बर, १९८८ ई०

संदेश

यह प्रसन्नता का विषय है कि काशी के श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) से श्रीमठ स्मारिका प्रकाशित होने जा रही है जिसमें आचार्य के जीवनवृत्त, शिष्यपरम्परा और सिद्धान्तों का प्रामाणिक विवरण देने का प्रयास हो रहा है। मध्ययुगीन संतो में आचार्य रामानन्द जी का विशिष्ट स्थान है और रामभक्ति के लोक में प्रचार का उनका कार्य अपना विशेष महत्व रखता है।

आचार्य रामानन्द जी के अनुयायी समाज के सभी वर्गों और वर्णों के व्यक्ति थे। इस दृष्टि से स्वामी जी ने लोकसंग्रह का अनुपम कार्य किया। उनकी प्रतिभा और अलौकिक दिव्यशक्ति से न केवल हिन्दू मात्र ही उपकृत और प्रभावित हुए अपितु इतर धर्मावलम्बी भी उससे चमत्कृत और प्रभावित हुए। भारत की भावनात्मक एकता की श्रीवृद्धि के लिए आचार्य के मतों का प्रचार और अनुपालन सुतराम् उपादेय है। यह सनातन भारतीय परम्परा रही है कि धर्म की मूल या आधारभूत बातें सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से पालनीय रही है। स्वामी जी ने उसी आदर्श को लोक में पुनः प्रतिष्ठापित किया। भगवद्भक्ति सभी को समान रूप से पवित्र करती है। एक बार भगवदाश्रय ले लेने पर मनुष्य सभी प्रकार से निर्भय हो जाता है। स्वामी जी का चरम मंत्र वाल्मीकि रामायण का यह श्लोक है।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ (युद्धकाण्ड १८/३३)

इस चरम मंत्र में कहीं भी वर्ण, जाति, धर्म की संकीर्णता नहीं है। संप्रति धर्म, जाति और प्रदेश के नाम से विश्रृंखलित हो रहे देश की एकता के लिए आचार्य के मत का प्रचार-प्रसार आवश्यक कार्य है।

मैं इसकी सफलता की कामना करता हूँ।

—विभूति नारायण सिंह
काशी नरेश

सत्यमेव जयते

उप-राष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली
VICE-PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI
सितम्बर २२, १९८८

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीमठ (रामानंदाचार्य पीठ) वाराणसी द्वारा श्री रामानंद जी पर एक स्मारिका प्रकाशित की जा रही है।

विशिष्टाद्वैतवाद के संस्थापक श्री रामानंद जी का दृष्टिकोण अत्यन्त सामाजिक था। उन्होंने 'न चास्ति अहिंसा सदृशम् सुपुण्यम्' कहकर अहिंसा का उपदेश दिया। जाति और वर्ग भेद को अस्वीकार कर भगवद्भक्ति को प्राणिमात्र के लिए सुलभ बनाना उनका सबसे बड़ा क्रांतिकारी कार्य था। उन्होंने कहा- 'सर्वे प्रपत्तेराधिकारिणः।' इसके अतिरिक्त रामानन्द जी ने भक्ति-मार्ग को सहज बनाकर सामान्य लोगों के लिए भी ईश्वर प्राप्ति का मार्ग उपलब्ध कराया।

श्री रामानन्द जी के ये विचार वर्तमान समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मुझे आशा है कि श्रीमठ स्मारिका द्वारा रामानन्द जी के विचार सामान्य लोगों तक पहुंचेंगे।

—शंकर दयाल शर्मा

दूरभाष : ३०१६०४५

ज्ञानी जैल सिंह
(भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत)

४, सरकुलर रोड,
चाणक्य पुरी
नई दिल्ली- ११००२१

१८-१०-८८

प्रिय दया सिन्धु शर्मा,

आपके पत्र दिनांक १३-१०-८८ द्वारा यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप श्री रामानन्द जी पर श्रीमठ स्मारिका के प्रकाशन का आयोजन कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। वे उदार हृदय, प्रभावशाली तथा विशाल व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन्होंने निम्नवर्ग की सामान्य जनता को भक्ति का समान अधिकार दिलवाया। वे जाति-पाँति या ऊच्च-नीच के भेद-भाव से ऊपर थे। उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से भारत को कबीर जैसे क्रान्तिकारी कवि व सुधारक प्राप्त हुए। मुझे पूर्ण आशा है कि आप के सुप्रयास से स्वामी रामानन्द जी के राष्ट्रीय व समन्वयवादी-योगदान का विशद विवेचन होगा। श्रीमठ का यह सत्कार्य सराहनीय है; मैं आप की सफलता की मंगल-कामना करता हूँ।

— जैलसिंह

डा० बलराम जाखड़
अध्यक्ष, लोक सभा

नई दिल्ली

संदेश

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि श्री रामानन्दाचार्य पीठ (श्रीमठ-काशी) स्वामी श्री रामानन्दजी के उदार व्यक्तित्व तथा उनके चिन्तन एवं दर्शन धारा पर शीघ्र एक स्मारिका प्रकाशित करने जा रहा है।

हमारे देश में नव-जागरण का मूल आधार धर्म ही रहा है जिसने धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीयता के आवरण में हमारी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता को जीवित रखा है। उत्तर भारत में आज जिस भक्ति साधना तथा कबीर, रैदास आदि की संत परम्परा का चतुर्दिक प्रभाव दिखाई देता है उसके प्रधान प्रवर्तक आचार्य श्री रामानन्दजी ही थे। इन्होंने ही सबसे पहले जातपाँत तथा ऊँच-नीच के भेद-भाव को मिटाकर सम्पूर्ण मानव जाति को समानता का संदेश दिया।

स्मारिका के प्रकाशन के शुभ अवसर पर श्रीमठ-काशी के व्यवस्थापकों को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ हैं। मुझे आशा है कि श्रीमठ आचार्य प्रवर स्वामी रामानन्दजी के मानवतावादी सूत्र, सेवा, समानता तथा राष्ट्रीयता की भावना को जन-जन तक पहुंचा कर हमारे देश की अखंडता को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपना बहुमूल्य योगदान देता रहेगा।

— बलराम जाखड़

सत्यमेव जयते

शिक्षा एवं संस्कृति राज्य मंत्री
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार
नई दिल्ली- ११०००१
MINISTER OF STATE FOR EDUCATION CULTURE
MINISTRY OF HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
GOVERNMENT OF INDIA
NEW DELHI-110001

२८ सितम्बर, १९८८

संदेश

हमें अत्यंत खुशी है कि श्री रामानन्द जी पर श्रीमठ स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। श्री रामानन्द जी भारतीय संस्कृति एवं परम्परा के चिन्तक एवं प्रोत्साहक थे और इस दिशा में उनका योगदान सराहनीय है। हमें आशा है कि स्मारिका के माध्यम से श्री रामानन्द जी जैसे विशाल व्यक्तित्व के पदचिह्नों पर चलने का लोगों को प्रेरणा मिलेगी।

— *ललितेश्वर प्रसाद शाही*

श्री दयासिन्धु शर्मा,
सम्पादक,
श्रीमठ स्मारिका,
के २२/९९, पंचगंगाघाट,
वाराणसी२२१००१

कृषि राज्य मंत्री
भारत
नई दिल्ली- ११०००१
MINISTER OF STATE, AGRICULTURE
INDIA
NEW DELHI-110001

दिनांक २ सितम्बर, १९८८

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) के० २२/९९, पंचगंगाघाट, वाराणसी-२२१००१ द्वारा श्रीमठ स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है ।

संत रामानन्द भक्तिकाल के उन महान् संतों में एक थे, जिसने उस समय की पथभ्रष्ट जनता को सन्मार्ग दिखाया और उन्हें सद्कार्य करने के लिए प्रेरित किया । उस समय की पथभ्रष्ट जनता को सन्मार्ग पर लाने के लिए संत जी ने जो उपदेश जनता को दिए, वह आज के युग में भी समीचीन हैं । उन उपदेशों को जनसाधारण तक पहुंचाना आज के समय की मांग है और इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी उचित माध्यम का उपयोग किया जाए । समय की पुकार को देखते हुए यह अत्याधिक उचित ही है कि श्रीमठ स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है । यह एक प्रशंसनीय कार्य है । मैं हृदय से इसकी सफलता की कामना करता हूँ ।

सद्भावनाओं के साथ,

— *श्याम लाल यादव*

कुलपति
VICE-CHANCELLOR

Phone: 63138, 54291-200 (Extn) Office
62339,54291,-300 (Extn) Res.
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-२२१००५
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI-221005

३०-१०-१९८८

सन्देश

मुझे यह जानकर अपार प्रसन्नता हुई कि काशी के श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ, पंचगंगा घाट) से 'श्रीमठ स्मारिका' का शीघ्र ही प्रकाशन होने जा रहा है, जिसमें मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के जनक महान् वैष्णव आचार्य रामानन्द जी के जीवन-वृत्त, दर्शन एवं धार्मिक-सामाजिक चिन्तन से सम्बन्धित विविध पक्षों का विद्वानों द्वारा विवेचन प्रस्तुत होगा। पूर्ववर्ती वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित लक्ष्मीनारायण की उपासना के स्थान पर 'राम-सीता-लक्ष्मण' की प्रतिष्ठापना रामानन्द द्वारा व्यावहारिक और लोक मानस के मानसिक धरातल से साधारणीकृत चरित्र की समाज में स्थापना थी। तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक विकट परिस्थितियों में राम जैसे आदर्श चरित्र के माध्यम से ही समाज में सुधार या परिवर्तन का प्रयास सम्भव था, यह बात रामानन्द जी की दृष्टि में पूरी तरह स्पष्ट थी। 'प्रपत्ति भक्ति' के माध्यम से भारतीय समाज में श्री राम के प्रचार में रामानन्द जी का अग्रगामी योगदान रहा है। रामानन्द जी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध होते हुए सभी जाति-पांति एवं वर्ग भेद से पूरी तरह मुक्त थे, स्वयं उनके ही शब्दों में :

जाति-पांति पूछे नहि कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

उनके उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही विभिन्न जाति एवं वर्गों के लोगों में उन्हें सम्मान एवं स्वीकृति मिली जो कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना, सेन, अनन्ता-नन्द जैसे विशिष्ट व्यक्तियों के उनके शिष्य मण्डली में रहने से स्पष्ट है। समाजहित के प्रति रामानन्द जी का गम्भीर चिन्तन एवं प्रयास पूरी तरह समय की आवश्यकता के अनुरूप था यही कारण है कि उनके उदार एवं स्पष्ट विचारों को समाज में प्रत्येक स्तर पर मान्यता मिली।

रामानन्द जी एक इतिहास पुरुष रहे हैं, जिनके विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। देश की वर्तमान व्यवस्था में विभाजन की प्रवृत्ति को रामानन्द जी के विचारों के प्रचार के माध्यम से रोका जा सकता है। ऐसे समय में रामानन्द जी पर स्मारिका का प्रकाशन एक प्रशंसनीय एवं प्रासंगिक कार्य है, जिसकी सफलता की मैं हृदय से कामना करता हूँ।

—रघुनाथ प्रसाद रस्तोगी
कुलपति

डॉ० रघुनाथ सिंह
औरंगाबाद, वाराणसी

संदेश

श्री रामानन्द जी मध्ययुगीन भक्ति परम्परा के एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। उन्होंने कबीर, रैदास जैसे महान् सन्तों को प्रभावित किया था। उनमें हिन्दू मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं था। वे मानव मानव को एक मानते थे। उनके इस प्रभाव का स्पष्ट रूप कबीर की वाणियों में झलकता है।

श्री रामानन्द जी पंचगंगा घाट पर निवास करते थे। पंचगंगा घाट काशी की पवित्र तीर्थस्थली है, यहाँ के वातावरण का प्रभाव श्री रामानन्द जी पर पड़ना स्वाभाविक था। ऐसी पौराणिक मान्यता है कि पंचगंगा घाट पर गंगा में पाँच धारायें मिलकर एक धारा के रूप में प्रवाहित हो गयी है। इसी प्रकार मानव मानव भिन्न होते हुए भी उनमें एकरूपता पाई जाती है। मनुष्य की यही एकरूपता मानवता के नाम से अभिहित होती है। श्री रामानन्द जी में इसी एकता का लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है, रामानन्द जी इसी एकता के केवल विचारक ही नहीं थे वरन् उन्होंने इस दिशा में सक्रिय कार्य एवं भ्रमण द्वारा जन-जन में अपने विचारों को पहुंचाने का प्रयास किया था। रामानन्द जी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनकी दो पुस्तकें वैष्णवमताब्जभास्कर व रामार्चन पद्धति प्राप्त है। जिससे उनके पाण्डित्यपूर्ण ज्ञान की जानकारी मिलती है।

रामानन्द जी का विश्वास था कि मनुष्य के विचारों को बदलना चाहिए न कि शक्ति के प्रयोग द्वारा उस पर विचारों को लादना चाहिए। यदि आज श्री रामानन्द जी के विचारों को समझकर उसका प्रचार-प्रसार करे जो देश की अनेकों समस्याओं का निराकरण हो जाय। "श्रीमठ स्मारिका" का प्रकाशन उसी दिशा में एक अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कदम है।

—डॉ० रघुनाथ सिंह

महन्थ रामभक्त बलरामदास जी लोद्रा,
गुजरात

संदेश

श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) रामानन्द सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है। रामानन्द सम्प्रदाय के उत्थान एवं प्रचार-प्रसार की आधार-शिला मुख्य रूप से श्रीमठ ही है। यह श्रीमठ जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी के महान् चमत्कारों का स्मरण कराता है। इसके विकास के लिए हम सब लोगों को प्रयत्न करना परमावश्यक है। सम्प्रदाय के सभी महानुभावों से मेरा अनुरोध है कि श्रीमठ के विकास हेतु अपना सहयोग देते रहें जिससे इसकी कीर्ति दिनों दिन बढती रहे, यह मेरी अभिलाषा है। जिसकी पूर्ति हेतु ईश्वर का प्रार्थी हूँ।

— महन्थ बलराम दास जी महाराज
श्री बाला हनुमान आश्रम
(लोदरा, बिजापुर, गुजरात)

महान्त श्री नारायण दास
त्रिवेणी, जयपुर, राजस्थान

संदेश

स्वामी रामानन्दाचार्य जी के द्वारा प्रवर्तित श्रीसम्प्रदाय का प्रकाश-स्तम्भ श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) के नाम से सम्प्रति अभिहित होता है क्योंकि इस सम्प्रदाय के आद्याचार्य सीतानाथ श्री राम हैं। "श्री" शब्द से सीता जी जानी जाती हैं। इसका मान्य सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है, जिसका प्रथम उपदेश "श्री" अर्थात् सीता जी को मिला। अतः यह सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय से अभिहित हुआ। स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने जहाँ से इस सम्प्रदाय की मुख्य भाव-धारा रामभक्ति धारा को प्रवाहित किया उस स्थान का "श्रीमठ" नामकरण का मूल कारण यही प्रतीत होता है।

भारतीय संस्कृति की संरक्षा जन-मन में "सियाराममय जगत्" की भावना देश की अखण्डता तथा ईश्वरशरणागति में मानव मात्र के अधिकार साम्य की भावधारा का मूल स्रोत शताब्दियों से यह पुण्य पंचनद तीर्थ पर अवस्थित श्रीमठ रहा है। आज समाज एवं देश की विषम स्थिति में पुनः उक्त भावधारा को तीव्रतम वेग से प्रभावित होने की नितान्त आवश्यकता है। श्रीमठ स्मारिका का प्रकाशन इस उपयोगिता का एक विकल्प है, क्योंकि इसके स्वाध्याय, चिन्तन और मनन से जन-मानस में उपयुक्त भावधारा पुनः प्रवाहित होगी। मैं इसके सफल प्रकाशन हेतु श्री राघवेन्द्र जी का प्रार्थी हूँ।

—नारायणदास
त्रिवेणीधाम शाहपुरा जयपुर, राजस्थान

संत प्रभुदास
हरिद्वार

संदेश

प्रिय सम्पादक जी,

आप द्वारा प्रेषित पत्रक से विदित हुआ है कि श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) पंचगंगा घाट वाराणसी अपनी स्मारिका प्रकाशित कर रहा है। जब भारतीय संस्कृति, मुगलों के कारागार में अपनी अन्तिम श्वास की घड़ी गिन रही थी, प्रत्येक हिन्दू यवन-त्रास से सन्त्रस्त हो एकमात्र उस जगन्नियन्ता की बाट देख रहा था, वेदों की ध्वनियाँ, मन्दिरों के घण्टा-घड़ियाल और शंखनाद, दिगन्त में विलीन हो चुके थे, शिखा-सूत्र की रक्षा असम्भव-सी होने लगी थी, ऐसे विषम संक्रमण-काल में भगवान् श्रीराम के अपर रूप में जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी महाराज ने इस धरा-धाम को सनाथित किया। ऐसे पूज्यपाद की तपःस्थली, श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) पंचगंगा घाट काशी रही है। इस मठ में रहते हुए आचार्य जी ने आततायियों का दमन किया, मानवता व भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित किया तथा विना भेद-भाव रखे आम जनता के कल्याण हेतु श्री रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया।

यह अतीव प्रसन्नता का विषय है कि वर्तमान जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्री रामनरेशाचार्य जी महाराज श्रीमठ के प्राचीन गौरव तथा सशक्त आचार्य परम्परा के उद्देश्यों (देश-समाज-सम्प्रदाय-धर्म-शास्त्र आदि के संरक्षण व सम्वर्द्धन) के प्रति कृतसंकल्प हैं। आज आवश्यकता है श्रीरामानन्दाचार्य जी के सन्देशों को श्रीमठ के द्वारा विश्व के कोने -कोने में प्रचारित व प्रसारित करने की जिससे समाज में पुनः शान्ति-व्यवस्था स्थापित हो सके। उक्त दिशा में श्रीमठ का कदम स्तुत्य है। शुभकामनाओं सहित।

भवदीय
—प्रभुदास
आश्रमाध्यक्ष

विषय-क्रम

आचार्याशीः xviii
सम्पादकीय xxii
मंगलाचरण xxiv

श्रीमठ खण्ड

श्रीमठ नाम क्यों ? —डा० रामकुमार दास ३
काशी में पंचनद तीर्थ-क्षेत्र एवं स्वामी रामानन्दाचार्य —वैकुण्ठ नाथ उपाध्याय ५
रामानन्द चरणपादुका 'पंचगंगाघाट' —पं० विजय शंकर उपाध्याय १०
श्रीमठ का अतीत एवं वर्तमान —महन्थ रामदास १२
मुक्ति क्षेत्र काशी एवं स्वामी रामानन्द —रामकमल दास "शास्त्री" १८
श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) : ऐतिहासिक दृष्टि —डा० मारुति नन्दन तिवारी २२
जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी की गिरनार स्थित चरण पादुका —डा० राम मिलन दास शास्त्री २७

आचार्य परम्परा

मध्यकालीन उत्तर भारत में वैष्णव एवं शैव धर्म : एक आकलन —हरि शंकर ३१
स्वामी राघवानन्द —पं० भरत शर्मा ३५
स्वामी रामानन्दाचार्य जी —अर्जुन प्रसाद शुक्ल ३६
आचार्य रामानन्द का सामाजिक परिवेश —डा० मोहन लाल तिवारी ३९
युग-प्रवर्त्तक रामानन्दाचार्य जी —कुलदीप नारायण राय "झड़प" ४२
मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के सूत्रधार स्वामी रामानन्द —प्रो० वासुदेव सिंह ४९
भारत की सांस्कृतिक क्रांति में स्वामी रामानन्द जी का योगदान —डा० रामचन्द्र सिंह ५६
वैष्णवाचार्य और स्वामी रामानन्दाचार्य —डा० श्यामदास ६०
स्वामी रामानन्द जी और जाति-समन्वय —प्रेम नारायण सिंह ६३
जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य का जीवन-परिचय —रामेश्वर दास "श्रीवैष्णव" ६६

द्वादश महाभागवत

जगद्गुरु श्री स्वामी अनन्तानन्दाचार्यजी महाराज ७९
महाभागवत स्वामी श्री सुरसुरानन्दाचार्यजी महाराज ८२
महाभागवत स्वामी श्रीसुखानन्दाचार्यजी महाराज ८५
स्वामी श्री नरहर्यानन्दजी महाराज ८८
स्वामी श्रीयोगानन्दाचार्य जी महाराज ९१
महाभागवत श्री भावानन्दजी महाराज ९४
महाभागवत श्री पीपाजी महाराज ९६
महात्मा कबीरदास ९९
महाभागवत श्री सेनजी महाराज १०२

महाभागवत श्री धनानन्द जी १०४
महाभागवत रैदास जी १०६
स्वामी रामानन्द—संत रैदास —वेनीप्रसाद शर्मा ११०
स्वामी रामानन्द और संत कबीर —गंगाशरण शास्त्री ११५
रामानन्द संप्रदाय में संत तुलसीदास —स्वामी योगिराज ११९

सिद्धान्त खण्ड

स्वामी रामानन्दाचार्यजी का दार्शनिक चिन्तन —डा० डी० ए० गंगाधर १२९
गुरु का स्वरूप और रामानन्द संप्रदाय में गुरु —डा० गंगासागर राय १३४
पंच संस्कारों के स्वरूप —वेंकटेश शर्मा १३९
श्री रामानन्द सम्प्रदाय की उपासना —पं० अवध किशोरदास 'श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' १४६
राम-द्वय मन्त्र —व्याख्याकार वैदेहीकान्त शरण १५४
सगुण निर्गुण तत्त्व विवेक —श्री वैदेही कान्त शरण १६२
रामानंद सम्प्रदाय में दास्यभाव की अवधारणा —स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य १६६
जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य प्रस्थानत्रयी आनन्दभाष्य —डा० मुरलीधर पाण्डेय १७३
पूर्ववर्ती भक्ति साहित्य और श्री वैष्णवमताब्ज-भाष्कर —डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय १७८
भक्ति प्रपत्ति विवेक १८३
संप्रदाय भेद और भारतीय समाज —डा० श्यामसुन्दर शुक्ल १८९
श्री रामचरण पादुका २०४
श्री रामचरण पादुका कवच २१२
श्री रामचरण पादुका स्तोत्र २१४
श्री यतिराजस्तवराजः २१७
भुशुण्डिरामायणे रामचरणपादुका पूजा-प्रसंग —गणेश्वर शास्त्रि द्रविड़ २१८
स्वामी गालवानन्दाचार्य जी महाराज —पं० रामचन्द्र मिश्र २२१
वैष्णवभक्ति की सैद्धान्तिक भूमिका —डा० भोलाशंकर व्यास २२७
मुक्ति-साधन —डा० जयमंगल सिंह २३६

सम्प्रदाय खण्ड

रामानन्दाचार्य जगद्गुरु श्री कृष्णदास पयोहारी —पं० हृदयनारायण द्विवेदी २४५
श्री रामानन्द सम्प्रदाय में अग्रदेवाचार्य —स्वामी राघवाचार्य वेदान्ती २४६
आचार्य परम्परा के अप्रतिम पुरुष : स्वामी भगवदाचार्य — पं० सारस्वत सार्वभौम २५१
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री शिवारामाचार्य जी महाराज —श्री माधवाचार्य २५९
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामनरेशाचार्य जी महाराज —पं० शतंजीव मिश्र २६०
रामानन्द पीठ में नए आचार्य की नयी चेतना —डा० शुकदेव सिंह २६४
वैष्णव अनी अखाड़े —वेदप्रकाश गर्ग २६९
स्वामी रामानन्दजी पर लोकमत —डा० अयोध्याप्रसाद श्रीवास्तव २७४

★★★

आचार्याशीः

आचार्य प्रवर स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने महाप्रयाण के पहले अपने अन्तिम उद्बोधन में कहा था– "भगवत्स्मरण ही जीवन का सार है। इसके द्वारा जीवन परम शान्ति को प्राप्त कर धन्य-धन्य हो जाता है। आध्यात्मिक, अधिभौतिक आधिदैविक इन तीनों ही दुःखों की समूल निवृत्ति हो जाती है। परमानन्द-सिन्धु श्री सीताराम जी के नित्य धाम साकेत लोक को प्राप्त कर उनकी समीपता, नित्य लीलाओं का दर्शन एवं सेवा के माध्यम से दिव्यानन्द सिन्धु में गोता लगाता है।" स्वामी जी के इन भावों को परिपुष्ट करती हैं भगवान् श्रीकृष्ण की ये वाणियाँ –

"तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

अन्तकाले च मामेव स्मरणमुक्त्वा कलेवरम्।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥"

हम जिसका पुनः पुनः स्मरण करते हैं, उसमें ही हमारा प्रेम बढ़ता है। जब हम संसार का स्मरण करते हैं, तब हमारा प्रेम संसार में बढ़ता है। इसी क्रम से परमेश्वर का स्मरण उसमें प्रेम प्रकर्ष को उत्पन्न करता है जो जीवन को कृतार्थ करता है। सुख-सिन्धु का स्मरण ही सुखदायक हो सकता है, संसार का नहीं, क्योंकि वह तो दुःखमय है, सुख रहित है। तभी तो गीता की सुस्पष्ट घोषणा है – "अनित्यमसुखं लोकम्" अनित्य संसार नित्य सुखप्रद कैसे हो सकता है।

सगुण तथा निर्गुण रामभक्ति के मध्यम-गोमुख रामानन्दाचार्य की तपःस्थली एवं आध्यात्मिक राजधानी 'श्रीमठ' भगवत्-स्मरण का ही सर्वश्रेष्ठ स्मारक केन्द्र था। इसका परम उद्देश्य जन-जन में भगवत् स्मरण की गंगा को प्रवाहित करना था, जिसमें सभी संकुचित भेदभावों को छोड़कर लोग गोता लगावें एवं जीवन को परमोज्ज्वल बनावें। इस क्रम में श्रीमठ को अपूर्व सफलता मिली, जिसे आज भी रामभक्ति के विशालतम क्षेत्र एवं रामचरित्र के प्रति परम जनाकर्षण से मापा जा सकता है। श्रीमठ से प्रवाहित श्री राम-स्मारिका-गंगा ने समाज के उन दरवाजों का भी स्पर्श किया तथा उनसे निकलने वाले लोगों को समान रीति से कृतार्थ किया, जिनकी छाया भी लोगों को अपवित्र बनाती थी। परमसन्त रविदास, संत शिरोमणि कबीर, धन्ना जाट एवं सेनानाई आदि इसके परम दृष्टान्त हैं। समाज के सभी वर्गों ने इससे शीतलता को प्राप्त किया। एक दूसरे के बीच की खाई मिट गयी। विभिन्न तटों के बीच में सेतु का निर्माण हुआ। समाज विखण्डन की भयावह ज्वाला से बच गया। प्रत्येक के हृदय में दूसरों के प्रति सहानुभूति एवं स्नेह का उदय हुआ। इन व्यावहारिक लाभों से विशिष्ट होते हुए लोगों ने परम शान्ति को भी प्राप्त किया।

अनेक साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि श्रीमठ संसार के तत्कालीन आध्यात्मिक केन्द्रों में सर्वश्रेष्ठ था। भारत देश ही नहीं संसार के सभी भागों से साधक एवं जिज्ञासु श्रीमठ में आते थे तथा पूर्णता को प्राप्त कर लौटते थे।

इतिहासकारों का मानना है कि बारह प्रधान शिष्यों के अतिरिक्त स्वामीजी के पाँच सौ विरक्त शिष्य थे, जो श्रीमठ में ही रहते थे। झोपड़ी से लेकर महल पर्यन्त के लोगों का आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति के लिए यहाँ आना-जाना था। तत्कालीन श्रीमठ की विशालता, भव्यता एवं जनाकर्षण के चश्में से वर्तमान श्रीमठ को पहचानना उतना ही कठिन है, जितनी कठिनता सुदामा को अपनी झोपड़ी पहचानने में हुई थी। इसको देख श्रीमठ से प्रवाहित रामभक्ति गंगा के घाटों का आकलन करना किसी के लिए सम्भव नहीं। पूरे देश में फैले श्रीमठ के अनुयायी आश्रमों तथा सन्तों की नामावली का संग्रह भी वर्तमान श्रीमठ में नहीं रखा जा सकता। यह दशा श्रीमठ की तब से हुयी जब मुगल बादशाह औरंगजेब ने श्रीमठ का विध्वंस कर दिया। संसार का सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक केन्द्र भयावह खण्डहर में बदल गया। राम-नाम संकीर्तन के बदले नमाज की धारा चल पड़ी। राम- भक्तों की जमघट मौलवी मुल्लों में बदल गयी। दीर्घ काल तक रिक्तता एवं सूनापन की दशा बनी रही। लोगों ने धीरे-धीरे खण्डहर श्रीमठ की परिधि को घेरना शुरु किया। यह क्रम इतना प्रबल रहा कि श्रीमठ का सम्पूर्ण क्षेत्र घिर गया। आचार्य -निष्ठा के क्षेत्र में कुम्भकर्ण तथा स्वकीर्ति मात्रैकशरण-साम्प्रदायिक-सिद्धान्तानभिज्ञ महान्तों, सन्तों एवं भक्तों की जब तक निद्रा खुली, तब तक उतना ही स्थान बच पाया था, जितना वर्तमान श्रीमठ का स्वरूप है। अभी-अभी किसी विदेशी महिला अन्वेषक ने खोज किया है कि श्रीमठ की प्राचीन परिधि लगभग पाँच किलोमीटर में थी। श्रीमठ स्मारिका का प्रकाशन श्रीमठ के अतीत एवं वर्तमान स्वरूप खाई के लिए सेतु की भूमिका निभायेगा, अतएव प्रसन्नता की बात है। परन्तु उससे भी अधिक यह पीड़ाप्रद सिद्ध हो रहा है, क्योंकि संसार के सर्वश्रेष्ठ स्मारक को भी आज स्मारिका की आवश्यकता पड़ गयी । यही तो श्रीराघव के संसार का वैचित्र्य है। वस्तुतः श्रीराघव ही शाश्वत, परम तथा निरपेक्ष प्रकाशक एवं स्मारक हैं तथा सर्वश्रेष्ठ स्मरणीय भी हैं। अपौरुषेय वेद की यही घोषणा है – "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"। यही भाव हम सभी लोगों के संतोष का एकमात्र अवलम्ब है।

श्रीमठ रामानन्द सम्प्रदाय का मूल एवं परम श्रद्धास्पद पीठ है। इसकी नींव आद्य रामानन्दाचार्य के गुरुवर्य स्वामी राघवानन्द जी ने दक्षिण से आकर रखी थी। सीतानाथ से प्रवर्तित वैदिक राममन्त्र एवं अनादि रामभक्ति धारा को मध्यकाल में (१४वीं-१५वीं शताब्दी में) परमसिद्ध, विलक्षण संगठनवादी, लोकोत्तर उदार, अदम्य उत्साही स्वामी रामानन्द जी ने अनुपम तीव्रता प्रदान किया, जिसके कारण देश के कोने-कोने में रामभक्ति की परम मंगलमयी धारा फैल गयी। वर्तमान भौतिक सद्वृत्ति विनाशक वातावरण के बावजूद भी रामानन्द सम्प्रदाय के आश्रमों, अनुयायियों, सन्तों एवं प्रचार का जोड़ किसी दूसरे सम्प्रदाय के साथ नहीं है। इस सम्प्रदाय से निकली हुयी अनेक शाखायें भी आज लोक-कल्याण-योजना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। जिनमें प्रमुख रूप से कबीर सम्प्रदाय, निराकारी सम्प्रदाय, रविदासी, घीसापन्थी सम्प्रदाय, रामस्नेही सम्प्रदाय, गरीबदासी इत्यादि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

कुछ समानताओं को देखकर हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वानों ने रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही रामानन्द सम्प्रदाय को स्वीकार किया है। आंशिक समानताओं के आधार पर तो सभी सम्प्रदायों को एकरूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। अलग-अलग मानने की कोई आवश्यकता नहीं। इसी आंशिक साम्य के कारण किसी ने आद्य शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कहा था। उन्हें शंकराचार्य भी बौद्ध के रूप में दिखाई दिए, जिन्होंने बौद्धों के अवैदिक महल को भारत-भूमि से उखाड़ने में अनुपम भूमिका निभायी। न्याय-दर्शन के द्वितीय सूत्र (दुःखजन्मप्रवृत्ति दोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः) के भाष्य की व्याख्या करते हुए वार्तिककार उद्योतकार ने सम्प्रदाय शब्द की व्याख्या में लिखा है –

'शिष्याचार्यसम्बन्धस्याविच्छेदेन शास्त्रप्राप्तिः सम्प्रदायः' इसका भाव यह है –शास्त्र की वह प्राप्ति जो शिष्य एवं आचार्य के अविच्छिन्न सम्बन्ध के द्वारा हो, उसे ही सम्प्रदाय कहते हैं । स्वामी राघवानन्द जी ने स्वामी रामानन्द जी को राममन्त्र का उपदेश किया तथा रामोपासना में प्रवृत्त किया । जिसके आधार पर सुनिश्चित होता है कि उन्हें भी अपनी अविच्छिन्न गुरु-परम्परा से राम-मन्त्र की तथा रामोपासना की प्राप्ति हुंयी होगी । गुरु-परम्परा से अप्राप्त मन्त्र का उपदेश वैदिक सनातन धर्मोद्यान के परम संरक्षक स्वामी राघवानन्द जी कभी-भी नहीं कर सकते थे । रामानुज सम्प्रदाय में कभी-भी मुख्य रूप से राममन्त्र का उपदेश नहीं होता रहा है । श्री सीताराम कभी-भी परमोपास्य के रूप में मान्य नहीं रहे हैं । अतएव स्वामी राघवानन्द जी को या तो शास्त्र मर्यादा विमुख स्वच्छन्दचारी स्वीकार करना पड़ेगा या ऐसी वैदिक परम्परा में जोड़ना पड़ेगा, जिसमें राममन्त्र एवं रामोपासना का अनादि अविच्छिन्न प्रवाह हो । सभी सम्प्रदायाचार्यों ने अपने परमोपास्य को ही अपने सम्प्रदाय का मूल तथा परमाचार्य माना है– संन्यासी सम्प्रदाय भगवान् शंकर को, रामानुज सम्प्रदाय भगवान् लक्ष्मीनाथ इत्यादि । इसी क्रम से रामानन्द सम्प्रदाय का मूल एवं परमाचार्य किसी भी प्रकार से लक्ष्मीनाथ नहीं हो सकते । पूर्व लेखकों का लेखन ही जिनके लेखन का मूल आधार है, ऐसे वैदिक मर्यादाओं के ज्ञान से शून्य, स्वतन्त्र चिंतन-शक्ति से रहित, भारतीय परम्पराओं के शत्रु एवं पाश्चात्त्य विचारों को ही परमवेद मानने वाले लोगों ने आंखों पर पट्टी बाँधकर रामानन्द सम्प्रदाय को रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत मान लिया । अन्य भी अनेक तर्क हैं, जिन्हें विस्तार के भय से यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है । स्वामी भगवदाचार्य की जीवनी में इसकी विस्तृत चर्चा द्रष्टव्य है ।

प्रायः परम्परा के सम्बन्ध में रामानुज सम्प्रदाय एवं रामानन्द सम्प्रदाय एक है या रामानुज सम्प्रदाय की शाखा रामानन्द सम्प्रदाय है ऐसा बताने वाले लोग श्रीनाभा स्वामीजी के भक्तमाल के "रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृतह्वै अनुसर्यो" को उद्धृत किया करते हैं । इस छप्पय के 'पद्धति' पद से स्वामी रामानन्द जी को रामानुज सम्प्रदायान्तर्गत सिद्ध करने का प्रयास किया करते हैं, किन्तु यहाँ जो पद्धति पद है, उससे सम्प्रदायानुयायी अर्थ करना नितान्त असंगत है । पद्धति शब्द सिद्धान्त का वाचक है न कि सम्प्रदाय का । स्वामी रामानन्द और स्वामी रामानुज के विशिष्टाद्वैत में बहुत कुछ साम्य भी है । दोनों आचार्यों को तत्त्वत्रय स्वीकृत हैं । अतः ऐसा प्रतीत होता है कि कतिपय स्थानों पर सिद्धान्ततः दोनों के निकट होने के कारण पाठ-भेद से 'रामानुज पद्धति' पद का प्रचार हो गया । यद्यपि दोनों आचार्यों के इष्ट, मन्त्र, उपासना पद्धति में भारी भेद है । भक्तमाल की कई प्रतियों में "रामानन्द पद्धति" का पाठ है । भक्तमाल में पद्धति शब्द सम्प्रदाय, पथ, मार्ग, परिपाटी के पर्यायवाची के रूप में आया है । छप्पय में "रामानन्द पद्धति" का प्रयोग प्रसंग को देखते हुए सर्वाधिक उपयुक्त लगता है । छप्पय में स्वामीजी की परम्परा का थोड़ा सा वर्णन करके उनके यश का वर्णन हुआ है । अतः "रामानन्द पद्धति प्रताप अवनि अमृतह्वै अनुसर्यो" (जिसका अर्थ हुआ– "स्वामी रामानन्द जी का सिद्धान्त अमृत बनकर पृथ्वी पर फैला) सर्वथा प्रसंगानुकूल ही है ।

श्री स्वामी भगवदाचार्य के अनुसार कुछ प्रतियों में "रामानुज पद्धति" पाठ भी है । जिसका अर्थ है "श्रीराम जी ही जिसके सर्वश्रेष्ठ उपास्य देवता हैं, ऐसी पद्धति का पृथिवी पर प्रचार हुआ" । इस पाठ (रामानुज पद्धति) और "रामानन्द पद्धति" में कोई सैद्धान्तिक विरोध नहीं है । स्वामी रामानन्दजी के सिद्धान्त से श्री रामजी ही सर्वश्रेष्ठ उपास्य देव हैं । अतः "रामानन्द पद्धति" और "रामानुज पद्धति" दोनों का एक ही भाव होने के कारण कोई विरोध नहीं है । इन तीनों पाठों में से किसी के द्वारा यह नहीं सिद्ध होता है कि स्वामी रामानन्दाचार्य जी रामानुज सम्प्रदाय के दीक्षित शिष्य थे और रामानन्द सम्प्रदाय रामानुज सम्प्रदायान्तर्गत है ।

शताब्दियों बाद श्रीमठ अपनी गौरवमयी आध्यात्मिक धारा की परिपुष्टि की दिशा में अग्रसर हो चला है। श्रीराघव की अनुकम्पा से स्वल्प काल में ही वह पुनः अपनी प्राचीन गरिमा से मण्डित हो जाएगा। आचार्य प्रवर स्वामी रामानन्द जी ने अपनी परमोदात्त भावना से समाज के प्रत्येक वर्ग को श्रीराम-भक्ति के परम मंगलमय महापथ पर चलाकर परमकल्याण से जोड़ते हुए देश को विखण्डन से बचाया था। परम खेद की बात है कि आज स्वामी जी के सम्प्रदाय में जातिवाद परमोत्कर्ष को प्राप्त कर रहा है। समाज का प्रत्येक निर्णय जातीय-भावना से प्रभावित होता है। स्वामी जी की मौलिक छवि को ही उनके अनुयायी नष्ट-भ्रष्ट करने में समर्पित हो चुके हैं। कबीर, रैदास आदि को परम सम्मान जिस परम्परा में मिला, वहीं आज ब्राह्मणों का पारस्परिक कलह एवं उपेक्षित भाव समाज के अस्तित्व को निगलने तथा श्री सम्प्रदाय की धवल कीर्ति को कलंकित करने का दुष्प्रयास प्रारम्भ कर दिया है। इसका एकमात्र कारण है साम्प्रदायिक स्वरूप तथा आदर्श की विस्मृति। स्वरूप और आदर्श का विस्मरण मानव मात्र को पथ विमुख बनाता है। जाति, देश, धर्म तथा सम्प्रदाय का इतिहास व साहित्य उसके स्वरूप एवं आदर्श के प्रकाशक एवं स्मारक के रूप में ही अंगीकृत है। उसकी इस उपयोगिता को दृष्टिपथारूढ़ कर श्रीमठ के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की झाँकियों का आकलन करने हेतु श्रीमठ स्मारिका के प्रकाशन का निर्णय एक सत् संकल्प है, क्योंकि यह स्मारिका पथ विमुख समाज को अपने आदर्श एवं स्वरूप ज्ञान द्वारा सत् पथारूढ़ करेगी।

फलतः यह समाज और देश को विखण्डन से बचेगा तथा अपनी शक्ति का उपयोग अपने अभ्युत्थान में करेगा। श्री सीतानाथ के चरणों में मेरी यह अभ्यर्थना एवं मंगल कामना है कि श्रीमठ स्मारिका का सफल प्रकाशन पूर्ण हो।

— *जगद्गुरुरामानन्दाचार्य*
स्वामी रामनरेशाचार्य

★★★

सम्पादकीय

भक्ति आन्दोलन का तृतीय उत्थान उत्तर भारत में १५वीं शती के आरम्भ में हुआ है। इसने एक विशाल जनान्दोलन के रूप में अपने को अभिव्यक्ति किया। इस आन्दोलन ने केवल शास्त्र-चिन्तकों, सन्तों एवं महान्तों का ही स्पर्श नहीं किया , प्रत्युत जनता को पूर्णरूपेण प्रभावित किया। इस युग की दो शाखाएँ मुख्य हुईं–रामशाखा तथा कृष्णशाखा। रामशाखा के उदय की पुण्य-स्थली है तीनों लोकों से न्यारी काशी, जहाँ स्वामी रामानन्द जी ने इसके प्रवर्तन का महनीय कार्य सम्पन्न कर एवं "श्रीमठ" की स्थापना कर भारतीय समाज में एक महती धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न की। वे भक्ति का भव्यद्वार समस्त मानवों के लिए-वह निम्न से भी निम्न श्रेणी का क्यों न हो– सर्वदा के लिए खोल देते हैं। भीषण अत्याचारों से कराहने वाली हिन्दू जनता के उद्धार का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। उन्हीं से निर्गुण तथा सगुण भक्ति की धारायें प्रवाहित होती हैं जिसमें प्रथम के प्रचारक कबीरदास तथा द्वितीय के प्रतिनिधि हैं – गोस्वामी तुलसीदास।

स्वामी रामानन्द जी का व्यक्तित्व अलौकिक था। वैष्णव-धर्म स्वतः उदार है, परन्तु स्वामीजी की दृष्टि और भी उदार तथा व्यापक थी। वे वर्णाश्रम धर्म में पूर्ण आस्थावान् आचार्य थे, परन्तु भक्तिराज्य में प्रवेश करने के लिए उन्होंने अपने मत का द्वार सब प्राणियों के लिए समान भाव से उन्मुक्त कर दिया। जनता के हृदय का स्पर्श करने के लिए स्वामी जी तथा उनके शिष्यों ने देशभाषा के द्वारा उपदेश देना आरम्भ किया, जिससे हिन्दी भाषा के उत्थान तथा प्रचार-प्रसार में भी स्वामी जी से कम प्रेरणा तथा स्फूर्ति नहीं मिली। हिन्दू-समाज में एकत्व की भावना ही नहीं प्रत्युत पूर्ण एकत्व स्थापित करने में स्वामी जी का बड़ा हाथ था। इस प्रकार हिन्दू समाज की एकता स्थापित करने में, धार्मिक संगठन करने में तथा अपनी संस्कृति बचाए रखने में स्वामी रामानन्दजी ने एवं उनकी शिष्य-परम्परा ने अद्यावधि जो पवित्र कार्य किया है उसकी सफलता भारतवर्ष का अवान्तरकालीन इतिहास उच्चस्तर से घोषित कर रहा है। स्वामी जी एक युगप्रवर्तक महापुरुष थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसीलिए नाभादास जी ने कलिकाल में मानवों को विपत्तिसमुद्र से पार जाने के लिए सेतु की रचना करने वाले रामानन्दजी की तुलना स्वयं रघुनाथ जी से दी है –

"श्रीरामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियौ।"

विशिष्टाद्वैतवाद के प्रवर्तक श्री स्वामी रामानन्द जी का दृष्टिकोण अत्यन्त सामाजिक था। उन्होंने 'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः ' के सदुपेदश द्वारा भक्ति-मार्ग को सहज बनाकर, सामान्य लोगों के लिए भी ईश्वर प्राप्ति का मार्ग सुगम बनाया।

सम्प्रति धर्म, जाति और प्रदेश-विभाजन के नाम से विश्रृंखल हो रहे देश की एकता के लिए वर्तमान जगद्गुरु श्री रामनरेशाचार्य जी महाराज की पंजाब-यात्रा एवं कुंभ-मेले में अपने सुधासिक्त सदुपदेशों द्वारा सद्भावना की स्थापना आचार्य के मत के प्रचार-प्रसार की एक आवश्यक कड़ी है। इन्हीं महापुरुषों के

मंगलमय आशीर्वाद से 'श्रीमठ स्मारिका' का प्रकाशन भी सम्भव हो रहा है। कुछ तकनीकी कठिनाइयों एवं सांसारिक आपदाओं के कारण प्रकाशन में विलम्भ हुआ है जिसके लिए मुझे खेद है।

अंत में मैं उन समस्त विद्वानों का आभारी हूँ जिन्होंने समय पर अपना लेख प्रस्तुत कर मुझे उपकृत किया है। इस स्मारिका में जो शोभन है वह गुरु-प्रसाद का फल है एवं जो त्रुटियाँ रह गयीं हैं वे मेरे अज्ञान और प्रमाद जन्य हैं। अतः आशा है कि सुधी पाठक गुणग्राही दृष्टि से इसका अवलोकन करेंगे।

★★★

मंगलाचरण

कुलपरम्परा

चिन्मयेस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।
रघुकुलेखिलंराति राजते यो महीस्थितः ॥
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटी कृतः ॥
(रामतापनीयोपनिषद्)

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥ १ ॥

श्री रामो जनकात्मजाऽनिलसुतो ब्रह्मावसिष्ठो मुनिः,
श्रीमान् सोऽथ पराशरस्तदनु स व्यासः शुकः शुद्धधीः।
आचार्यः पुरुषोत्तमो बुधवरो गंगाधरो वेदविद्
देवानामपि वांछितः स च सदाचार्य्यो महायोगिराट्॥ २ ॥

आचार्य्यः प्रभुपद्मपादनिरतो रामेश्वरस्तत्त्वविद्
द्वारानन्दमुनीश्वरस्तदनु देवानन्दयोगीश्वरः।
आनन्देन युतास्त्रयो गुरुवराः श्यामः श्रुतश्चिन्मुनिः,
पूर्णानन्दमुनिः सतामपि सदा पूज्यः श्रियानन्दजिः ॥ ३ ॥

हर्य्यानन्दयतिर्विवादिगजतापंचाननः सर्वदृक्,
तेजः पुंजसमुल्लसद्गुणनिधिः श्रीराघवानन्दजिः।
रामानन्दयतीश्वरो जनकजा प्राणेश्वराङ्घ्रिद्वयी,
ध्यानावस्थित एषको विजयते ह्यस्मद्गुरुणां क्रम ॥ ४ ॥

श्री रामानन्द पद्धति प्रताप अवनि अमृत होय अनुसरेऊ।
देवाचारज, द्वितीय महा महिमा हरियानन्द,
तस्य राघवानन्द भये भक्तन को मानन्द।
पत्रावलम्ब पृथिवी करी व क़ाशी स्थाईं,
चारि वरन आश्रम सब ही को भक्ति दृढाई।
तिनके रामानन्द प्रगट विश्व मंगल जिन वपु धर्‍यो।
श्री रामानन्द पद्धति प्रताप अवनि अमृत होय अनुसरेऊ॥

— भक्तमाल छप्पय ३५

शिष्यपरम्परा

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो।
अनन्तानन्द, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पद्मावति नरहरि।
पीपा,भावानन्द, रैदास, धना, सैन, सुरसुर की घर हरि।
औरौ शिष्य अनेक एकते एक उजागर।
विश्व मंगल आधार भक्ति दशधा के आगंर।
बहुतकाल वपु धारि के प्रणत जनन को पार दिये।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो।

— भक्तमाल छप्पय ३६

श्रीमठ

श्रीमठ नाम क्यों ?

— डॉ० राम कुमार दास

यजुर्वेद उत्तर नारायण कह्र हरि की दुइ नारी ।
जेष्ठा श्री जी और कनिष्ठा लक्ष्मी नाम बिचारी ॥
वेद विदित श्री जू ही सीता तुलसिदास मुनि गाये ।
सम्प्रदाय श्री तासे से सीता नाद बंश कहलाये ॥
रविसम प्रज्वलित सम्प्रदाय श्री की किरणें जग जगमगत ।
ताते परमाचार्य श्री श्रीमठ कहि थापे जगत ॥
वे में ब्रह्म की दो पत्नियों का सुस्पष्ट उल्लेख है —
श्रीश्चते लक्ष्मी च पत्न्यौ० ॥

(शुक्ल यजुर्वेद अ० ३१ मंत्र २२)

ब्रह्म की ज्येष्ठा पत्नी का नाम श्री (सीता) है और कनिष्ठा का नाम लक्ष्मी है ।

श्रीरामचरित मानस में इस तथ्य को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है—

तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री श्रुति विदित जो ।
जिमि क्षीर सागर इन्दिरा रामहिं समर्पी आनि सो ॥

राम चरित मानस में बारह स्थानों पर सीता के पर्याय में श्री रखा है । देखिए—

१. सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित श्री भ्राता ॥१।५४।४

२. आगे राम लखन पुनि पाछै"
उभय बीच श्री सोहति कैसी ।" ३।७।४।

३. तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसहु हृदय मम कानन चारी ॥ ३।११।१८ ॥

४. अस बर मागउँ कृपा निकेता । बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥ ३।१३।१०॥

५. लै जानकिहि जाहु गिरि कन्दर ।

रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री शरधनु पानी ॥ ३।१८।२॥

६. श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं। ३।२६। छन्द १

७. तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री श्रुति विदित जो ॥ ६।१०८। पद २

८. हसत राम श्री अनुज समेता।

परम कौतुकी कृपा निकेता ॥ ६।११६।८॥

९. सिंहासन अति दिव्य मनोहर। श्री समेत बैठे प्रभु तापर ॥६।११८।८ ॥

१०. आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अस कोय ॥ ७।१॥९।

११. श्री सहित दिनकर वंश भूषण काम बहु छबि सोहई। ७।१२। छन्द २

१२. जिहि विधि कृपा सिन्धु सुख मानहिं।

सोइ कर श्री सेवा बिधि जानहिं ॥ ७।२४।७॥

ध्यान देने की बात —

१. मारीच को नहीं मालूम था कि माया की सीता हैं। वह तो उन्हें असली सीता ही जानता था। इसी से गोस्वामी जी ने उसकी भावना व्यक्त करते हुए असली श्री जी ही लिखा —

२. माया की सीता निर्माण होने से लेकर अग्नि-परीक्षा तक, गोस्वामी जी ने बीच में कहीं भी उन्हें श्री नहीं लिखा। क्योंकि असली श्री अग्नि में थीं।

३. श्री और सीता तो पर्यायवाची हैं, दोनों एक हैं। परन्तु लक्ष्मी और सीता पर्याय नहीं हैं। इसी से गोस्वामी जी ने राम चरित मानस में कहीं भी सीता के स्थान पर लक्ष्मी नहीं रखा। वेद मंत्र से श्री और लक्ष्मी दो हैं। गोस्वामी जी के मत से भी श्री और लक्ष्मी दो हैं। परन्तु श्री और सीता एक ही हैं।

अतः सीता प्रवर्तित सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय है और लक्ष्मी प्रवर्तित सम्प्रदाय लक्ष्मी सम्प्रदाय है। इसी से श्री सम्प्रदाय वाले नित्य "सीता नाथसमारम्भाम्०" पढ़ते हैं। यद्यपि वे स्वगौरव-वृद्धयर्थं स्वयं को श्रीसम्प्रदायी और श्रीवैष्णव ही कहते हैं। अस्तु श्री और सीता पर्याय होने से सीता जी की नाद परम्परा में होने वाले श्री वैष्णवाचार्य स्वामी श्री राघवानन्दाचार्य जी ने अपने स्थान का नाम रखा "श्रीमठ"।

मणि पर्वत, अयोध्या ★★★

काशी में पंचनद तीर्थ-क्षेत्र एवं स्वामी रामानन्दाचार्य

— वैकुण्ठ नाथ उपाध्याय
हरतीरथ, वाराणसी

काशी त्रैलोक्य से न्यारी अपनी पवित्रता के बल पर है। उस काशी में भी पंचनद तीर्थ को सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र मानकर ही भगवान श्रीविष्णु ने अपना वहाँ स्थायी निवास चुना है। पंचनद-तीर्थ सर्व तीर्थों से भी अधिक पावन है । पंचनद तीर्थ का नाम लेने से पाप के सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं। इस प्रकार सर्व पापापहारिणी और सर्व कल्याणकारिणी महिमा पंचनद की है।

मृत्युलोक में, विशेषकर भारतवर्ष में व्याप्त समस्त तीर्थ अपने-अपने क्षेत्र के पापियों के पाप को तीर्थराज 'प्रयाग' के बल पर अपने में समाहित कर उसे पाप मुक्त करते हैं। माघ मास में जब सूर्य मकर राशि पर जाते हैं, उस समय समस्त तीर्थ प्रयागराज में आकर अपने यहाँ के सभी पापों को उन्हें सौपकर स्वयं निर्मल हो पुनः अपने क्षेत्र में पुण्य बिखेरते रहते हैं। तीर्थराज प्रयाग समस्त तीर्थों द्वारा समर्पित पापों को लेकर कार्तिक मास में जब सूर्य तुला राशि के होते हैं, तब काशी आते हैं और पंचनद तीर्थ में एक बार स्नान कर उन पापों को वहाँ छोड़कर पुण्य अर्जित कर पुनः अपने स्थान को लौट जाते हैं। पंचनद में धूतपापा व किरणानदी उन पापों को काट-काट कर द्रव रूप कर उसे द्रव रूप में परिणतकर अपने में आत्मसात् कर लेती हैं।

पंचनद की उत्पत्ति

पूर्व काल में परम तपस्वी भृगुवंशी वेदशिरा महर्षि पंचनद क्षेत्र में निवास करते हुए घोरतप करते रहे। इनके तप को भंग करने हेतु देवराज इन्द्र ने शुचि नाम की अप्सरा को भेजा। उसे देख मुनि का मन चलायमान हो गया और वे तुरन्त स्खलित हो गए, यह देख अप्सरा भयभीत हो गयी। शुचि के क्षमायाचन के बाद मुनि ने कहा कि इस में न मेरा दोष है और न तो तुम्हारा ही दोष है। क्रोध करने से बड़े कष्ट से संचित तपस्या का क्षय होता है, जैसे बादल के छा जाने पर चन्द्र और सूर्य का प्रकाश प्रायः लुप्त हो जाता है। बुद्धिमान् जन को चतुर्वर्ग और शरीर के घातक क्रोध को सर्वदा त्याग देना चाहिए। तुमसे एक कन्यारत्न प्राप्त होगी। अप्सरा ने मुनि के महाप्रसाद को ग्रहण किया। पश्चात् समय आने पर उसे कन्या उत्पन्न हुयी। वेदशिरा मुनि के आश्रम में उस कन्या को छोड़कर वह अप्सरा स्वर्ग लोक को चली गयी।

"धूतपापा"

मुनि ने उस कन्या का नाम "धूतपापा" रखा। आठ वर्ष की अवस्था होने पर मुनि उसके विवाह की बात सोचने लगे। मुनि के पूछने पर कन्या धूतपापा ने समस्त शुभ लक्षणों से युक्त वर के हाथों में सौपने को कहा।

मुनि ने कहा कि शरीर की सुन्दरता, बुद्धि, वैभव या पराक्रम के बल पर कदापि नहीं मिल सकता। तुम्हारे अनुरूप वर तपस्या से ही प्राप्त होता है।

"धूतपापा को ब्रह्मा का वरदान"

धूतपापा की घोर तपस्या से श्रीब्रह्मा जी ने प्रसन्न हो उससे वर माँगने को कहा। धूतपापा ने वर माँगते हुए कहा कि यदि मैं वरदान योग्य हूँ तो मुझे समस्त पवित्रों से अत्यन्त पवित्र कर दें। ब्रह्मा जी ने कहा कि स्वर्गलोक, मृत्युलोक एवं अन्तरिक्ष में उत्तरोत्तर पवित्र करने वाले साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। वे सभी तीर्थ तुम्हारे शरीर के प्रत्येक रोम में वास करें, जिसके कारण तुम सबकी अपेक्षा परम पावनी हो जाओ।

"धर्मराज व धूतपापा-एक दूसरे से शापित"

वर प्राप्ति के बाद धूतपापा एक दिन अपने आश्रम की वाटिका में थी। उसी समय एक सुन्दर बलवान ब्राह्मण आया और कहा कि "मैं अत्यन्त कामातर हूँ, तुम अपने को मुझे दान करो।" इस पर धूतपापा ने कहा कि "मेरे पिता जीवित हैं। कन्यादान के वे ही अधिकारी हैं। अतः आप उनसे निवेदन करें।" ब्राह्मण ने कहा कि मैं नहीं कह सकता। तुम गान्धर्व विवाह कर लो। तब कन्या ने उत्तर दिया कि "ऐसा यदि करूँगी तो पिताजी को कन्यादान का फल कैसे प्राप्त होगा ? अरे जड़मते ! अब ऐसी बातें मत करना, यहाँ से चला जा। परन्तु वह कामातुर नहीं माना और बलात् उसे पकड़ना चाहा। तब धूतपापा ने अपने तपोबल से उसे शाप देते हुए कहा कि "तुम बड़े भारी जड़ हो, अतः जड़ों के आधार 'नद' हो जाओ॥" शापग्रस्त होने पर क्रोध से भरा ब्राह्मण ने भी उसे शापित करते हुए कहा कि "रे दुर्मते ! कठोर हृदये ! तू भी शिला हो जा।"

ब्राह्मण रूप में स्वयं धर्मराज थे , जो 'नद' हो गए। इस प्रकार उक्त नद अविमुक्त महाक्षेत्र में "धर्मनद" नाम से विख्यात हुआ।

धूतपापा ने शिला होने का कारण अपने पिता से निवेदन किया। जिस पर ध्यान बल से जानकर पिता ने कहा कि बेटी, तुम्हारी तपस्या के फल से वह तुम्हारे होने वाले पति धर्मराज थे। अब मेरे पुण्य से तुम 'चन्द्रकान्ता मणि' हो जाओ। चन्द्रोदय होने पर शिला रूपी तुम द्रवित होगी, तुम धूतपापा नदी से विख्यात होगी तथा धर्मनद में जाकर मिलोगी। इस प्रकार द्रव रूप में तुम दोनो का संगम होगा और मेरे तप के प्रभाव से तुम्हारा एक प्राकृत रूप तथा दूसरा द्रव रूप होगा।

महापातक नाशक ह्रद

दोनों का द्रव रूप में संगम-स्थल ही काशी में धर्मनद नामक ह्रद प्रख्यात हुआ। महापातक नाशक ह्रद 'धर्मनद' और सर्वतीर्थमयी शुभरूपा 'धूतपापा' नदी तटवर्ती वृक्षों के समान पापाराशियों को विनष्ट करते रहते हैं।

किरणा नदी

श्री गंगा जी के आगमनसेपूर्व सूर्यनारायण ने धर्मनद व धूतपापा के संगम स्थल पर भगवती मंगला गौरी व भगवान् गभस्तीश्वर की स्थापना कर उग्र तप किया। उक्त तपस्वी सूर्य का नाम वहाँ पर 'मयूखादित्य' पड़ा। तपस्वी सूर्यके शरीर से पसीना की धारा निकल पड़ी। वह धारा किरण से निकलने के कारण 'किरणा' नदी नाम से विख्यात हुई। किरणा नदी भी उसी धर्मनद में मिल गयी। धर्मनद धूतपापा व किरणा नदी का संगम-स्थल है।

धर्मनद में स्नान करने मात्र से समस्त पापान्धकार का ध्वंस हो जाता है। सर्वतीर्थमयी धूतपापा नदी सभीपापों को कंपा देती है और सूर्य-किरण से निकली पापहन्त्री किरणा नदी उस धर्मनद में मिलकर समस्त पापों को काट-काट कर उसे द्रव रूप कर अपने में मिला लेती है। महाराजा भगीरथ के प्रयास से श्री गंगा जी के साथ प्रयाग से यमुना व सरस्वती भी आकर धर्मनद में जब मिली, तब से यह 'पंचनद' नाम से विख्यात हुआ। धूतपापा, किरणा, गंगा, यमुना और सरस्वती पवित्रजला नदियाँ कहीं जातीं हैं।

त्रैलोक्य में प्रसिद्ध इस पंचनद तीर्थ में स्नान करने के बाद मनुष्य को पंचमहाभूतों से बना शरीर पुनः नहीं धारण करना पड़ता।

पंचनद का महत्त्व

पापपुंज भंजक इस पंचनद के संगम में स्नान करने वाला मनुष्य ब्रह्माण्ड मंडप भेदकर चला जाता है। काशी में पग-पग पर तीर्थ हैं, परन्तु पंचनद तीर्थ सबमें उत्तम कहा गया है। प्रयागराज तीर्थ में माघ मास भर स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वह पंचनद में एक दिन स्नान से प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य पंचनद में स्नान कर पितरों के निमित्त तर्पण व श्राद्ध करता है और वहाँ स्थित भगवान् बिन्दु माधव का दर्शन-पूजन करता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता। तर्पण में जितने तिल होते हैं, उतने वर्ष तक पितरगण तृप्त हो जाते हैं। यहाँ श्राद्ध करने पर अनेक योनियों में पड़े पितर वहाँ से मुक्त हो जाते हैं। यम-लोक में पितरगण यह आकांक्षा करते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा हो, जो पंचनद में स्नान कर श्राद्ध करें, तो हमारी मुक्ति हो जाए। पंचनद पर जो कुछ दान कर जो पुण्य अर्जित किया जाता है, उसका कभी क्षय नहीं होता।

वर्षभर पंचनद में स्नान कर मंगला गौरी का दर्शन करने वाली वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है। पंचनद का एक बूंद जल सौ घड़ा भरे अमृत से भी अधिक महत्त्व का होता है। पंचगव्य पान से जो शुद्धि होती है, वह पंचनद के एक बूँद जल के पान करने से होती है। स्वर्ग का राजसुख न भोगकर लोग वाराणसी पुरी में पंचनद में स्नान करने वाले की सेवा करना श्रेयस्कर समझते हैं।

इस तीर्थ को सत्ययुग में 'धर्मनद' त्रेता मे 'धूतपापक' द्वापर में 'विन्दुतीर्थ' एवं कलियुग में 'पंचनद' नाम से जाना जाता है। सत्ययुग में सैकड़ों वर्ष तपस्या करने से जो फल प्राप्त होता है, वह कार्तिक मास में एक दिन पंचनद में स्नान करने से होता है , धूतपापा के समान कोई भी तीर्थ भूतल पर नहीं है। यहाँ एक बार स्नान करने से तीन जन्म के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं। इस तीर्थ पर घुघुंची भर स्वर्ण दान करने वाला कभी दरिद्र नहीं होता और न ही वह स्वर्ण विहीन होता है। यहाँ किए गये सभी दान अक्षय होते हैं। पंचनद तीर्थ पर प्रज्वलित अग्नि में एक आहुति करोड़ आहुति के समान होती है। इस तीर्थ की महिमा अपार है।

श्रीविन्दुमाधव

भगवान् श्री विष्णु ने काशी में इस धर्मनद ह्रद पर अपना स्थायी निवास चुना। इसका कारण यह था कि यह स्थली त्रैलोक्य में अद्वितीय रही। काशी के तत्कालीन नरेश महाराजाधिराज श्री दिवोदास जी को उपदेश देने के बाद श्री विष्णु गरुड़ को मन्दराचल पर भगवान् श्रीविश्वनाथ को सब सूचना देने तथा उन्हें बुलाने के लिए भेजकर काशी में पंचनद तीर्थ की महिमा विशेष समझकर वहाँ आये। क्षीर सागर में भी उतने गुण नहीं हैं, जितने कि काशी के धर्मनद में, जहाँ पवित्रतमा 'धूतपापा' है।

श्रीविष्णु भगवान ने वहाँ धूतपापा के जल को स्पर्श कर कहा कि अपनी कौमोदकी गदा का स्पर्श करने से जो सुख मिलता है उससे अधिक इस जल के स्पर्श से होता है। इतना ही नहीं, क्षीर सागर-कन्या श्रीलक्ष्मी के स्पर्शालिंगन से भी अधिक धूतपापा के जल स्पर्श से मुझे आनन्द मिल रहा है। पंचनद तीर्थ पर पहुँचकर श्री विष्णु ने एक तपोवन को देखा। तपोधन श्री अग्निविन्दु महर्षि ने अपने सामने साक्षात् भगवान श्रीविष्णु को देख अत्यन्त प्रसन्न हुए। पृथिवी पर माथा टेककर महर्षि न उन्हें प्रणाम किया और स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो भगवान ने कहा कि "हे महातपोनिधे ! परमप्राज्ञ !! अग्निविन्दो !!! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो।" महर्षि ने प्रार्थना करते हुए कहा कि हे केशव ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो हे नाथ ! आप सर्वव्यापी होते हुए भी इस पंचनद पर मुमुक्षु लोगों के हितार्थ निवास कीजिए। मैं आपके चरणकमल की भक्ति छोड़कर कुछ नहीं चाहता। भगवान् ने परोपकार हेतु माँगे वर को स्वीकार किया तथा कहा कि हे मुनि श्रेष्ठ ! अग्निविन्दो ! काशी के भक्त मनुष्यों को मुक्ति-मार्ग का उपदेश करता हुआ इस स्थान पर मैं वैसे ही रहना चाहता था, पर अब तुम्हारी प्रार्थना पर हे महाप्राज्ञ ! जब तक काशी रहेगी, मैं यहाँ रहूंगा। भगवान् शिव के त्रिशूल पर स्थित होने से इस काशी का प्रलय काल में भी विनाश नहीं होता।

अग्निविन्दु ने भगवान के इस वचन को सुनकर अत्यन्त प्रमुदित हो दूसरा वर माँगते हुए कहा कि हे माधव ! इस पंचनद तीर्थ पर आप मेरे नाम के साथ निवास करते हुए भक्त तथा अभक्तों को भी मुक्ति दान करते रहें। इस तीर्थ में जो भक्त स्नान कर अन्यत्र—काशी से बाहर जाकर यदि मरें तो उन्हें भी आप मुक्ति दे देवें। जो लोग इस तीर्थ में स्नान कर आपको भजें, उन्हें सम्पत्ति रूपा चला-अचला दोनों विधि की लक्ष्मी कभी न त्यागे। भगवान विष्णु ने अपनी स्वीकृति दी और कहा कि लक्ष्मी सहित मेरे नाम के साथ तुम्हारा भी आधा नाम रहेगा। काशी में त्रैलोक्य-विश्रुत 'बिन्दुमाधव' से मैं विख्यात होऊँगा। बड़े पाप-पुंजों का घातक यह नाम होगा। पंचनद तीर्थ में स्नान कर जो लोग मेरा पूजन करेंगे, उन्हें संसार का भय न होगा। इस तीर्थ पर जो लोग मुझे अपने हृदय में रखेंगे, उन्हें धनरूपा व मोक्षरूपा लक्ष्मी कभी नहीं त्यागेगी। यह तीर्थ भी तुम्हारे नाम 'विन्दुतीर्थ' नाम से विख्यात होगा। जो भक्त-जन ब्रह्मचर्य रूप से कार्तिक मास भर सूर्योदय से पहले इस बिन्दु तीर्थ में स्नान कर लेंगे, उसे कभी यमराज का भय न होगा। महान् पापी भी कार्तिक मास में इस धर्मनंद में स्नान करने से पापमुक्त हो जाता है। बिन्दुतीर्थ में स्नान कर यहाँ पर 'बिन्दु माधव' नाम से जो मेरी पूजा करता है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है। भगवान ने आगे कहा कि सत्ययुग में मैं 'आदि माधव' त्रेता में 'अनन्त माधव' द्वापर में 'श्रीमाधव' और कलियुग 'बिन्दुमाधव' नाम से जाना जाऊँगा। जो लोग मेरे और विश्वेश्वर में भेद मानते हैं, वे मेरे शत्रु होते हैं और अन्त में पिशाच पद को प्राप्त करते हैं। पिशाच होने पर श्री काल भैरव की आज्ञा से ३० हजार वर्ष तक दुःख सागर में रहकर पुनः विश्वेश्वर की कृपा होने पर ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। विश्वेश्वर के निन्दकों को एक-एक कल्प पर्यन्त प्रत्येक नरक में भोग भोगना पड़ता है।

कार्तिक मास में स्वयं श्री विश्वनाथ, गणपति, स्कन्ध परिजनों सहित पंचनद में स्नान करते हैं। साक्षात् ब्रह्मा अपनी ब्रह्माणी इत्यादि मातृगण, समस्त नदियों सहित समुद्रगण इस धूतपापक तीर्थ में स्नान करते हैं। पवित्र आनन्द वन में यह पंचनद और भी पवित्र है।

पंचनद की उत्पत्ति और महिमा, वहाँ श्री विष्णु के स्थायी निवास तथा उनके पूजा का विशद वर्णन स्कन्ध पुराणान्तर्गत काशी खण्ड के ५९ वें ६० वें अध्याय में मिलता है।

पंचनद की श्रेष्ठ महिमा को समझकर ही श्रीविष्णु ने वहाँ स्थायी निवास चुना। इसी को दृष्टिगत करते हुए परम वैष्णव सन्त-महात्माओं की भी यह निवास स्थली रही है। काशी में आकर आदिकाल से सन्तों ने इसी

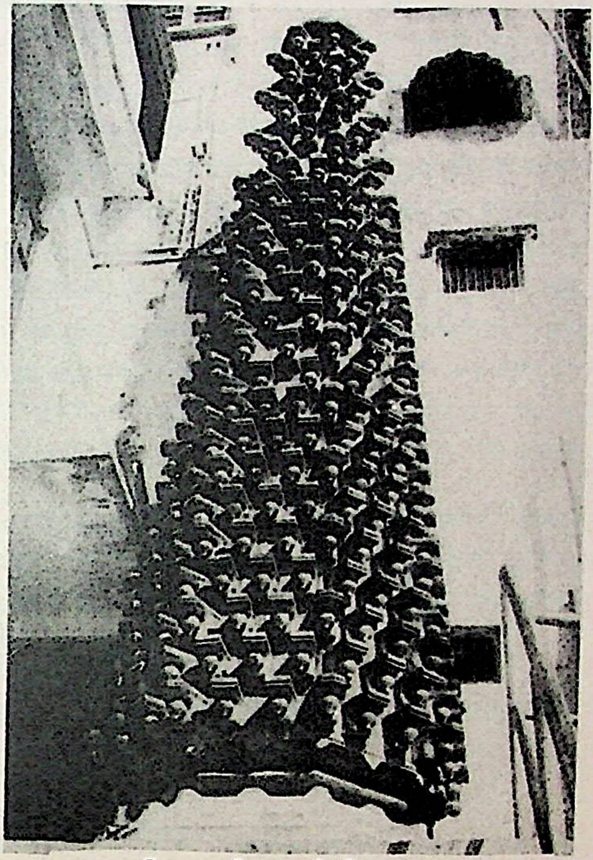

अहिल्याबाई द्वारा निर्मित हजारा
पंचगंगाघाट

स्थान को अपना वास स्थान बनाया। इस पंचनद तीर्थ में जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य, श्री वल्लभचार्य, सन्त एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, तुलसीदास, महात्मा तैलंग स्वामी आदि की भी साधना स्थली यह पंचनद तीर्थ रहा है। सन्त कबीर ने भी इसी पंचनद तीर्थ की सीढ़ी पर श्री रामानन्दाचार्य जी से अनजाने में उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था। इस सम्बन्ध मा एक रोचक कथा इस प्रकार कही जाती है कि श्री कबीर महात्मा रामानन्द जी के शिष्य बनने आये, पर उन्होंने शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया तो एक रात्रि में वह महात्मा की ड्योढ़ी की सीढ़ी पर लेट गये। जब श्री रामानन्द जी प्रातः स्नानार्थ आश्रम से बाहर निकले तो उनका पैर कबीर की छाती पर पड़ा। महात्मा ने उन्हें उठाकर कष्ट का वारण करते हुए कहा कि 'बच्चा ! राम-राम कहो, तुम्हारा कल्याण होगा।' बस क्या था, 'राम' नाम का जप करते, रामनामी दुपट्टा ओढ़े कबीर दास नगर में भ्रमण करने लगे। एक दिन अन्य महात्माओं ने उनसे पूछा कि मुसलमान होकर रामनामी क्यों ओढ़ें हो और राम-नाम का जप क्यों करते हो'। तब कबीर ने बताया कि वह पंचनद के स्वामी रामानन्द जी महाराज के शिष्य हैं। इस पर वे महात्मा रामानन्द जी के पास आकर पूछे तो उन्होंने कहा कि कबीर शिष्य बनने आया था, पर उन्होंने उसे शिष्य नहीं बनाया। दूसरे दिन उन लोगों ने कबीर दास को पकड़कर श्री रामानन्द जी के आश्रम में आए तो उस समय श्री रामानन्द जी समाधि लगाये बैठे थे। सभी चुपचाप बैठ गए। थोड़ी देर बाद कबीरदास ने समाधि लगायी। कुछ ही समय बाद कबीर ने कहा कि 'डोरवा तोड़के गरवा में पहिराय दा।' समाधि समाप्त होने पर श्री रामानन्दाचार्य ने पूछा कि यह बात किसने कही कि 'डोरवा तोड़के गरवा में पहिराय दा।" तो कबीर ने कहा कि गुरुदेव ! मैंने कही थी। इस पर आचार्य श्री ने कहा कि हमने तुम्हें कब शिष्य बनाया, तो कबीर ने रात वाली घटना बतायी। जिस पर महात्मा श्री रामानन्द जी ने कहा कि आप सबने देखा, मैंने इसे शिष्य नहीं बनाया, पर आज से यह मेरा शिष्य हो गया, क्योंकि समाधि में मैं भगवान का मानसिक पूजन कर रहा था। स्नानादि कराने के बाद भगवान् के मस्तक पर मुकुट धारण करा दिया था। पुष्प माला पहनाते समय माला छोटी होने के कारण गले में नहीं पहना पा रहा था। तभी इसने उक्त बात कही। अतः मेरी समाधि दशा में इसने मेरी कठिनाई को इस प्रकार दूर किया, अतः आज से यह मेरा शिष्य हो गया।

पंचनद क्षेत्र में काशी के मूर्धन्य विद्वान् पं० बाल शास्त्री, दामोदर शास्त्री, तात्था शास्त्री, आदि विद्वानों तथा मूर्धन्य वैदिक वृन्द ने भी श्री विष्णु की तथा सन्त-महात्माओं की भाँति अपना निवास स्थली बनाया। इस तीर्थ पर आज भी उक्त सभी के पीठ-स्थान पूजनीय व दर्शनीय हैं। महात्मा रामानन्दाचार्य जी का स्थान आज 'श्रीमठ' नाम से पंचनद तीर्थ पर शोभायमान है।

श्रीमठाधिपति द्वारा प्रकाशित स्मारिका में मुझे जो योगदान का सुअवसर प्राप्त हुआ, इससे मैं अपने को कृतार्थ मानता हूँ।

★★★

रामानन्द चरणपादुका 'पंचगंगाघाट'

— पं० विजय शंकर उपाध्याय

काशी के परम पावन पंचगंगाघाट पर अवस्थित श्रीमठ रामानन्दीय श्रीवैष्णव समाज का मूलस्थान है। अपने गुरुदेव स्वामी राघवानन्द जी के चरणों में बैठकर इसी स्थान पर ही स्वामी रामानन्द जी ने दीक्षा एवं शिक्षा के माध्यम से अपने जीवन को परम प्रकाश से अन्वित किया था, तथा त्रिविध तापों से संतप्त संसार के समस्त जीवों को भी राम भक्ति के प्रचार-प्रसार के द्वारा परम विश्राम दिलाने के लिए पूर्ण प्रयास किया था। श्रीमठ की प्रसिद्धि "रामानन्द चरण पादुका" के रूप में भी है । परम दुराचारी मुगल बादशाह औरंगजेब ने जब श्रीमठ को ध्वस्त करवा दिया तब सन्त्रस्त होकर सभी सन्त पूरे देश में बिखर गए। श्रीमठ को मस्जीद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। रामभक्तों के परम धाम में मुल्लाओं का मेला लग गया। श्रीमठ के विध्वंस के क्रम में विध्वंसकारियों की दृष्टि में महत्वहीन होने के कारण रामानन्द चरण पादुका सुरक्षित रह गयी। मुगल शासन के पतन के बाद राम-भक्तों के विजातीय प्रयास से सुरक्षित चरण पादुका के रूप में ही श्रीमठ की प्राप्ति हुई। जिसे साम्प्रदायिक वरिष्ठों ने परिष्कृत करवाकर पुनः श्रीमठ को भव्यता एवं दिव्यता प्रदान किया।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के साक्षात् शिष्य श्री चेतन दास जी ने स्वामी जी के साकेत-गमन के एक वर्ष बाद सन्तों एवं भक्तों के आग्रह से आचार्यप्रवर गुरुदेव के मुख्य जीवन क्रमों को लिपिबद्ध किया। जिनका उन्होंने आचार्यचरणों में रहकर साक्षात्कार किया था। आचार्यचरण के जीवन क्रमों के इस परम प्रकाशक को "प्रसंग परिजात" के रूप में जाना जाता है। चरण पादुका के सम्बन्ध में जो दृष्टि "प्रसंग परिजात" से प्राप्त होती है उसे अविकल रूप से श्रीचरणदास जी के भावों के अनुसार ही उद्धृत किया जा रहा है। श्रीचरणदास जी ने विशेष कारणों से प्रसंग परिजात की निर्माण पैशाचिकी भाषा में किया था जिसका हिन्दी अनुवाद हो चुका है।

"अष्टमी" रविवार के दिन अनुष्ठान की समाप्ति पर शिष्यों, सन्तों और विप्रों को सम्बोधित करके महाराज ने कहा— सब शास्त्रों का सार भगवद्स्मरण है जो सन्तों का जीवन-आधार है। शिखा-सूत्र के आधार अन्त्यज और पादज हैं। भाई ! पैरों को काटकर समाज को पंगु मत बनाना। कल श्री रामनवमी है। अयोध्या जी जाऊँगा ! अकेले जाऊँगा कोई साथ नहीं जाएगा। सब यहीं रहेंगे और उत्सव मनायेंगे। कदाचित् मैं न लौट सकूँ; क्यों कि जो उस चिद्धाम में जाता है वह लौटता नहीं तो आप मेरी त्रुटियों, अविनय आदि को क्षमा कीजिएगा। यह सुनते ही सबके नेत्र सजल हो गए। सोमवार को (श्री रामनवमी के दिन) रात्रि के उपदेश से

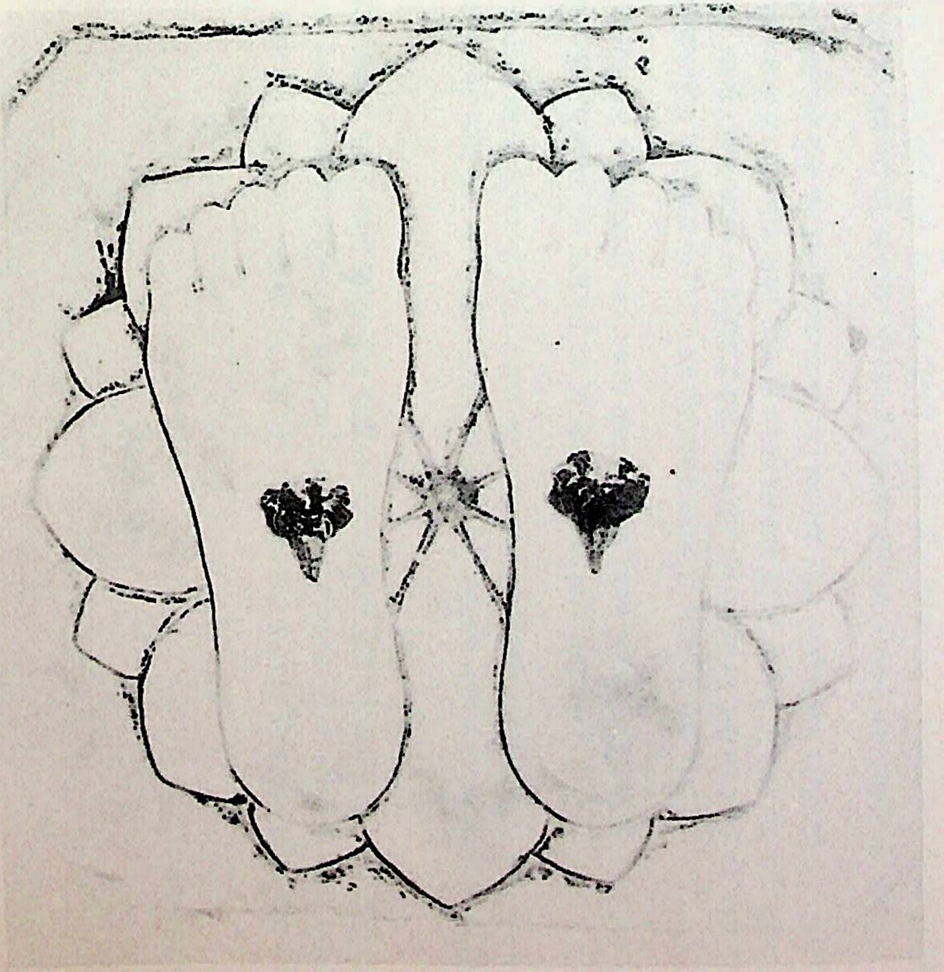

श्रीमठ (पचगंगाघाट) स्थित आद्य श्रीरामानन्दाचार्यं
चरणपादुका

सशंकित जनता बड़े तड़के आश्रम पर जमा हो गई। पठित और मूर्ख सभी श्रेणी के नरनारी उसमें थे। सबकी छाती धड़क रही थी। सभी सतर्क थे।

इतने में बड़े उच्च स्वर से शंख ध्वनि हुई मानो किसी ऊँचे पहाड़ पर से वह ध्वनि गूँजती हुई आ रही हो। सुनकर सब स्तब्ध रह गए। यह अन्तिम ध्वनि थी। इसके मर्म को केवल मुख्य शिष्य हीं समझ सके, इस पृथ्वी पर न जाने कितने महापुरुष आए और अपना कर्तव्य दिखाकर चले गए। कोई रहा नहीं। हाँ उनकी कीर्ति अचल रही। रचना का रहस्य इसी में है। सिद्ध पुरुष तो अपनी महिमा में ही विराजते हैं।

गुफा का द्वार खुला हुआ था। मुख्य शिष्यों ने उसमें प्रवेश करके देखा। उसमें दैनिक कृत्यों के लिए सब वस्तुएं ज्यों कि त्यों धरी थी, चरणपीठ भी था। केवल शंख और उसके फूंकने वाले स्वामी जी नहीं थे।

गुरु-वियोग के दुःख को ज्ञानी शिष्यगण भी नहीं सह सके। इस भंवरों से भरी सरिता को पार करने में कौन समर्थ हो सकता है। एक मात्र कबीर दास जी सबको समझाने बुझाने के लिए सावधान रहे, रोती हुई प्रजा को कौन चुप करावे। नगर भर में तो हाहाकार मच गया। धीरे-धीरे आश्रम पर असंख्य लोगों की भीड़ हो गई। सबलोग सब कृत्य, काम-धाम भूल गए। अब क्या करना चाहिए सो भी कौन सोचे-समझे।

मध्याह्नकाल में आकाश से फिर गम्भीर शंख ध्वनि हुई जिसने आबाल, वृद्ध, वनिता के हृदय से सन्ताप को इस तरह खींच लिया जिस तरह सर्प दंश के विष को मांत्रिक खींच लेता है।

"शिष्यगण चरण पादुका को लेकर गंगापर गए। ज्यों ही गंगाजल का स्पर्श हुआ वह लकड़ी से पत्थर हो गई। प्रजा समेत स्नान दान कर सबलोग आश्रम पर आए। बड़े प्रेम और समारोह से उस पादपीठ की स्थापना की गई।"

काल क्रम से यही चिन्मयी भुक्ति-मुक्ति प्रदायिका चरण पादुका आज भी पंचगंगा घाट पर अविस्थित है। संसार के समस्त रामानन्दीय सन्त एवं भक्त इसके आचार्य प्रवर रामानन्द जी के रूप में ही दर्शन, पूजन तथा वन्दन करते हैं। सम्पूर्ण रामभक्तों के लिए यही एक मात्र प्रेरणा-स्रोत है। प्रतिदिन इसका वैदिक रीति से पूजन होता है।

—पंचगंगाघाट, वाराणसी

★★★

श्रीमठ का अतीत एवं वर्तमान

— महन्थ रामदास

आज से लगभग': सात सौ वर्ष पूर्व जिस 'श्रीमठ' का उत्कर्ष बढ़ा था, वह हम भारतीयों के लिये महान् गौरव का विषय है। पिछली कई शताब्दियों से भारत परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ गया था। इसके भीतर रहनेवालों का जीवन दयनीय बन गया था, अत्याचारियों की कोई सीमा नहीं थी। बर्बर शासकों द्वारा बलात् धर्म परिवर्तन का नंगा नृत्य पूरे देश में हो रहा था, दीन-दुःखी आत्माओं की चीतकार से आकाश गुंजायमान था, प्रजा की आर्त पुकार थी कि परमात्मा प्रकट हो, उन्हें धैर्य प्रदान करें। दीनबन्धु ने दीनों की पुकार सुनी और "श्रीराम" स्वयं आचार्य रामानन्द के रूप में अवतीर्ण होकर अपने प्रखर तेज को लेकर विश्व के सामने प्रकट हुए और समय का निग्रह किये। उन्होंने अनुग्रहशक्ति का भी उपयोग किया, जिससे मृतक वर्ग के जीवन में जान लौटी और जीवन रूपी मुरझायी हुई लता पुनः पल्लवित-पुष्पित हो उठी।

तीर्थराज प्रयाग में पवित्र कान्यकुब्ज वंश के महान् विद्वान् पुण्यसदन जी के घर माता सुशीला देवी से भगवान् रामानन्द जी महाराज का आविर्भाव हुआ। वैश्वानर संहिता के अनुसार —

श्लोकः—

"माघे च कृष्णसप्तम्यां, चित्रानक्षत्र' संयुते,

कुम्भलग्ने सिद्ध योगे, सुसप्त दण्डगे रवौ,

'रामानन्दः' स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले ॥१॥"

विशिष्टाद्वैत प्रतिपादक श्रीसम्प्रदायाचार्य आचार्य श्रीरामानन्द ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का आदर्श सम्मुख रखकर परम - प्रतापी शिष्यों का संग्रह किया। जैसा कि कहा जा चुका है कि स्वामी रामानन्द अपने समय के एक अद्भुत समन्वयवादी, समय का निग्रह करने वाले, निर्भय, अटल सिद्धान्तवादी आचार्य हुए हैं। आचार्यपद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् अत्यन्त निर्भयता के साथ "सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः," का उद्घोष करने पर दिव्या से उत्पन्न हुसेन वंशीय माता के द्वारा पालित एवं 'गौ' दुग्ध पान कर पलने वाले कबीर ने स्वामी जी से दीक्षा प्रदान करने की जिज्ञासा प्रकट की। दिव्य द्रष्टा आचार्य ने तत्काल बालक कबीर को विधिवत् तिलक-कण्ठी-माला-मंत्र छाप देकर अपना शिष्य बना लिया। इस बात की चर्चा पूरे काशी नगर में बिजली की भांति फैलने में देर न लगी। अनेक ब्राह्मण, विद्वान् इस बात से क्षुब्ध होकर आश्रम पंचगंगा घाट 'श्रीमठ' पर पहुँचे और स्वामी जी से प्रश्न पर प्रश्न करने लगे। किसी ने कहा कि "कबीर जुलाहे ने कण्ठी-माला-तिलक-छाप धारण कर लिया है और आपका शिष्य बतलाता है। क्या यह बात सच है ? यदि ऐसा है तो बड़ा अनर्थ हुआ। इस प्रकार उन विद्वानों के कहने पर स्वामी जी ने बड़े मधुर स्वर में कहा, " बात यह सत्य है, और वह मेरा शिष्य है। भाई भगवान तो सबके हैं और भगवत् शरणागति का अधिकार सदा से सबको है। भगवान अपनी कृपा से किसी को भी वंचित नहीं करते। भगवत् सम्बन्धी वस्तुओं पर सबका समान अधिकार है। बालक कबीर ऐसे सत्पात्र को जो जन्म जात परम भागवत हैं, उन्हें मोक्ष मार्गीय दीक्षा से वंचित करना क्या

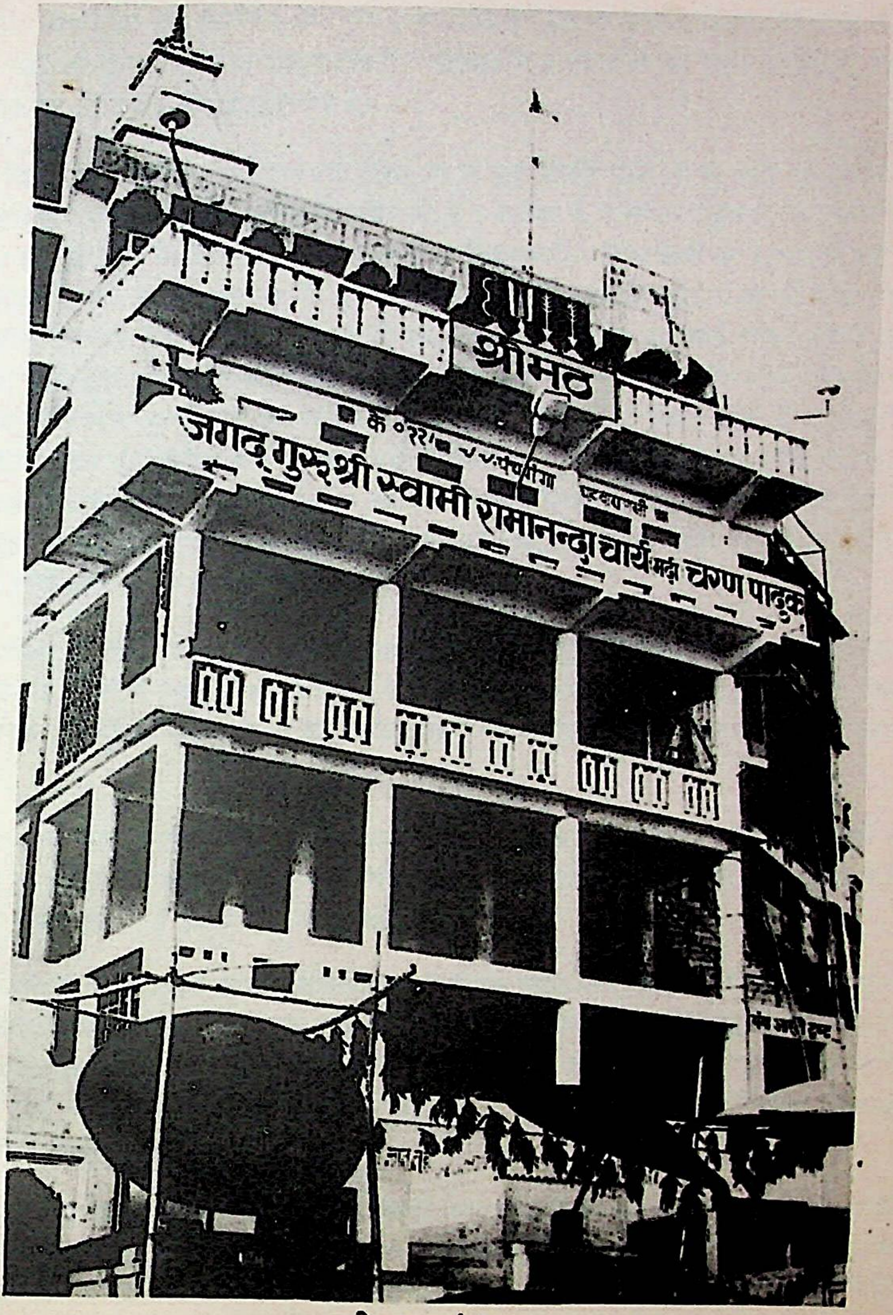
श्रीमठ
जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्य मठ चरण पादुका

श्रीमठ-पचगंगाघाट

पुरुष के लिए उचित कार्य है ? स्वामी जी के सुमधुर कोमल वाणी का प्रभाव ऐसा पड़ा कि वे विद्वान बोल पड़े, "स्वामिन् ! मोहित बुद्धि के कारण हम लोगों के मन में विकार अवश्य उत्पन्न हो गया था, जिससे प्रेरित और उत्तेजित होकर हम यहाँ आये । परन्तु आपके राम-नाम की रमुक्रीड़ा ने हमारी व्यवसायिनी बुद्धि को ठिकाने लगा दिया । आप उभय महःनुभावों से हम लोग क्षमा माँगते हैं । यह था स्वामी जी का व्यक्तित्व और कर्तृत्व । इतना ही नहीं अपितु स्वामी जी के द्वादश शिष्यों में सवर्ण और निम्न कोटि के अनेक शिष्य हुए, जिनमें कबीर, रैदास, धना, सेन आदि का नाम उल्लेखनीय है ।

एक दिन यतीन्द्र ने महाभाग रैदास एवं भक्ति-पथ में चतुर कबीर दास जी से कहा, "मैं देखता हूँ कि इस युग में पहले के अनधिकारी ही वास्तव में अधिकारी हैं । क्योंकि वे अभिमान रहित हैं, जो भगवान् से विमुख करता है । इस कर्मभूमि में शान्ति पूर्वक भजन करने के लिए सन्तों ने निम्न श्रेणी के मनुष्यों के यहाँ जन्म लेना उचित समझा है, अतः उनको गुरु-मुख की अत्यन्त आवश्यकता है । क्योंकि कुलीनों के गुरु उन्हें उपदेश देने में संकोच करते हैं । ऐसी स्थिति में उनकी आध्यात्मिक पिपासा शान्त करने का कोई साधन न होने पर "स्व धर्मे निधनं श्रेयः" की वृत्ति उनमें कैसे और कब तक टिकी रह सकती है । मेरे प्यारे शिष्यों ! लोकसंग्रह का पुण्य कार्य आप भक्तिमान पुरुषों को करना ही चाहिए, अस्तु इस लोक संग्रह कार्य में प्रवृत्त हो जाइये । प्रवृत्ति—लक्षण युक्त ही भागवत धर्म है, परन्तु वह प्रवृति केवल भगवान् की ही ओर होनी चाहिए । और यह 'लोक-संग्रह' भगवान् का ही कार्य है । समाज की ऐसी भयावह स्थिति में उन प्राणियों के लिए ऐसा सुगम मार्ग होना चाहिए जो उन्हें दिव्य धाम तक पहुँचा दे । उन्हें सच्चा आधार मिलना चाहिए जिससे उनका कल्याण हो, हृदय की आँखें खुलें और वे परमार्थ पथ को स्वयं देख सकें ।

आचार्यश्री की शिक्षा को सन्त कबीर जी, महाभागवत रैदास जी एवं सेनभक्त धनाजाट ने शिर माथे चढ़ाया और लोकसंग्रह-कार्य में प्रवृत्त होकर त्रयी धर्म से तिरस्कृत, सब प्रकार से उपेक्षित, दीन, हीन, खिन्न, दिशा-विहीन अनेक प्राणियों को आधार प्रदान कर धर्मभ्रष्ट होने से बचाकर देश और समाज तथा राष्ट्र का महान् हित किया ।

एक समय षडक्षर मन्त्रराज का रहस्य प्रकट करते हुए आचार्यश्री ने कहा, "मंत्र में मंत्रमूर्ति को प्रत्यक्ष करने की ही शक्ति नहीं होती प्रत्युत उसमें सभी प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने की भी शक्ति निहित है । मंत्र स्वतः शक्ति स्वरूप है उसके सामर्थ्य की कोई सीमा नहीं है ।

इसी सन्दर्भ में आचार्यश्री के सम सामयिक काशी में एक सूफी सन्त मौलाना श्री रसीसुद्दीन हुए थे जिन्होंने अपनी पुस्तक 'तस्कीर तुक फुकरा' में आचार्यश्री के महान व्यक्तित्व का बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ उल्लेख किया है । उस फारसी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद तत्कालीन अयोध्या के एक उद्‌भट विद्वान श्री ब्रह्मचारी बिन्दु जी ने करके गीता प्रेस, गोरखपुर से निकलने वाले 'सन्तांक' में प्रकाशित कराया था । जिसका अक्षरशः उल्लेख निम्नांकित है । यथाः—

इसी पुरी (काशी) में पंचगंगा घाट पर एक प्रसिद्ध महात्मा रहते हैं । तेज-पुंज और पूर्ण योगेश्वर हैं । वैष्णवों के सर्वमान्य आचार्य हैं । सदाचार और ब्रह्मनिष्ठत्व के स्वरूप ही हैं । परमात्मतत्त्व रहस्य के पूर्ण ज्ञाता हैं सच्चे भागवत् प्रेमियों एवं ब्रह्मविदों के समाज में उत्कृष्ट प्रभाव ही नहीं रखते हैं; अपितु, धर्माधिकार में वे हिन्दुओं के धर्म-कर्म के सम्राट् हैं । केवल ब्रह्मवेला में अपनी पुनीत गुफा से गंगा-स्नान के लिए बाहर निकलते हैं । उन पवित्र आत्मा को स्वामी 'रामानन्द' कहते हैं । उनके शिष्यों की संख्या पांच सौ से अधिक है । उस शिष्य समूह में द्वादश गुरु के विशेष कृपा-पात्र हैं, कबीर, पीपा और रैदास आदि । इन भागवतों के समुदाय का नाम 'विरागी'

है । जो लोक-परलोक की इच्छाओं का त्याग करता है उसे ब्राह्मणों की भाषा में 'विरागी' कहते हैं । कहते हैं कि इस संप्रदाय की प्रवर्तिका (ऋषि) जगज्जननी (श्री) सीता जी हैं । उन्होंने प्रथमतः अपने सविशेष सेवक पार्षदरूप (श्री) हनुमान जी को उपदेश किया और उन ऋषि (आचार्य) के द्वारा संसार में उस मंत्र-रहस्य का प्रकाश हुआ । इस कारण इस सम्प्रदाय का नाम 'श्री' सम्प्रदाय है और उसके मुख्य मंत्र को "रामतारक" कहते हैं । उस पवित्र मंत्र को गुरु, शिष्य के कान में दीक्षा देते हैं और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक ललाट तथा अन्य ग्यारह स्थलों पर लगाते हैं । तुलसी का 'हीरा' जनेऊ में गूँथ कर शिष्य के गले में पहनाते हैं । उनकी जिह्वा जप में और मन सच्चे प्रियतम के दर्शनानुसंधान में रहा करता है । पूर्णतया भजन में ही इस सम्प्रदाय की रति है । अधिकांश सन्त आत्माराम अथवा परमहंसी जीवन निर्वाह करते हैं । इसी सन्दर्भ में इतिहासकार डा० विल्सन के उद्गार :–

Essays and lecture chiefly on the Religion of the Hindus, Vote. I. By.

"The residence of Ramanand was at Benares at the Panchaganga-ghat where a Math or monestory of his followers is said to have existed bid to have been destroyed by some of the Musalman Princes. At present there is a merely stone plateform in the vicinity bearing the supposed impression of his feet. But there are many Maths of his followers of celebrity at Benares whose panchayat or Council is the Chief Authority amongst the Ramavats in upper India."

— *By H.H. Wilson.* M.A.F.R.A.S.

यह डा० विल्सन साहब का लेख है । इसे उन्होंने हिन्दू-धर्म के इतिहास में लिखा है । इसका सारांश नीचे है :–

"श्री रामानन्द स्वामी के रहने का स्थान काशी के पंचगंगा घाट पर था । वहाँ उनके अनुयायियों का एक विशाल 'श्रीमठ' था, जिसे मुसलमान बादशाहों ने तोड़वा डाला । वर्तमान समय में उसी मठ के समीप एक पत्थर के चबूतरे पर उनकी चरण पादुका बनी हुई है । वहाँ काशी में रामानन्द सम्प्रदाय के और भी बहुत से मठ बने हुए हैं, जिनमें उनके प्रख्यात अनुयायी रहते हैं और उनकी एक प्रधान पंचायत बनी है जिसका प्रभुत्व भारत के रामानन्दियों पर प्रधान रूप से है ।"

आचार्य श्री बहुत काल तक देश-समाज और राष्ट्र का हित चिन्तन करते हुए अपनी लीला संवरण करने के पूर्व एक दिन गंगा महोत्सव पर्व पर विभिन्न सम्प्रदाय के साधुओं का समागम श्रीमठ पंचगँगा घाट पर हुआ । बहुत बड़ी संख्या में सब लोग भेद-भाव त्यागकर एक पंक्ति में बैठकर, सानन्द भगवत् प्रसाद सेवन किया । जब सब लोग निश्चित होकर स्वामी जी के समक्ष बैठे तो सबको कृतार्थ करने हेतु बड़े प्यार से अमृतमयी वाणी में बोले, "आज भगवान् ने सहस्र मुख से भोजन किया है और खूब अघाकर भोजन किया है । आज प्रभु ने अपूर्व आनन्द प्रदान किया है जिसे भूल जाना कठिन है । भगवत् प्रसादमयी तृप्ति आपकी जाति-पाँति की जड़ अहंकार को समूल नष्ट करने वाली है । ऐसा कौन मूर्ख होगा जो अहंकार रूपी सर्प को पालेगा और अपने आध्यात्मिक जीवन से हाथ धो बैठेगा ? भगवद्-भक्त कदापि ऐसा नहीं कर सकता । आध्यात्मिक स्वतन्त्रता और सामाजिक

बंधन के बीच की स्थिति भयावह, शोचनीय और अत्यन्त दुःखदायी हुआ करती है। अपना शिर अपने हाथ से काटकर हथेली पर रखकर चलने वाले ही उस दयामय के चौखट तक पहुँचते हैं। स्वामी जी के उपदेशामृत पीकर मस्त हुए लोगों ने कहा, "नाथ ! आज इस जीवन में महाप्रसाद की महिमा से परिचय हुआ। आपकी जय हो। एक भक्त ने उठकर पूछा कि जो सुख अभी सबको भोज में प्राप्त हुआ है वह क्या दूसरे भण्डारे में भी हो सकता है ? आनन्द के मूल में हेतु क्या है ? स्वामी जी ने कहा, "जिस भोज के मूल में श्रद्धा है, मध्य में सखाभाव अर्थात् समानता का व्यवहार है और अन्त में सत्कार है, उसमें अवश्य आनन्द मिलेगा। अहंकार का अभाव ही आनन्द का मूल हेतु है, उसके अभाव में वहाँ परमेश्वर की प्रतिष्ठा होती है जो पंक्ति में बैठकर जीमने वालों की जिह्वा पर विराजमान भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करता है और तृप्त होता है। उसकी तृप्ति ही आनन्द का हेतु है।

जन समुदाय को सम्बोधित करते हुए स्वामी जी अन्तिम वाक्य बोले, "लोक कल्याण के लिए जितने मार्ग खोले गये हैं सबको जारी रखना और आवश्यकतानुसार नये-नये हितकर मार्ग प्रचारित करना हमारे प्यारे शिष्य समुदाय का कर्त्तव्य है। सब शास्त्रों का सार भगवत्-स्मरण है जो सन्तों का जीवन आधार है। शिखा, सूत्र के आधार पादज और अन्त्यज हैं। भाई ! पैरों को काटकर समाज को पँगु मत बनाना। कल श्रीराम नवमी है। श्री अयोध्या अकेले ही जाऊँगा। कोई साथ नहीं जायगा। सब यहीं रहेंगे और उत्सव मनावेंगे। कदाचित् मैं न लौट सकूँ। क्योंकि उस चिद्धाम में जो जाता है वह लौटता नहीं। यह सुनते ही सबके नेत्र सजल हो गये, दिल धड़कने लगा। सबके देखते-देखते ही शंखध्वनि के मध्य स्वामी जी अदृष्य हो गये।" स्वामी जी के अन्तर्धान होने के पश्चात् "श्रीमठ" के सम्प्रदायाचार्य के पद पर स्वामी जी के समस्त अनुयायियों ने मिलकर प्रधान शिष्य स्वामी अनन्तानन्द जी को प्रतिष्ठित किया। स्वामीजी के लीलाकाल में भी अनन्तानन्द जी महाराज ही श्रीमठ के सभी व्यावहारिक क्रमों की जिम्मेदारी सम्भालते थे। आध्यात्मिक समृद्धि भी इनकी शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ थी। साधना के बल से अपने गुरुदेव के समस्त भावों को जानकर आप श्रीमठ का अनुपम संचालन करते थे। परन्तु गुरुवियोग से कातर आपका मन एक वर्ष में ही श्रीमठ की सेवा से भागने लगा। आचार्य प्रवर के साकेतवास के एक वर्ष बाद वर्षीय महोत्सव का दिव्य समायोजन हुआ। सभी सन्त तथा भक्त श्रीमठ में समुपस्थित हुये। धूमधाम के साथ महोत्सव की समाप्ति हुयी। जगद्गुरू रामानन्दचार्य स्वामी अनन्तानन्दाचार्य की गुरुवियोग से जन्य खिन्नता एवं उपरामता से सभी लोग धीरे २ परिचित हो गये। उस खिन्नता के मार्जन के लिये कई प्रयास किये गये परन्तु सफलता नहीं मिली। अन्ततोगत्वा सर्वसम्मति से आचार्यपीठ पर आपके ही वरिष्ठ शिष्य परमसिद्ध श्रीकृष्ण दास पयोहारी जी महाराज को अभिषिक्त कर दिया गया। स्वामी अनन्तानन्दाचार्य जी महाराज उन्मुक्त भाव से श्रीराघव का चिन्तन करते हुये देशाटन में निकल पड़े। पीठ की आध्यात्मिक समृद्धि पयोहारी जी महाराज के निपुणतम संचालन में अनुपम रीति से बढ़ने लगी।

रामभक्ति धारा के प्रसार के लिये जगद्गुरू रामानन्दाचार्य पयोहारी जी महाराज अपने शिष्यों की मण्डली के साथ प्रत्येक दिशा में जाया करते थे। इसी क्रम में उन्होंने राजस्थान की यात्रा की। उस समय में वहाँ नाथ पंथ का बहुत ही जोर था। श्री पयोहारी जी के तेज से हतप्रभ होकर तत्कालीन जयपुर नरेश के गुरु नाथ सन्त ने इनको तंग करने का असफल प्रयास प्रारम्भ किया। श्री पयोहारी जी ने अपनी आध्यात्मिक ज्योति से उसे धर्षित किया तथा वहाँ रामभक्ति के मुख्य केन्द्र की स्थापना की। अपने शिष्य के साथ नाथसन्त श्री पयोहारी जी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। उसका विशाल आश्रम अब श्रीमठ की शाखा के रूप में परिणत हो गया। जो अभी भी गालता पीठ के रूप में विश्वविख्यात है। यहाँ पर महर्षि गालव ने तप किया था कि जिसके प्रभाव से परम शुष्क पर्वत से भी गंगा का प्राकट्य हुआ था। जिसमें आज भी लाखों लोग स्नान कर अपने जीवन को धन्य बनाते हैं। पंच संस्कारों से संस्कृत कर जयपुर नरेश नाथगुरु को कील्हदास के रूप में वहीं

परमकल्याणमयी रामभक्ति के प्रचार-प्रसार के लिये प्रतिष्ठित कर दिया तथा स्वयं श्रीमठ में लौट आये। कभी २ वहाँ भी यहीं से जाया करते थे। पयोहारी जी के ही शिष्य अग्रदेवाचार्य जी महाराज ने गुरु आज्ञा से रैवासा में पीठ स्थापित किया। जो आज भी वैष्णव समाज का गौरव-वर्धक है। वैष्णव समाज के ५२ द्वारों में से१० द्वारों का वह मूल स्थान है। वहीं पर उनके शिष्य श्री नाभादास जी के द्वारा अपूर्वग्रन्थ भक्तमाल की रचना हुयी थी। जिसके माध्यम से लाखों को आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हुयी है॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य कृष्णदास पयोहारी जी महाराज के साकेतवास के बाद इस पीठ की परम्परा अबाधित रीति से मुगल बादशाह औरँगजेब के काल तक चलती रही तथा संसार के कोने २ में इसका प्रभाव छा गया। इस बीच में पीठको आचार्य के रूप में निम्नांकित विभूतियों ने अलंकृत किया तथा रामभक्ति धारा के प्रसार में अपने २ जीवन को पूर्णतः समर्पित किया।

वे विभूतियाँ ये हैं :– जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री टीलाराम दास जी महाराज, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री अँगदपरमानन्द जी महाराज, जगद्गुरुरामानन्दाचार्य श्री गोदावरी दास जी महाराज, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री भगीरथ दास जी महाराज, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य क्षेमदास जी महाराज; जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री रामदास जी महाराज, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री छबीलेदास जी महाराज, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री जानकीदास जी महाराज, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री सहजाराम जी महाराज, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री मँगलदास जी महाराज ।

विस्तार के भय से इन आचार्य देवों की विस्तृत चर्चा नहीं की जा रही है। श्रीमठ के प्रभाव से मर्माहत होकर परम संकीर्ण, बर्बर, सनातन धर्म का महान् विध्वंसक औरँगजेब ने विश्वनाथ मन्दिर के साथ ही "श्रीमठ" एवं "बिन्दुमाधव" के मन्दिर को भी नष्ट कर दिया। सम्पूर्ण समाज में इस क्षति से शोक के बादल छा गये। सभी सन्त महापुरुष भी दुराचारियों की राक्षसी व्यवहार से तंग आकर सुशान्त स्थानों में चले गये। इस परम कुकृत्य के फलस्वरूप मुगलवंश का पतन हुआ तथा पुनः सभी धर्मानुरागियों ने अपने २ इष्टदेव तथा आचार्य देवों की तपः स्थायल को व्यवस्थित रूप दिया। श्रीमठ का भी आंशिक जीर्णोद्धार हुआ। दुराचारियों की दृष्टि से सौभाग्यवश बची हुयी "आचार्य चरणपदुका" की सेवा-पूजा प्रारम्भ हुयी। रामभक्ति धारा का ढका हुआ स्रोत पुनः खुला तथा लोगों में शान्ति एवं प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। वर्तमान विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण जिस अहिल्याबाई ने करावाया था उन्हीं के द्वारा निर्मित "हजारा" आज भी श्रीमठ की गौरवगाथा को कहते हुये उसकी ऐतिहासिकता को भी प्रमाणित करता है।

श्रीमठ का यह क्रम यद्यति मन्दगति से संचालित हो रहा था फिर भी सम्पूर्ण रामानन्द सम्प्रदाय की मूल प्रेरणा का स्रोत एवं परमश्रद्धास्पद था। इतिहासकारों की दृष्टि में यहीं से सम्पूर्ण सम्प्रदाय का नियन्त्रण होता था। धीरे २ इस क्रम में और भी शिथिलता आयी। पीठ के तत्कालीन संचालक श्री सरयूदास जी इन परम पुनीत रामानन्द सम्प्रदाय के गौरवपूर्ण धन को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानने लगे। दिनों २ इसकी छवि गिरती गयी। विकास की धारा सर्वथा रुक गयी। सम्प्रदाय के कर्णधारों के मन में अपने परमपुनीत पीठ के उद्धार का संकल्प पुनः २ जागृत होने लगा। जिसमें सर्वप्रमुख रूप से श्रीसम्प्रदाय के कर्मवीर, सजगप्रहरी, वेदोपनिषद, भाष्यकार श्री भगवदाचार्य जी थे।

सन् १९४८ ई० में आपने श्रीमठ के उद्धारार्थ श्रावण मास में श्रीमद् भागवत महापुराण का अनुष्ठान आचार्य चरणों में प्रारम्भ किया। जिसके श्रोता तात्कालिक सम्प्रदायनिष्ठ योगिराज, परमार्थरत्न श्री रणछोर दास जी महाराज हुए। कथा समापन पर श्री परमहंस जी ने आचार्य को दक्षिणा स्वरूप कुछ देना चाहा। स्वामी

भगवदाचार्य जी ने उनसे कहा, "मेरी दक्षिणा यदि आप देना ही चाहते हैं तो श्रीमठ का पूर्णरूपेण जीर्णोद्धार कराने का वचन दें। आचार्यनिष्ठ श्री रणछोर दास जी महाराज ने सहर्ष स्वामी जी का प्रस्ताव स्वीकार किया और दैवयोग से सन् १९७७ में ही कुम्भ महापर्व पर सम्प्रदायनिष्ठ द्वाराचार्यों एवं अखाड़ों के लब्ध-प्रतिष्ठ सन्तों ने जिसमें दिगम्बर अखाड़े के नासिक बैठक के मं० हरिदास आदि का नाम उल्लेखनीय है, विचार-विमर्श पूर्वक सैकड़ों वर्ष से टूटी हुई आचार्य श्रृंखला को पुनः जोड़ने का भगीरथ प्रयास किया और वे पंडित राज श्री स्वामी भगवदाचार्य जी महाराज को विधिवत् सर्वसम्मति से त्रिवेणी तट पर श्री सम्प्रदायाचार्य के पद पर अभिषिक्त किया। वयोवृद्ध आचार्य के अन्तःकरण में बार-बार श्रीमठ के जीर्णोद्धार की प्रेरणा होती रही।

सन् १९७७ ई० में अहमदाबाद स्थित श्रीजगन्नाथ मन्दिर के प्रांगण में सम्प्रदाय के कर्णधार महामण्डलेश्वरों के मध्य अखिल भारतीय श्रीरामानन्द पीठ समिति के मंत्री पद पर आचार्य श्री के आदेशानुसार मेरा चयन हुआ। जब मैं चलने लगा तो स्वामी जी मुझे पास बुलाकर बड़े स्नेह भरे स्वर में बोले, "भैया तुम यहां से सीधे काशी जाओ और वहां श्री परमहंस रामहृदयदास जी से मिलकर श्रीमठ पर समिति का अधिकार कर लो, हमें उस श्रीमठ का जीर्णोद्धार कराना है। वहाँ किसी अन्य का अधिकार न होने पावे क्योंकि वह इस विशाल सम्प्रदाय का उद्गम स्थल है। स्वामी जी के निर्देशानुसार मैं काशी गया। (इस सन्दर्भ में उनके हृदय उद्‌गार का पत्र संलग्न है) और आचार्यश्री की कृपा से उस दिशा में कार्यरत हुआ। अनेक कठिनाइयों के बावजूद श्रीमठ का भूभाग सम्प्रदाय के पक्ष में विधिवत् हो सका। तत्पश्चात् श्री रणछोर दास जी महाराज की प्रेरणा से उनके कृपापात्र शिष्य धर्मप्राण सेठ श्री 'अरबिन्द भाई मुफतलाल' ने श्रीमठ का पूर्णरूपेण जीर्णोद्धार कराकर सम्प्रदाय एवं सद्‌गुरु का आशीर्वाद प्राप्त किया।

सर्वशास्त्र निष्णात वयोवृद्ध आचार्यचरण स्वामी भगवदाचार्य जी महाराज के जिस सतसंकल्प ने लुप्त प्राय श्रीमठ, के० २२/९९ पंचगंगा का पुनः उत्कर्ष बढ़ाकर जिस प्रकार से सम्प्रदाय का गौरव बढाया है, हम समस्त श्री सम्प्रदाय के अनुयायी वर्त्तमान समय के विद्वान् संप्रदायाचार्य श्री रामनरेशाचार्य जी महाराज से यह आशा करते हैं कि भविष्य में आपश्री द्वारा सम्प्रदाय में अधिक चेतना का उदय होगा और वर्त्तमान समय में सम्प्रदाय अपने अतीत के गौरव की ओर अग्रसर होकर राष्ट्र निर्माण में उपयोगी सिद्ध होगा।

इस पावन स्थली के संरक्षण-संवर्धन में कतिपय महानुभावों का मैं हृदय से स्मरण करता हूं जैसे.... श्री महन्त रामलखन दास जी हरतीर्थविश्वेश्वरगंज वाराणसी, उनके उत्तराधिकारी महान्त सरयूदास जी, परमहंस श्री रामहृदय दास जी महाराज बद्रिका आश्रम कर्णघण्टा वाराणसी, महान्त श्री रामसुभगदास जी शास्त्री राम महल कटरा अयोध्या, श्री स्वामी वासुदेवाचार्य वेदान्ताचार्य वाराणसी, श्री रामभक्त बलरामदास जी महाराज लोदरा तथा अग्रदेव पीठाचार्य श्री शालिग्रामाचार्य जी आदि महानुभावों का मैं हृदय से आभार मानता हूँ जिन्होंने श्री सम्प्रदायाचार्य की इस पावन स्थली में अपना हर प्रकार का योगदान दिया है।

★★★

मुक्तिक्षेत्र काशी एवं स्वामी रामानन्द

रामकमल दास "शास्त्री"

संसार का दुःख मिटाकर भटके हुए असंख्य जीवों को सत्य का मार्ग दिखलाना ही अवतार का मुख्य प्रयोजन है। आज से सात सौ वर्ष पूर्व मुसलमान शासकों का समय था, जो समय हमारी धार्मिक संस्कृति एवं अस्मिता के लिये घोर संकट का काल था। हिन्दू धर्म पर ऐसा आपत्तिकाल संभवतः पहले कभी नहीं आया था । अपने घर में बैठकर रामकृष्ण की पूजा भी कठिन हो गई थी। अपने को हिन्दू कहना भी कठिन सा था। अपनी पैतृक सम्पत्ति का भाग भी मुसलमानों की पगचूमी से ही मिलता था। सभी की दृष्टि वर्षा की भांति किसी अलौकिक पुरुष का सहारा पाने के लिये व्यग्र थी। भक्तों की आर्त पुकार सुनने में ईश्वर देर नहीं करते। गीता में स्वयं विष्णु रूप कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि —

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्या तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ अ० ४ - श्लोक ६

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय' संभवामि युगे - युगे॥ अ० ४ - श्लोक ९

साधु पुरुषों के उद्धार और दुष्ट जनों के नाश तथा धर्म की स्थापना के लिये मैं स्वयं युग-युग में प्रकट होता हूँ। गीता के इन श्लोकों को चरितार्थ करने हेतु तीर्थराज प्रयाग में माघ कृष्ण सप्तमी की मंगलमयी वेला में परम सौभाग्यवती श्री पुष्पसदन शर्मा की धर्मपत्नी श्री सुशीला देवी के गर्भ से श्रीराम का रामानन्द के रूप में प्राकट्य हुआ। जैसा कि अनेक ग्रन्थों में उद्धृत है।

सोऽवतार'जगन्मध्ये जन्तूनां भवसंकटात्।
पारं कर्तुं हि धर्मात्मा रामानन्दः स्वयं हरिः॥

"वैश्वानर संहिता"

मुने स भगवान्नित्यं सुतीक्ष्णा जगदीश्वरः।
सत्यसंधो हरिर्जातो विधास्यति शुभं नृणाम्॥

"अगस्त्य संहिता"

रामानन्दयतिर्भूत्वा तीर्थराजे च पावने।
अवतीर्य जगन्नाथो धर्मं स्थापयते पुनः॥

"बाल्मीकि संहिता"

तदानुभगवान् साक्षाच्चतुर्दशो कलो हरिः।

सीतापतिस्तद्धृदये निवासं कृतवान् मुदा॥

"भविष्य पुराण"

उपर्युक्त उद्धरणों से परात्पर मरमात्मा श्रीरामजी का ही आचार्यप्रवर के स्वरूप में अवतरित होना पूर्णतया सिद्ध होता है। आचार्यश्री जन्म से ही विलक्षण प्रतिभाओं, चमत्कारों से परिपूर्ण थे। उनकी जीवन लीलाओं से सम्बन्धित अनेकों चमत्कार प्रसंग पारिजात नामक ग्रन्थ से ज्ञात होते हैं। मैं यहाँ मात्र स्पष्ट करना चाहूँगा कि पूज्यपाद आचार्य जी ने अपनी सम्पूर्ण लीलाओं का केन्द्र काशीधाम को ही क्यों स्वीकार किया। यद्यपि रामोपसकों का उपास्यधाम श्रीअवध है, फिर भी आचार्य जी ने अपनी साधनास्थली काशी को ही चुना। यह सब जानने के लिए हमें परम पावनी काशी तथा भूतभावन शंकर की राम प्रियता को जानना होगा।

भारतीय संस्कृति, साधना एवं साहित्य के केन्द्र के रूप में काशीनगरी का प्राचीन काल से ही स्थान रहा है । विभिन्न युगों में हमें इसकी गौरवगरिमा के दर्शन भारतीय वाङ्मय के माध्यम से होते हैं॥

प्राचीनकाल से काशी के विभिन्न नाम प्रचलित थे। यथा काशी, वाराणसी, आनन्दकानन, महाश्मशान, अविमुक्त आदि। भारतीय संस्कृति एवं साधना के उन्नायकों ने अपना सम्पूर्ण अथवा आंशिक जीवनकाल यहीं व्यतीत किया है। पुराणों में तो काशी की महिमा प्रचुरपरिमाण में पायी जाती है। मत्स्य पुराण में लिखा है कि "काशी मेरा सर्वोत्तम तीर्थस्थल है। सभी प्राणियों के लिये यह मोक्ष का कारण है। यह तीर्थराज प्रयास से भी महान् है। इस अविमुक्त क्षेत्र काशी में प्रवेश करते ही सहस्त्रों अतीत जीवन में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं"।

सहस्रों जन्मों की योग साधना के उपरान्त मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु काशी में मृत्यु के बाद इस जन्म में ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। पद्मपुराण के अनुसार काशी में पापी व्यक्ति भी पाप मुक्त हो जाता है। साक्ष्य के रूप में निम्नांकित श्लोक द्रष्टव्य है :— अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कान्ची, अवन्तिका, पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥ इन सात नगरियों में निवास करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि अन्य नगरियाँ स्वतः मोक्ष प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं। बल्कि इन नगरियों में निवास करने के फलस्वरूप मनुष्य काशी में आता है और यहाँ मृत्यु होने पर उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः इन सातों नगरियों में काशी सर्वश्रेष्ठ है।

त्रिस्थली सेतु में यह पुराण वचन उद्धृत हैं —

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशी प्राप्तिकराणि हि।
काशीं प्राप्य विमुच्येत नान्यथा तीर्थ कोटिभिः॥

इस वचन से उपर्युक्त कथन को समर्थन प्राप्त होता है। काशी के महत्व के विषय में पुराणों ने यह घोषणा की है :—

"काश्यां मरणान्मुक्तिः" काशी में मरने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

श्री तुलसीदास जीभी काशी की इस अद्वितीय महिमा से प्रभावित एवं सहमत हैं :–

मुक्ति जनम महिं जान ज्ञानरवानि अघहानिकर।

जहँ बस सम्भु-भवानि सो कासी सेइस कसन॥

स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने जिस भाव को आधार बनाकर काशी को अपना मुख्य केन्द्र बनाया था, वह यह है कि काशी रामोपसना से विशेष सम्बन्ध रखती है। रामनाम के प्रभाव से ही मृत्यु के समय में प्राणी में वह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है जिससे मोक्ष होता है। श्रुति का उद्घोष है :–

"ज्ञानमार्गं च नामतः"

'र' अग्निबीज है। वह पापों का नाश करता है। 'अ' भानु बीज है। वह ज्ञान को उत्पन्न करता है। और "म" चन्द्रबीज है। वह निश्चय ही मुक्तिदाता है। ऐसे रामनाम को भगवान् शंकर काशी में मरने वाले प्राणियों को सुनाकर मोक्ष प्रदान करते हैं॥

आकरचार जीव जग अहहीं।
कासी मरत परम पद लहहीं॥
सोपि राम महिमा मुनराया।
शिव उपदेश करत कर दाया॥ — रामचरितमानस

परमवैष्णव भगवान् शंकर की बद्धजीवों पर असीम अनुकम्पा है। उन्होंने इनके मोक्ष के लिये सहस्रों मन्वन्तर तक काशी नगरी में राममन्त्र का अनुष्ठान किया। जिससे भगवान् श्रीराम ने प्रसन्न होकर इनका मनोरथ पूर्ण किया।

श्रीरामस्यमनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तर सहस्रैस्तु जप होमार्चनादिभिः॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥ — श्रीरामतापिनी

यह महान् गौरव भी रामानन्द सम्प्रदाय को ही प्राप्त होता है कि भगवान् शंकर हमारे राम मन्त्र के महान् ऋषियों में चतुर्थ अक्षर के ऋषि हैं।

श्रीमद्भागवत में लिखा है :–

निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतोयथा। वैष्णवानां यथा शम्भुः, पुराणानामिदं तथा॥

जिस प्रकार नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु भगवान्, पुराणों में भागवत श्रेष्ठ है, उसी प्रकार वैष्णवों में शंकर श्रेष्ठ हैं। द्वादश परम भागवतों में शंकर जी का प्रमुख स्थान है। भगवान् श्रीराम के स्वभाव, प्रभाव, गुरु, शील तथा नाम के अमोघ महत्व को भगवान् शंकर जैसा जानते हैं, वैसा कोई नहीं जानता है।

जानाति रामनाम्नस्तु परत्वं गिरिजापतिः।
ततोऽन्यो न विजानाति सत्यं सत्यं वचो मम॥ नन्दीपुराणे

राममन्त्र के प्रभाव से ही शिव जी हलाहल का पान कर गये भगवान् शिव का ही कहना है :—

श्रीरामनामाखिल मंत्रबीजं
मम जीवनं च हृदये प्रविष्टम्।
हलाहलं वा प्रलयानलं वा
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भयम्॥

शिव के द्वारा राम नाम के बल से मोक्ष प्रदान की उद्घोषणा अध्यात्म रामायण में भी द्रष्टव्य हैं :—

अहं भवन्नामगुणैः कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव राम नाम॥

जिस धराधाम पर स्वयं समष्टि के देवता शिव ने सहस्रों मन्वन्तरों तक रामतारक मंत्र का अनुष्ठान किया हो उससे अधिक महत्वपूर्ण स्थल रामभक्ति के विस्तार के लिए कौन सा हो सकता है। स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने विचार किया "जां हाँ परम वैष्णव शिव मरणोपरान्त राममंत्र जीवों को प्रदान करते हैं। वहीं से कलियुगी पामर मानवों को जीवन-काल में ही राममंत्र का उपदेश देकर कृतार्थ किया जाय।"

अपने आध्यात्मिक विचारों के प्रचार-प्रसार के क्रम में यद्यपि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य प्रभृति सभी आचार्य काशी में आये; परन्तु किसी ने भी अपना मुख्यालय काशी को नहीं बनाया। यह गरिमा रामानन्दाचार्य को ही प्राप्त हुयी। आज भी उनकी परम्परा के सैकड़ों आश्रम काशी में रामभक्ति की लोकमंगलमयी धारा को प्रवाहित करने में तत्पर हैं। अन्य आचार्यों की अपेक्षा भगवान् शंकर को प्रवाहित करने में तत्पर हैं। अन्य आचार्यों की अपेक्षा भगवान् शंकर ने स्वामी रामानन्दाचार्य के काशी में स्थायित्व के लिये विशेष सहयोग प्रदान किया। क्योंकि स्वामी रामानन्द भगवान् शंकर के परमराध्य श्रीराम के ही अवतार थे। अपने स्वामी के प्रति भावों का परमोत्कर्ष स्वाभाविक ही है। वेषमात्रधारी, परम संकीर्ण, शंकरभक्तों के द्वारा वैष्णव संतों को बहुत ही सताया जा रहा था। आप में एक दूसरे के प्रति हिंसात्मक भाव बना रहता था। सन्त समाज प्रेरणाप्रद नहीं रह गया था। संतों के आपसी आसुरी-व्यवहारों को देखकर सामान्य लोग धार्मिक आस्था खो रहे थे। शैव तथा वैष्णव दोनों ही सम्प्रदायों में परस्पर सौहार्द, सहिष्णुता आदि मंगलकारी भावों की स्थापना के लिये स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने शिवभक्तों के लिये सर्वश्रेष्ठ पूज्यस्थल काशी में ही अपनी राजधानी बनायी। इसका प्रभाव उनके अनुयायी पर गहरा पड़ा। सभी लोग भगवान् शंकर को अपना देव मानने लगे तथा श्रीराम के चरणों में प्रीति के लिये उनसे प्रार्थना करने लगे। गोस्वामी तुलसीदास ने तो शैवों तथा वैष्णवों के बीच हुयी खायी को पूर्णतः ही पाट दिया। शंकर जी के प्रति इस विजातीय वैष्णवों की निष्ठा को देखकर शैवों का भी हृदय सुकोमल हुआ, धार्मिक सहिष्णुता का भाव बढ़ा, हिंसात्मक-भावना समाप्त हुयी, आसुरी-व्यवहार नष्ट हुये।

स्वामी रामानन्द जी के काशीवास से यह नगरी अब केवल शैवों का ही तीर्थ स्थान नहीं रह गयी। अपितु वैष्णव तीर्थ के रूप में भी इसको प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी। जिसके कारण वल्लाभाचार्य जी, एकनाथजी, तुकारामजी आदि ने भी काशी को अपनाया। आज भी इनकी परम्परायें विद्यमान हैं। दूसरे वैष्णव सम्प्रदायों में शिव को वह महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ जो रामानन्द सम्प्रदाय में है फिर भी शैव तो संतुष्ट हुये ही।

★★★

श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) : ऐतिहासिक दृष्टि

— डॉ० मारुति नन्दन तिवारी

काशी का पंचगंगा घाट मध्यकाल के महान् वैष्णव सन्त एवं आचार्य रामानन्द जी का निवास स्थल था, जिसे आज 'श्रीमठ' के नाम से जाना जाता है। हिन्दू परम्परा में प्राचीन काल से ही पंचगंगा घाट का विशेष महत्व रहा है। काशी खण्ड के अनुसार पांच पावन नदियों— गंगा, यमुना, सरस्वती, किरणा एवं धूतपापा का संगम स्थल होने के कारण ही इसे पंचगंगा घाट कहा गया है। यह घाट काशी के प्राचीनतम पक्के घाटों में है। इसका निर्माण लगभग १३ वी शती ई० में राजस्थान के एक प्रसिद्ध राज्य आमेर के राजा मानसिंह ने कराया था, जिसका जीर्णोद्धार १६वीं शती ई० में महारानी अहिल्याबाई द्वारा करवाया गया।

काशी मुख्यतः शिव की नगरी मानी गयी है, जहाँ घाटों, गलियों एवं घरों में शिव के छोटे-बड़े आकार के असंख्य मन्दिर, शिवलिंग और प्रतिमायें देखी जा सकती हैं। भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी प्रवृत्ति और देश की सांस्कृतिक राजधानी होने के कारण काशी में सर्वधर्म-समन्वय का भाव प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। यही कारण है कि शैव धर्म के साथ ही काशी में वैष्णव, शाक्त, सौर एवं बौद्ध तथा जैन धर्मों का भी पूरा प्रचार हुआ। बुद्ध की प्रथम उपदेश स्थली (सारनाथ) और जैन तीर्थंकरों (सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ) की जन्मस्थली के रूप में बौद्ध एवं जैन परम्पराओं में काशी का महत्व सर्वविदित है। वैदिक परम्परा के सभी पांच सम्प्रदायों (शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य) का काशी में महत्व रहा है। काशी में शिव के लिंग एवं अन्य स्वरूपों के अतिरिक्त विष्णु के स्वतंत्र, विभव (अवतार) तथा चतुर्विंशति केशव, सूर्य के द्वादश आदित्य, शक्ति के विभिन्न शान्त एवं सहायक और नवदुर्गा तथा पंचगणेशों के पूजन की परम्परा साहित्य एवं पुरातात्विक अवशेषों दोनों से ही ज्ञात है।

पंचगंगा घाट प्रारम्भ से ही काशी में वैष्णव सम्प्रदाय का केन्द्रीय स्थल रहा है, जिसे विष्णु काशी भी कहा गया है। मध्यकाल में गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोदी और मुगल शासकों के काल में उनकी धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता की नीतियों के कारण धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में एक गम्भीर संकट और चुनौती की स्थिति उत्पन्न हुई। ऐसी विकट परिस्थितियों में सामाजिक विचारकों एवं धर्माचार्यों की सदा से विशेष महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मध्यकाल में भी समाज को दिशा देने और व्यवस्थित रखने के लिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों के विचारकों एवं धर्माचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से कार्य किया।

भारत की बहुदेववादी अनेकान्त चिन्तन परम्परा में वैदिक काल से ही 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' का जो भाव स्वीकृत था, उसकी अभिव्यक्ति मध्यकाल में भी देखी जा सकती है। रामानन्द, कबीर, रैदास, गुरुनानक तथा ऐसे ही अनेक आचार्यों एवं विचारकों ने भारतीय परम्परा के समवेत स्वर को तत्कालीन

आवश्यकता के अनुरूप राष्ट्रीय स्तर पर पुनः अभिव्यक्त किया, मध्यकालीन धार्मिक आचार्यों में उत्तर भारत के वैष्णव आचार्य रामानन्द जी (१२९९ ई० से १४१०) का विशिष्ट और अग्रगामी स्थान है। सामान्य दृष्टि से विचार करने पर कुछ ऐसी बातें स्पष्ट होती हैं जो रामानन्द जी को अत्यन्त दूरदर्शी और भारतीय परम्परा के विराट् प्रहरी के रूप में प्रस्थापित करती हैं। उच्च कुलीन ब्राह्मण, संस्कृत का मूर्धन्य पण्डित तथा प्रभावशाली वैष्णव सम्प्रदाय का आचार्य होने के बाद भी रामानन्द जी ने तत्कालीन सामाजिक स्थितियों और उनमें अपेक्षित परिवर्तनों के अनुरूप अपनी चिन्तन-धारा और कार्य-पद्धति को जिस कालसम्मत रूप में प्रस्तुत किया, उससे उनके स्वतंत्र निर्भीक, दूरदर्शी और देश हित को साध्य मानने वाले व्यक्तित्व की झलक मिलती है। तत्कालीन रूढ़िवादी पारम्परिक परिस्थितियों में इस प्रकार के परिवर्तन का उद्घोष धार्मिक क्षेत्र के लिए क्रान्तिकारी किन्तु वैदिक धर्म में आये कालगत दोषों की दृष्टि से सामयिक था। ऐसी चुनौती को स्वीकारना रामानन्द जैसे साहसी और दृढ़ संकल्पी विचारक के लिए ही सम्भव था। मेरी दृष्टि में सामाजिक व्यवस्था के विकार, उन्हें दूर करने की तात्कालिक आवश्यकता और उसके प्रभावी उपायों के सम्बन्ध में जितनी गहरी सूझ रामानन्द में थी वैसी सम्भवतः दूसरे किसी मध्यकालीन धार्मिक आचार्य में नही दिखायी देती। रामानन्द की शुरुआत के बाद अनेक आचार्यों ने उनकी दृष्टि से कार्य किया, जिनमें कबीर, रैदास, गुरुनानक मुख्य हैं। यहाँ हम उनसे सम्बन्धित केवल तीन प्रमुख बिन्दुओं पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे।

(१) विदेशी शासकों और उनकी कार्य पद्धति से तत्कालीन जातिगत दोषों एवं संस्कारों से दबी हुई व्यवस्था अपने पारम्परिक स्वरूप की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हो रही थी। इस बात को रामानन्द जी ने भलीभाँति समझ लिया था, इसी कारण एक पारम्परिक और सम्प्रदाय विशेष का आचार्य होते हुए भी उन्होने जातिगत असमानता की प्रवृत्ति को पूरी तरह तोड़ने का काम किया, जो समाज के सभी वर्गों को एक साथ जोड़ने के लिए प्राथमिक आवश्यकता थी। उन्होंने ब्राह्मण से अन्त्यज तक सभी जाति एवं वर्गों के लिए धर्म (भक्ति) का मार्ग प्रशस्त किया और इस प्रकार उन्हें चिन्तन की एक समवेत धारा से जोड़ा। स्वयं उनके शब्दों में,

'जातिपांति पूछे नहि कोई, हरि को भजे सो हरि का होई'

(२) समाज के विचारक और धर्माचार्य की बातें सभी स्तर के लोगों तक पहुँच सके, इसके लिए रामानन्द जी ने संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी जन-भाषा में अपनी बात कही जो उनके दूरदर्शी होने का प्रमाण है। तत्कालीन व्यवस्था में संस्कृत जनभाषा नहीं हो सकती थी, यह बात रामानन्द जी ने ठीक ढंग से समझी थी। यदि हम और पीछे के इतिहास को देखें तो बुद्ध और महावीर को भी जनभाषा में ही उपदेश देता हुआ पायेंगे। भ्रमण एवं उपदेश द्वारा जन सम्पर्क और अपनी बात के प्रचार की भारत में प्राचीन परम्परा रही है जिसे राम के वनवास एवं बुद्ध तथा महवीर के अनवरत भ्रमण में देखा जा सकता है। रामानन्द जी ने भी विभिन्न स्थलों की यात्रा की थीं और उपदेश दिया था। देश और काल को सही सन्दर्भ में समझने के लिए यह नितान्त आवश्यक था।

(३) मेरी दृष्टि में रामानन्द जी की सबसे महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी बात आराध्य देव के स्वरूप में परिवर्तन था। पूर्ववर्ती वैष्णव आचार्यों– रामानुज और रामानन्द के गुरु राघवानन्द के आराध्यदेव विष्णु और उनके लक्ष्मीनारायण स्वरूप रहे हैं, जब कि रामानन्द जी ने भारतीय जनमानस के मानसिक धरातल और संस्कारों से जुड़े एवं भारतीय परम्परा के आदर्श स्वरूप राम-सीता-लक्ष्मण को अपना आराध्य देव बनाया जो

आगे चलकर रामानन्द जी द्वारा प्रवर्तित 'श्री सम्प्रदाय' के मुख्य आराध्य देव हुए। विष्णु एक पौराणिक चरित्र है, जब कि राम-सीता-लक्ष्मण भारतीय जनमानस से साधारणीकृत चरित्र रहे हैं, जिनमें मानव चरित्र के विभिन्न कोणों के आदर्श प्रतिमान देखे जा सकते हैं। व्यवहार और आचरण के स्तर पर उपासक राम-सीता-लक्ष्मण से जो प्रेरणा और आदर्श प्राप्त कर सकता था, वह विष्णु की उपासना से सम्भव नहीं था। इसी कारण रामानन्द जी ने इन्हें अपना आराध्य देव बनाया। तत्कालीन विषम परिस्थितियों में समाज के लिए ऐसे आदर्श चरित्र की नितान्त आवश्यकता थी। भारतीय परम्परा में जीवन में अनुकरणीय व्यवहारों की दृष्टि से इनसे श्रेष्ठ कोई अन्य चरित्र भारतीय देवमण्डल में नहीं है। अतः आराध्य देव के रूप में राम-सीता-लक्ष्मण की प्रतिष्ठा भारतीय समाज में आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा थीं।

राम में लोकपरक आदर्श के सभी आयामों– पुत्र, भाई, पति, मित्र, पराक्रम, शासक, भक्ति– का चरम विन्दु देखा जा सकता है, शबरी के वेर खाने वाले, केवट राज को मित्र बनाने वाले तथा गिद्धराज जटायु का अन्तिम संस्कार करने वाले राम जैसे विशाल-हृदय व्यक्तित्व को अपना आराध्य देव बनाकर रामानन्द जी ने समाज के समक्ष एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया था। दूसरी ओर लक्ष्मण और सीता भी विभिन्न वैयक्तिक आयामों में समाज के मान्य आदर्शों के प्रतिमान रहे हैं। इस दृष्टि से विष्णु के स्थान पर रामानन्द जी द्वारा आराध्य देव के रूप में राम-सीता और लक्ष्मण का प्रतिष्ठित किया जाना धार्मिक दृष्टि से कहीं अधिक सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था।

उपर्युक्त क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण स्वयं उनके अनुयायियों तथा अन्य सम्प्रदायों के आचार्यों में रामानन्द जी के प्रति विरोध का स्वर उठा होगा, किन्तु उनके प्रासंगिक परिवर्तन को समाज के विशाल वर्ग ने पूरा समर्थन दिया होगा फलतः विरोध का स्वर शीघ्र ही मन्द पड़ गया होगा। यह रामानन्द जी का ही व्यक्तित्व था जिसने कबीर जैसे रूढ़िवादी धार्मिक परम्परा के प्रबल विरोधी व्यक्तित्व को न केवल अपनी ओर आकृष्ट किया बल्कि शिष्यत्व ग्रहण करने का संकल्प लेने को भी विवश किया। रामानन्द के १२ प्रमुख शिष्यों में जो नाम हमें मिलते हैं उनमें अधिकांश अलग-अलग जाति एवं वर्गों से सम्बन्धित थे। इनमें जुलाहे कबीर के अतिरिक्त चर्मकार रैदास, जाट कृषक धन्ना, नाई सेना राजपूत राजा पीपा तथा भवानन्द, सुखानन्द, आशानन्द, सुरासुरानन्द, परमानन्द, अनन्तानन्द, महानन्द मुख्य हैं। रामानन्द ने स्त्रियों को भी जो सामाजिक व्यवस्था का आवश्यक अंग होती हैं परिवर्तन के लिए प्रेरित किया। इसी कारण उनकी शिष्य मण्डली में पद्मावती और सुरसरी जैसी स्त्रियों के भी नाम मिलते हैं। रामानन्द जी द्वारा प्रतिपादित पूर्ण समर्पित प्रपत्ति भक्ति के भाव को अलग-अलग क्षेत्रो में आचार्यों एवं भक्तों द्वारा मान्यता मिली। रामानन्द जी के सामाजिक विचारों का प्रभाव कबीर एवं गुरुनानक पर तथा उनकी समर्पित भक्ति का प्रभाव रैदास, मीरा, वल्लभाचार्य एवं तुलसी के काव्यों में मुखर हुआ।

रामानन्द जी के मूल्यांकन में इतिहास-वेत्ताओं एवं साहित्यकारों को सर्वदा कठिनाई का अनुभव होता रहा है, क्योंकि उन पर विस्तृत सामग्री नहीं प्राप्त होती है। उनके दो प्रमुख ग्रन्थ श्री **वैष्णवमताब्ज भास्कर** एवं **रामार्चनपद्धति** हैं, जिनमें उनके दार्शनिक एवं वैष्णव भक्ति के विचारों का संकलन है। विद्वान् होते हुए भी पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ लेखन से रामानन्द जी विरत रहे क्योंकि लेखन से अधिक महत्व उन्होंने अपने सिद्धान्तों के जनमानस में व्यावहारिक प्रचार को दिया।

पंचगंगा घाट पर स्थित रामानन्द मठ आज 'श्रीमठ' के नाम से जाना जाता है। वर्तमान श्रीमठ का १९८३

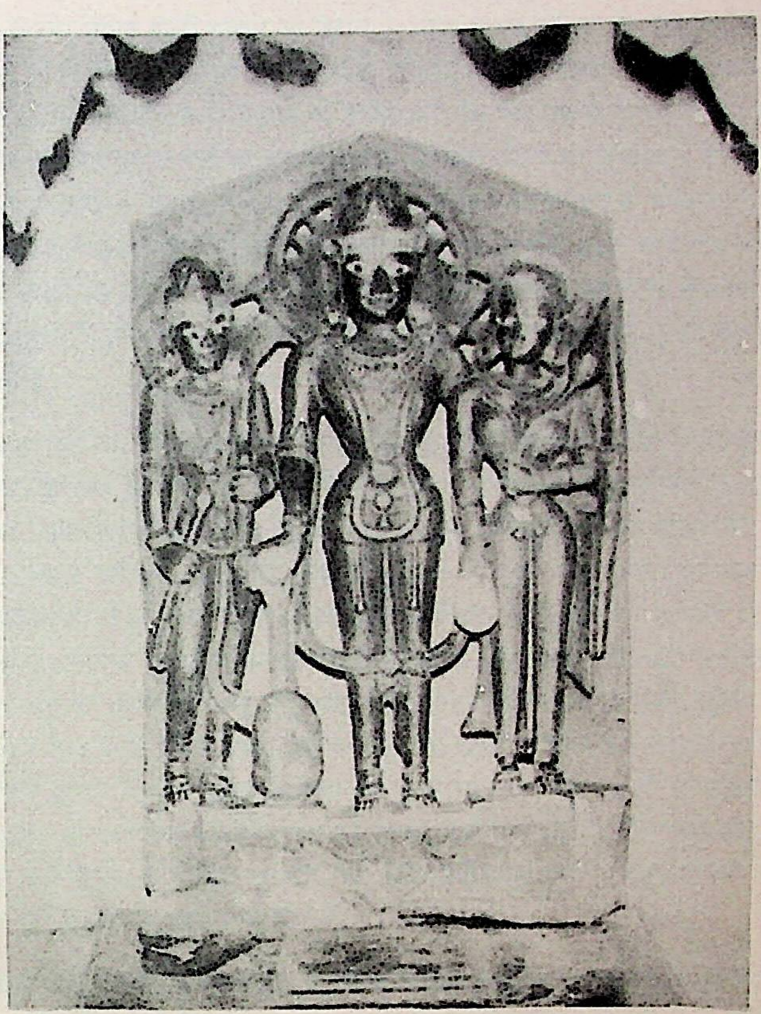

राम-सीता-लक्ष्मण की प्रतिमा, कंगनवाली हवेली
पंचगंगाघाट, १५८२ ई०

ई० में अरविन्द भाई मफतलाल के प्रमुख सहयोगी द्वारा पूरी तरह जीर्णोद्धार कराया गया। फलतः सामान्य दर्शक के लिए श्रीमठ एक नवीन भवन है। रामानन्द पर विचार करते समय श्रीमठ की प्रचीनता पर विचार करना भी आवश्यक है। ध्यान से देखने पर श्रीमठ के नवीन भवन के निचले भाग (नींव) में प्राचीन भवन के कुछ अवशेष देखें जा सकते हैं। श्रीमठ के समीप पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर संवत् २०१६ (१९५९ई०) और संवत् १८५७ (१८००ई०) के दो लेख मिले हैं। श्रीमठ के समीप ही माधव राज का धरहरा भी स्थित है, जिसे १७वीं शती ई० में औरंगजेब द्वारा मस्जिद के रूप में परिवर्तित किया गया। समीप ही ग्वालियर के महाराज द्वारा १६वीं शती ई० में निर्मित कंगन वाली हवेली भी स्थित है। इस प्रकार श्रीमठ के समीपवर्ती भवनों एवं अन्य अवशेषों से १६ शती से निरन्तर इस स्थल पर होने वाले निर्माण कार्य की जानकारी मिलती है। स्वयं पंचगंगा घाट का निर्माण भी १३वीं शती ई० में राजस्थान के आमेर के राजा मानसिंह ने करवाया था। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि रामानन्द जी ने पंचगंगा घाट पर रहकर अपने धार्मिक विचारों का प्रतिपादन किया था। अतः इस स्थान पर उनका मठ अवश्य रहा होगा। लेखक को आसपास के क्षेत्रो के सर्वेक्षण के पश्चात् न केवल रामानन्द जी के मठ के १४ वीं शती ई० में इस स्थान पर विद्यमान होने का आभास हुआ, वरन् राम-सीता-लक्ष्मण की एक ऐसी प्रतिमा भी मिली जो 'श्रीमठ' की ऐतिहासिकता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इस प्राचीन प्रतिमा के आधार पर रामानन्द जी द्वारा स्थापित मठ में उक्त प्रतिमा के प्रतिष्ठित और पूजित होने की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है।

राम-सीता-लक्ष्मण की यह प्रतिमा वर्तमान में कंगन वाली हवेली के राम मन्दिर में प्रतिष्ठित है। संवत् १६३९ (१५८२ई०) के लेख से युक्त यह प्रतिमा निश्चित ही रामानन्द जी द्वारा प्रतिपादित आराध्य देवों के स्वरूप के आधार पर निर्मित हुई है। रामानन्द जी के लगभग २०० वर्षों बाद बनी यह प्रतिमा श्री सम्प्रदाय में दो शताब्दी बाद भी रामानन्द जी द्वारा प्रतिपादित देवमूर्ति-स्वरूप के पूजन की परम्परा को प्रकट करती है। रामानन्द जी की अवधारणा के अनुरूप ही यह प्रतिमा आकार में भी छोटी (लगभग २ ऊँची) है। यह प्रतिमा निश्चित ही तत्कालीन रामानन्द सम्प्रदाय के 'श्रीमठ' में प्रतिष्ठित रहीं होगी। जो बाद में औरंगजेब या अन्य किसी परवर्ती मुगल शासक के समय हिन्दू धर्म और उनसे सम्बन्धित मठ-मन्दिरों को पहुँचाये गये क्षति के फलस्वरूप रामानन्द सम्प्रदाय के किसी भक्त द्वारा कंगन वाली हवेली में प्रतिष्ठित की गयी क्योंकि रामानन्द मठ मुसलमान शासकों द्वारा पूरी तरह क्षतिग्रस्त किया जा चुका था। रामानन्द जी के सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन के उदारवादी समन्वयात्मक विचारों के कारण समाज में उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए मुसलमान शासकों ने निश्चित ही रामानन्द मठ को क्षति पहुँचायी होगी। यही कारण है कि श्रीमठ (रामानन्दाचार्यपीठ) हमें मूलरूप में नहीं प्राप्त होता है।

रामानन्द ने सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम के ध्यान का प्रतिपादन किया है। इसीलिए रामानन्द सम्प्रदाय से सम्बन्धित प्राचीन मन्दिरों में ऐसी विभूति की प्रतिष्ठा एवं पूजन की परम्परा मिलती है। सीता और लक्ष्मण सहित राम की मूर्ति का सुन्दर ध्यान-मन्त्र रामानन्द कृत **श्री वैष्णवमताब्जभास्कर** में भी मिलता है —

विकचपद्म दलायतवीक्षणं, विधिभवादिमनोहरसुस्मितम्।
जनकजादृगयाङ्गसमीक्षितं, प्रणतसत्समनुग्रहकारिणम्॥ ५५ ॥

मुनिमनः सुमधुव्रत चुम्बितस्फुटलसन्मकरन्दपदाम्बुजम्।
बलवद्भुत दिव्य धनुःशरा महितजानुविलम्बिमहा भुजम्॥५६ ॥

परार्ध्य हाराङ्गदचारुनूपुरं सुपद्म किंजल्क पिसङ्गवाससम्।
लसद्घनश्यामतनुं गुणाकरं कृपार्णवं सद्धृदयाम्बुजासनम् ॥५७ ॥

प्रसन्नलावण्य सुभृन्मुखाम्बुजं नरं शरण्यं शरणं नरोत्तमम्।
सहानुजं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सह सीतया सदा ॥५८ ॥

रामानन्द जी के आराध्य देव राम मनोहर छवि वाले, प्रसन्न वदन एवं अलंकरणों से सज्जित तथा धनुष और वाण से सुशोभित होंगे। राम के दक्षिण पार्श्व में लक्ष्मण और वाम पार्श्व में सीता निरूपित होगी। कंगन वाली हवेली की १५८२ ई० की मूर्ति में रामानन्द जी के ध्यान के अनुरूप ही धनुष-बाणधारी राम को लक्ष्मण और सीता सहित दिखलाया गया है। समभंग में खड़े राम के दक्षिण पार्श्व में धनुष एवं बाण से युक्त लक्ष्मण एवं वाम पार्श्व में जलपात्र एवं पद्म से युक्त सीता की स्थानक (आकृतियां) बनीं हैं। काले पत्थर में उकेरी इस मूर्ति में राम के साथ किरीट, मुकुट एवं अन्य अलंकरण द्रष्टव्य है। राम और लक्ष्मण दोनों के ही पीठ पर तूणीर देखा जा सकता है। वर्तमान में श्री मठ में प्रतिष्ठित आराध्य देवों की त्रिमूर्ति पूर्णतः उपर्युक्त प्रतिमा के समान है।

यद्यपि काशी के विभिन्न क्षेत्रों से कुषाण काल (दूसरी शती ई०) से १९वीं शती ई० के मध्य की विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित आराध्य देवों की अलग-अलग स्वरूपों वाली प्रभूत मूर्तियां मिली हैं। किन्तु राम-सीता-लक्ष्मण के उपर्युक्त मूर्ति के पूर्व की कोई भी ऐसी त्रयी प्रतिमा काशी से नहीं मिली है। इससे स्पष्ट है कि राम-सीता-लक्ष्मण की त्रयी मूर्ति के निर्माण की परम्परा रामानन्द से पूर्व काशी में लोकप्रिय नहीं थी। अतः उपर्युक्त मूर्ति १६वीं शती ई० में पंचगंगा घाट पर रामानन्द सम्प्रदाय की विद्यमानता प्रभावित करती है और साथ ही यह भी संकेत देती है कि रामानन्द सम्प्रदाय के श्रीमठ में ही यह मूर्ति उपास्य प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित रही होगी। १६वीं शती ई० में उपर्युक्त मूर्ति के निर्माण से उस काल में रामानन्द मठ के पंचगंगा घाट पर स्थित होने का निश्चित प्रमाण मिलता है जिसे बाद में किसी समय मुसलमान शासकों द्वारा क्षतिग्रस्त किया गया। इस प्रकार श्रीमठ'वर्तमान नवीन स्वरूप वस्तुतः पूर्व में बने प्राचीन मठ का ही पुर्ननिर्माण हैं।

वर्तमान श्रीमठ में रामानन्द जी की चरण-पादुका एवं उनकी ध्यानस्थ मूर्ति के अतिरिक्त तुलसी और कबीर की भी मूर्तियां स्थापित है। वर्ष १९८३ में निर्मित इन मूर्तियों में रामानन्द की ध्यानस्थ मूर्ति में ललाट एवं शरीर के अन्य १२ बारह भागों पर ऊर्ध्वपुण्ड्र देखा जा सकता है। उनका बायां हाथ घुटनों पर स्थित है। रामानन्द जी मुण्डित मस्तक एवं प्रभामंडल से युक्त हैं। बायीं ओर व्याख्यान मुद्रा में दोनो पैर मोड़कर विराजमान कबीर की मूर्ति हैं, जबकि दाहिनी ओर ग्रन्थ (रामचरितमानस) एवं तुलसी माला से युक्त तुलसीदास की आसन मूर्ति बनी हैं।

★★★

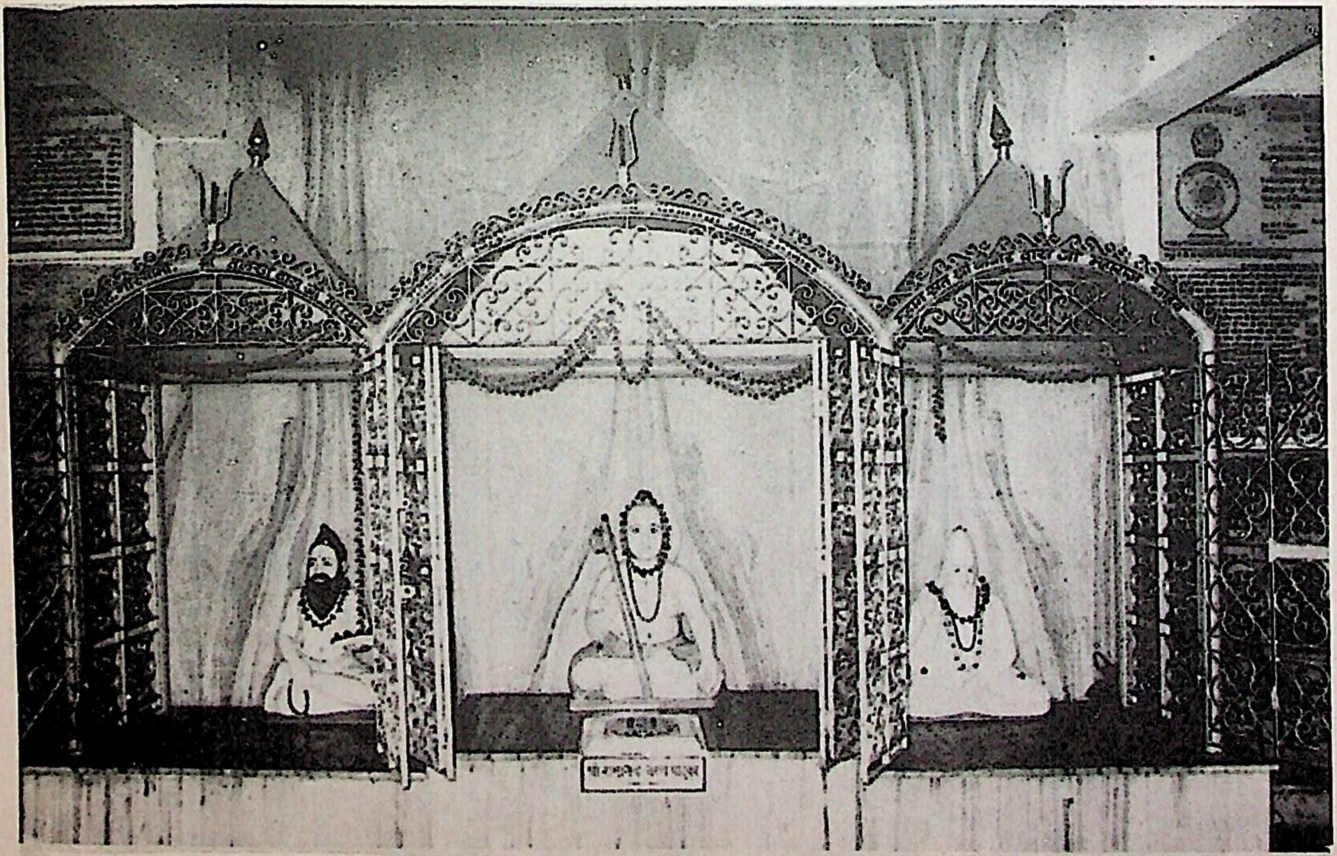

श्रीमठ (पञ्चगंगाघाट वाराणसी) में प्रतिष्ठापित तुलसीदास, आद्य रामानन्दाचार्य एवं कबीरदास की प्रतिमा

॥ श्री रामचन्द्राय नमः ॥

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी की गिरनार स्थित चरण पादुका

— डॉ० राम मिलन दास शास्त्री

प्रभात खण्ड वस्त्रापथ क्षेत्र में विराजमान गिरनार का यह पर्वत, सस्य-श्यामला सम्पन्न, पवित्रतम, तीर्थभूमि जगत् में प्रसिद्ध ही है। इस पवित्र हरियाली युक्त सोरठ भूमि की प्रशंसा पुराणों में मुक्तकण्ठ से वर्णित है। इस हेतु को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि—

'जीर्णदुर्ग समीपस्थे रैवतकं हि पर्वतम्।
तमाश्रित्य भाग्यवन्तः महतां यान्ति वै किल॥'

प्राचीन काल में रेवत नाम का एक राजा था उसी के नाम से इस गिरनार पर्वत का नाम रेवताचल है। सुना जाता है कि इस राजा की एक कन्या थी। उस कन्या के विवाह के लिए राजा ब्रह्मा जी के पास गये और ब्रह्मा जी ने संकेत किया कि सतयुग के अन्त होने पर द्वापर में श्री कृष्ण एवं बलराम जी का अवतार होगा इसलिए इस सुयोग्य कन्या के अनुरूप ही श्री कृष्ण के बड़े भाई सुयोग्य श्री बलराम जी को समर्पित करना। इस प्रकार से श्री ब्रह्मा जी ने रेवत राजा को आदेश दिया। इसी सुरम्य उपत्यका में अनेकानेक सिद्ध, योगी, सन्त महापुरुष निवास करते हैं। कहा जाता है कि इस रेवताचल पर भगवान् श्री दत्तात्रय जी तपश्चर्या करते थे। इसी कारण से श्री दत्तात्रय जी की चरण पादुकायें इस पर्वत के उच्चशिखर पर आज भी स्मृति रूप में विराजमान हैं। इतना हीं नही इस गिरनार की सोरठ भूमि में नवनाथ, चौरासी सिद्ध भी निवास करते हैं।

इन सिद्ध सन्त महात्माओं का दर्शन दुर्लभ है तथापि गुप्त या प्रकट रूप में अभी भी उनके दर्शन परम पवित्रात्माओं को मिला करता है। इस गिरनार या रेवताचल की एक विशेषता यह भी है कि जब लोग परस्पर मिलते हैं तब वे एक दूसरे के प्रति "जय गिरनारी" का ही उद्घोष करते हैं। सोरठ भूमि गरवा, गिरनारादि समस्त विशिष्टताओं के कारण अपने आप मे अद्वितीय है तथापि पारस्परिक कलहादि के कारण जब निम्न परिस्थितियां इस महानतम भारत भूमि को कलंकित करती है यथा —

"गतं संघभावं गता पादसेवा, गतं धर्मशास्त्रं गतं वै गतं वै।
तदानीन्तनानां जनानां प्रवृत्तिः कुभावे कुकार्ये कदाचित्सुमार्गे।"

तब ऐसी दुर्दान्त विषम परिस्थितियों में भारतीय जनता जनार्दन की त्राहि-त्राहि की पुकार अशरण-शरण

शान्ति के धाम स्वरूप भगवान् स्वयमेव बोलते है कि –

'जब जब होय धरम की हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥"

इसकी पुष्टि श्रीमद्भगवद्गीता में भी इस प्रकार से उद्धृत है कि –

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"

इत्यादि विभिन्न उक्तियों को चरितार्थ करने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम जी ने इस प्रकार से स्वीकार कर कहा है कि –

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥"

इस कराल काल कलिकाल में जनता जनार्दन की विकृत श्रृंखलाओं को श्रृंखला बद्ध करने हेतु, "रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले " इस उक्ति को ध्यान मे रखते हुए भगवान् श्री राम ही भगवान् श्री रामानन्दाचार्य जी के रूप में तीर्थभूमि प्रयाग में अवतरित हुए । उन्होंने नाना प्रकार की विषमताओं एवं कुरीतियों को अपने सम्मोहक सदुपदेशों के द्वारा लोगो को एक नई दिशा प्रदान किया । उसी का यह परिणाम है कि कबीरादि द्वादश महाभागवत उनके अपने शिष्य हो गये । इस प्रकार से यह भी कहा जा सकता है कि –

"रामानन्दप्रभावेण जाता जनैक्यभावना । राष्ट्रस्य गौरवं ह्यत्र स्वीकुर्वन्ति मनीषिणः ॥
शिष्यैर्द्वादशभिर्युक्तः भिन्ना प्रकृतितत्परैः । राष्ट्रस्योन्नतिं वांन्छन् रामानन्दः स्वयं हरिः ॥
विशिष्टाद्वैत भावो वै वैशिष्येन हि जायते । जगद्गुरुत्वमापन्नः रामानन्दो महामतिः ॥
जगद्धेतुः स्वयं चासौ विलोक्य मनसा किल । यद् दुःखार्ता जनाः सर्वेंचास्मिन्भारत भूतले ॥
रामानन्दप्रयोगेण चैकात्मधर्म लक्षणे । विशिष्टेऽस्मिन् विशिष्टोऽयं वर्णभेदो न दृश्यते ॥

इत्यादि भावों को जगद् गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी ने "सियाराम मय सब जग जानी" की दृष्टि से वैर भाव रहित होकर एकात्मकता का प्रदीप दशों दिशाओं में प्रदीप्त करने हेतु इस गिरनार की सुरम्य पवित्र स्थली में अपने शिष्यों सहित दिग्विजय करके पधारे तथा अपनी तपश्चर्या के प्रभाव से यहाँ के समस्त जनता-जनार्दन को एकात्म भाव से सूत्रित कर निवास किये । परिणामतः दिग् विजय की इस यात्रा को परिपूर्ण करके वापस वाराणसी पधारने के पश्चात् गिरनार की इस तपोभूमि पर अपनी चरण-पादुकाओं के पवित्र चिह्न अंकित कर गये । वही स्थान आज "चरण पादुका" के नाम से प्रसिद्ध है । अनेकानेक भक्तगण उन चरण पादुकाओं की आराधना करते हुए अपने को धन्य बनाते हैं । वर्तमान में जगद् गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी का "श्री विग्रह" भी प्रतिष्ठापित है ।

'धन्य धन्य श्री रामानन्द जी गुरु की युगल पादुकायें, नन्दि ग्राम की याद दिलाती ये दोनों पावन सरितायें ॥

आचार्य परम्परा

मध्यकालीन उत्तर भारत में वैष्णव एवं शैव धर्म : एक आकलन

— हरि शंकर

गुप्तकाल के पराभव (लगभग छठी सदी ई० का अन्त) के साथ ही भारत के राजनैतिक इतिहास में भी परिवर्तन हुआ। इसके फलस्वरूप किसी शासक या राजवंश में अखिल भारतीय दृष्टि एवं विशाल क्षेत्र को राजनैतिक एकता के सूत्र में बांधे रखने की सामर्थ्य का अभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। केवल हर्षवर्द्धन (६००–६४६ ई०) ने कुछ सीमा तक इस कार्य में सफलता प्राप्त की थी, जो उसके 'सकलोत्तरापथनाथ' उपाधि से स्पष्ट है। परिवर्तन और विघटन की स्थिति में विदेशी आक्रमणकर्ताओं द्वारा भारत के विपुल सम्पदा की ओर कुदृष्टि करना स्वाभाविक था। महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के बाद भारत में १३ वीं सदी ई० के प्रारम्भ से मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रभाव-क्षेत्र बढ़ता गया। एक के बाद एक गुलाम, खिलजी, तुगलक और लोदी वंश के शासकों ने धार्मिक असहिष्णुता की समान दृष्टि से काम किया। अपने ही देश में इन विदेशी शासकों द्वारा हिन्दुओं पर अनेक धार्मिक व आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये। इस परिवर्तित राजनैतिक परिस्थिति में भारतीय जनता का मनोबल कमजोर पड़ने लगा, जिसके फलस्वरूप लोगों ने धर्म का आश्रय लिया। धर्म के क्षेत्र में भी शैव, बौद्ध, जैन, नाथ तथा सिद्ध सम्प्रदायों में योग एवं तंत्र से सम्बन्धित क्रियाकलापों की विशेष मान्यता के कारण पर्याप्त विकृतियां आ चुकी थीं। ऐसी स्थिति में भारतीय समाज व जनता धर्म के सरल एवं अनुकरणीय रूप को देखना चाहती थी। मध्य काल के सभी मतों एवं सम्प्रदायों में शैव एवं वैष्णव धर्मों की विशेष मान्यता थी, जिनके स्वरूप तथा मध्य काल में उत्तर भारत में होने वाले परिवर्तनों का संक्षेप में अध्ययन हमारा अभीष्ट है।

शैव धर्म भारत का सम्भवतः सबसे प्राचीन धर्म है। प्रारम्भ में शैव धर्म में शिव के रुद्र व पाशुपत सम्प्रदाय को विशेष मान्यता प्राप्त हुई। कालान्तर में शैव धर्म में पाशुपत सम्प्रदाय के साथ ही पाशुपत लकुलीश, वीर शैव, कापालिक, कालमुख, प्रत्यभिज्ञा, नाथ एवं सिद्ध सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। शैव धर्म के इन सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव के साथ ही कला में शिव के विविध स्वरूपों का विकास हुआ। मध्य काल में उत्तर भारत में शैव धर्म के लकुलीश, पाशुपत एवं नाथ सम्प्रदायों को जितना जनाधार प्राप्त हुआ, उतना अन्य सम्प्रदायों को नहीं।

लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय दक्षिण भारत से प्रारम्भ होकर गुजरात से होते हुए उत्तर भारत में फैला। उत्तर भारत में इस सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव क्षेत्र राजस्थान, कश्मीर एवं नेपाल था। श्री माधवाचार्य ने 'सर्वदर्शन संग्रह' में इस सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'इनके अनुसार परम शिव भगवान् लकुलीश ही विश्व के कर्त्ता, धारणकर्त्ता एवं एकमात्र सत्य हैं। साधक के लिए दिन में तीन बार स्नान करना, शरीर पर राख या धूल मलना तथा यज्ञादि कर्म के साथ जप, ध्यान, धारणादि करना आवश्यक बताया गया है।" राजस्थान में यह धर्म आज भी लोकप्रिय है। वहाँ शिव की आज भी बहुत-सी द्विभुज मूर्तियां इस तरह की

मिलती हैं, जिनमें शिव के एक हाथ में लड्डू तथा दूसरे में नारियल होता है, कानो में मुद्रा, बाल चिपके हुए और पद्मासन की मुद्रा इन मूर्तियों की विशेषतायें हैं।

उत्तर भारत में लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय के बाद शैव धर्म का नाथ सम्प्रदाय अत्यधिक लोकप्रिय सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय के संस्थापक आदिनाथ माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के लोगों की मान्यता है कि आदिनाथ स्वयं शिव के अवतार थे। इस सम्प्रदाय के संगठनकर्त्ता स्वामी गोरखनाथ हैं। इस सम्प्रदाय में योग व तंत्र का विशेष प्रभाव था तथा गुरु से दीक्षा लेने के बाद शिष्य का कान तेज चाकू से चीर दिया जाता था और उसमें एक मुद्रा पहंना दी जाती थी। ये मस्तक पर त्रिपुण्ड एवं जटाजूट धारण किये हुए तथा हाथों में खप्पर, धूपदान, त्रिशूल, से युक्त होते हैं। ये जादू टोने का चमत्कार दिखाने एवं अपने को भविष्य वक्ता सिद्ध करते थे। इस सम्प्रदाय के लोग भूत-प्रेत आदि में भी विश्वास करते थे। इन्होंने योग द्वारा काम शुद्धि कर शिवत्त्व प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया। नाथ सम्प्रदाय की योगविद्या का प्रभाव कुछ मध्यकालीन वैष्णव संतों पर भी पड़ा ।

वैष्णव धर्म का प्रचलन गुप्त काल के काफी पहले से चला आ रहा था। गुप्तवंशीय राजाओं का प्रभाव घटने पर वैष्णव मत का भी ह्रास आरम्भ हुआ। ऐसे ही समय दक्षिण में स्वामी रामानुजाचार्य का अवतरण हुआ। स्वामी जी ने न केवल आचार्य शंकर के, एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति, का खण्डन किया, ब्रह्म एवं जीव दोनों के अस्तित्व को स्वीकारते हुए विशिष्टाद्वैत वाद मत को प्रतिष्ठापित भी किया। स्वामी रामानुज ने भगवान् विष्णु की पूजा व अर्चना का पुनः प्रचार कर वैष्णव आन्दोलन को पुनर्जीवित किया।

स्वामी रामानुजाचार्य के वैष्णव आन्दोलन से प्रभावित होकर उत्तर भारत में भी अनेक वैष्णव आचार्यों एवं कवियों का उदय हुआ। शैव, शाक्त और बौद्ध धर्मों की पतनोन्मुखी वृत्ति ने भी इस धर्म के विकास में सहायता पहुँचाई। उत्तर भारत में वैष्णव धर्म को पुनर्जीवित करने वाले प्रथम आचार्य श्री स्वामीराघवानन्द जी थे। दक्षिण भारत से आकर स्वामी जी ने उत्तर भारत में राम मंत्र का प्रचार किया। स्वामीजी ने राम के सगुण भक्ति के साथ ही साथ योग विद्या का भी प्रचार किया। आपने भक्ति व योग को चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों में प्रवेश दिलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किंया। स्वामी राघवानन्द की भक्ति साधना में योग व भक्ति का सुन्दर समन्वय मिलता है। स्वामीजी की रचनाओं का एक संकलन 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' में संगृहीत है, जिसका नाम 'सिद्धान्त तन्मात्रा' है। इसमें स्वामीजी ने योग के पारिभाषिक शब्दों एवं विषयों की ओर संकेत किया है। उन्होंने योगियों की वेश-भूषा तथा मन को एकाग्र करने के लिए ब्रह्मचर्य एंवं धैर्य की आवश्यकता पर बल दिया है।

स्वामी राघवानन्द ने अपने जीवन के अन्तिम काल में काशी में पंचगंगा घाट पर रहकर वैष्णव भक्ति आन्दोलन को पोषित किया और यहीं पर उन्होंने राम भक्ति के उत्तर भारत के महान् आचार्य स्वामी रामानन्द जी को अपना शिष्य बनाया। पंचगंगा घाट पर स्वामी राघवानन्द जी के नाम से एक प्राचीन मठ था, जो अब बाढ़ से नष्ट हो गया है। इसी घाट पर स्वामी जी ने निर्वाण प्राप्त किया।

१३वीं-१४वीं शताब्दी में उत्तर भारत में राम भक्ति आन्दोलन का जितना तेजी से प्रचार स्वामी रामानन्द ने किया, उतना किसी अन्य ने नहीं। स्वामी रामानन्द जी ने विष्णु के अवतारी स्वरूप राम के सगुण एवं निर्गुण दोनो रूपों को भक्ति का आधार बनाया। स्वामी जी के सगुण राम भक्ति के अनुसार (ऋषि), जगज ननी (श्री सीता जी हैं, उन्होने प्रथमतः अपने सविशेष सेवक पार्षद रूप (श्री) हनुमान जी को उपदेश दिया और उन ऋषि

(आचार्य) के द्वारा संसार में उस रहस्य (मंत्र) का प्रकाश हुआ। इस कारण इस सम्प्रदाय का नाम (श्री) सम्प्रदाय पड़ा। श्री सम्प्रदाय के मंत्र को 'राम तारक' मंत्र कहते हैं। इस पवित्र मंत्र की दीक्षा गुरु शिष्य के कान में देता है। श्री सम्प्रदायी ने अर्द्धपुण्ड्र तिलक ललाट पर तथा शरीर के अन्य ग्यारह स्थानों पर लगाते हैं। इस सम्प्रदाय के सन्तों की जिह्वा जप में और मन सच्चे प्रियतम अर्थात् श्री राम के दर्शन में लगे होते हैं। पूर्णतया भजन ही इस सम्प्रदाय कीरीति है।

स्वामी रामानन्द द्वारा लिखित दो संस्कृत ग्रन्थ मिलते हैं, पहला 'वैष्णवमताब्ज-भास्कर' है। इसमें स्वामी जी ने वैष्णव सिद्धान्तों तथा आचारों का विस्तृत वर्णन किया है। दूसरे ग्रन्थ 'रामार्चन पद्धति' में स्वामी रामानन्द के गुरु-परम्परा तथा रामचन्द्र के पूजन-प्रकार का संक्षिप्त विवेचन है। स्वामी रामानन्द के 'वैष्णवमताब्ज भास्कर' के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि रामानुजाचार्य के विशिष्टा द्वैत सिद्धान्त ही रामानन्द जी को मान्य है । किन्तु रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत एवं रामानन्द के विशिष्टाद्वैत में कुछ अन्तर भी है। श्री वैष्णवों के द्वादशाक्षर मंत्र के स्थान पर रामानन्दी वैष्णवों में रामषडक्षर मंत्र (रां रामाय नमः) ही अभीष्ट है। इसी अन्तर को दृष्टि में रखकर रामानन्दी सम्प्रदाय के संत, भक्त अपने को वैरागी नाम से सम्बोधित करते हैं। इस सम्प्रदाय में वैरागी उसी को कहते हैं जो लोक-परलोक की इच्छाओं को त्याग देता है। रामानन्दी संतों में कबीर, पीपा, रैदास,, आदि इसी श्रेणी के संत है।

श्री वैष्णव धर्म में शेषशायी विष्णु की पूजा व अर्चना का विधान है और रामानन्दजी द्वारा परिवर्तित श्री सम्प्रदाय में सीता से युक्त राम और लक्ष्मण की त्रिमूर्ति की अर्चना का विधान बताया गया। प्राचीन रामानन्दी मंदिरों में इसी त्रिदेव की मूर्तियों की स्थापना मिलती है। कालान्तर में रामानन्दी सम्प्रदाय में राम के नाम, गुण तथा महिमा-वर्णन की प्रधानता मिलती है।

स्वामी रामानन्द जी के समय में उत्तर तथा दक्षिण भारत में जाति एवं वर्ण का भेद-भाव अपनी चरम सीमा पर था। श्री वैष्णव एवं श्री सम्प्रदाय में भी यह भेदभाव विद्यमान था। इन सम्प्रदायों के अनुसार केवल द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) ही ईश्वरार्चन कर सकते थे, शूद्र नहीं। इस मान्यता के परिणामस्वरूप हिन्दू जाति का एक वर्ग समाज में हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। परिणामतः शूद्र लोग अन्य धर्म (मुस्लिम व ईसाई) की ओर आकृष्ट होने लगे। रामानन्दजी ने इस वर्ण भेदभाव को मिटाकर समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों को ईश्वर (रामनाम) के जप व भजन का मार्ग प्रशस्त किया। रामानन्द जी ने नापित, धोबी, हरिजन आदि समाज में गिरे हुए वर्गों के साथ ही हिन्दू-मुसलमान सबको अपनी रामभक्ति में सम्मिलित किया।

स्वामी रामानन्द के बाद उत्तर भारत में वैष्णव धर्म के अनेक संतों ने अपनी भक्ति भावना पद्धति से वैष्णव धर्म को जन-जन के बीच पहुँचाया। साथ ही वैष्णव धर्म में अनेक सम्प्रदाय एक साथ प्रकट हुए। नाथ योगियों से प्रभावित रामानंदी वैष्णवों ने भगवान् राम के निर्गुण-निराकार परब्रह्म की उपासना की ओर लोगों को आकर्षित किया। इसके विपरीत श्री सम्प्रदाय से प्रभावित वैष्णव संतों ने राम के सगुण अवतारी रूप को अपनी भक्ति का केन्द्र बनाया। सगुण वैष्णव धर्माचार्यों में तुलसीदास, सूरदास, नाभादास, मीरा, विद्यापति आदि अनेक संत-कवियों ने इस धर्म को पल्लवित पुष्पित किया।

रामानन्दी वैरागी संतों ने राम के निर्गुण स्वरूप में ध्यान एवं जप के साथ योग क्रिया को विशेष महत्व दिया। योग के समावेश से निर्गुण भक्ति अत्यधिक शुष्क होगयी जिससे जन-सामान्य इस ओर आकृष्ट नहीं हो सका।

इसके विपरीत वैष्णव सगुण संतों ने विष्णु के अवतारी स्वरूप की भक्ति से जन-मानस की विश्वासमयी रागात्मक वृत्तियों को पुनः पल्लवित किया। इस सम्प्रदाय (सगुण) की भक्ति कबीर आदि निर्गुण भक्तों की ज्ञानयोगमयी भावना की भांति रहस्यमयी नहीं रही। गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति की सीधी, सरल एवं सहजसाध्य रूप को जनता के बीच रक्खा। तुलसी के राम सृष्टि के कण-कण में व्याप्त और सर्वसुलभ हैं। वैष्णव भक्त तुलसीदास ने राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य से संवलित अद्‌भुत रूप का गुणगान करते हुए लोक मंगल की साधनावस्था को प्रशस्त किया। तुलसीदास ने शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों के बीच व्याप्त कटुता को दूर करने के लिए राम व शिव दोनों को एक दूसरे का भक्त अंकित करके शैव एवं वैष्णव धर्म को एक सामान्य भावभूमि प्रदान की।

सगुण वैष्णव धर्म में विष्णु के अवतारी स्वरूप कृष्ण की भक्ति-परम्परा एवं सम्प्रदाय का भी उत्तर भारत में विशेष प्रचलन इस काल में रहा। पुराणों में श्रीकृष्ण को विष्णु का पूर्णावतार कहा गया है। पुराणों में कृष्ण को योगेश्वर, सच्चिदानन्द, अच्युत, अविनाशी आदि नामो से संबोधित किया गया। भागवत पुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण और ब्रह्म वैवर्त पुराणों में कृष्ण की महिमा का गान विस्तार के साथ हुआ। मध्यकाल उत्तर भारत के वैष्णव भक्तों में श्रीकृष्ण के माधुर्य रूप को विशेषतः स्वीकार किया गया और सूरदास, चैतन्य महाप्रभु तथा मीरा बाई जैसी भक्तों ने अपनी भक्ति साधना से कृष्ण की लीलाओं तथा योगेश्वर रूप को जनता तक पहुँचाया।

★★★

स्वामी राघवानन्द

—पं० भरत शर्मा

काशी में श्री सम्प्रदाय के महान् आचार्य स्वामी राघवानन्द जी महाराज निवास करते थे। वे अपने युग के प्रतापी महापुरुष थे। उन्होंने बहुत लम्बे काल तक भूतल पर राम-भक्ति का प्रचार किया और पीछे काशी में स्थायी निवास की इच्छा की। नाभा जी ने उसके सम्बन्ध में भक्तभाल में एक छप्पय लिखा है—

देवाचारज, द्वितीय महामहिमा हरियानन्द।

तस्य राघवानन्द भये भक्तन को मानन्दन।

पत्राबलम्ब आश्रम सबही को भक्ति दृढाई।

भक्तमाल छप्पय-३५

श्री देवानन्द जी के शिष्य हरियानन्द जी हुए और उनके शिष्य राघवानन्द जी हुए। ये ही आचार्य राघवानन्द जी ने सारे पृथ्वी-मण्डल पर घूमकर राम भक्ति का प्रचार किया। उन्होंने चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) को और चारों आश्रमों (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थ तथा संन्यास) को अपना उपदेश दिया। अन्त में अपनी प्रधान पीठ काशी जी में स्थायी निवास किये।

ब्रह्मचारी रामानन्द जी का बहुत बड़ा अध्ययन इन्हीं आचार्य राघवानन्द जी की पीठ में हुआ था। जब वे सर्वशास्त्र के परम्परागत विद्वान् हो गये तब उन्हें अपने पूर्व निवास माता-पिता के स्थान को लौट जाना चाहिए था। यही प्रस्ताव ब्रह्मचारी रामानन्द के सामने आया और आचार्य राघवानन्द जी ने भी इस पर अपनी वैसी ही अनुमति दे दी। ब्रह्मचारी रामानन्द के माता-पिता भी काशी आ चुके थे। वे अपने पुत्र के महान् फैले हुए यश को सुनते थे और उस पर अपने को कृतार्थ मानते थे। ब्रह्मचारी रामानन्द ने अपने महान् यशस्वी माता-पिता की सेवा में सविनय निवेदन किया कि वे उन्हें संसार के कल्याण के लिए सीधे चतुर्थ आश्रम में जाने की अनुमति दें। महान् युग उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। माता-पिता ने पुत्र के इस प्रस्ताव पर गम्भीर विचार किया और पीछे सहर्ष अनुमति दे दी। यह बड़ी ही उदारता थी और बड़ा ही त्याग था। संसार हित के लिए अपने सर्वस्व अकेले पुत्र को समर्पित कर देना, यह एक असाधारण बात थी। पूज्या माता सुशीला और पूज्य पिता पुण्य सदन के ही अनुरूप यह महान् कार्य था, इसलिए कि वे विश्ववन्द्य रामानन्द के माता-पिता थे।

आचार्य राघवानन्द जी महाराज वयोवृद्ध हो चुके थे। अब वे विश्ववन्द्य अपनी पीठ का भार दूसरे को सौंपना चाहते थे। उन्होंने सुयोग्य, अपने शिष्य रामानन्द स्वामी को पाकर उसका भार उन्हें ही सौपने का निर्णय किया।

स्वामी राघवानन्द जी की जीवनी अभी तक अंधकारपूर्ण ही है। अभी तक जो प्रमाण प्राप्त हुए हैं उसके अनुसार ये काशी के पंच गंगा घाट पर निवास करते थे तथा यहीं इन्होंने रामानन्द स्वामी को अपना मंत्र शिष्य बनाया था।आज भी पंचगंगा घाट पर रामानन्द जी की मढी विद्यमान है। ★★★★

स्वामी रामानन्दाचार्य जी

— अर्जुन प्रसाद शुक्ल

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्,
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

श्रीरामायत या श्री रामानन्दी वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य श्री रामानन्द जी एक उच्च कोटि के आध्यात्मिक महापुरुष थे। आचार्य रामानन्द जी का कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में माघ कृष्ण सप्तमी भृगुवार संवत् १३५४ को प्रयाग में त्रिवेणी तट पर जन्म हुआ था। पिता का नाम श्रीपुण्य सदन शर्मा था और माता का श्रीमती सुशीलादेवी। कुल पुरोहित श्रीवाराणसी अवस्थी ने शिशु के माता-पिता को यह उपदेश दिया था कि तीन वर्षों तक बालक को घर से बाहर न निकालना, उसकी प्रत्येक रुचि का पालन करना, उसको दूध ही पान कराना और कभी दर्पण न दिखाना।

चौथे वर्ष में अन्नप्राशन संस्कार हुआ। बालक के सामने सब प्रकार के व्यंजन रक्खे गये, पर बालक ने खीर ही खायी, और इसके उपरान्त खीर ही उसका एक मात्र आहार बन गया। कुछ समय पश्चात् कर्ण-बेधं संस्कार हुआ। इनके पिता वेद, व्याकरण, तथा योग आदि के पूर्ण ज्ञाता थे। एक समय जब उन्होंने रामायण-पाठ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया तब देखा कि जो कुछ वे पाठ करने जाते थे, पास बैठे हुए बालक को वह समग्र कंठस्थ होता जाता था। बालक की श्रवण-शक्ति तथा धारणा-शक्ति पूर्ण रूप से विकसित थी। बालक के कंठस्थ पाठ का सस्वर गान विद्वत्समाज को आश्चर्यचकित कर देता था। इस प्रकार इस बालक को आठ वर्ष की अवस्था में ही कई ग्रन्थ कण्ठस्थ हो गये। एक दिन बालक खेलता हुआ आया और अपने पिता का शंख बजाने लगा। पिता ने वह शंख उसी को दे दिया।

आठवें वर्ष उपनयन संस्कार किया गया। उपनीत ब्रह्मचारी जब पलाशदण्ड धारण कर काशी विद्याध्ययन करने चला तब आचार्य एवं सम्बन्धियों के आग्रह करने पर भी नहीं लौटा। विवश हो माता-पिता भी साथ हो लिए और बालक अपने माता के साथ ओंकारेश्वर के यहाँ काशी में ठहरकर विद्याध्ययन करता रहा। १२ वर्ष की अवस्था तक बालक ब्रह्मचारी ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। विवाह की चर्चा चली तो बालक रामानन्द ने इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् स्वामी राघवानन्द जी दीक्षा लेकर पंचगंगाघाट पर एक घाट वाले की झोपड़ी में ठहरकर तप करना आरम्भ कर दिया। लोगों ने ऊँचे स्थान पर एक कुटी बनाकर तपस्वी बालक से उसमें रहने की विनय की। उनकी विनय सुनकर वे उस कुटिया में आ गये और उसी में ज्ञानार्जन और तपस्या करते रहे उनके अलौकिक प्रभाव के कारण उनकी बड़ी ख्याति हुई। दिन प्रतिदिन जैसे- जैसे उनकी

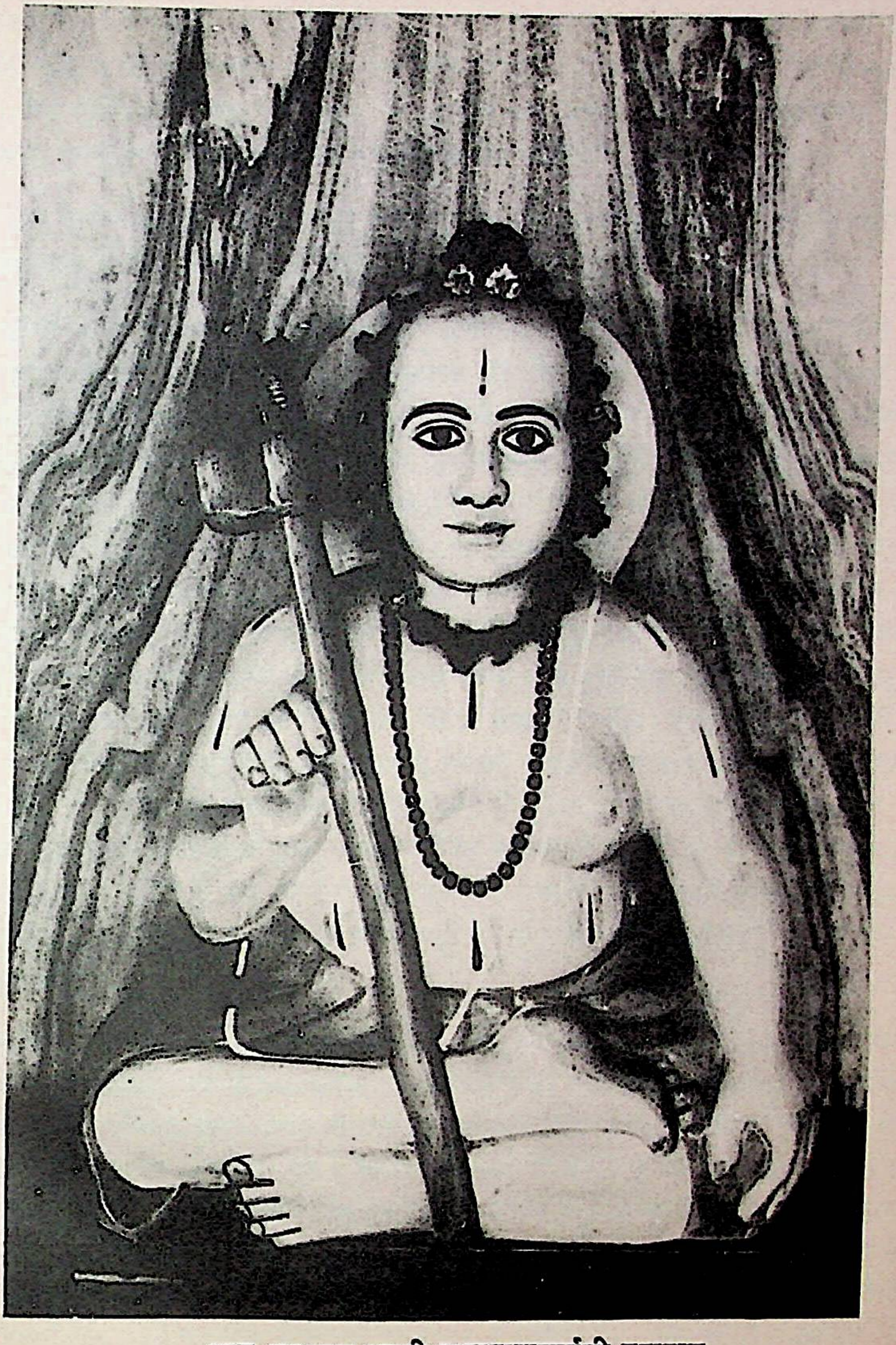

आद्य जगद्गुरू स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराज

प्रसिद्धि दूर-दूर स्थानों में फैलती गई, बड़े-बड़े साधु और विद्वान् आपके दर्शनार्थ आश्रम में आने लगे।

उनके शंख की ध्वनि सुनकर लोग सफल मनोरथ हो जाते थे, मानो उस ध्वनि में संजीवनी शक्ति थी। धीरे-धीरे वहाँ बड़ी भीड़ एकत्रित होने लगी, इससे भजन में विघ्न होने लगा। अतएव स्वामी जी ने शंख बजाना बन्द कर दिया। फिर लोगों की प्रार्थना पर स्वामी जी ने केवल प्रातः काल शंख बजाना लोककल्याण के लिए स्वीकार किया। इसके पूर्व वे नियम पूर्वक चार बार शंख बजाया करते थे।

इनके पास मुसलमान, जैन, बौद्ध, वेदान्ती, शास्त्रज्ञ, शैव, और शाक्त सभी मतवादी अपनी-अपनी शंकायें लेकर निवारण करने के लिए आते थे, और समुचित उत्तर पाकर शान्तचित्त से वापस जाते थे।

कहते हैं कि किसी शुभ पर्व पर काशी में विभिन्न प्रान्तों से श्रद्धावान् पुरुष एकत्रित हुए थे। उन लोगों ने आश्रम पर जाकर मुसलमानों के अत्याचारों की शिकायत की। तैमूर लंग द्वारा नरहत्या और लखनवती का उपद्रव ये सब अत्याचार धर्म के नाम पर होते थे। उन लोगों ने कहा कि इन उपद्रवकारियों को उचित शिक्षा देनी चाहिए। हम आप की शरण में आये हैं। हम पर कृपा कीजिए और दुष्टों को दण्ड दीजिए। स्वामी जी ने कहा "धैर्य धारण करने से ही विपत्ति के बादल हटते हैं।" इसके पश्चात् स्वामी जी की तपस्या के प्रभाव से अजान के समय मुल्लाओं के कण्ठ अवरुद्ध होने लगे। यह देखकर सभी मुसलमानों की बुद्धि चक्कर में पड़ गयी। राजा रंक, मौलवी, मुल्ला सब के सब इस बात से परेशान हो गये कि सब मुल्लाओं की जवान पर उसी समय लकवा क्यों मार जाता है, जब वे अजान देने को चलते हैं। इबन्नूर तथा मीरतकी ने यह निश्चय किया कि यह किसी सिद्ध महापुरुष की करामात है। वे लोग और उनके साथ कुछ मुसलमान विद्वान् काशी आये और कबीरदास जी को अपने साथ लेकर स्वामी रामानन्द जी के आश्रम पर पहुँचे। कहते हैं कि स्वामी जी ने उसी समय शंख बजा दिया, जिसके सुनते ही सब मुसलमान, मौलवी मुल्ला बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। उस दशा में उन लोगों ने मुहम्मद साहब को देखा जिन्होंने स्वामी जी की आज्ञा पर चलने का आदेश दिया। उनकी विनय सुनकर सबको सम्बोधित करके कहा- 'भगवान् केवल मुसलमानों का ही नही है, सम्पूर्ण संसार का है।' ईश्वर एक है जो सब स्थानों पर सब हृदयों पर बास करता है। भाइयों जब उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाला एक परमात्मा है और उसी एक को सब अनेक नामों से स्मरण करते हैं तब केवल पूजा के विधान में भेद होने से दूसरों पर —

(१) जजिया कर लगाना बड़ा ही अनुचित कार्य है। यह बन्द करा दिया जाय। (२) जैसे भोजन-वस्त्र शरीर धारण करने हेतु आवश्यक हैं उसी प्रकार उपासना करने का स्थान भी है। इसलिए हिन्दुओं के द्वारा मन्दिर बनवाने में जो प्रतिबन्ध लगाया जाता है, उसे दूर कर देना चाहिए। (३) किसी को बलपूर्वक धर्म भ्रष्ट कर देना बड़ा ही निन्दनीय कार्य है। यह न हो (४) मस्जिद के सामने से जाते हुए दुल्हे को पालकी से उतारकर पैदल चलने को विवश न किया जाय; क्योंकि यह प्राचीन धर्मनीति के विरुद्ध है। (५) गोहत्या बन्द कर देनी चाहिए (६) राम-नाम के प्रचार में रुकावट नहीं डालनी चाहिए (७) धर्म-ग्रन्थों को अग्नि से नहीं जलाना चाहिए और न किसी के हृदय को ही दुखाना चाहिए। पहले से बने हुए हिन्दुओं के मन्दिरों को विध्वस्त न किया जाय (८) बलपूर्वक किसी को मुसलमान न बनाया जाय। और मुहर्रम में त्योहार मनाने में कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाय। (९) किसी स्त्री का सतीत्व कभी नष्ट न किया जाय और न शंख बजाने का ही निषेध किया जाय। (१०) कुम्भ आदि पर्वों पर यात्रियों से कर न लिया जाय। (११) यदि कोई हिन्दू श्रद्धा पूर्वक किसी फकीर के पास जाय तो उसको उसी के धर्मानुसार उपदेश दिया जाय। अगर इन १२ प्रतिज्ञाओं में से

किसी का भी उल्लंघन किया जायेगा तो राज्य भ्रष्ट हो जायेगा। बुजुर्ग तथा विचारवान् मुल्लाओं एवं पीरों ने काशी में अजान बन्द होने की और स्वामी रामानन्द की १२ शर्तों की बात बादशाह गयासुद्दीन तुगलक को लिखी। बादशाह ने भलीभांति जाँच-पड़ताल करवायी। जब बादशाह को इसकी सच्चाई मालूम हुई तब उसने शाहीफरमान लिखवाकर उस पर अपने हस्ताक्षर करके शाही मुहर लगवा दी इसके पश्चात् काशी में डुग्गी पिटी गई कि आज से राज्य में इन सब बातों से प्रतिबन्ध हटा लिया गया ऐसी व्यवस्था हो जाने पर अजान नमाज का कार्य पूर्ववत चलने लगा।

स्वामी जी ने देश के लिए तीन मुख्य कार्य किये (१) साम्प्रदायिक कलह को शान्त किया (२) बादशाह गया उद्दीन तुगलक की संहारिणी सत्ता को पूर्णरूप से दबा दिया और (३) हिन्दुओं के आर्थिक संकट को भी दूर कर दिया।

मौलाना रशीउद्दीन नामक एक फकीर काशी में स्वामी जी के समकालीन हो गये हैं। उन्होंने 'तजकीर तुल फुकरा' नामक एक पुस्तक लिखी है। 'काशी में पंचगंगाघाट पर एक प्रसिद्ध महात्मा निवास करते हैं। वे तेजःपुंज एवं पूर्ण योगेश्वर हैं। वे वैष्णवों के सर्वमान्य आचार्य हैं। सदाचारी ब्रह्मनिष्ठ स्वरूप हैं। परमात्मा तत्व-रहस्य के पूर्ण ज्ञाता हैं। सच्चे भगवत् प्रेमियों एवं ब्रह्मविदों के समाज में उत्कृष्ट प्रभाव रखते हैं। अर्थात् धर्माधिकार में हिन्दुओं के धर्म -कर्म के सम्राट् हैं। केवल ब्रह्मवेला में अपनी पुनीत गुफा से गंगा-स्नान हेतु निकलते हैं। इस पवित्र आत्मा को स्वामी रामानन्द कहते हैं। इनके शिष्यों की संख्या ५०० से अधिक है। उस शिष्य समूह में द्वादश गुरु के विशेष कृपा-पात्र हैं। (१) अनन्तानन्द (२) सुखानन्द (३) सुरसुरानन्द (४) नरहरियानन्द (५) योगानन्द (ब्राह्मण) (६) पीपा (क्षत्रिय) (७) कबीर (जुलाहा) (८) सेन (नाई) (९) धन्ना (जाट) (१०) रैदास (चमार) (११) पद्यमावती (१२) सुरसरि (स्त्रियां)। इन्होंने ब्राह्मणों की भांति अन्य जाति के लोगों को भी तारक मन्त्र की दीक्षा दी। उनके पाँच ब्राह्मण पाँच तथाकथित निम्नवर्ग के दो स्त्री शिष्याएं थीं। इसके अतिरिक्त उनके और भी अनेक चेले थे। भागवतों के इस सम्प्रदाय का नाम बैरागी है जो लोक-परलोक की इच्छाओं का त्याग करता है। कहते हैं इस सम्प्रदाय का नाम "श्री सम्प्रदाय " है और इसके मुख्य मन्त्र को रामतारक कहते हैं। इस पवित्र मंत्र की गुरु शिष्य के कान में दीक्षा देता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक ललाट पर लगाते हैं। पूर्णतया भजन में रहना ही इस सम्प्रदाय की रीति है। अधिकांश संत परमहंसी जीवन निर्वाह करते हैं। कुछ समय पश्चात् स्वामी जी ने अपनी शिष्य मण्डली को सम्बोधित करके कहा कि "सब शास्त्रों का सार भगवत्स्मरण है, जो सच्चे संतों का जीवनाधार है। कल श्री रामनवमी है। मैं अयोध्या जी जाऊँगा। परन्तु मैं अकेला ही जाऊँगा। सब लोग यहाँ रह कर उत्सव मनायें। कदाचित् मैं लौट न सकू, आप लोग मेरी त्रुटियों एवं अविनय आदि को क्षमा कीजिएगा। यह सुनकर सबके नेत्र सजल हो गये। दूसरे दिन स्वामी. जी संवत् १५१५ में अपनी कुटी में अन्तर्ध्यान हो गये।

★★★

आचार्य रामानन्द का सामाजिक परिवेश

— डॉ० मोहन लाल तिवारी

दर्शन, साहित्य, शास्त्र तथा भाषा को प्रभावित करने, विकसित करने एवं रूपान्तरित करने की सबसे बड़ी शक्ति लोकजीवन की यथास्थिति अथवा ऐतिहासिक घटनाक्रम में द्रुत या क्रमिक परिवर्तनशील सामाजिक परिवेश हुआ करते हैं। पुराने शास्त्र और संस्कृति के नियमों, व्यवहारों, सामाजिक संरचना की दृढ़ता या शक्ति, यहाँ तक कि शासन की कठोरता, क्रूरता से भी लोकजीवन लड़ता है और एक दिन उसे या तो मोड़ देता है या ध्वस्त कर देता है। पुरातनतावादी, परंपरावादी या शास्त्रवादी मुंह ताकते रह जाते हैं। भले ही उनके पास शास्त्र या शास्त्र की भरपूर शक्ति क्यों न हो ? आचार्य रामानन्द का जीवन, उनकी रचनाएं, समाजसेवा, हिन्दू जाति का कायाकल्प, नई सामाजिक कायस्थ का विकास, नए जीवन दर्शन की स्थापना के प्रयत्न, इतिहास और लोकजीवन की इन्हीं परिवर्तनवादी शक्तियों के प्रमाण हैं। उन्होंने भी अपने युग एवं समाज के साथ पूरा न्याय किया। समाज और तत्कालीन लोकजीवन की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं को पूरा किया। उत्तर भारत के पूरे समाज को नेतृत्व प्रदान किया।

दक्षिण और उत्तर भारत में मध्यकाल में — मुसलिम विजय के पश्चात् के काल में — निकम्मे हिन्दू राजाओं के पतन के बाद राजा, सामंत, सेनापति सभी तलवार के घाट उतार दिए गए, क्योंकि सभी चरित्रहीन और आदर्शच्युत हो गए थे। सामान्य जन की घृणा, उनकी हताशा और जीवन के प्रति वितृष्णा इन राजाओं और सामंतों के साथ देश को भी ले डूबी। सबके पतन का कारण बनी। जब विदेशी आक्रमणकारियों और विजेताओं से जनता की रक्षा करने वाला कोई न रह गया तब उत्तर और दक्षिण के उदारमना और क्रांतिकारी संतों, आचार्यों ने इस राष्ट्रीय और मानवीय उत्तरदायित्व का भार बड़े कौशल और साहस के साथ वहन किया। धीरे-धीरे उत्पन्न होने तथा कुछ क्रम से शक्तिशाली होने वाले इस सामाजिक, धार्मिक, नवजागरणवादी आंदोलन या भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने जनजीवन में एक सार्वजनीन या मानवतावादी लोकधर्म का प्रचार करना अपना उद्देश्य बनाया, जिनका तात्कालिक लक्ष्य वर्णाश्रम पर आधारित हिन्दू धर्म तथा काफिरों को नेस्तनाबूद करने वाले इस्लाम धर्म की अन्तर्निहित जड़ता और उग्रता को समाप्त करना या कम करना और मानव धर्म की स्थापना करना था और उस धर्म की सबसे बड़ी उपलब्धि था — "मनुष्य"। हिन्दी साहित्य पर इस आंदोलन का सीधा प्रभाव पड़ा और साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से पूरे मध्यदेश या हिन्दी प्रभावित विशाल भारत में पुनर्जागरण तथा सामाजिक नवनिर्माण का नया आंदोलन खड़ा हो गया, जिसे समीक्षकों ने पुनर्जागरण का आंदोलन कहा है। सदियों से सोए और नष्ट हो चुके भारत को इस आंदोलन ने जगाया एवं उसे एक नई चेतना दी। इस आंदोलन ने हिन्दुओं और मुसलमानों को नया आदमी बनाया, तथा बचे-खुचे हिन्दुस्तान को बचाया। सूफियों को भी इस आंदोलन से बड़ी शक्ति मिली।

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद द्वारा संपादित 'भक्तमाल' के "रामानन्द यशावलि" के अनुसार आचार्य रामानन्द का जन्म फरवरी १२९९ ई० (माघबदी ७, १३५६ वि०) को इलाहाबाद (प्रयाग) में हुआ था। १४४ वर्ष की आयु पाकर अप्रैल १४४३ ई० (चैत्र शुक्ल १, १५०० वि) को अयोध्या में साकेत गमन हुआ। उनके पिता पुण्य सदन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनकी माता का नाम श्रीमती सुशीलादेवी था। प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा, द्वारका की उन्होंने कई बार तीर्थ यात्राएं की थीं। आज भी आबू पर्वत पर विद्यमान उनके पद चिह्नों की वैष्णव भक्त पूजा करते हैं। विस्तृत तीर्थयात्रा में उनका समाज बदलता रहा। भिन्न भावना, विश्वास, जाति, स्तर, भोजन, धर्म, संप्रदाय, संस्कृति के लोगों से उनका साक्षात्कार होता रहा, जिससे उनकी विचारों का निरंतर विकास होता रहा। ऐसी मान्यता है कि हिन्दी के अतिरिक्त उन्हें उत्तर भारत की गौड़ी (बंगाल, उड़िया, असमी) पैशाची (पंजाबी, डोमरी, सिंधी) गुजराती, मराठी, एवं दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं का समान ज्ञान प्राप्त था। इतना निश्चित है कि उनमें समस्त एवं तिलांजलि का परिस्थितिजन्य समन्वय हो चुका था। वे अखिल भारतीयता या अखिल हिन्दुत्व के प्रतिनिधि थे।

इस समय वे १०७ वर्ष पूर्व मुहम्मद गोरी ने तराइन के मैदान में अत्याचारी और चरित्रहीन पृथ्वीराज का गला तलवार से अलग कर दिया था और जब विजय के उल्लास में वह दिल्ली पहुँचा तो मुक्ति का अनुभव कर रही जनता ने उसका जोरदार स्वागत किया, किन्तु उस मुक्ति पर दूसरे दिन पानी फिर गया। गौरी के बाद दिल्ली की गद्दी पर गुलाम वंश के नौ शासकों ने १२०६ से १२९० ई० तक खिलजी वंश के संस्थापक दसवें विधर्मी जलाउद्दीन खिलजी ने १२९६ ई० तक शासन किया, जब ग्यारहवें शासक क्रूर और व्यभिचारी अलाउद्दीन खिलजी ने १२९६ में दिल्ली की सत्ता हड़प ली। खिलजी के राज्य काल में ही १२९९ ई० में रामानंद का प्रादुर्भाव हुआ। तुगलक वंश के शासन की स्थापना १३२० ई० में हुई। तैमूर के उत्तराधिकारी खिजखां ने सैयद वंश का राज्य १४१४ ई० में स्थापित किया, जिसका अंत १४५१ ई० में बहलोल लोदी के सिंहासनारूढ़ होने के साथ हुआ। रामानंद की १४४ की आयु की अवधि में दिल्ली पर तीन वंशों के ग्यारह सुल्तानों ने क्रमशः राज्य किया और जो भी अत्याचार एक शक्तिशाली क्रूर मनुष्य दूसरे पर कर सकता है, किया। पराजित, और अनेक अर्थों में पतित, हिन्दू समाज ने इन सबको देखा और झेला। सैयद-वंशीय सैयद मुहम्मद शाह के शासनकाल में रामानंद का नियन हुआ। भारत में चारों ओर क्रूर और विजयी मुसलिम शासक फैलते ही गए, जिन्हें अंततः अंग्रेजों ने ही हटाया। विघटित, स्वार्थलिप्त, आदर्शशून्य हिन्दू जाति विदेशियों का बालबांका नहीं कर सकी। कितने दुःख की बात है।

१४वीं १५वीं शती में भारत में एक प्रवल समाज सुधार आंदोलन का श्रीगणेश हुआ। यह भक्ति आंदोलन कहा गया। सामाजिक और जातीय विभेद की कटु निंदा की गई। फलस्वरूप अनेक क्षेत्रों में जातीय बंधन शिथिल हो गए। इस आन्दोलन से उत्तर भारत की क्षेत्रीय बोलियों के विकास में बड़ी सहायता मिली। इन समाज सुधारकों ने हिन्दी एवं अन्य क्षेत्रीय बोलियों में कई रचनाएं प्रस्तुत कीं।

इनका श्रीगणेश स्वामी रामानंद ने किया, जिनके आविर्भाव का अनिश्चित, किन्तु परंपरागत स्वीकृत समय ऊपर लिखा जा चुका है। विस्तृत यात्राकाल में ही रामानंद के विचारों का विकास हुआ। प्रयाग के अंचल में आने पर तथा जाति व्यवस्था या वर्ण व्यवस्था की कठोरता का उल्लंघन करने पर अनेक सहजातियों ने उनसे विवाद किया, उनके आचार-विचार पर आपत्ति की। तब भी जाति व्यवस्था को शिथिल करने के अपने अभियान पर वे आगे बढ़ते गए। अन्ततः उन्हें जाति से निष्कासित भी कर दिया गया। तत्पश्चात् अपने गुरु स्वामी

राघवानंद के परामर्श पर उन्होंने हिन्दू समाज के भीतर एक संप्रदाय की स्थापना की। उन्होंने अपने मत में धार्मिक स्वतंत्रता तथा सामाजिक समानता के सिद्धांतों को स्वीकार किया। उन्होंने घोषित किया कि उनके संप्रदाय के सिद्धांत और शिक्षा को स्वीकार करने वाले किसी भी जाति के लोग जन्म और वंश का विचार न करते हुए एक साथ खान-पान कर सकते हैं। ईश्वर की सेवा करने वाले सभी मनुष्य समान हैं। उन्होंने अपने संप्रदाय में सभी जातियों के शिष्यों को प्रवेश दिया और घोषित किया कि ईश्वर का ज्ञान मनुष्य को सभी बंधनों से मुक्त करता है। अपने शिष्यों को उन्होंने "अवधूत"—मुक्त-कहा। रामानन्द ने उन दिनों मन्दिरों में भेद-भाव तथा पत्थर और पानी मात्र को देखकर मूर्ति-पूजा का बहिष्कार कर दिया था, किन्तु उनके अनुयायी अब मूर्तिपूजा करने लगे हैं। उंनके प्रभाव से कबीर ने भी मन्दिर, मस्जिद का बहिष्कार किया, किन्तु वर्तमान कबीरपंथी भी मूर्तिपूजा करते हैं। यत्र-त्तत्र बिखरे थोड़े से मुसलिम कबीरपंथी भी ऐसी ही परम्परा का आचरण करते हैं। कबीर, रैदास, दादू, चरनदास के अतिरिक्त गुरुनानक ने भी रामानन्द की शिक्षाओं को ग्रहण किया। इनके मत में मूर्तिपूजा तथा जाति भेद का निषेध है, किन्तु अनेक सिख मन्दिरों में जाते हैं। लोकमंगलकारी एवं आदर्शचरित्र के नायक "राम" को ही तदर्थ उन्होंने ईश्वर या ब्रह्म का स्वरूप माना।

रामानन्द के जीवन, कर्म और शिक्षा का मुख्य उद्देश्य दलित जातियों का उत्थान था। फलस्वरूप उन्होंने रैदास (रविदास) को बड़ी धूमधाम से अपना शिष्य बनाया। इसी तरह मुस्लिम जुलाहा कबीर, नाई सेन और हिन्दू समाज में निकृष्टतम व्यक्ति कसाई सदना को स्वीकार किया, जो आज श्रेष्ठ महात्मा की तरह समाज में मान्य और प्रतिष्ठित हैं। यह कहावत उसी समय सार्थक और सशक्त बन गई थी —

जात पात पूछै नहिं कोई,

हरिको भजै सो हरि का होई।

आध्यात्मिक स्तर पर रामानन्द ने एक ब्रह्म की मान्यता का प्रतिपादन किया। जल और पाषाण-प्रधान मन्दिर या देवस्थान के महत्व को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। मनुष्य में किसी प्रकार के भेदभाव को मानने के लिये तैयार नहीं थे। उनकी एक कविता इस प्रकार है :—

कत जाइयै रे घर लागो रंगु। मेरा चितु न चलै मन भयो पंगु॥

एक दिवस मन भई उमंग। घसि चंदन चोवा बहु सुगंध॥

पूजन चली ब्रह्म गुरू ठाई। सो ब्रह्म बतायो मनहीं माहिं॥

अहं जाइए वहं जल पषान। यू पूरि रहयो है सब मांहि॥

वेद पुरान सब देखे जोइ। जहां तौ जाइयै जो इहां न होइ॥

सतगुरु मैं बलिहारी तोर। जिन सकल बिकल भ्रम काटे मोर॥

रामानंद स्वामी रमत ब्रह्म। गुरु का सबद काटै कोटि करम॥

★★★

युग प्रवर्त्तक रामानन्दाचार्य जी

कुलदीप नारायण "झड़प"

उस प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार कि – 'भक्ति द्रविड़ उपजी, लाये रामानन्द" – से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में आधुनिक भक्ति-मार्ग का प्रचार-प्रसार करने वाले वैष्णव-साधना के मूल प्रवर्त्तक स्वामी रामानन्द जी थे । उस समय के राष्ट्र, समाज तथा संस्कृति के क्षेत्र में उनका व्यक्तित्त्व असीम शक्ति का स्रोत तथा सूर्य की तरह प्रकाशमान है । वे अद्भुत कारयित्री-प्रतिभा के धनी पुरुष थे । उनकी शिष्यमण्डली में जहाँ एक ओर कबीरदास, रैदास, सेन, नाईं और पीपा जैसे जाति-पाति, छुआछूत, वैदिक कर्मकाण्ड, मूर्ति-पूजा आदि के विरोधी निर्गुणवादी सन्त थे, वहीं उनके दूसरे पक्ष में अवतारवाद के पूर्ण समर्थक, अर्चावतार मानकर मूर्ति की पूजा करने वाले, वैदिक कर्मकाण्ड और तीर्थव्रत के महत्त्व को स्वीकार करने वाले स्वामी अनन्तानन्द, भावानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द आदि जैसे सगुणोपासक आचार्य-भक्त भी थे । जिनकी परम्परा में कृष्णदास पयोहारी जैसा तेजस्वी साधक और संगठनकर्त्ता तथा गोस्वामी तुलसीदास जैसा विश्व-विश्रुत महाकवि और समाज-सुधारक उत्पन्न हुए । इसका प्रधान कारण यह था कि स्वामी रामानन्द समन्वयवादी महात्मा, परम विचारक तथा उदारचेता महापुरुष थे । उनकी करुणा शीलता के विषय में प्रसिद्धि है कि उन्होंने पेड़ पर चढ़कर तारक राम मंत्र का उपदेश किया था, जिससे वह सब जाति के लोगों के कान में पड़े और अधिक से अधिक लोगों का उद्धार हो सके । उनका कहना था –

'जाति-पाँति पूछै ना कोई । हरि को भजै सो हरि का होई ॥'

भक्ति मार्ग में समान भाव से सबका समान अधिकार मानने के कारण उन्हें दक्षिण देश में रामानुजी-सम्प्रदाय के पंक्ति से उठा दिया गया था । अतः वे उत्तर भारत में चले आए और स्वतन्त्र रूप से श्री सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया । इस सम्प्रदाय को 'रामानन्दी' अथवा 'वैरागी' सम्प्रदाय भी कहते हैं । उन्होंने बिखरते और नीचे गिरते हुए समाज को सुदृढ़ बनाने की भावना से भक्ति-मार्ग में जाति-पाँति के भेद को व्यर्थ बताया और कहा कि भगवान् की शरणागति का मार्ग सबके लिए समान रूप से खुला है । चाहे किसी भी जाति-वर्ग का व्यक्ति हो, उसे राम-मन्त्र देने में उन्होंने संकोच नहीं किया । उनकी शिष्य-मण्डली में सूक्ष्म-शास्त्र-विचारक आचार्य-भक्तों के साथ-साथ कम पढ़े-लिखे तत्त्व चिन्तक भक्त भी थे । भक्ति मार्ग की आध्यात्मिक साधना में बहुत पढ़ा-लिखा होने और कम पढ़ा-लिखा होने से कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ता भक्ति मार्ग तर्क और विवाद का विषय न होकर अनुभूति का विषय है । उसके लिए भाव-प्रवण हृदय चाहिए – तार्किक मस्तिष्क नहीं । आध्यात्मिक ज्ञान अनुभव-गम्य होता है । वहाँ शास्त्रीय ज्ञान पीछे छूट जाता है । कबीरदास जी कहते हैं –

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥"

मध्ययुगीन धर्म-साधना के केन्द्र में स्वामी रामानन्द की स्थिति चतुष्पथ के दीप-स्तम्भ जैसी है। उन्होंने अभूतपूर्व सामाजिक-क्रांति का श्रीगणेश करके बड़ी जीवट के साथ समाज और संस्कृति की रक्षा की। उन्हीं के कारण उत्तर भारत में तीर्थ-क्षेत्रों की रक्षा और वहाँ सांस्कृतिक क्षेत्रों की स्थापना हो सकी। वह हिन्दू समाज की निराशाभरी रात में सदाशा की किरण थे। आकस्मिक संकट से अवसन्न भयग्रस्त शिथिल समाज, जो पतझड़ के उपवन की भांति उदास हो गया था – स्वामी रामानन्द को पाकर खिल उठा। प्रभु शक्ति में विश्वास और निष्ठा के रसायन से सींचकर उन्होंने उसे लुह-लुह (सुरम्य) बना दिया। शक्ति का स्वर, भक्ति का प्राण और अदम्य उत्साह की शोभा के संचार से वासन्ती वन की तरह समाज जीवन्त बन गया। भक्ति के वातावरण में शक्ति के स्वर और विश्व-बन्धुता के भाव से वह लहराने लगा।

उन्होंने उस युग की परिस्थिति के अनुसार वैरागी साधु-समाज को अस्त्र-शस्त्र सज्जित अनी के रूप में संगठित कर तीर्थ-व्रत की रक्षा के लिए धर्म का सक्रिय मूर्तिमान रूप खड़ा कर दिया। गांव-गांव और तीर्थस्थानों में वैरागी साधुओं के अखाड़े स्थापित हुए। वैरागी लोग घूम-घूमकर राम-भक्ति का प्रचार और धर्म का उपदेश करते थे। यह स्वामी रामानन्द के ही महत्तम व्यक्तित्व का प्रताप था कि हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य, शैव-वैष्णव विवाद, वर्ण-विद्वेष, मत-मतान्तर का झगड़ा और परस्पर सामाजिक कटुता बहुत कुंछ कम हो गयी। उन्होंने अयोध्या के नव-मुस्लिम समाज को राम-मंत्र का उपदेश देकर शुद्धि की, गोवध-बन्द कराया और हिन्दुओं पर से 'जजिया' कर हटवाया। ये सारी बातें उस युग के लिए असाधारण और अनहोनी थी। भाव-विचार, भक्ति-ज्ञान, तेज-ओज और निष्ठा-आस्था से परिपूर्ण कोई दूसरा पुरुष तब से आज तक इस भारत-भूमि में अवतीर्ण नहीं हुआ, जो उनके जैसा समन्वयी, समाज-सुधारक और निर्भीक संगठन-कर्त्ता हो।

तप, तेज और शक्ति की समन्वित मूर्त्ति, समाज और राष्ट्र का उन्नायक ऐसा महात्मा किस देश, काल और कुल में उत्पन्न हुआ, यह विचारणीय है। अगस्त्य संहिता के अनुसार उनका जन्म ४४०० वर्ष गत कलि अर्थात् सं० १३५६ वि० की माघ कृष्ण सप्तमी को हुआ था और उनका साकेतवास वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया) संवत् १४६७ वि० को हुआ। रामानन्दी सम्प्रदाय में इसी उल्लेख के अनुसार "रामानन्दाब्द" की गणना की जाती है। किन्तु इस कथन को स्वीकार करने में ऐतिहासिक तथ्य का विरोध पड़ता है। यह मानी हुई बात है कि कबीरदास (जन्म सं० १४४५ वि०) राजा पीपा (जन्म सं० १४८२ वि०) सेननाई (१६वीं शताब्दी का अन्त), रैदास आदि स्वामी जी के शिष्य थे। यदि अगस्त्य संहिता के कथन को प्रमाण माना जाय तो राजा पीपा और सेननाई का जन्म स्वामी जी के साकेतवास के बाद मानना पड़ेगा जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

भविष्य पुराण के अनुसार स्वामी जी सिकन्दर लोदी (सं० १५४६-१५७४ वि०) के समय में विद्यमान थे। शेख तकी और कबीर के जीवन काल में उनका रहना सिद्ध है। शेख तकी सिकन्दर लोदी के गुरु थे। कबीर ने "सुनहुत की तुर सेख" कहकर उन्हें सम्बोधित भी किया है। ऐसी स्थिति में कबीरदास, शेख तकी और सिकन्दर लोदी परस्पर समकालीन सिद्ध होते हैं।

सोलहवीं शताब्दी के एक लेखक मौ० रशीउद्दीन ने जो काशी निवासी थे, स्वामी जी के विषय में जो उल्लेख किया है उससे प्रकट होता है कि वे स्वामी जी के सम-सामयिक थे। इस कथन के अनुसार भी अगस्त्य-संहिता की बात कट जाती है। आचार्य पण्डित बलदेव उपाध्याय ने स्वामी जी का समय सं० १४६७

से १५६७ वि० स्वीकार किया है। यदि उनकी बात मान भी ली जाय तो कबीर दास जी स्वामी जी से ८ वर्ष बड़े सिद्ध होते हैं। अस्तु ; उपाध्याय जी की बात स्वीकार करने में भी कठिनाई है।

कबीर दास किशोरावस्था में स्वामी जी के शरणागत हुए थे जबकि स्वामी जी लगभग २५ वर्ष के रहे होंगे। बाबरी सम्प्रदाय के बुला साहब स्वामी जी से दसवीं पीढ़ी में थे। यदि दो पीढ़ियों का अन्तर २० वर्ष माना जाय तो दोनों का अन्तर २०० वर्ष होगा। बुला साहब का देहावसान सं० १७६६ वि० में हुआ था। अस्तु, स्वामी जी का समय सं० १५६६ वि० मानना पड़ेगा। भविष्य पुराण, भक्तभाल की प्रियादासी टीका तथा परम्परागत मान्यता के अनुसार जब सिकन्दर लोदी वाराणसी में आया तो उसने कबीरदास को नाना प्रकार की यातना दी और उन्हें अपने राज्य से बाहर किया। यह घटना सं० १५५१ वि० की है। काशी से निकाले गये कबीर दास जब मगध होते हुए जगन्नाथपुरी पहुँचे तो उन्होंने गुरु का स्मरण कर यह कहा था —

गुरु वसे बनारसी, सिख समुन्दर तीर।
बीसारे नहिं बीसरै जो गुण होय शरीर॥

कबीर दास को काशी से पुरी पहुँचने कम से कम पाँच वर्ष का समय लगा होगा। ऐसी दशा में स्वामी रामानन्द का सं० १५६० के बाद तक रहना सिद्ध होता है। ऐसी दशा में स्वामी जी की आयु अगस्त्य संहिता के अनुसार १११ वर्ष मानें तो उनका जन्म काल सं० १४४५ वि० के लगभग मानना पड़ेगा।

कुल परम्परा

श्री रामानन्द दिग्विजय के अनुसार स्वामी रामानन्द का जन्म प्रयाग के पुण्य सदन नामक कान्यकुब्ज ब्राह्मण की पत्नी सुशीला के गर्भ से हुआ था। "रामानन्द-सम्प्रदाय" शोध ग्रन्थ के रचयिता डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव की खोज के अनुसार "श्री रामानन्द दिग्विजय" और "प्रसंग पारिजात" नामक ग्रन्थ पूर्णतः कपोल-कल्पित और अप्रामाणिक हैं। ऐसी दशा में "श्री रामानन्द दिग्विजय" में उल्लिखित वंश परम्परा उनके माता-पिता और जन्मभूमि के नाम को भी कल्पित ही माना जाएगा। कान्यकुब्ज वंशावली देखने से पता चलता है कि उस युग में प्रायः उच्चारण सुनकर तद्भव नामों का प्रचलन चला था। पुण्य सदन जैसे अर्थपरक तत्सम नाम प्रायः नहीं रखे जाते थे।

भविष्य पुराण के अनुसार उनके पिता का नाम राघव शर्मा और वे काशी क्षेत्र के निवासी थे। गंगा-गोमती के संगम पर पटना (गाजीपुर) में स्वामी रामानन्दाचार्य की समाधि है। बावरी पंथ के मूल पुरुष दयानन्द काशी निवासी प्रसिद्ध स्वामी रामानन्द के शिष्य बताये जाते हैं और ऊपर कथित समाधि उन्हीं की कही जाती है। समय पर विचार करने से भी काशी के प्रसिद्ध स्वामी रामानन्द और बावरी पंथ के मूल पुरुष स्वामी रामानन्द समकालीन ठहरते हैं, जिससे दोनों की अभिन्नता सिद्ध होती है और इससे भविष्य पुराण के कथानक की पुष्टि होती है। पूर्वकाल में काशी क्षेत्र का विस्तार गंगा-गोमती के संगम तक माना जाता था।

स्वामी जी के सम-सामयिक वाराणसी निवासी मुसलमान कबीर मौलाना रशीउद्दीन लिखित "तजकीरतुल फुकरा" में स्वामी जी के सम्बन्ध में निम्नांकित उल्लेख है —

"उसी पुरी (वाराणसी) में पंचगंगा घाट पर एक प्रसिद्ध महात्मा हैं तेज के पुंज और परम योगेश्वर। वे वैष्णव मत के सर्वमान्य आचार्य हैं। वे ब्रह्म निष्ठा और सदाचार के साक्षात् स्वरूप हैं। परमात्म तत्व के

रहस्य को पूरी तरह जानते हैं। भगवद्भक्त और आध्यात्मिक ज्ञानी समाज में उनका बहुत प्रभाव है। धर्माधिकार में हिन्दू धर्म-कर्म के सम्राट हैं। केवल ब्रह्मवेला में वे अपनी गुफा से गंगा-स्नान के लिए निकलते हैं।

उनका नाम स्वामी रामानन्द है। उनकी शिष्य मण्डली की संख्या ५०० से अधिक है,जिसमें १२ उनके विशेष कृपा पात्र हैं — कबीर, पीपा आदि। भक्त समुदाय का नाम विरागी है। ब्राह्मण भाषा में लोक-परलोक की चाह से रहित पुरुष को "विरागी" कहा जाता है। कहा जाता है कि इस वंश का प्रवर्तक जगदम्बा श्री सीता जी हैं। उन्होंने ही सबसे पहले पार्षद रूप हनुमान् को उपदेश दिया था। उन्हीं ऋषि से यह रहस्य संसार में प्रकाशित हुआ और इसी से इस सम्प्रदाय को 'श्री सम्प्रदाय" कहते हैं। गुरु उस पचित्र मन्त्र की शिष्य के कान में दीक्षा देते हैं। लाभ और मीन के आकार की टीका माथे पर और अन्य ग्यारह स्थानों में लगाते हैं और जनेऊ में तुलसी की मनिया गूँथकर शिष्यों के गले में पहना देते हैं। उनकी जिह्वा सदा जप में और मन प्रियतम (भगवान्) के दर्शनानुसन्धान में लगा रहता है। सदा भगवद् भजन में संलग्न रहना इस सम्प्रदाय की रीति है। अधिकांश लोग आत्मरामी (परमहंसी) जीवन बिताते हैं।"

मौ० रशीउद्दीन-कथित विवरण से स्वामी रामानन्द और उनके सम्प्रदाय पर संक्षिप्त प्रकाश पड़ता है। स्वामी जी के १२ प्रधान शिष्यों में सर्वश्री अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानिन्द, सुखानन्द, योगानन्द, भावानन्द, गालवानन्द, कबीर, रैदास, सेन, पीपा और धन्नाभगत माने जाते हैं। जिसमें प्रथम सात सगुणोपासक और अन्तिम पाँच निर्गुणोपासक थे। इससे प्रकट होता है कि स्वामी जी को सगुणोपासना और निर्गुण उपासना के विषय में विशेष आग्रह नहीं था। उनका उद्देश्य केवल राम-भक्ति का प्रचार और संसार में सुख-शान्ति का प्रसार था।

रामानन्दी सम्प्रदाय के उपास्य श्री सीता-राम हैं। जिनके पार्षद भरत, शत्रुघ्न और हनूमान हैं। मुख्य मन्त्र — "रां रामाय नमः" है, जिसे षडक्षर मन्त्र कहते हैं। इस मन्त्र में "रां" ॐ कार का वाचक है, इसलिए अलग से ॐ का प्रयोग नहीं किया जाता। इस पंथ के साधु गले में गुरु की दी हुई तुलसी की मनिया धारण करते हैं, जिसे कंठी कहा जाता है। जप आदि के लिए भी तुलसी की माला धारण करना भी आवश्यक है। लंगोटी के ऊपर जो आँचल बाँधते हैं, श्वेत रंग का होता है। दाढ़ी और सिर पर जटा, ललाट पर दो फाँकों वाली चन्दन की रामानन्दी टीका, जिसके बीच में रोली की फाँक (श्री) होने से चन्दन का रूप त्रिशूलाकार बन जाता है। यही वैरागी पंथ के साधुओं की पहचान है। पंथ की विभिन्न शाखाओं की टीका में परस्पर कुछ अन्तर होता है। इस पन्थ में शौचाचार, सदाचार और खान-पान की पवित्रता पर अधिक बल दिया जाता है। बिहार और उत्तर प्रदेश में कदाचित् ही कोई गाँव हो, जहाँ रामानन्दी साधु न हों। इस सम्प्रदाय के साधु रामोपासक हैं, इसलिए इसे "रामावत" सम्प्रदाय कहते हैं। विषय से विरक्ति और सतत भगवान् राम का भक्तिपूर्वक स्मरण रामावत सम्प्रदाय के साधुओं का विशेष गुण है इसलिए इन्हें विरक्त या वैरागी कहा जाता है।

रामावत सम्प्रदाय में भक्ति के जनक ७ उपाय बताये गये हैं — १. विवेक-दुष्ट आहार से सात्विक आहार का विवेचन। २. विमोक (काम से अनासक्ति) विषय का सन्निधान होने पर भी चित्त में विकार का अभाव। ३. अभ्यास-भगवान् का निरन्तर चिन्तन। ४. क्रिया-पंच महायज्ञ आदि। ५. कल्याण-सत्य, सरलता, दान दया आदि सात्विक गुण। ६. अनवसाद-लक्ष्य मार्ग में सदा उत्साह। ७. अनुद्धर्ष-सांसारिक सुख समृद्धि की प्राप्ति में हर्ष न होना।

रामावत सम्प्रदाय में भगवान् राम परम प्राप्य हैं। भगवान् की प्राप्ति का एक मात्र उपाय अनन्य भक्ति है। भगवान् ने स्वयं कहा है कि —

जातें वेगिद्रवों मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

श्री रामचरित मानस में भक्त का लक्षण इस प्रकार बताया गया है।

प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीति। निज-निज कर्म निरत श्रुति रीति।

एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा।

श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं।

संत चरन-पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा।

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा ॥

मम गुन गावत पुलक शरीरा। गद्‌गद् गिरा नयन बहु नीरा ॥

काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके ॥

वचन कर्म मन मोरि गति भजन करहि निःकाम।

तिनके हृदय कमल महु करहुँ सदा विसराम ॥

रामावत सम्प्रदाय में भगवान् राम-सीता के विग्रहावतार की उपासना की जाती है। इसलिए वह सगुणवादी है किन्तु उसका निर्गुणवाद से कोई विरोध नहीं है। रामावत सम्प्रदाय को सगुण-निर्गुणवाद के घेरे में बाँधकर निर्मुक्त प्रपत्तिवादी कह सकते हैं। यह बात गोस्वामी तुलसीदास जी के इस बात से स्पष्ट हो जाएगी –

अगुनहिं सगुनहिं नहि कछु भेदा।
वारि बीच इन गावहि वेदा ॥

उन्होंने अपने आराध्य रामका स्वरूप केवल एक दोहे में बता दिया है।

गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियतभिन्न न भिन्न।
वन्दौ सीताराम-पद जिनहि परम प्रिय खिन्न ॥

वैसे तो इसका प्रसार सारे भारत वर्ष में है।

हिन्दी-रचना

स्वामी रामानन्द जी की भी निर्गुणवादी रचनायें गुरु-ग्रंथ साहब में संगृहीत हैं। कुछ पद नीचे उद्धृत हैं –

१. मैं हरि बिना फूणां रखवारो। चित दे सुमिरौ जिरजनहारौ ॥
संकट ते हरि लेत उबारि। निसिदिन सुमिरौ नाम मुरारि ॥
नांव न केवल सबसे न्यारा। रटत अघट घट होइ उजारा ॥
रामानन्द यू कहै समुझाई। हरि सुमिरला जम लोकना जाई। —ग्यान गीता

२. बँधिया मूल, देखिया अस्थूल,
गगन गरजंत धुनि ध्यान लागा।
त्रिगुण रहित शील सन्तोष में,
श्री राम रक्षा के लिए ओंकार जागा॥ ३।६

३. ओम् सत्य अनादि पुरुष सत्य, सत्य गुरु।
संध्या तारिणी सर्व दुःख विदारिणी॥
सन्ध्या उच्चेरै, सर्व विघ्न टरै।
पिंड प्राण की रक्षा श्री राम निरंजन करै॥

४.कहा जाईये हो। थरि लाग्यो रंग। मेरौ चित चंचल मन भयो अपंग॥
जहां जाईये तहं जल पषान। पूरि रहे हरि सब समान।
वेद स्मृति सब मेल्हे जोई। उहा जाइंये हरि इहां न होई॥
एक बार मन भयो उमंग। घसि चौका चंदन चारि अंग॥
पूजत चाली ठाइँ-ठाइँ। सो ब्रह्म बातओ गुरु आपू माइँ॥
सत गुरु मैं बलीहारि तोर। सकल विकल भ्रम जारै मोर॥
रामानन्द रमै एक ब्रह्म। गुरु एक सबद काटै कोटि क्रम्म॥

इन पदों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि एक ही रामानन्द से एक ओर निर्गुणवादी और दूसरी ओर सगुणवादी धारा क्यों कर फूट पड़ी?

वस्तुतः भक्ति धारा के दोनों पहलू रामानन्द जी में थे। मूलतः दोनों में कोई अन्तर नहीं है। क्रिया पद्धति के कारण अन्तर व्यवहार रूप में दिखाई पड़ता है। स्वामी रामानन्द उस सागर की भाँति हैं। जिसका अन्तस्तल शान्त होता है किन्तु ऊपर-ऊपर जल अनेक धाराओं में प्रवाहित होता है। वे तत्व ज्ञानी थे और उन्हें सभी मतों का स्वरूपतः ज्ञान था। इसलिए वह किसी एक विषय में रूढ़िवादी और दुराग्रही न थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में विशिष्टाद्वैत के साथ-साथ अद्वैत और नाथ पंथ की भी झलक मिलती है। यह बात उनकी सगुणवादी परम्परा के स्वामी नरहर्यानन्द और गोस्वामी तुलसीदास में भी देखी जा सकती है। साथ ही साथ रैदास आदि निर्गुणवादी धारा के स्रोतों में भी सगुण वाद के प्रति आस्था का अभाव नहीं है। स्वामी जी को हठयोग का ज्ञान गुरु राघवानन्द से मिला था जिसके विषय में डा० श्री कृष्ण लाल जी कहते हैं :— राघवानन्द बाहर से रामानुज सम्प्रदाय में होते हुए भी वस्तुतः इन्हीं योगीनाथों के उत्तराधिकारी हैं और उनसे पायी हुई सामग्री को उन्होंने रामानन्द को दिया।

स्वामी रामानन्द युगावतार थे। उनमें उस युग की सारी प्रवृत्तियों की झांकी मिलती है जिसमें इनकी समन्वयी चेतना का दर्शन होता है। उस समन्वयी चेतना ने अनुभव किया, वह उसकी एक मात्र वाणी इस वाणी, में फूट पड़ी –

"सब तजि हरि भजि"।

कहा जाता है कि स्वामी रामानन्द राघवानन्द के शिष्य होने से पूर्व शंकराचार्य के अनुयायी थे। यही कारण है कि उनका मत विशिष्टाद्वैत की अपेक्षा अद्वैतवाद की ओर अधिक झुका है। यह बात उनकी तीसरी पीढ़ी के गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में विशेष रूप से प्रकट हुई है। स्वामी रामानन्द की भक्ति का व्यावहारिक पक्ष विशिष्टाद्वैतवादी था किन्तु ज्ञान पक्ष अद्वैतवादी। उन्होंने ज्ञान को अव्यावहारिक और दुरुह मानकर भक्ति पर अधिक बल दिया। उनकी भक्ति में भी उपासना सम्बन्धी क्रिया पर अधिक बल न देकर भाव पर अधिक बल दिया गया है। उनकी मान्यता रामानुज जैसी रूढ़ न होकर तरल और उनसे कई बातों में भिन्न है। स्वामी रामानन्द के विचार-भाव और उपासना-पद्धति का पूर्ण परिपाक तुलसी-साहित्य में हुआ है, यही कारण है कि तुलसी-साहित्य रामानन्दी वैरागी सम्प्रदाय में सर्वाधिक मान्य हुआ। इस सम्प्रदाय के राम सभी दैवी शक्तियों के अधिकारी, नियन्ता और आराध्य होते हुए भी उनसे अभिन्न और सर्वमय हैं। जीव और ब्रह्म में मौलिक रूप से भेद नहीं है। भेद भ्रम-ज्ञान पूर्वक भक्ति से दूर होता है।

★★★

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के सूत्रधार स्वामी रामानन्द

— प्रोफेसर वासुदेव सिंह

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास की अन्यतम घटना है। यह आंदोलन न केवल दो-तीन शताब्दियों तक सीमित रहा, अपितु इसने पूरे भारतीय जनमानस को कई शताब्दियों तक प्रभावित किया है और अब भी उसका प्रभाव अक्षुण्ण है। इस आंदोलन का न केदल धार्मिक महत्व है अपितु सांस्कृतिक आंर सामाजिक दृष्टि से भी इसने भारतीय जीवन को नई दिशा दी है।

इस भक्ति आंदोलन का एक अन्य वैशिष्ट्य भी है। यह आंदोलन केवल एक दो प्रदेशों तक ही सीमित नहीं रहा अपितु इसकी व्याप्ति पूरे देश में दिखाई पड़ती है। उत्तर भारत में विभिन्न साधना-सम्प्रदायों के रूप में इसका प्रचार हुआ है, आसाम के महापुरुषिया, बंगाल में सहजिया, उड़ीसा में पंचसखा और महाराष्ट्र में महानुभावी तथा बारकरी आदि सम्प्रदायों के रूप में इसका विकास हुआ। समग्र दक्षिण भारत में आलवार भक्तों और वैष्णव आचार्यों के प्रयास से भक्ति की सरिता प्रवाहित हो रही थी। इस आंदोलन की गंभीरता और व्यापकता को देखकर हतप्रभ और आश्चर्य-चकित होकर ग्रियर्सन ने लिखा था — "हम अपने को ऐसे धार्मिक आंदोलन के सामने पाते हैं जो सब आंदोलनों से कहीं विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है। यहाँ तक कि वह बौद्धधर्म के आंदोलन से भी अधिक विशाल है, क्योंकि इसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, बल्कि भावावेश का विषय हो गया था। यहाँ से हम साधना और प्रोमोल्लास के देश में आते हैं और ऐसी आत्माओं का साक्षात्कार करते हैं जो काशी के दिग्गज पण्डितों की परम्परा की नहीं, बल्कि जिनकी समता मध्य युग के युरोपियन भक्त बर्नर्ड आफ क्लेयर बाक्स, ए थामस कैम्पीन और सेंट थेरेसा से है।"

इस भक्ति आंदोलन के उद्गम के कारणों पर विद्वानों ने गहराई से विचार किया है और भिन्न भिन्न निष्कर्ष निकाले हैं। किसी ने इसे मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचार की प्रतिक्रिया माना है तो किसी ने ईसाश्यत की देन, — किसी को उसमें निराशा और हतदर्प जाति की कुंठाग्रस्त और अन्तर्मुखी चेतना की अभिव्यक्ति दिखाई दी तो किसी को वह तत्कालीन परिस्थितियों और सामाजिक असंतोष की उपज प्रतीत हुआ। किसी ने उसके मूल में यौगिक और तान्त्रिक प्रवृत्तियों का प्रसार देखा और किसी ने लोकमत के शास्त्रीय आवरण की प्रतिक्रिया। वस्तुतः इनमें से किसी भी एक कारण को भक्ति काव्य का उत्स मानना अतिव्याप्ति मात्र होगी।

सामान्यतः भारत आदिकाल से ही धर्मप्रधान देश रहा है। सहस्राब्दियों पूर्व से ही तत्वज्ञ ऋषियों द्वारा आत्मा-परमात्मा, मोक्ष, सृष्टि, माया आदि के सम्बन्ध में गूढ़ चिन्तन होता रहा है। उपनिषद् उसी के कोश हैं।

उसके बाद अध्यात्म की यह धारा अविच्छिन्न रूप से परवर्ती शताब्दियों में प्रवर्तमान रही है। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि मध्य कालीन धार्मिक आंदोलन को अधिक तीव्र और गतिशील बनाने में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों ने भी योगदान किया है तथा इसका अधिक व्यापक और नया स्वरूप प्रदान करने में दक्षिण के आचार्यों का विशेष योगदान रहा है। सामान्यतः इस आन्दोलन के प्रवर्तकों में दक्षिण भारत के रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, बल्लभाचार्य आदि का नाम लिया जाता है। किन्तु उत्तर भारत में विशेष रूप से हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में भक्ति की महिमा का प्रसार करने में स्वामी रामानन्द का योगदान अतुलनीय है। एक प्रकार से वह हिन्दी भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सूत्रधार या प्रवर्तक हैं । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि "इनके चरित्रबल तथा असाधारण व्यक्तित्व के कारण इनके समकालीन हिन्दू समाज का वातावरण इनसे प्रभावित हो उठा और सर्वत्र एक प्रकार की क्रांति की लहर फैल गई। ये अपने समय के एक प्रभावशाली पथ प्रदर्शक के रूप में दीख पड़ते हैं। उस युग के प्रायः प्रत्येक विशिष्ट सुधारक का इनसे किसी न किसी प्रकार से आभारी होना आज तक स्वीकार किया जाता है। इस बात की चेष्टा की जाती आई है कि अमुक व्यक्ति के साथ इनका सम्बन्ध अमुक रूप में सिद्ध किया जा सके। वास्तव में जिस भक्ति-साधना का प्रचार हम आज उत्तरी भारत में देख रहे हैं उसके प्रधान प्रवर्तक रामानंद ही थे और इन्हीं की प्रेरणा से उसे वर्तमान रूप मिला है।"[१]

ऊपर जिन आचार्यों का उल्लेख किया गया है उनमें रामानुजाचार्य का विशिष्ट स्थान है। वह श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखा। उनका दर्शन विशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है। स्वामी रामानन्द उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार किया। इस तथ्य को कबीर ने इन शब्दों में स्वीकार किया है –

भक्ती द्रविड़ ऊपजी लाए रामानंद।
परगय किया कबीर ने सात दीप नवखंड॥

रामानन्द का जन्म सं० १३५६ में माना जाता है। इनके जन्म स्थान को लेकर विद्वानों में मतभेद है। भक्त-माल के टीकाकार प्रियादास भंडारकर और ग्रियर्सन इनका जन्म स्थान प्रयाग मानते हैं। उनके अनुसार ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा इनकी माता का नाम सुशीला देवी और पिता का नाम पुण्य सदन शर्मा था। किन्तु श्री फर्युहर और मेकालिफ इन्हें दाक्षिणात्य सिद्ध करते हैं। मेकालिफ के अनुसार इनका जन्म मैसूर के मैलकोट नामक स्थान में हुआ था। लेकिन अधिकांश विद्वान् इनका जन्म-स्थान प्रयाग ही मानते हैं।

स्वामी रामानन्द का जन्म क्षेत्र कहीं भी रहा हो, उनका कर्म-क्षेत्र काशी था। उनकी शिक्षा-दीक्षा काशी में ही हुई थी और यहीं पर वह स्वामी राघवानन्द से दीक्षित हुए थे। कहा जाता है कि स्वामी राघवानन्द योग विद्या के अधिकारी संत थे तथा रामानन्द को अल्पायु होने से बचा लिया था तथा योग और भक्ति का उपदेश दिया था। १७वीं शताब्दी के संत मिही लाल ने अपनी रचना "गुरु प्रथा की" में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है –

श्री अवधूत वेष को धारे, राघवानंद सोई।
तिनके रामानन्द जग जाने, कलि कल्याण भई॥ (डा० बड़थ्वाल – योग प्रवाह – पृ० २–३)

---

[१] उत्तरी भारत की संत परम्परा - पृ० २२४

रामानुजाचार्य सामाजिक दृष्टि से वर्ण – व्यवस्था के पोषक थे, यद्यपि धार्मिक क्षेत्र में वह सभी व्यक्तियों को, (वे चाहे जिस वर्ण या वर्ग के हों) ईश्वर की उपासना का अधिकारी मानते थे। राघवाचार्य भी आचार-विचार में रामानुज के अनुयायी थे। रामानन्द का व्यक्तित्व उदार था। वह किसी भी प्रकार के वैषम्य को स्वीकार नहीं करते थे । अतः कतिपय सैद्धान्तिक प्रश्नों पर मतभेद हो जाने के कारण इन्होंने "श्री सम्प्रदाय" से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और अपना स्वतन्त्र मत चलाया जिसे "रामावत अथवा रामानन्दी सम्प्रदाय" कहा जाता है । इस सम्प्रदाय के अनेक अखाड़े व मठ हैं तथा सम्प्रदाय में दीक्षित साधु "वैरागी या आवधूत" कहलाते हैं, जो भक्ति के प्रचार-प्रसार में लगे रहते हैं।

मध्यकालीन भक्ति के उन्नयन में स्वामी रामानन्द का योगदान कई दृष्टियों से उल्लेख्य है। इनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य है– भक्ति का द्वार सभी के लिए खोल देना। उन्होंने कहा कि –

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई॥

उनकी इस उदारता से प्रभावित होकर विभिन्न जातियों के लोग इनके शिष्य हो गए। इन शिष्यों में कई पिछड़ी जाति के थे। रूपकला द्वारा विरचित "भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद" के अनुसार इनके बारह शिष्य थे। उनके नाम हैं– सेन, कबीर, पीपा, रैदास, धना, अनन्तानंद, सुरसुरानंद, योगानंद, सुखानंद, भवानंद, नरहर्यानंद तथा पद्मावती। इनमें से धना जाट, सेन नाईं, रैदास चमार तथा कबीर जुलाहा नामक पिछड़ी जाति के थे। शेष उच्चवर्ग के थे । इस प्रकार उन्होंने न केवल सैद्धान्तिक रूप से समभाव का प्रचार किया, अपितु पिछड़ी जातियों के लोगों को अपना शिष्य बनाकर भक्ति-आंदोलन को नया आयाम दिया। यही नहीं पद्मावती नामक महिला को भी शिष्या बनाकर उन्होंने भक्ति के मार्ग में जाति, धर्म, लिंग, भेद आदि सभी अवरोधक तत्वों को समाप्त कर दिया। "सुरसरी" नामक एक अन्य महिला भी इनकी शिष्या बताई जाती है।

वस्तुतः मध्यकालीन आंदोलन अपने पूर्ववर्ती धार्मिक साधना, सम्प्रदायों से कई दृष्टियों से भिन्न है। वैदिक भक्ति कर्मकाण्ड प्रधान थी तथा उसका द्वार अछूतों के लिए बन्द था। स्त्री और शूद्र उस भक्ति के अधिकारी नहीं थे। किन्तु मध्यकालीन भक्ति का आधार था – समता और बंधुत्व की भावना। वैसे इस नए सिद्धान्त के बीज आलवार भक्तों और महाराष्ट्र के संतों में भी पाए जाते है। आलवरों में कई भक्त पिछड़ी जाति के थे तथा महाराष्ट्र के संतों में गोरा और राका कुम्हार, सांवता माली, नरहरि सोनार, जोगा तेली, शामा चूड़ी वाला, बांका और चोखा महार तथा कान्होपात्रा वेश्या थी। किन्तु १४वीं – १५वीं शताब्दी की भारतीय सामाजिक स्थिति बड़ी विषम हो गई थी। मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के बाद हिन्दुओं में जाति-बंधन अधिक कठोर हो गया था। उच्चवर्ग रक्षा की भावना से संकीर्णता और पाषण्ड से घिरता जा रहा था तथा मुसलमानों से सताए जाने के कारण वह अपने कमजोर निम्नवर्ग के प्रति अधिक निमर्म हो गया था। इस प्रकार निम्न वर्ग पर अत्याचार बढ़ गए थे।

स्वामी रामानन्द इस सामाजिक वैषम्य से क्षुब्ध थे। वे सच्चे अर्थों में मानवतावादी संत थे तथा जन्म के आधार पर किसी भी प्रकार के वैषम्य के कट्टर विरोधी थे। अतः उन्होंने सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से उपेक्षित मनुष्यों के उद्धार और कल्याण का बीड़ा उठाया। उनकी दृष्टि में भक्ति वह साधन थी जिसके माध्यम से शोषित व पीड़ित मानवता का उद्धार किया जा सकता था। इसी महदुद्देश्य से प्रेरित हो उन्होंने समता का

प्रचार किया, सभी प्राणियों को एक ईश्वर की संतान बताया तथा उसकी उपासना का सभी को अधिकारी बताया।

रामानन्द की दूसरी देन है — "राम" नाम की महिमा का उद्घोष। श्री सम्प्रदाय में "नारायण" तथा विष्णु की उपासना प्रचलित थी। रामानन्द ने "राम" को अपना उपास्य बनाया। उन्होंने यह भी कहा कि "राम" निर्गुण और निराकार भी हैं और सगुण-साकार भी। उनकी उपासना किसी भी रूप में की जाय, यदि भक्त का भाव सच्चा है तो उसकी प्राप्ति हो सकती है। रामानन्द के इन उदार विचारों के परिणाम स्वरूप "राम" भक्ति के तीन स्वरूप विकसित हुए।

कबीर ने "राम" के निर्गुण — निराकार रूप को स्वीकार किया। कबीर का ब्रह्म घट-घट व्यापी है, अखिल ब्रह्माण्ड में उसकी सत्ता विद्यमान है, वह न तो अवतार लेता है और न मंदिर-मस्जिद तक ही सीमित है। अतः वह हमारे भीतर विद्यमान है, उसको खोजने के लिए मंदिर-मस्जिद जाने की आवश्यकता नहीं, जप-माला-छापा-तिलक लगाना निरर्थक है। सच्चे हृदय से, शुद्ध चित्त से उससे प्रेम करने से उसकी प्राप्ति संभव है। यद्यपि उसे किसी भी नाम से पुकारा जाय, कोई अंतर नहीं पड़ता। किन्तु "राम" नाम ही सर्वोपरि है। कबीर की इस मान्यता का परवर्ती हिन्दी संत कवियों द्वारा व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार किया गया।

जैसा कि कहा गया है स्वामी रामानन्द ने राघवानंद से योग की शिक्षा प्राप्त की थी। श्री राघवानन्द कृत — "सिद्धान्त पंचमात्रा" से पता चलता है। उनके साधनामार्ग में योग और प्रेम का समन्वय था। [१] अर्थात् उसमें एक ओर हठयोग की साधना प्रणाली प्रचलित थी, दूसरी ओर वैष्णव भक्तों द्वारा स्वीकृत छापा, माला, तिलक आदि का भी प्रचलन था। श्री रामानन्द ने इसी योग परक राम भक्ति का प्रचार किया। रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द भी योगपरक भक्ति को स्वीकारते थे, किन्तु इस साधना-पद्धति का विशेष प्रचार अनन्तानन्द के भी शिष्य श्री कृष्णदास पयहारी द्वारा हुआ। पयहारी जी राजस्थान के निवासी दाधीच्य ब्राह्मण थे। जयपुर के कुछ ही दूर आमेर के निकट गलता नामक स्थान में उनकी गद्दी थी। उनकी योगसिद्धि के सम्बन्ध में कई चमत्कारपूर्ण उक्तियां भी प्रसिद्ध हैं। "राजयोग" इनका एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ है। जिस प्रकार नाथ योगी कुण्डलिनी शक्ति के जागरण द्वारा सहस्रार में परम ज्योति के दर्शन की बात करते हैं, उसी प्रकार पयहारी जी ने उसी प्रक्रिया से अपने भीतर सीताराम की छवि के दर्शन की बात कही है —

आगे सुपताका उड़त देखि। तहँ सेत सत्र छाया सुपेखि॥

आसन सफेद तहँ अरून भूमि। चहुँ दिसि प्रकास नहिं बरन थूमि॥

को बरनि सकति प्रभु को सरूप। रवि कोटि चंद छवि से अनूप॥

नभ नील मेघ दुति स्याम गात। लखि पीत बसन विद्युत लजात॥

इमि बसत राम निज सहित वाम। सब संत कहत जेहि परमधाम॥[२]

---

१. डा० बडथ्वाल — योग प्रवाह — पृ० २—३

२. डा० भगवती प्रसाद सिंह — राम काव्य, अनुसंधान एवं अनुचिन्तन, पृ० २८

पयहारी जी के बाद उनके जिन शिष्यों ने योग मूलक रामभक्ति का प्रचार किया उनमें कील्हदास प्रमुख थे । ये गलता की गद्दी के आचार्य थे।

स्वामी रामानन्द यह मानते थे कि राम के सगुण-निगुण दोनों रूप हैं। हम चाहे जिस रूप में उनकी उपासना कर सकते हैं। कबीर ने "राम" के निर्गुण रूप को अपनाया और तुलसीदास ने सगुण रूप को। यद्यपि तुलसीदास प्रत्यक्ष रूप से रामानन्द के शिष्य नहीं थे तथापि रामानुज के विशिष्टाद्वैत का इन पर गहरा प्रभाव था। उन्होंने दशरथ पुत्र राम की लैकिक लीलाओं का रामचरितमानस एवं अन्य छः राम काव्यों के माध्यम से ऐसी सरस वाणी व सरल लोकभाषा में गान किया कि राम कथा जन-जन की कण्ठहार हो गई। उनके द्वारा राम के चरित्र और लीलाओं को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई, उसका प्रभाव आज भी अक्षुण्ण है। वस्तुतः गोस्वामी तुलसी दास भारतीय संस्कृति के अमर रक्षक एवं उन्नायक हैं। इस प्रकार स्वामी रामानन्द के प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रभाव से "राम" भारतीय जीवन के अंश बन गए। जन्म से लेकर मृत्यु तक भारतीय समाज राममय हो गया। यह स्वामी रामानन्द की सबसे बड़ी देन है।

स्वामी रामानन्द का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है – लोकभाषा हिन्दी की स्वीकृति। इनके पूर्व रामानुज, निम्बार्क, माधव, विष्णु स्वामी आदि जितने आचार्य हुए थे, सभी ने संस्कृत में अपने सिद्धान्तों का निरूपण किया था। यद्यपि स्वामी रामानंद ने 'वैष्णवमताब्ज भास्कर' तथा "श्रीरामार्चन पद्धति" की रचना संस्कृत में की, किन्तु उनकी अधिकांश रचनाएं हिन्दी में हैं। उनके नाम हैं – राम रक्षा स्तौत्र, सिद्धान्त पटल, ज्ञान लीला, ज्ञान तिलक तथा योग चिन्तामणि। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने "रामानन्द की हिन्दी रचनाएं" नाम से उनका सम्पादन किया है। सिद्धान्त पटल में "सत्य निरंतर तारक, विभूति पलटन, लँगोटी, आड़बंद, तुलसी, रामबीज आदि कई विषयों के मन्त्र हैं। केवल यज्ञोपवीत का मन्त्र संस्कृत में है, अन्य सब सधुक्कड़ी हिन्दी में। [१] उन्होंने हनुमान की स्तुति में एक कविता लिखी थी तथा रज्जबदास के संग्रह ग्रंथ "सर्वांगी" में उनका निम्नलिखित पद पाया जाता है –

हरि बिन जन्म वृथा खोयो रे।

कहा भयो अति मान बढ़ाई, धन मद अंध मति सोयो रे॥

अति उतंग तरू देखि सुहायो, सैवल कुसुम सुवा सेयो रे।

सोई फल पुत्र-कलत्र विषै-सुख अंति सीस धुनि-धुनि रोयो रे॥

सुमिरन भजन साथ की संगति, भ्रंतरि मन मैल न धोयो रे।

रामानंद रतन जम त्रासै, श्रीपति पद काहे न जोयो रे।

इस प्रकार स्वामी रामानन्द ने देववाणी संस्कृत का मोह त्याग कर लोक-वाणी हिन्दी को अपनाया। वस्तुतः सच्चा लोकनायक यही होता है जो अपनी बात लोक भाषा में कहे। गौतम बुद्ध ने भी तत्कालीन

---

[१] डा० बडथ्वाल – हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ३७

लोकभाषा "पालि" में ही अपना उपदेश दिया था और संस्कृत के अधिकारी विद्वान् होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास ने लोकभाषा में ही राम कथा कही।

स्वामी रामानन्द द्वारा हिन्दी भाषा अपनाए जाने का परिणाम यह हुआ कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन लोकोन्मुखी हो गया। उनके सिद्धान्त घर-घर तक पहुँचने लगे और समाज के सभी वर्ग, विशेष रूप से पिछड़ी जातियों के लोग उनके प्रति आकृष्ट होने लगे। उनके द्वादश शिष्यों ने इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए जनभाषा में भगवत् महिमा का गान किया। इससे एक ओर हिन्दी को अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त होने का मार्ग प्रशस्त हुआ, दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हुआ।

रामानन्द स्वयं एक भ्रमणशील व्यक्ति थे। उन्होंने देश के सुदूरवर्ती क्षेत्रों की यात्रा करके अपने सिद्धान्तों और राम भक्ति का प्रचार किया। कहा जाता है कि आबू और जूनागढ़ की पहाड़ियों पर अब भी इनके चरण-चिह्न पाए जाते हैं तथा आबू में उनकी एक गुफा भी विद्यमान है।

उनके द्वारा प्रवर्तित "रामावत सम्प्रदाय" ने भी लोक-कल्याण के अनेक कार्य किए। इसके अंतर्गत अनेक मठ और अखाड़े स्थापित हुए, जिसमें दीक्षित वैरागियों ने भक्ति का प्रचार न केवल समूचे उत्तर भारत में किया अपितु दक्षिण भारत में भी उसका प्रभाव बढ़ा। इन मठों और अखाड़ों में विभिन्न देवी-देवताओं विशेष रूप से "सीताराम" के मन्दिर बनवाए गए तथा कहीं-कहीं धर्मशालाओं की भी स्थापना की गई। उनके माध्यम से राम भक्ति के प्रचार में अभूतपूर्व सफलता मिली। इस सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्तियों के सम्बन्ध में श्रीपरशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि "इन सब के लिए मूल मंत्र केवल "राम" व "सीताराम" है और इनके इष्टदेव श्री रामचन्द्र हैं जिन्होंने ब्रह्म की दशा में निर्गुण और निराकार होते हुए भी भक्तों के लिए तथा विश्व का संकट दूर करने की इच्छा से नर देह धारण किया था।"[१]

रामानंद के तपोनिष्ठ जीवन तथा लोकोपकारी भावना का तत्कालीन समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा था। समकालीन संतों तथा उनके शिष्यों ने जिस सम्मान भाव से उनका स्मरण किया है, उससे स्पष्ट है कि वह अपने जीवन काल में ही समाज के बहुत बड़े भाग के श्रद्धा-भाजन बन गए थे। ,राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हितहरिवंश के शिष्य व्यास जी ने कह है —

साँचों साधु जु रामानंद।

जिन हरि जू सो हित करि जान्यो, और जानि दुख दंद॥

रामानंद के शिष्य तथा अनुयायी उन्हें साक्षात् राम का ही अवतार मानते थे। कबीर ने कहा था —

आपन आस किएबहुतेरा। काहु न मरम पाव हरि केरा॥

×× ×× ××

रामानंद रामरत भाते। कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके॥

---

[१] उत्तरी भारत की संत परम्परा — पृ० २३२

लगभग इन्हीं शब्दों में भक्तमाल के रचयिता नाभादास ने उनका स्मरण किया है –

श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो

सांस्कृतिक धार्मिक क्षेत्र में उनका यह महत्त्व आज भी विद्यमान है। वस्तुतः स्वामी रामानन्द रामभक्ति के अनन्य प्रचारक के रूप में, समता, बन्धुत्व, भावना एवं मानवतावाद के प्रतिष्ठिापक के रूप में तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नायक एवं भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना के उद्भावक के रूप में सदैव स्मरण किए जायेंगे।

★★★

भारत की सांस्कृतिक क्रांति में स्वामी रामानंद जी का योगदान

— डॉ० रामचन्द्र सिंह,

विद्या-वयोवृद्ध कुमारिल भट्ट और आचार्य शंकर के काल से वैदिक सभ्यता और संस्कृतिको नवजीवन प्राप्त होना प्रारंभ हुआ। उस समय की भारतीय जनता में बौद्ध, जैन और कर्मकाण्डी वैदिक समाज प्रमुखता के साथ थे। बैद्ध लोग प्रायः वाममार्गी हो गये थे। पंच "म" कार का उन्मत्तवद् उपभोग करना ही इन वाममार्गियों का मुख्य कर्त्तव्य रह गया था। कुछ बौद्ध महात्मा जो वस्तुतः सद्धर्म निष्ठ रह गये थे, वे भी स्वधर्म के श्रवण प्रधान होने के कारण, जनता के व्यावहारिक जीवन की चिंता से परे रहते थे। इस तरह उभयविध बौद्ध तात्कालिक लोक समाज के लिये सर्वथा अप्रासंगिक हो गये थे। जैन सम्प्रदाय भी मुख्यतः अहिंसाधर्मी और विरक्त साधु-प्रधान होने के कारण लोकाचार के अनुरूप नहीं था। साथ ही साथ पाखंड और पंचमकार मूलक अधःपतन तो न्यूनाधिक मात्रा में सभी संप्रदायों का हो गया था। इधर वैदिक यज्ञादि कारक कर्मकाण्डी समाज भी निरीह पशु-हिंसामय आसुर धर्म का अनुयायी, घोर पाखंडी और विलासी हो गया था। लेकिन महाज्ञानी कुमारिल भट्ट ने वैदिकों में शिक्षा और संस्कार की नयी अलख जगायी तथा बहुत सी पाखंडमय कुरीतियों में सुधार किया। वैदिक समाज में नयी चेतना उत्पन्न हुयी। फिर भी, आठवीं शताब्दि में भारत पर जो बाहरी आक्रमण प्रारंभ हो चुके थे, उसके समाधान की शक्ति कुमारिल भट्ट के नवप्रवर्तित वैदिक समाज में नहीं थी। क्योंकि कुमारिल संप्रदाय कट्टर जातिवादी और अस्पृश्यता का समर्थक था। अतः एक ऐसी क्रांति की उस समय आवश्यकता थी, जो समुचित सुधार प्रस्तुत कर के हिन्दू-समाज को अपने योग-क्षेम के योग्य बना देती। उसी क्रांति का आह्वान करने के लिये शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ था। आचार्य शंकर विलक्षण-प्रतिभा ज्ञान संपन्न सूक्ष्म अन्वीक्षक थे। उन्होंने व्यावहारिक जीवन के लिये "भाट्टनय" को स्वीकार कर लिया। थोड़े से परिवर्तन के साथ और रूपांतर के साथ मूलभूत प्राचीन बौद्ध सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत, सदाचार और भिक्षु नियमादि को अग्रसारित होने दिया। ये सभी काम उन्होंने लोकसंग्रह की वृहत्तर भावना के अन्तर्गत किया, ताकि विदेशी आक्रमणों से भारत और भारतीय समाज बचाया जा सके। इसी कारण आचार्य शंकर ने जैनों, बौद्धों और वैदेशिक विधर्मियों को भी वैदिक धर्मावलम्बी बनाया। राष्ट्रीय एकता का यह महान् कार्य था। आचार्य शंकर के ही कारण उस समय भारत में बसे शक, हूण, यवन और बौद्ध आदि लोग चातुर्वर्ण्य में सम्मिलित हो गये। आचार्य शंकर ने सिंधु, गांधार, वाहलीक, काम्वोज और दरद आदि देशों की यात्रा की। उन्होंने वहाँ के विधर्मियों को वैदिक धर्म में दीक्षित किया। आचार्य शंकर की यह महान् सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति थी।

लेकिन आचार्य शंकर के कैलाशवासी होने के ३ सौ वर्षों के पश्चात् भारतीय समाज में पुनः विखराव उपस्थित हुआ । छूआछूत, ऊंच-नीच और पाखंड का प्रभुत्व समाज में स्थापित हुआ । यद्यपि, अन्य ईश-विभूतियों की तरह आचार्य शंकर ने भी धर्म-संस्थापनार्थ दुष्ट-निग्रह और शिष्टानुग्रह के लिए ही अवतार लिया था। धर्म रक्षार्थ उन्होंने पुनः पृथ्वी पर आने की भी बात कही थी । वे संसार से अरक्त और विरक्त संन्यासीहोने से बढ़ कर एक महत्तम कर्म योगी थे ।

दुर्भाग्यवश आचार्य शंकर द्वारा प्रवर्तित सामाजिक क्रांति स्थायी नहीं हो सकी । भारत के दुर्भाग्य से सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्तरों पर आंतरिक विखराव बढ़ता गया । साथ ही साथ विदेशी आक्रमण और विदेशी दबाव में वृद्धि होती गयी । ऐसे वातारवण में धर्म की रक्षा और लोकसंग्रह तथा लोककल्याण के महान् कार्य के लिये आचार्य शंकर-प्रवर्तित अद्वैतवाद के स्थान पर विशिष्टाद्वैतवाद का प्रादुर्भाव स्वामी रामानुजाचार्य के द्वारा ११वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में हुआ । इस सम्प्रदाय ने भक्ति-आंदोलन की नींव भारत में रखी । भक्ति आंदोलन ने भारत के लाखों भक्तों के हृदय में भगवान् और संसार तथा जीवन के प्रति आशा का नव संचार किया ।

आचार्य रामानंद का प्रादुर्भाव

भारत की देव-भूमि पर शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों के अतिरिक्त अनेक देवविभूतियां अवतरित हुयीं । १४वीं शताब्दि के युग के सर्वश्रेष्ठ संत, भक्त, समाज सुधारक और आध्यात्मिक आचार्य के रूप में प्रयाग के आचार्य रामानंद जी हुये । आचार्य रामानंद ने गोपियों से घिरे कृष्ण के बजाय राम को अपना इष्ट स्वीकार किया। उन्होंने संस्कृत भाषा के स्थान पर हिन्दी भाषा में उपदेश दिया । तथाकथित नीच कहलाने वाली जातियों के लोगों, स्त्रियों और मुसलमानों को भी शिष्य बनाया । आर्यावर्त की संस्कृति और उसकी अखंडता के लिये तथा आर्यावर्त की सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिये मध्ययुग के घोर अंधकार के काल में किसी दूसरे युगद्रष्टा के द्वारा उतना नहीं किया गया जितना कि आचार्य रामानन्द ने व्यावहारिक रूप में कर दिखाया ।

आचार्य रामानंद ने काशी में अपने पीठ की स्थापना की । उन्होंने कई लाख भक्तों को मंत्र-दीक्षित किया । उनके बारह भक्त विशेष रूप से प्रसिद्ध हुये । इन बारहों शिष्य-भक्तों को अवधूत कहा जाता था । मुक्त प्राणी को अवधूत कहते हैं । इन अवधूतों में संत कबीर का स्थान विशेष रूप से उल्लेख्य है । संत कबीर मुस्लिम जुलाहा थे । ज्ञात है कि संत कबीर विश्व-प्रसिद्ध संत के रूप में याद किये जाते हैं । 'प्रसंग पारिजात' नामक एक ग्रंथ में उल्लेख है कि "ध्रुव पद" प्राप्त पौराणिक ध्रुव की इच्छा एक बार पृथ्वी पर अवतरित होने की हुयी । ध्रुव की इच्छा को जान कर सप्तर्षियों ने पृथ्वी पर आकर आचार्य रामानंद से अनुकूल परिवेश प्राप्ति हेतु अनुरोध किया । आचार्य द्वारा प्रदर्शित कमल के ऊपर कबीर के रूप में ध्रुव अवतरित हुये । आगे उसी पुस्तक के अनुसार वर्णन है कि कबीर का पुनः अवतरण मोहन दास करमचंद गांधी के रूप में होगा । यद्यपि उक्त पुस्तक के धारकों के अनुसार वर्णन में मात्र 'मोहन' शब्द है, लेकिन मोहन को 'राम' और 'चर्खा' से अटूट प्रेम होगा । जो भी हो । लेकिन, "प्रसंग पारिजात", जो देवनागरी लिपि से भिन्न लिपि में लिखी गयी है और उसकी प्राचीनता मध्य युग से संबंधित है; के अनुसार भी १४वीं शताब्दि से इस २०वीं शताब्दि तक आचार्य रामानंद से बढ़ कर मानव कल्याणकर्ता एवं समाज सुधारक दूसरा व्यक्ति पैदा नहीं हुआ । क्योंकि कबीर और महात्मा गांधी के अवतरण तथा उनके द्वारा किये गये कार्यों के बीच तथा प्रस्फुटन आचार्य रामानंद जी ही थे ।

आचार्य जी के दूसरे अवधूत का नाम सेना था। सेना जाति का नाई था। मुसलमान के रूपों में उपर्युक्त अवधूतों की ख्याति देश-देशांतर तक व्याप्त थी। सात सवर्ण अवधूत थे। आचार्य ने पुरुष वर्ग के १० अवधूतों के अतिरिक्त दो महिला अवधूतों को भी आगे बढ़ाया॥ इनमें एक महिला अवधूत का नाम 'पद्मावती' था और दूसरी महिला अवधूत का नाम 'सुरसरी' था। स्पष्ट है कि जातिभेद, धर्मभेद और लिंगभेद से पूर्ण-रूपेण मुक्त होकर आचार्य ने उपदेश दिया। समाज के दबे हुये और दुत्कारे गये व्यक्तियों, जातियों एवं अस्पृश्यों को भी 'अवधूत' होने का अवसर आचार्य ने प्रदान किया। आज के युग में यद्यपि ये बातें संदर्भयुक्त प्रतीत होती हैं; लेकिन आज से ६०० वर्ष पूर्व इस प्रकार के कार्यों की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी।

कबीर के उपदेश और महात्मा गांधी के कार्यों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण के पश्चात् हम पाते हैं कि आचार्य रामानंद के व्यक्तित्व और कृतित्व का स्फुरण उन दोनों में समाहित था। संदर्भ आज भी सार-तत्व के रूप में विराजमान है। इसी क्रम में यदि 'सिख' धर्म के प्रवर्तक नानक देव पर हम विचार करें तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि आचार्य जी के अवतरण के ५६ वर्ष के पश्चात् नानकदेव जी अवतरित हुये। यह स्वीकृत सत्य है कि नानक देव जी पर आचार्य के शिष्य संत कबीर का गहरा प्रभाव पड़ा था। नानक देवजी ने भी आचार्य जी की तरह स्थानीय भाषा में उपदेश दिया तथा जाति और धर्म के बंधनों से ऊपर उठकर शिष्यों की भर्ती की।

स्पष्ट है कि रामानंदी वैष्णव सबसे बड़े समाज सुधारक हुये हैं। वे लोग जाति-भेद का विचार किये बिना सभी जातियों के लोगों को शिष्य बनाते थे। वैष्णव हुये सभी जातियों की एक ही जाति मानी जाती थी और सब का एक ही "अच्युत गोत्र" हो जाता था। किसी वैरागी वैष्णव की कुल-जाति पूछने के अवसर आने पर आपस में यों पूछा जाता था कि "आप किस दूध के बालक हैं।" रामननंदी संप्रदाय प्रारंभ से ही संकीर्णता रहित था। इसी कारण इस संप्रदाय का प्रभाव जागतिक था।

ऐतिहासिक तथ्य तो यह है कि बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज, रामानंद, कबीर और नानक प्रभृति सभी सत्पथ प्रवर्तकाचार्य और इनके संप्रदाय समाज सुधार के लिये अपने-अपने समय पर आविर्भूत हुये हैं। वैदिक आर्य धर्म या सनातन आर्य-मानव धर्म के ही ये पुनरुद्धारक हुये हैं। जब-जब सनातन धर्म पर असुरों, दस्युओं, अनार्यों, कौलों, कापालिकों, वामाचारियों, वज्रयानियों, अघोर पंथियों या कुमार्गियों द्वारा विकृत, मिश्रित और दूषित प्रहार किंया गया तब-तब विराट् पुरुष ने समयानुकूल आचार्यों और संप्रदायों को उत्पन्न किया। भविष्य में भी ऐसा ही होता रहेगा। भगवान् कृष्ण का यह वचन –

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृतां, धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

उसी सत्य का सत्यापन है। स्पष्ट है कि शंकर, रामानुज और रामानंद तो प्रत्यक्ष ही वैदिक-धर्मोद्धारक और हिंदू-धर्माचार्य माने जाते हैं। कबीर और नानक हिन्दू-धर्म के ही विशेष अंगों के प्रवर्तक, सुधारक और समाज रक्षक समझे जाते हैं।

आचार्य नामानंद जी का श्री संप्रदाय

संपूर्ण जगत् के जड़ और चेतन में आचार्य जी सिया-राम की सत्ता को स्वीकार करते थे। पर ब्रह्म परमेश्वर और जगत् जननी महामाया के सानिध्य में जीव को श्रीसंपन्न होना ही चाहिये। प्रारब्धवश जीव

अनेकानेक भटकावों के द्वारा परमेश्वर तथा जगत् जननी के सानिध्य से वंचित हो जाता है । अध्यात्म तथा तपश्चर्या एवं कर्म-कौशल के बल पर श्री संप्रदाय के निर्देशन में जीव को पुनः सान्निध्य प्राप्त हो जाता है । दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से जीव को मुक्ति प्राप्त हो जाती है । इस प्रकार श्री संप्रदाय से तापत्रय की समाप्ति हो जाती है ।

आज राजनीतिक व्यवस्थाओं का संकल्प बन गया है कि गरीबी निवारण के कार्यों द्वारा मानव कल्याण अग्रसारित हों । साम्यवादी, गैर साम्यवादी और मिश्रित अर्थ व्यवस्थाओं के सभी देशों ने अपने-अपने ढंग से गरीबी हटाओ और संपन्नता बढ़ाओं के कार्यों को प्रारंभ कर रखा है । लेकिन ये सभी कार्य एकांगी प्रमाणित हो रहे हैं । अपनी ७१ वर्षीय साधना के बाद सोवियत संघ को नये सिरे से पेरिस्त्रोइका (पुनर् रचना) तथा ग्लासनोस्ट (खुलापन) का सहारा लेना पड़ रहा है । आचार्य रामनंद जी का ६०० वर्ष पूर्व का प्रवर्तित श्री संप्रदाय तापत्रय निवारक है । यह संप्रदाय साबूत है, कालजयी, सार्वभौम व जागतिक है ।

★★★

वैष्णवाचार्य और स्वामी रामानन्दाचार्य

– डॉ० श्यामदास
श्री नरसिंह मंदिर जबलपुर (म०प्र०)

वर्तमान भारतीय समाज की संरचना के सूत्रपात का श्रेय आचार्य रामानंद को है। वे मात्र धर्माचार्य ही नहीं, अपितु समाज सुधारक और राष्ट्रीय एकता के सजग प्रहरी भी थे। उनका प्रादुर्भाव आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व तीर्थ-राज प्रयाग में हुआ। उस समय देश पराधीन था। हिन्दू अपने ही घर में पराये हो गये थे। मुस्लिम शासकों एवं कट्टरपंथी मुल्लाओं का आतंक हिन्दू जीवन को दूभर बना रहा था। "जजिया कर" के नाम पर हिन्दू समाज का शोषण हो रहा था। उन्हें शासकीय पदों में कोई पद उपलब्ध नहीं था। उनकी बहू-बेटियों की इज्जत सुरक्षित नहीं थी। इस देश के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को निगल जाने के लिये इस्लामिक प्रवृत्ति मुंह बाये खड़ी थी। जाति-वर्ग-भेद के आधार पर हिन्दुओं को तोड़ने का षडयंत्र किया जा रहा था। दूसरी ओर हिन्दू राजा विलासी एवं खुशामदप्रिय हो गये थे। वे सब अपनी झूठी प्रशंसा सुनने के आदी हो गये थे । स्त्रियाँ मात्र विलासिता की वस्तु बन कर रह गईं थीं। उनके सारे सामाजिक-आर्थिक अधिकार छीन कर भवन की चहार दिवारी में परदे के भीतर बंद कर दिये गये, जैसा कि रीति काल के साहित्य से ज्ञात होता है।

विधि की विडम्बना ही कहना चाहिये कि उस समय इस देश के विद्वान् पण्डित और धर्माचार्य राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीन कोरे पाण्डित्य के धनी थे। जीव, ईश्वर और माया की अव्यावहारिक दार्शनिक विवेचना एवं शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करने की आकांक्षा के कारण वे समाज से टूट गये थे। शास्त्रार्थ विद्वानों का मनोरंजन और समय का अपव्यय मात्र था। भारतीय विद्वानों की विद्या सृजन-विकास.से वंचित हो रही थी। मौलिक चिंतन एवं रचनात्मक विद्या सो रही थी। तत्कालीन शास्त्रीय संदिग्ध व्याख्याओं के कारण मानव-आस्था डगमगा रही थी। ऐसी परिस्थिति और परिवेश के वातावरण में, जब कि भारतीय जन-मानस प्रतीक्षा कर रहा था किसी नेतृत्व की, जो उन्हें सही मार्ग पर चलकर संघर्ष करने की प्रेरणा दे सके, आचार्य रामानंद का उदय हुआ जिनकी प्रतिभा शास्त्रार्थ में नहीं, अपितु प्रतिभाओं को खोजने एवं उनका मार्गदर्शन करने में विनियोजित हुई। उनके जाज्वल्यमान व्यक्तित्व के सामने पण्डितों की बांझ बुद्धि पराजित हुई। उन्होंने लोक मंगल का शंखनाद किया। समय व समाज की आवश्यकता के अनुरूप, उन्होंने हिन्दू संस्कृति की सुरक्षा के लिए सिद्धियों एवं चमत्कारों का भी प्रयोग किया। दिग्विजय के लिये नहीं, अपितु राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए पूरे देश का परिभ्रमण किया।.बुद्धोत्तर काल में हिन्दूतीर्थों को पुनर्जीवित करने एवं राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता को एक सूत्र में पिरोने का प्रथम सफल प्रयास आचार्य शंकर ने किया। तत्पश्चात् आचार्य रामानंद ने उसी दिशा में युगानुकूल प्रयास किया। दार्शनिक धरातल पर आचार्य शंकर और आचार्य रामानंद में

महान् अंतर दिखाई देता है । किन्तु व्यावहारिक पृष्ठभूमि में दोनों महनीय आचार्य भारत की भूमि से जुड़े हुए हैं ।

आचार्य रामनुज और आचार्य रामानंद के दार्शनिक सिद्धांत और उपासना-पद्धति में कोई अंतर नहीं है । किन्तु आचार्य रामानंद का वैशिष्ट्य यह है कि जहाँ आचार्य रामानुज के उपास्य वैकुण्ठ निवासी लक्ष्मीनारायण हैं, वहीं आचार्य रामानंद ने धरती के देवता श्री सीताराम जी को अपना उपास्य स्वीकार किया । राम और मानव के बीच देशगत दूरी न होकर चारित्रिक और वैयक्तिक विकासगत है । इसलिये इस दूरी को साधना और निष्ठा के बल पर मिटाया जा सकता है । वैकुण्ठवासी मानवीय समाज के अंग नहीं हैं । इसलिये स्वाभाविक है कि उन्हें गिरते हुए मानवीय मूल्यों की चिन्ता न हो । किन्तु राम हमारे ही समाज के सदस्य हैं । उनके सामने भी वे सारी समस्यायें आती हैं, जो आम आदमी के सामने आती रही हैं और आ रही हैं । राम उनका समाधान चमत्कारिक ढंग से नहीं बौद्धिक स्तर पर खोज निकालते हैं । जो युगों तक मानव को दिशा निर्देश करता रहेगा ।

निम्बार्काचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य प्रभृति आचार्यों ने जो श्री रामानंदाचार्य के समकालीन किंवा पूर्ववर्ती हैं, श्रीकृष्ण उपासना के माध्यम से भारतीयजन मानस को सरस एवं आत्मकेन्द्रित किया । उन आचार्यों के उपदेशों में गीता का संदेश गौण रहा । पूज्य चरण आचार्य श्री रामानंद ने गीता के सिद्धान्त को व्यावहारिक पृष्ठ-भूमि में चरितार्थ किया । 'कर्मण्ये वाधिकारस्तें' की व्याख्या के लिये भगवान् श्रीराम के आदर्श को लोकाराधन का लक्ष्य बनाया ।

आचार्य श्रीरामानंद की अपूर्वता उनके क्रांतिकारी कार्यों की सफलता है । प्रस्थानत्रयी के भाष्यों का मूल्यांकन करके उनके व्यक्तित्व को आंकना पर्याप्त नहीं होगा । उन आचार्य श्री के साथ न्याय तब तक नहीं होगा, जब तक उनके मौलिक कार्यों और सिद्धान्तों की समीचीन समीक्षा न की जाय । उन्होंने "लोकसंग्रह" के लिये कुछ ऐसे कार्य किये हैं, जो उनके पूर्ववर्ती किसी भी आचार्य ने सम्पादित नही किये और श्रीरामानंद सम्प्रदाय का दिव्य भव्य मंदिर उन्हीं तत्वों से निर्मित हुआ है । समन्वय की आधारशिला पर श्रीरामोपासना का ऊर्ध्व गुम्बज, श्री रामानंद सम्प्रदायकी दिग्दिगन्त व्यापिनी कीर्तिं-ध्वज को आज भी फहरा रहा है, जो निम्नांकित चार स्तम्भों में खड़ा हुआ है ।

१- प्रचार का माध्यम लोकभाषा हिन्दी ॥

२- अछूतोद्धार का श्री गणेश ।

३- नारी-मुक्ति का द्वार खोलना और

४- भगवत्सेवा के साथ-साथ सन्त सेवा की प्रधानता ।

देवभाषा संस्कृत सिर्फ पण्डितों की भाषा थी । जन सामान्य के लिये वह श्रद्धा का केन्द्र अवश्य थी किन्तु, उससे प्रेरणा का आलोक नहीं मिल रहा था । धर्मग्रन्थों की चर्चा संस्कृत में सुनकर लोग पुण्यभागी तो बन जाते थे, किन्तु पुण्य करने की जीवन्त समझदारी बटोरने में असमर्थ थे । 'संस्कृत तो है कूपजल, भाषा बहता नीर,' — कहकर कबीर ने उसी तथ्य को उजागर किया है । इसलिये युगीन चेतना से अनुप्राणित आचार्य श्री रामानंद ने संस्कृत के विकल्प के रूप में लोक भाषा (हिन्दी) को अपने उपदेश का माध्यम बनाया । जो विद्वान् और निरक्षर के बीच सेतु का कार्य करने में पूर्ण सक्षम हुई । उन्हीं से अनुप्रेरित कबीर, रैदास, अग्रदास (अग्रसखी) सेन भगत, नाभाजी एवं तुलसी दास जी ने हिन्दी को काव्यभाषा के रूप में स्वीकार किया और संस्कृत वाङ्मय के समग्र सुभाषितों को हिन्दी में सहजता के साथ अभिव्यक्त किया । नाभाकृत भक्तमाल एवं तुलसीकृत राम चरित

मानस हिन्दी ज़गत् की ही नहीं, बल्कि भारतीय वाङ्मय की अमूल्य निधि एवं हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधि महाकाव्य हैं।

मेरे विचार से आचार्य रामानंद का विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त 'सर्वांग समन्वय' का सिद्धान्त है, जबकि आचार्य रामानुज का विशिष्टाद्वैत एकांगी है। रामानुज का सिद्धान्त प्रवाहमयी सरिता की भांति है, जबकि रामानंद का सिद्धान्त अगाध समुद्र की भांति स्थिर है, जिसमें सभी नदियों का जल समाहित हो जाता है। आचार्य रामानंद ने समग्र दार्शनिक चिन्तन को मूर्तिमान किया है। उसी परम्परा के सन्तशिरोमणि कविरत्न गोस्वामी तुलसीदास जी ने "रामचरित मानस" में समग्र दार्शनिक चिन्तन को मूर्तिमान किया है। इसीलिये मैं कहा करता हूँ कि रामानंद सम्प्रदाय का प्रतिनिधि ग्रंथ श्री 'रामचरित मानस' है।

भगवत्प्रपत्ति के लिये पूर्व परम्परानुसार अधिकारी भेद को नकारते हुए आचार्यश्री रामानंद ने "सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः" कह कर भगवत्प्राप्ति का मार्ग सबके लिये खोल दिया।

धार्मिक अनुष्ठान में जाति लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को रामानंद सम्प्रदाय में कोई स्थान नहीं है।

हरि को भजै सो हरिका होई।

जाति पांति पूछे नही कोई॥

आचार्य रामानंद के द्वादश प्रधान शिष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र (रैदास) और हिन्दू-बाह्य जुलाहा (कबीर) तथैव सुरसरी एवं पद्मा नाम की नारी भी थी। जहाँ तक मेरी जानकारी है पूर्ववर्ती किसी भी आचार्य ने शूद्र और नारी जाति को साम्प्रदायिक दीक्षा देकर अपने पार्षदों में शामिल नहीं किया था। अवश्य ही आचार्य श्री रामानंद की इन क्रांतिकारी कदमों ने आलोचना का मार्ग भी प्रशस्त किया होगा। किन्तु ऐसा कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता तो ऐसा लगता है कि उक्त कार्यों को सभी ने युग की आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया होगा अथवा वे आचार्य के व्यक्तित्व के सामने हतप्रभ हुए होंगे किंवा आचार्य की उपेक्षा के कारण आलोचनाओं को सम्बल न मिलने से धूलधूसरित नष्ट हो गये होंगे।

"तस्मिन् तज्जने भेदाभावात्" भक्तिसूत्र के उद्घोषित सत्य को साकार किया आचार्य रामानंद ने अपने सम्प्रदायगत दैनन्दिन चर्या के अंतर्गत। उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय में साधुसंत की सेवा और भगवत् सेवा में पार्थक्य नहीं है। भगवान् के चरणामृत की तरह सन्तों का चरणोदक लेने की परिपाटी का रहस्य यही है।

आचार्य रामानंद सेतु हैं — नर नारायण के बीच, अमीर और गरीब के बीच, छुद्र और महान् के बीच और धार्मिक सामाजिक विषमताओं की खाईयों के मध्य। उन्होंने समाज के दो किनारों के बीच की दूरी को उसी प्रकार मिटा दिया जैसे त्रेता में अवतार लेकर भगवान् राम ने दो किनारों के अंतराल को मिटाया था। तभी तो नाभाजी ने भक्तमाल में कहा है —

रामानंद रघुनाथ ज्यौ द्वितीय सेतु सागर कियो।

आचार्य रामानंद की व्यापकता और महानता को देखते हुए अगस्त्य संहिता और भविष्य पुराण में ठीक ही कहा गया है —

रामानंदः स्वयं रामो प्रादुर्भूतो महीतले॥

जय श्री रामानंद।

★ ★ ★

स्वामी रामानन्द जी और जाति-समन्वय

— प्रेम नारायण सिंह

किसी युग विशेष को अनुप्राणित करने वाली विचारधारा, जिसका उद्देश्य उस युग की विभिन्न समस्याओं का अपने ढंग से समाधान प्रस्तुत करना होता है, को निश्चित रूप से तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का सुन्दरतम उदाहरण तथा उस विचारधारा के प्रवर्तक को एक अनुकरणीय मनीषी की संज्ञा दी जा सकती है।

मध्ययुगीन उत्तरभारत की प्रगतिशील चिन्तनधारा के प्रेरणास्रोत स्वामी रामानन्द जी का नाम भारतवर्ष के उन महानतम चिन्तकों में लिया जा सकता है जिन्होंने अपनी दूरदर्शिता, अग्रचेतना और सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि से समाज को आलोकित किया है।

विक्रम संवत् की १४वीं शताब्दी विशेषरूप से सामाजिक उथल-पुथल का काल था। सर्वत्र पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एवं वैमनस्य का बोलबाला था। जहाँ एक ओर तलवार के बलपर इस्लाम का प्रचार हो रहा था वहीं दूसरी ओर मन्दिरों और धर्मग्रन्थों का विध्वंस किया जा रहा था। वाह्यशक्तियां न सिर्फ हिन्दू धर्म पर कुठाराघात कर रहीं थीं बल्कि हिन्दुओं की निजी दुर्बलताओं को भी अंकुरित कर दिया था। एक तरफ बलात् धर्म, परिवर्तन तो कराया ही जा रहा था दूसरी ओर हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था भी उन्हीं के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही थी। ऐसे प्रचण्ड झंझावात में जब देश की संत्रस्त जनता के समक्ष किसी गम्भीर तत्ववाद से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण अपने आस्तित्व की रक्षा का प्रश्न था, विक्रम संवत् १३५६ की माघकृष्ण सप्तमी को स्वामी रामानन्द जी का अविर्भाव हुआ।

स्वामी जी ने तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए जन-मानस के बौद्धिक जिज्ञासा की परितृप्ति मात्र ही नहीं किया वरन् सामान्य जीवनक्रम को अपने ढंग से सुधारने का सफल प्रयास भी किया। रामानन्द जी का भक्तिमार्ग तत्कालीन युग की समस्याओं एक अनुपम समाधान था जिसके लिए तत्ववाद की महत्ता जीवन क्रम की अपेक्षा अधिक नहीं थी। रामानुज स्वामी की ही परम्परा में माने जाने वाले स्वामी रामानन्द जी ने रामानुज के "लक्ष्मी नारायण" के स्थान पर "सीता-राम" को अपना परमोपास्य माना।

रामानन्द के भक्ति मार्ग में ज्ञान और कर्मकाण्ड को अत्यधिक महत्व देने की अपेक्षा यह माना गया कि भगवच्चरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण कर देना ही भक्त के लिए पर्याप्त है। उनका मत था कि भगवान तो परमदयालु हैं। उन्हें ऊंच-नीच, धनी-निर्धन, कुल, बल तथा जाति-पांति आदि की कोई अपेक्षा नहीं है। वे तो केवल अनुराग के भूखे हैं। यहाँ तक कि उनका यह मानना था कि अशक्तावस्था में मात्र गुरुमंत्र का जाप करके भी भक्त परमभक्ति का अधिकारी हो सकता है। रामानन्द जी की इस उदारता ने नैराश्यपूर्ण वातावरण में एक नयी आशा का संचार किया। तात्पर्य यह नहीं कि इस उदारता ने तत्कालीन धार्मिक संघर्ष को रोक

दिया हो किन्तु भक्ति का जहाँ तक सवाल है रामानन्द जी से ही प्रेरणा पाकर अनेक मुसलमानों ने भी राम-भक्ति को अपने जीवन में अपनाया एवं शूद्र तथा स्त्री भक्तों का ब्राह्मणों द्वारा भी सम्मान किया जाने लगा। नीरु, नीमा तथा कबीर का ही उदाहरण ले लें। नीरु-नीमा जुलाहे को बालक कबीर तालाब के किनारे मिला। यह बालक किसी का दूध नहीं पीता था। यह ज्ञात होने पर स्वामी रामानन्द जी ने अपने प्रिय शिष्य अनन्तानन्द जी द्वारा बालक को चूसने के लिए सुथामुची नामक बूटी भेजी जिसके परिणामस्वरूप बालक कबीर गाय का दूध पीने लगा और पड़ोसन कर्मादेवी का भी। बड़ा होने पर यही कबीर अपने को स्वामी रामानन्द जी का शिष्य कहने लगा। स्वामी जी ने इन्हें निम्न जातियों में (जो उस समय अछूत समझी जाती थीं) भक्ति-प्रचार का आदेश दिया था। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य है कि कबीर के पहले उसके पालन-पोषण करने वाले नीरू-नीमा भी स्वामी जी से प्रभावित थे। बालक का दूध न पीने पर स्वामी जी द्वारा बूटी भेजना और उसके पालन कर्त्ताओं द्वारा जो वास्तव में जुलाहे थे, बूटी प्रयोग की सहर्ष सहमति इस बात का प्रमाण है कि नीरू-नीमा स्वामी जी से पूर्व प्रभावित थे। और जब नीरु-नीमा प्रभावित थे तो निश्चित रूप से और भी रहे होगें। इस प्रकार रामानन्द जी का भक्तिमार्ग विभिन्न वर्णों के पारस्परिक मिलन का केन्द्रविन्दु हो गया जिसके परिणाम स्वरूप लोगों में एक दूसरे को समझने की प्रवृत्ति बढ़ी और पारस्परिक सद्भावना, सहयोग एवं सहानुभूति का उदय हुआ।

रामानन्द के पूर्व के वैष्णव आचार्यों ने विचार की दृष्टि से तो भक्ति के क्षेत्र में किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं किया था किन्तु व्यवहार के क्षेत्र में उन्होंने खान-पान, छुआ-छूत सम्बन्धी आचार-विचार को प्रधानता दी थी। स्वयं रामानुज प्रपत्ति के क्षेत्र में जातिगत, वर्गगत सथवा कुलगत बन्धन को नहीं मानते थे किन्तु उनके सम्प्रदाय में खान-पान सम्बन्धी अनेक बन्धन स्वीकार किये गये जो इस बात के प्रमाण हैं कि स्वयं रामानुजाचार्य भी अपने उपदेशों के तर्क को पूर्णतया स्वीकार नहीं कर सके थे। [१] रामानन्द जी का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि उन्होने अपने उदार दृष्टिकोण के कारण भक्ति का द्वार ब्राह्मण-शद्र, शक्त-अशक्त, कुलीन-अकुलीन, पुरुष-स्त्री सभी के लिए खोल दिया। यही उन्मुक्ता प्रतिबन्धित अछूतों के उद्धार की दिशा में स्वामी जी द्वारा उठाया गया एक सार्थक कदम था। कबीर जुलाहा, धना जाट, सेन नाई, पीपा क्षत्रिय, रैदास चमार, तथा सुरसुरी और पद्मावती आदि नारियों को अपना शिष्य बनाकर बैष्णव धर्म के इतिहास में रामानन्द जी ने एक नये अध्याय का सूत्रपात किया। स्वामी जी के शिष्यों में इनके अलावा अनन्तानन्द, पाद्मतेश्वर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द और भावानन्द का उल्लेख मिलता है।

स्वामी रामानन्द का दृष्टिकोण अपने गुरु स्वामी राघवानन्द जी जो विशिष्टाद्वैत के समर्थक थे, की अपेक्षा अधिक उदार था। चूंकि रामानुज सम्प्रदाय में छुआ-छूत, जांति-पांति आदि का भेद-भाव अधिक किया जाता था। अतः राघवानन्द जी भी इस भेद-भाव को कुछ न कुछ अवश्य ही मानते थे किन्तु रामानन्द जी को भक्ति के क्षेत्र में जाति-पांति का बन्धन अमान्य था। एक किंवदन्ती के अनुसार[२] — रामानन्द के इस अधिक उदार दृष्टिकोण को देखकर राघवानन्द जी ने उन्हें अपना नया सम्प्रदाय चलाने की स्वीकृति दे दी। रामानन्द जी ने अपने वैरागी सम्प्रदाय में नाई, जाट, क्षत्रिय, ब्राह्मण, मुसलमान, हरिजन तथा स्त्री आदि सभी का समावेश कर लिया और इस प्रकार मध्ययुग में एक सबल सम्प्रदाय की स्थापना की।

---

[१] राधा कृष्णन — इण्डियन फिलासफी पृष्ठ ७०८–९

[२] भक्तमाल — रुपकला

रामानन्द जी "सीता-राम"के उपासक थे। जब उपास्य अर्थात् राम ने स्वयं भीलनी के बेर खाकर समाज के सम्मुख समदर्शिता का उदाहरण प्रस्तुत किया तो फिर भला उनके उपासक स्वामी रामानन्द जी उस पथ से विरत कैसे हो सकते थे। फलतः इन्होंने जाति-पांति के मामले में अत्यन्त ही उदारता का दृष्टिकोण अपनाया। मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये हिन्दुओं को पुनः वैष्णव बना लेने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। भविष्य पुराण में एक जगह उल्लेख मिलता है कि रामानन्द ने म्लेच्छ हो गये हिन्दुओं को पुनः वैष्णव बना दिया था। रामानन्द के प्रभाव से उनके शरीर पर वैष्णवों के चिह्न अपने आप बन गये थे।[१] स्वयं रामानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में यह मत प्रतिपादित किया है कि भक्ति के क्षेत्र में सभी को समान अधिकार है।[२] स्वामी जी ने भले ही जाति- पांति के भेद-भाव को नहीं माना हो किन्तु जाति-प्रथा को मिटाने का प्रयास किया हो इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। हां इतना अवश्य है कि तत्कालीन सामाजिक परिवेश में अछूत माने जाने वाले लोगों को भी बराबरी का दर्जा देने का सफल एवं सराहनीय प्रयास किया जो आज भी हमारे लिए अनुकरणीय है। इस सन्दर्भ में स्वामी रामानन्दजी के विचारों की प्रासंगिकता आज भी ज्यों की त्यों है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वामी रामानन्द जी ने "सीताराम" को अपना परमोपास्य बनाकर एक ऐसी भक्ति-पद्धति का प्रचार किया था जिसका द्वार मानव-मात्र के लिए उन्मुक्त था। उनकी इस प्रगतिशील चिन्तनधारा ने सन्तों एवं भक्तों का एक दल सा तैयार कर दिया जो सभी प्रकार के धार्मिक विभेदों को भूलकर एक सामान्य जीवन-पथ का निर्माण करने में जुट गया, जिसके परिणाम-स्वरूप मध्ययुगीन भारत में एक अद्‌द्भुत जन-जागृति आ गयी। रामानन्द के बाद भी उनके सम्प्रदाय को जनता का इतना समर्थन प्राप्त हुआ कि लगभग समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में रामानन्द सम्प्रदाय अत्यधिक सुसंगठित एवं जनप्रिय हो गया। रामानन्द जी की चिन्तनधारा का जो अजस्र प्रवाह प्रवाहित होता रहा है, कालान्तर में उसमें कुछ शिथिलता एवं संकीर्णता का समावेश होने से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। अपनी लम्बी यात्रा में अवश्य ही परिस्थितियों ने उसे प्रभावित किया। किन्तु बदलते हुए परिवेश में भी अपने आदर्शों की रक्षा करते हुए स्वामी रामानन्द जी द्वारा प्रवाहित धारा आज भी अविरल गति से बहती चली आ रही है। रामानन्द सम्प्रदाय ने निश्चित रूप से अपने आदर्शों की बहुत कुछ रक्षा की है और भविष्य में भी वर्गगत एवं वर्णगत संकीर्णताओं से जनमानस को बाहर निकालने में तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना का प्रचार-प्रसार करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता रहेगा तथा स्वामी रामानन्द जी द्वारा प्रज़्वलित विचार-दीप से जनमानस को आलोकित करता रहेगा। इसी आशा एवं विश्वास के साथ --

★★★

---

[१] भविष्य पुराण अ० ३, ४ श्लोक २१, ५३

[२] श्री वैष्णवभजाब्जभास्कर-- प्राप्तुं परां सिद्धिमकिंचनो जनो द्विजाति रिच्छंघरणं हरिं ब्रजेत्।
परं दयालुं स्वगणानपेक्षितक्रियाकलापादिकजातिबन्धनम्॥

जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य का जीवन-परिचय

रामेश्वर दास "श्री वैष्णव"

स्वामी रामानन्द के जीवन काल के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतान्तर है। इसका एकमात्र कारण यह है कि सन्त-महात्मा अपनी जीवनी नहीं लिखते थे। प्रायः सभी सन्त-महात्माओं के जीवन में अद्भुत चमत्कार होता है। जो सिद्ध कोटि के हैं उनका जीवन तो चमत्कारों से परिपूर्ण होता है। आज के तार्किक एवं वैज्ञानिक युग में उनपर लोगों को अविश्वास होता है। स्वामी रामानन्द तो ब्रह्मनिष्ठ योगेश्वर थे। अपने योग बल से सब कुछ करने में समर्थ थे। स्वामी जी के सामयिक 'मौलाना रसी दुहीन' नामक एक फकीर काशी में हुए हैं। उन्होंने 'तजकीर तुल्फुकरा' संज्ञक एक पुस्तक लिखी है जिसमें मुसलमान सन्तों की कथाएँ हैं। उसमें स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में संक्षिप्त किन्तु अतिश्रद्धापूर्ण शब्दों में उनकी वास्तविकता को चित्रित किया है "इस पुरी (काशी) में पन्चगंगाघाट पर एक प्रसिद्ध महात्मा रहते हैं। तेजः पुन्ज और पूर्ण योगेश्वर हैं। वैष्णवों के सर्वमान्य आचार्य हैं। सदाचार एवं ब्रह्मनिष्ठा के स्वरूप ही हैं। परमात्मा रहस्य तत्त्व के पूर्ण ज्ञाता हैं। सच्चे भागवत् प्रेमियों एवं ब्रह्मविदों के समाज में उत्कृष्ट प्रभाव रखते हैं। अपितु धर्माधिकार में वे हिन्दुओं के धर्म-कर्म के सम्राट हैं। केवल ब्रह्मवेला में अपनी पुनीत गुफा से गंगा स्नान के लिए बाहर निकलते हैं। उस पवित्रात्मा को स्वामी रामानन्द कहते हैं। स्वामी रामानन्द की जन्म तिथि कलि के ४४०० बीतने पर विक्रम सं० १३५६ सन् १२९९ ईस्वी। (माघ कृष्ण, सप्तमी, चित्रा नक्षत्र, सिद्धियोग, कुम्भलग्न दिन के सात दण्ड चढ़ने पर गुरुवार को मानी जाती है। अगस्त्य संहिता के भविष्यतोत्तर खण्ड में इस मत की प्रतिष्ठा की गयी है।

मनः कर्ताऽवताराय स्मृत्वायो स्वं प्रतिश्रुतम्।
खं नमो वेद-वेद प्रीभते वर्षे गते कलौ॥
कालिन्दी जाह्नवी संगे शोभते देव पूजिते।
तीर्थराजे महापुण्ये प्रयागे तीर्थ उत्तमे।
गृहे श्रीपुण्यसदन द्विजातेर्भूरि कर्मणः
योगिनो योग युक्तस्य कान्यकुब्ज शिरोमणेः
पतिसेवा परा तस्य सुशीला गृहिणी ततः
माघकृष्णस्य सप्तम्यां शुभधर्मप्रवर्तके॥
सप्तदण्डे गते सूर्ये सिद्धयोगयुजि। प्रभुः।

नक्षत्रे त्वष्ट्रदैवत्ये कुम्भ लग्ने शुभग्रहे ॥

एवं सर्वगुणोपेते देशे काले च माधवः।

गुराये पुराये शरण्यः स शरणागत वत्सलः।

आविर्भूतो महायोगी द्वितीय इव भास्करः।

रामानन्द इति ख्यातो लोकोद्धरण कारणः।

इसी प्रकार वैश्वानर संहिता में भी कहा गया है –

रसे पुत्र यवनी संख्ये वर्षे वैक्रम राजके

माघस्यासित सत्पम्यां रामानन्दो ह्यभूद्भुवि।

रामानन्द महामुनिस्सम्भवद्रागेषु रामावनी युक्ते

वैक्रम वत्सरे घट तनौ माघासिते त्वाष्ट्रभे

सप्तम्यां गुरुवासरे युजि तथा सिद्धौ प्रयागान्प्रमात्

श्रीमद्भूसुर राजपुण्य सदना द्रामावतारः कृती।

स्वामी भागवदाचार्य ने रामानन्द दिग्विजय को तृतीय सर्ग के अगस्त्य संहिता एवं वैश्वानर संहिता में साम्य रखते हुए लिखा है –

रसेषु कालेन्दु युते प्रतापि श्री विक्रयान्दे तपसोऽसितश्च

पक्षस्य शोभाति शयने जुष्टे तिथौ शुभायां रति देवता के ॥

रवौ धनुष्ये च शनौ तुलास्थे चन्द्रे यथा कोण गते बुधे च।

केन्द्रे गुरौ दैप्य गुरौ च राहौ मेषास्थिते भूमि सुते तथैव ॥

कुम्भे च लग्नेऽथ च सिद्ध योगे खातु दीते किरण सप्त दण्डे।

त्वाष्ट्रे च ऋक्षे जगतामधीशः सुशीलया साति सुखेन सूनुः ॥

उपर्युक्त मतों को मानने वाले मानियर विलियम्स जे० सी० केम्प वेल ओमन, सर भण्डारकर डा० पीताम्बर दत्त वऽथवालु, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डा० रामकुमार वर्मा आदि प्रमुख विद्वान् हैं। स्वामी रामानन्द प्रयाग में पुण्य सदन शर्मा एवं सुशीला नामक दम्पत्ति के घर जन्म लिए थे पुण्य सदन शर्मा ने बालक रामानन्द का उपनयन संस्कार कर काशी के विख्यात वैष्णवाचार्य स्वामी राघवानन्द जी के पास लाए। अल्पकाल में ही बालक रामानन्द ने वेद-वेदाङ्ग का पूर्ण अध्ययन किया। स्वामी राघवानन्द जी से षडक्षर मन्त्र की दीक्षा तो पहले ही ले चुके थे अब वे वैष्णवाचार्यों के प्रमुख स्थान के अधिकारी हुए। स्वामी राघवानन्दाचार्य जी के बाद श्री सम्प्रदाय (रामानन्द सम्प्रदाय) के प्रमुख आचार्य हुए इनका केन्द्र श्रीमठ पन्चगंगाघाट काशी था। स्वामी रामानन्द का केन्द्र मठ – काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय धार्मिक विभाग पुस्तक नं० २३०।१७९

"हिन्दुओं के धर्म पर निबन्ध और भाषण" (प्रथम भाग) श्री एच० एच० विल्सन (पृष्ठ ४९)

श्री रामानन्दाचार्य जी का निवास काशी में पन्चगंगाघाट पर था जहाँ उनका मठ था जो मुसलमान बादशाहों द्वारा नष्ट कर दिया गया ऐसी प्रसिद्धि है। वर्तमान में उस स्थान पर केवल पत्थर का चबूतरा है। जिस पर वह चरण चिन्ह है जो इन्हीं के माने जाते हैं।

स्वर्गीय बाबू शिव प्रताप गुप्त पुस्तकालय नगवा काशी पुस्तक नं० १५१९/६८०७ "पवित्रपुरी काशी" रजनीकान्त सेन बी० एस० एल० बी० वकील और लेक्चरर द्वारा रचित सन् १९१२ के संस्करण –

ज्योंहि आप पन्चगंगा की सीढ़ियों से उतरकर घूमे आपको एक छोटा सा मकान मिलेगा, जिसमें बहुत मूर्तियों और शिलाओं के साथ ही पत्थर चबूतरे पर आपको वह वस्तु मिलेगी जिसको स्वामी रामानन्द की चरणपादुका कहा जाता है। ये रामानन्द बड़े भारी वैष्णवाचार्य थे और चौदहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। वे बनारस में पंचगंगा घाट पर रहते थे जहाँ उनके अनुयायियों का एक मठ था जोकि मुसलमान बादशाहों द्वारा नष्ट कर दिया बताया जाता है। आज भी मठ अपने अवशिष्ट रूप में वर्तमान है। परमहंस स्वामी रणछोड़ दास जी चित्रकूटी को स्वामी भगवदाचार्य ने राजकोट महायज्ञ के सम्मान में दक्षिणा स्वरूप श्रीमठ पन्चगंगा घाट काशी का जीर्णोद्धार कराना मांगा था स्वामी रणछोड़ दास जी के साकेत गमन के ११ वर्ष बाद जीर्णोद्धार का काम उनके अनुयायी मफतलाल ग्रुप ने कराया। आज विशाल मठ के रूप में गंगा के किनारे खड़ा है।

एक प्रश्न उठता है स्वामी रामानन्द श्री वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य शिवपुरी काशी में अपना केन्द्र मठ क्यों चुना ? भगवान् शंकर परम वैष्णव हैं। वे सर्वदा रामनाम जाप करते हैं। इस बात की पुष्टि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी किया है – जासु नाम बल शंकर काशी। देत सबहिं रामभक्ति अविनाशी, राममय होने के कारण काशी वैष्णवों के लिए परम पवित्र है। यहाँ पर जो मरता है उसको कान में भगवान शंकर तारक मंत्र देते हैं। यह पुरी परम्परा से रामभक्तों की है। अंतः स्वामी रामानन्द ने काशी में अपना केन्द्र मठ बनाया।

तीर्थाटन एवं दिग्विजय – स्वामी रामानन्द ने वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए भारत की यात्रायें किया था। तीर्थाटन के काल मार्ग में अनेकानेक सभाओं को सम्बोधित किया एवं पुनः हजारों वर्ष पुराने धर्म राज्य में आस्था रखने लगी। श्री वैष्णव धर्म के प्रचार करते हुए जगत् गुरु रामानन्द ने रामेश्वर, मदुरै एवं त्रिचिवल्ली में रामयज्ञ किया। रामानन्द सम्प्रदाय के दो विद्वान स्वामी भगवदाचार्य और स्वामी जयराम देव का कथन है कि दिग्विजय के लिए ही स्वामी रामानन्द ने समस्त भारत वर्ष का पर्यटन किया था। भक्तमाल के टीकाकार रूपकला जी के अनुसार विशुद्ध रूप से तीर्थाटन के लिए सुदूर पूर्व एवं उत्तर की यात्रायें की थी। रूपकला जी के मत में स्वामी रामानन्द अपने निवास स्थान श्रीमठ पन्चगंगा घाट से बद्रिकाश्रम, रामेश्वर, द्वारका, मिथिला आदि प्रमुख तीर्थों की यात्रायें की थी। महान्त श्री अवध किशोर जी 'प्रेमनिधि' के अनुसार तो गुजरात के कई स्थलों पर स्वामी जी तीर्थाटन के लिए गये। अर्बुदाचल पर्वत पर रहकर जैन मत के सन्तों का शंका-समाधान कर उन्हें प्रभुभक्त बनाया। बहुत राजाओं ने अपनी राजधानी में ले जाना चाहा किन्तु आप केवल उदयपुर के ऐतिहासिक स्थल देखने की इच्छा से जाना पसंद किया। वहाँ पर राजा ने आपका स्मारक बनवाया था जो ताम्र पत्र में हैं। स्वामी भगवताचार्य ने "रामानन्द दिग्विजय में स्वामी रामानन्द के जन्म से साकेत गमन तक का वर्णन किया है। दिग्विजयकार ने लिखा है कि स्वामी जी ने लोगों के उद्धार के लिए हिन्दुस्तान के कोने-कोने की आवाज, जो क्रूर शासकों एवं वामपन्थी साधनाओं से आ रही थी, भारत भ्रमण के लिए निकल पड़े। सम्पूर्ण भारत का भ्रमण जनता में पुनः धार्मिक आध्यात्मिक चेतना लाने तथा सामाजिक स्तर उठाने की दृष्टि से स्वामी रामानन्द जी ने किया है। रामानन्द दिग्विजय में कई स्थानों पर उन्हें क्रूर प्रभासक योगीं एवं सिद्ध से तो टक्कर

लेनी ही पड़ी समाज से छुआछूत जैसी बीमारी को भी भगाया। स्वामी जयरामदेव के अनुसार सर्वप्रथम स्वामी रामानन्द सर्वप्रथम बीवा के निमंत्रण पर गांगरौनगढ (राजस्थान) गये। वहाँ पर राजा का आतिथ्य ग्रहण कर कुछ काल व्यतीत किया। चित्रकूट, जनकपुर धाम, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर एवं दक्षिण के तीर्थं आपू पर्वत-यात्रा, वृन्दावन, हरिद्वार, नौमिसाण्य, अयोध्या एवं कश्मीर गये।

इन यात्रा काल में स्वामी रामानन्द जी ने कई चमत्कार दिखाये। जगन्नाथपुरी में समुद्र की सीमा निश्चित कर दिये जिससे आगे न बढ़ने पाये। दक्षिण-भारत (श्री रंगम्) में चमत्कार द्वारा कबीर जी एवं रैदास जी को मंदिर में प्रकट करायें क्योंकि उन पर अछूत होने का पुजारियों ने प्रतिबंध लगाया था। पुजारियों को कबीर तथा रैदास का दिव्य स्वरूप दिखाना, हरिद्वार में नरनारायण का दर्शन कराना सबसे महत्वपूर्ण कार्य आपने अयोध्या का राजा (प्रजासहित) का उद्धार यानी परावर्तन संस्कार कराना। इस प्रकार स्वामी रामानन्द का तीर्थाटन एवं भ्रमण लोक कल्याणार्थ ही हुआ स्वयं की यश ख्याति अर्जित के लिये नहीं। सनात धर्म की रक्षा के लिए एवं मार्ग से विचलित लोगों को सही मार्ग पर लाने के लिये भारत भ्रमण किया था।

स्वामी रामानन्दाचार्य के शिष्य :—

स्वामी रामानन्द के शिष्यों के सम्बन्ध मेंभक्तमाल का साक्ष्य प्रायः सभी विद्वानों को स्वीकार है। द्वादश शिष्यों का वर्णन भक्तमाल में मिलता है। अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावती नरहरि। पीपा भवानन्द रैदास घना सेन सुरसुर की धरहरि ॥

रामानन्द सम्प्रदाय के विद्वान् सन्त श्री अवध किशोर दास जी ने "अगस्त्य संहिता की उक्ति को स्वीकार किया है। द्वादश भागवत् धर्मवेता वैष्णवाग्रगण्य शिष्य रूप में अवतीर्ण होकर कलियुग में धर्म प्रचारक बने जिनमें —

१. श्रीअनन्तानन्द जी — श्री ब्रह्मा जी

२. श्री सुरसुरानन्द जी — श्री नारद जी

३. श्री नरहर्यानिन्द जी — श्री सनक जी

४. श्री योगानन्द जी — श्री कपिल जी

५. श्री सुखानन्द जी — श्री शंकर जी

६. श्री पीपा जी — श्री मनु जी

७. श्री कबीर जी — श्री प्रहलाद जी

८. श्री भावानन्द जी — श्री जनक जी

९. श्री सेन जी — श्री भीष्म जी

१०. श्रीघना जी — श्री बली जी

११. श्री गालवानन्द जी — श्री शुकदेव जी

१२. श्री रैदास जी – श्री धर्मराज जी

१३. श्री पद्मावती जी – श्री लक्ष्मी जी

अग्र स्वामी के रहस्य जय टीका के अनुसार भी अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, नरहर्यानन्द, पीपा, कबीर, पद्मावती, मातानन्द, सेन, घना, रैदास, सुरसुरी और गालवानन्द को द्वादश आदित्य के समान कहा गया है। रहस्यत्रयी टीकाकर ने तेरह जान पड़ने वाले शिष्यों को "सार्द्ध द्वादश शिष्याः" ही कहा है।

भक्तमाल की सुरसुरी का उल्लेख श्री अगुदास जी की रहस्य त्रयी टीका में तो है। किन्तु अगस्त्य संहिता में नहीं अगस्त्य संहिता के योगानन्द को भक्तमाल में अनन्तानन्द का शिष्य कहा गया है। रूपकला जी उसका समर्थन किया है। गालवानन्द को रहस्यत्रयी की टीका एवं अगस्त्य संहिता में रामानन्द का शिष्य कहा गया है । सभी विद्वानों ने भक्तमाल का साक्ष्य स्वीकार किया है। भक्तमाल का अर्थ समझने में केवल कुछ अंग्रेज विद्वानों को भ्रान्ति हो गयी है। पाठान्तर होने से कहीं-कहीं हिन्दुस्तान के विद्वान भी भूलकर गये हैं। मौलाना रसीदुद्दीन (तजकीद तुल्फुकरा) ने उसके शब्दों की संख्या ५०० से अधिक बताया है। उस शिष्य समूह में द्वादश गुरु के विशेष कृपा पात्र माने गये हैं – कबीर, रैदास, पीपा आदि स्वामी रामानन्द ने सभी जाति के लोगों को दीक्षा दिया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को बिना भेद-भाव के शिष्य बनाया। इन्होंने ही तो स्त्रियों के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। भक्ति के लिए जाति-पाति की रूढ़िवादिता स्वामी रामानन्द को स्वीकार नहीं थी। हिन्दू धर्मेत्तर आर्त जनों के लिए भी उन्होंने पक्षपात नहीं किया। कबीर जुलाहे थे उन्हें शिष्य तो बनाया ही, धर्मान्तरण किये हुए अयोध्या का राजा हरि सिंह को उनके भतीजे गज सिंह के आने पर सरयू किनारे हिन्दू ही नहीं अपितु रामभक्ति प्रदान कर भगवद्भक्त बना दिया।

स्वामी रामानन्द एवं श्री सम्प्रदाय – स्वामी रघुवराचार्य एवं उनके सहयोगी भगवदाचार्य थे। उनके अनुसार रामानन्द स्वामी न तो रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य थे और न उस सम्प्रदाय से उनका कोई सम्बन्ध ही था। आदि काल में एक ही "श्री सम्प्रदाय" था। कालान्तर में मन्त्र-उपास्य उपासनादि आचारों की भिन्नता के कारण श्री सम्प्रदाय की दो शाखाएं हो गईं। एक शाखा के षडक्षर के परमाचार्य थे साकेतवासी श्रीराम दसूरी के अष्टाक्षर मन्त्र के प्रवर्तक नारायण। कालान्तर में श्रीराम की शाखा में कुछ शैथिल्य आ गया। कुछ लोग किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये, कुछ लोग सम्प्रदायेतरों में चले गये। श्रीनारायण मन्त्र उपदेष्टाओं ने अपने अन्दर ऐसे लोगों को मिला लिया। इसी समय "श्रीसम्प्रदाय" समस्त मूलग्रन्थों को भी हस्तगत कर लिया। ग्रन्थाभाव में "श्री सम्प्रदाय" (श्री रामानन्द सम्प्रदाय) में और भी शिथिलता आ गई। श्री सम्प्रदाय आचार्यों द्वारा प्राणपण से सुरक्षित किए गये ग्रन्थ प्रचाराभाव में लुप्त प्राय हो गये। अतः शस्त्र सम्मत सम्पन्न नारायण सम्प्रदाय से श्री सम्प्रदाय वालों ने नीर-क्षीर वत् अभिन्नता स्थापित कर ली। लोगों ने श्रीराम मन्त्र (षडक्षर मन्त्र) एवं नारायण मन्त्र (अष्टाक्षर) में सामान्याधिकरण स्थापित कर लिया परिणाम स्वरूप श्री सम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ दूसरी शाखा से विनष्ट कर दिए गये। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत अज्ञान के गह्वर में फेक दिए गये। अपने सम्प्रदाय की दुर्दशा देख स्वामी रामानन्द के मन में उद्धार की भावना उठी। अतः कुछ भी अल्प सामग्री सम्प्रदाय में अवशिष्ट थी उसी के आधार पर उन्होंने हनूमान जी, ब्रह्मा जी, बशिष्ठ जी, पराशर जी, व्यास जी, शुकजी, पुरुषोत्तमाचार्य जी, गङ्गाधराचार्य जी आदि प्रमुख आचार्यों के हृदयोद्वेदक "आनन्द भाष्य" की रचना की। विशिष्टाद्वैत मत प्रतिपादक यह ग्रन्थ श्री वैष्णवों का सर्वस्व है।

इस मत का समर्थन करते हुए भगवदाचार्य ने निम्नलिखित साक्ष्य दिया है –

१. हमारे सम्प्रदाय (रामानन्द सम्प्रदाय) प्रमुख विद्वान् अग्र स्वामी ने हमारी गुरु परम्परा इस प्रकार दी है

— श्री राम जी, श्री सीता जी, श्री हनुमान जी, श्री ब्रह्मा जी, श्री वसिष्ठ जी, श्री पराशर जी, श्री व्यास जी, श्री शुकदेव जी, श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी, श्री गंगाधराचार्य जी, श्री सदाचार्य जी, श्री रामेश्वराचार्य जी, श्री द्वारानन्दाचार्य जी, श्री देवानन्दाचार्य जी, श्री श्यामानन्दाचार्य जी, श्री श्रुतानन्दाचार्य जी, श्री चिदानन्दाचार्य जी, श्री पूर्णानन्दाचार्य जी, श्री प्रियानन्दाचार्य जी, श्री हर्यानन्दाचार्य जी, श्री राघवानन्दाचार्य जी, एवं स्वामी रामानन्दाचार्य जी कुछ काल से ही जानने लग गये थे कि स्वामी रामानन्द श्री स्वामी रामानुजाचार्य जी महाराज की परम्परा में है। अब इस मंस (सम्प्रदाय के सन्तों) ने अग्रस्वामी की परम्परा स्वीकार कर ली है।

२. मंत्र भेद सम्प्रदाय भेद में मूल कारण है। श्री रामानुज सम्प्रदाय में 'नारायण मंत्र' ही मोक्षप्रद माना गया है। श्री रामानन्द सम्प्रदाय में 'राममंत्र राज' मोक्षप्रद माना जाता है।

३. श्री रामानुज सम्प्रदाय में चतुर्भुज नारायण उपास्य देव हैं हमारे यहाँ द्विभुज भगवान् श्रीराम उपास्य देव हैं। उनके यहाँ नारायण अवतारी हैं हमारे यहाँ श्रीराम अवतारी हैं। अतः मंत्र भेद तथा उपास्य भेद से इन दोनों सम्प्रदायों में स्वभाविक भेद है और वह भेद रहेगा।

४. रामानन्द स्वामी को रामानुज के शिष्य प्रशिष्यों में स्वीकार करने से श्री रामानन्द गुरु से ही एवं 'पातकी' सिद्ध होते हैं और रामानन्दी वैष्णव 'पन्था' है।

५. हर्यानन्द जी ने जिस भाष्यकार की वन्दना की है वे गुरु भाष्य के लेखक पुरुषोत्तमाचार्य भी हैं।

६. रसिक प्रकाश भक्तमाल में प्रयुक्त लक्ष्मी सम्प्रदाय शब्द 'श्री सम्प्रदाय (रामानन्दी सम्प्रदाय) के अर्थ में आया है। वहाँ हर्यानन्द को रामोपासक कहा भी तो गया है।

७. हरिभक्ति-सिन्धु-वेला में रामानुज कुलोद्भवम् के स्थान पर वास्तव में "रामानूक कुलोद्भवम्" होना चाहिये यदि राघवानन्द जी रामानुज परम्परा में होते तो नारायण मन्त्र का प्रचार न कर राम मन्त्र का प्रचार क्यों करते?

८. इसी प्रकार जिन-जिन लोगों ने राघवानन्द को रामानुजान्वर्य जातः लिखा है उन्होंने मूल से "रामानूक के स्थान पर रामानुज शब्द का प्रयोग किया है।

९. जो महात्मागण स्वामी रामानन्द का सम्बन्ध रामानुज स्वामी जी से करते हैं वे वास्तव में पटकाये गये हैं ।

१०. श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर में रामानन्द ने स्पष्टतया न तो रामानुज का ही नाम लिया है और न शठकोप का ही श्री रामार्चन पद्धति में भी यतिराज शब्द राघवानन्द स्वामी जी के लिए आया है रामानुज के लिए नहीं। रामार्चन पद्धति की परम्परा नवीन कल्पित परम्परा है।

११. सिद्धान्त पटल वास्तव में अप्रामाणिक ग्रन्थ है अतः उसके उल्लेखों को आधार मानकर रामनन्द का सम्बन्ध रामानुज स्वामी जी से नहीं जोड़ा जा सकता है।

१२. श्री राम कबीर जी की पन्च मात्रा अथवा अग्रस्वामीकृत 'आनन्द तत्त्व दीपिका' आदि जिस किसी ग्रन्थ में रामानुज शब्द आया है वहाँ रामानूक ही होना चाहिये।

१३. श्री नाभा जी का भक्तमाल में दी गयी परम्परा श्री रामार्चन पद्धति दी गयी परम्परा से नहीं मिलती है। अतः एक-एक अप्रामाणिक मानना ही पड़ेगा। पहली परम्परा नारायण से प्रारम्भ होती है दूसरी श्रीराम से। श्री

रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसरयों का तात्पर्य है कि रामानन्द ने शास्त्रार्थ आदि करके रामानुज की ही भाँति विशिष्टाद्वैत मत प्रवर्तन किया।

· १४. संस्कृत भक्तमाल अप्रामाणिक रचना है "श्री रामरसरङ्गमणिने रामानुज के साथ रामानन्द का नाम भी एक भक्त के नाते ही गिनाया है, जो क्षम्य है।

१५. श्री रामानन्द जन्मोत्सव, सिद्धान्त, तत्व-दीपिका श्री सम्प्रदाय भास्कर आदि ग्रन्थों में रामानुज स्वामी जी से भ्रम-वश ही रामानन्द का सम्बन्य जोड़ा गया है उसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।

१६. इसी प्रकार जिन महान्तों पं० हरप्रसाद, तुलसी तत्व भास्कर मूँगेर के पं० सन्तदास – "परम साकेत धाम' नर योधी स्थानाधिपति महात्मा राम लोचन शरण वैष्णवाश्रम सिद्धान्त विवेक आदि ने आधुनिक काल में प्रकाशित अपने ग्रन्थों में रामानन्द का सम्बन्ध रामानुज स्वामी से जोड़ा है। उन्होंने किसी प्रामाणिक आधार पर ऐसा नहीं किया है केवल जनश्रुति का ही अवलम्बन किया है।

रामानन्द सम्प्रदाय

१. रामानन्द सम्प्रदाय के परात्पर ब्रह्म श्री राम जी हैं।

२. रामानन्द सम्प्रदाय का मन्त्रराज "रां रामाय नमः" है।

३. इस सम्प्रदाय का नाम श्रीसम्प्रदाय, रामानन्द सम्प्रदाय, रामावत सम्प्रदाय या वैरागी सम्प्रदाय है।

४. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में सम्पूर्ण भगवन्नामों से सम प्रेम रखते हुए श्रीराम मन्त्र सर्वोत्कृष्ट है।

५. रामानन्द सम्प्रदाय में ऋग, यजुः, साम और अथर्व ही वेद माने जाते हैं।

६. नाम दासान्त, प्रसादान्त एवं शरणान्त रहता है।

७. तुलसी की कण्ठी धारण करना परमावश्यक है उसके बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं होता इसे सतत् धारण करना होता है।

८. किसी भी व्रत में रात-दिन उपवास करते हैं।

९. रामानन्द सम्प्रदाय में भक्ति के अधिकारी मनुष्य मात्र हैं।

१०. भगवत्पूजन में शंख का प्रयोग होता है। आरती के बाद अर्घ्य यज्ञमोहन में फेका जाता है।

११. पूजा में शालग्राम के साथ गोमती चक्र रखने का व्यवहार होता है।

१२. पन्च संस्कार अनादि काल से होता आ रहा है।

१३. श्री हनुमान जी पूज्य देव माने जाते हैं उनका प्रसाद ग्रहण किया जाता है।

१४. श्री राम लक्ष्मण एवं जानकी जी की प्रतिमा मन्दिरों में पधरायी जाती है।

१५. रामानन्द सम्प्रदाय में चतुः सम्प्रदाय (रामानन्द, विष्णुस्वामी महव एवं निम्बार्क) मन्दिरों में साष्टांग दण्डवत् करने की प्रथा है।

१६. रक्त श्री, श्वेत श्री (लश्करी) गोल श्री (विन्दु श्री) लुप्त श्री (चतुर्भुजी) एवं चन्द्र विन्दु इत्यादि तिलक भेद है।

१७. ध्येय श्रीराम जी एवं गेय बाल्मीकि रामायण है।

१८. इस सम्प्रदाय में विरक्त परम्परा है।

१९. जटा-भस्म आदि धारण करते हैं।

२०. दीक्षा-संस्कार सभी प्रकार के विरक्तों को देने का अधिकार है।

रामानुज सम्प्रदाय

१. रामानुज सम्प्रदाय के परात्पर ब्रह्म श्रीनारायण हैं।

२. रामानुज सम्प्रदाय का मन्त्रराजं "ओम् नमो नारायणाय" है।

३. इस सम्प्रदाय का नाम श्री सम्प्रदाय या लक्ष्मी सम्प्रदाय है।

४. श्री रामानुज सम्प्रदाय में नारायण मन्त्र के अलावे श्रीराम मन्त्र, श्री कृष्ण मन्त्र, श्री शंकर मन्त्र तुच्छ है।

५. रामानुज सम्प्रदाय में इसके अलावा द्रविण प्रबन्ध भी माना जाता है।

६. इनका प्रयोग नहीं होता।

७. तुलसी की कण्ठी धारण सर्वदा आवश्यक नहीं। मन्त्र जप के बाद्‌ कण्ठी उतार दी जाती है।

८. श्री राम नवमी, श्री कृष्ण जन्माष्टमी के उपवास में जन्म के बाद पारण (भोजन) होता है।

९. वेदादि पढ़ा हुआ द्विज मात्र ही भक्ति का अधिकारी होता है।

१०. भगवत् पूजन में शंख अस्पृश्य माना जाता है अर्घ्य (जल) बाहर नहीं फेका जाता।

११. इस सम्प्रदाय में ऐसा नहीं होता।

१२. पन्च संस्कार नहीं होता है।

१३. हनूमान जी की पूजा नहीं होती एवं उनका प्रसाद अस्पृश्य माना जाता है।

१४. राम लक्ष्मण जानकी जी की नहीं लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा पधरायी जाती है।

१५. रामानुज सम्प्रदाय में अन्य सम्प्रदायों के मन्दिरों में दण्डवत् की प्रथा नहीं है।

१६. रामानुज सम्प्रदाय में मात्र रक्त श्री ही लगायी जाती है।

१७. ध्येय लक्ष्मी नारायण एवं गेय कुछ नहीं है।

१८. इस सम्प्रदाय में गृहस्थ परम्परा अधिक है।

१९. जटा भस्म कदापि नहीं धारण करते।

२०. "दीक्षा केवल गद्दीधारी ब्राह्मण ही दे सकता है।

यद्यपि श्रीमन्नारायणाष्टक्षर का भू-मण्डल में प्रथमोपदेश नर को मिला अतः नर ही प्रथम प्रवर्तक है। प्रथम मन्त्र नर को मिला अतः नर सम्प्रदाय ही हो सकता है श्री सम्प्रदाय नहीं। अगर यह कहा जाय कि रामानुजियों को परम्परा से नारायण मन्त्र मिला उसके मूल में लक्ष्मी जी हैं। जब भू-मण्डल में प्रथम नर को मन्त्र बद्रीनारायण में मिला तो नर सम्प्रदाय ही होना चाहिये। मूल में विचार करें तो नारायण है नारायण ने नर को मन्त्र दिया तो नारायण सम्प्रदाय होना चाहिए। नर सम्प्रदायी तथा नारायण सम्प्रदायी रामानुजी हो सकते हैं – लक्ष्मी सम्प्रदायी अथवा श्री सम्प्रदायी नहीं।

जिस लोक में 'श्री जी' द्वारा मन्त्र का प्रचार हुआ वह लोक में श्री सम्प्रदाय कहा जा सकता है। परन्तु भू-मण्डल पर तो त्रिकाल में नर संप्रदाय ही रामानुजी कहलाएगें। परन्तु रामानन्द सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय है। यदि कहा जाय श्रीराम जी द्वारा जानकी जी को मन्त्र देने पर श्रीसम्प्रदाय क्यों ? इसका उत्तर वाल्मीकि जी ने दिया है – जानकी जी स्त्रियों की श्री हैं। श्री अग्रस्वामी ने रहस्यत्रय में लिखा है। श्री भल्देन भगवती सीतोच्यते अर्थात् श्री पद्वाच्य महारानी सीता जी ही हैं। श्री यजुर्वेद में – श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते ३१ / २२ का वर्णन है। डा० रामकुमार दास जी "मानस तत्वान्वेषी (अयोध्या) का कथन है। श्रीसम्प्रदाय रामानन्द सम्प्रदाय को एवं लक्ष्मी सम्प्रदाय रामानुज सम्प्रदाय को कहना चाहिए। तजकीर तुलफुकरा में मौलाना रसीदुद्दीन ने कहा है कि श्री सम्प्रदाय की प्रवर्तिका (ऋषि) जगजननी (श्री) सीता जी हैं। उन्होंने प्रथमतः विशेष पार्षद हनूमान जी को मन्त्र दिया। सीता जी द्वारा उस रहस्य (राम मंत्र) का प्रकाश संसार को मिला अतः इस सम्प्रदाय को श्रीसम्प्रदाय एवं प्रमुख मंत्र को तारक मंत्र कहते हैं।

साकेत गमन – अगस्त्य संहिता में स्वामी रामानन्द का साकेत गमन वैशाख भुक्ता तृतीया विक्रम संवत् १४६७ है यथा –

श्रीमद्विक्रम वत्सरेऽश्वरस वारिमेन्दु संख्ये

स्त्यक्ता माधव मास के सुदि तृतीया तिथावुज्वलाम्

धर्मं भागवतं विमुक्ति फलकं विन्यस्य जीवेषुवै

रामानन्द सुदेभिक स्ममगयन्त्य साकेत लोकं परम्॥

इसका अर्थ है कि आचार्य रामानन्द स्वामी वि० सं० १४६७ वैशाख भुक्ता तृतीया को संसारी जीवों में भगवद्भक्ति का मोक्ष के लिए प्रचार कर इस धरा धाम से साकेत धाम को चले गये। इस मत को मानने वाले डा० ग्रियर्सन, डा० पीताम्बर दत्त पडवानल, डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव आदि हिन्दी साहित्य के विद्वान् हैं। भक्तमाल की रामरसिकावली टीकाकार रीवा नरेश रघुराज सिंह ने १०७ वर्ष तक स्वामी जी की आयु ठहराया है -

वर्ष सप्तगत लौ तनु राख्यौ, परमारथ तजि और न माहयो तासु प्रभाव विदित चहुं वाही।

भरतखण्ड जानत को नाहीं॥

श्री नाभाजी ने अपने भक्तमाल स्वामी रामानन्द की आयु निश्चित नहीं बताया है किन्तु रघुराज सिंह कैसे

'वर्ष सप्तभत' कहा बताया नहीं जा सकता। नाभा जी ने समय का संकेत 'बहुत काल' कहा है।

बहुत काल वपु धारि कै, प्रणत जनन को पार दियो।

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों युतिय सेतु जगतरन कियो॥

स्वामी रामानन्द को इतिहासकारों एवं साहित्यकारों में 'भक्तमाल' सबसे कम आयु मानने वाले 'फर्कुहर साहब' हैं मात्र ७० वर्ष की आयु पर उन्हें सन्तोष है। जाजेग्रियसेन पड़थ्वाल डा० ग्रीवास्तव ने १११ वर्ष माना तो 'भागवत' सम्प्रदायकार बलदेव उपाध्याय तथा आलोचक सम्राट् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल १०० वर्ष की अवस्था वाला स्वामी रामानन्द को माना है किन्तु तिथियों तथा संवत् में अंतर है। डा० श्रीकृष्ण लाल ने स्वामी रामानन्द को १३४-३५ वर्ष ही जीवित रहने को कहा है। रामानन्द सम्प्रदाय के दो विद्वान् स्वामी भगवदाचार्य ने "प्रसङ्ग पारिजातम्" का अनुसरण करते हुए १४९ वर्ष माना गया है एवं योगिराज गोवत्स जी ने १५९ वर्ष से भी अधिक होने को कहा है। स्वामी रामानन्द को सभी इतिहासकारों ने योगी स्वीकार किया है। पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ योगी के लिए कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। कल्याण सन्त अंक में काशी के तैलंग स्वामी के सम्बन्ध २८० वर्ष की अवस्था में महासमाधि लेने को कहा गया है। यथा—

प्रायः पचास वर्ष पूर्व तैलंग स्वामी नामक काशी में महात्मा हो गये हैं। आप एक प्रसिद्ध योगी एवं जीवन भुक्त सन्त थे। भूत, भविष्य एवं वर्तमान की बातें जानते हैं। किसी के आने पर बिना बताए उनके मन को प्रश्न बता देते थे। जल-थल, मान-अपमान, शीत-ऊष्ण सब आपके लिए समान था। ये सदा पर दुःख कातर रहा करते थे। मान,प्रसिद्धि से ब्रहुत दूर भागते थे। जल पर पद्मासन लगाना, गंगा जी में तीन-तीन दिनों तक डूबे रहना, समाधि लगाकर दूर की बात जान लेना आकाश में निराधार स्थिर इत्यादि बातें उनके लिए साधारण थी।

आधुनिक काल में एक सन्त योगी पुरुष की आयु २८० वर्ष है तो सात सौ वर्ष स्वामी रामनन्द को योगेश्वर मानने पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए जिनका साकेत गमन आचार्य शुक्ल ने वि० सं० की १६ शताब्दी के तृतीय चरण तक माना है अर्थात् सम्वत् १५५० से १५७५ के बीच माना जाता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने १५१० ई० सन् अर्थात् वि० सं० १५६७। ये स्वामी रामानन्द की मृत्यु माना जाता है। उपाध्याय जी की दी हुई मृत्यु तिथि अधिक समीचीन है। अतः स्वामी रामानन्द जी की आयु (वि० सं० १५६७—१३५६) २११ वर्ष थी।

* * *

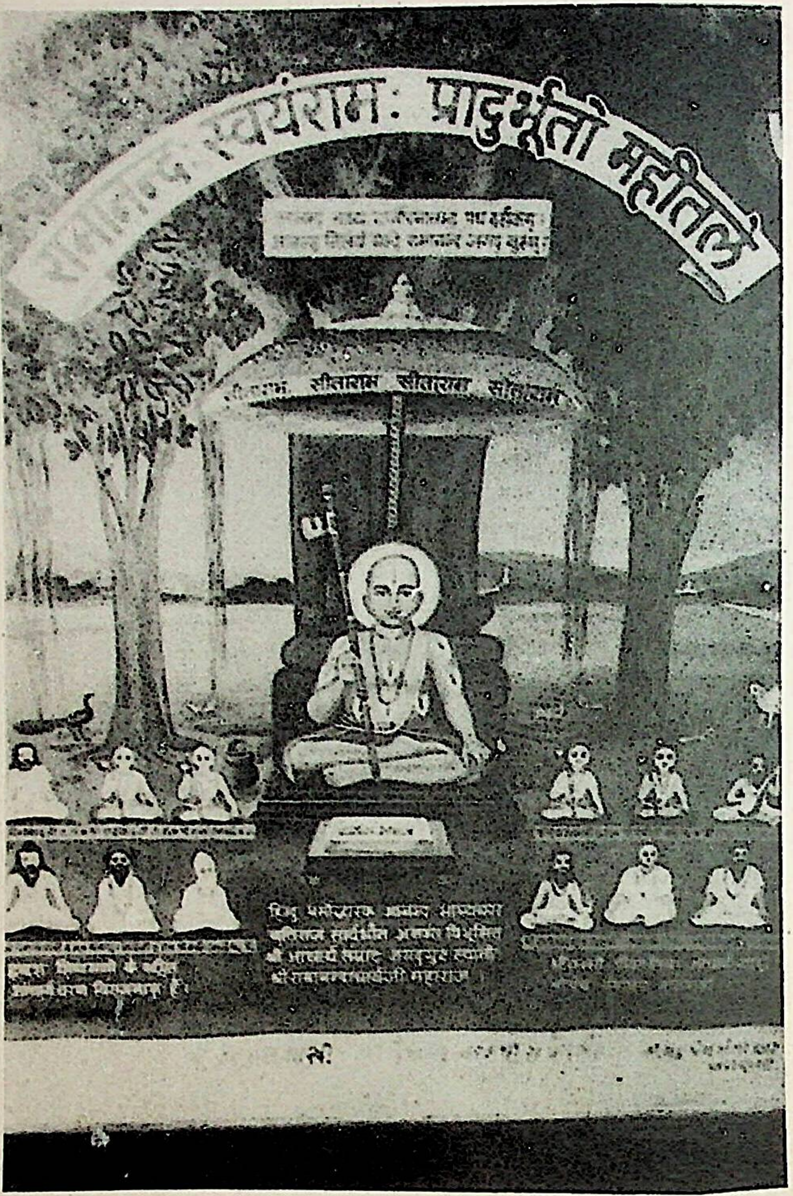
स्वयंरामः प्रादुर्भूतो महीतले
सीताराम सीताराम सीताराम

द्वादशप्रधान शिष्यों के मध्य विराजमान आद्य जगद्गुरू
रामानन्दाचार्यजी महाराज

द्वादश महाभागवत

जगद्गुरु श्रीस्वामी अनन्तानन्दाचार्यजी महाराज

"अनन्तानन्द पद परसि कै लोक पाल से ते भए ॥

योगानन्द गयेश करमचन्द अल्ह पैहारी।
सारी रामदास श्री रंग अवधि गुण महिमा भारी ॥

तिनके नरहरि उदित मुदित महामंगल तन,
रघुवर यदुवर गाय विमल कीरति संच्यौ धन ॥

हरि भक्ति सिन्धु वेला रच्यौ पाणिपद्म जा शिर दए।
अनन्तानन्द पद परसि कै लोकपाल से ते भए ॥ (भक्तमाल श्री नाभाजी कृत)

श्री स्वामी अनन्तानन्दाचार्य जी के श्रीचरण-कमलों का स्पर्श करके अर्थात् उनके शिष्य, सेवक एवं शरणागत बनकर वे लोकपालों के समान भक्ति एवं भक्तजनों का पालन करने वाले हुए। जिनमें प्रधान ये हैं — श्रीयोगानन्द जी, श्री अल्ह जी, श्रीपयहारी जी, श्रीरामदास जी, और श्रीरंग जी। ये सभी परम प्रतापी एवं उत्तम गुणों की सीमा हुए। उनके शिष्य के रूप में परम प्रसन्न श्रीनरहरि जी का उदय हुआ। ये निरन्तर भक्ति की वर्षा करने वाले मेघ के समान मंगलमय शरीर धारण करने वाले हुए। श्रीअनन्तानन्दाचार्य जी ने एवं उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने श्रीरामचन्द्र जी एवं श्रीकृष्ण जी का निर्मल यश गान करके पवित्र कीर्ति रूपी धन का संग्रह किया। श्रीअनन्तानन्दाचार्य जी भगवद् भक्ति रूपी समुद्र की मर्यादा थे। 'श्रीहरिभक्ति सिन्धु -वेला' नामक ग्रन्थ की रचना की। पद्मजा श्री जानकी जी ने आपके सिर पर अपना वरद हस्त-कमल रखकर आशीर्वाद दिया और आपने जिसके सिर पर अपना पाणि-पद्म रखा, वह हरि भक्ति सिन्धु की मर्यादा अर्थात् श्रेष्ठ भक्त हो गया।

श्रीमद् भागवत में यह कथा प्रसिद्ध है कि श्रीकृष्ण की गोचारण लीला से मोहित हो स्वयं ब्रह्मा को मर्त्यलोक पर आना पड़ा। सरवार प्रदेश में अयोध्या के निकट 'महेशपुर' नामक ग्राम में पं० विश्वनाथ मणि त्रिपाठी नामक धनाढय तपस्वी ब्राह्मण-बालक ने तेरह वर्ष की अवस्था में कठोर तपस्या से सरस्वती को प्रसन्न कर साक्षात्कार किया तथा वरदान में उनकी अनुपम रूपराशि पर मोहित होकर सुरति-प्रसंग की याचना कर बैठा। जिस रूपराशि से मोहित होने के कारण ब्रह्मा को भी अपना मोहग्रस्त शरीर त्यागना पड़ा था, उसी दिव्य सौन्दर्य की स्वामिनी सरस्वती ने उन्हें यह वरदान "तुम्हें लौहयुवक न्याय से एक क्षण के लिए वरूँगी तथा ब्रह्मांश से एक पुत्र को उत्पन्न कर अन्तर्हित हो जाऊँगी और तुम मेरे वियोग में प्राण त्याग करोगे" देकर अन्तर्हित हो गयीं। कुछ दिनों के बाद साऊँ ग्रामवासी पं० विशालदेव शुक्ल के घर कन्या रूप में भगवती का अवतार हुआ तथा सयानी होने पर पं० विश्वनाथ मणि त्रिपाठी के साथ विवाह सुसम्पन्न हुआ। विक्रम संवत् १३६३ के कार्तिक पूर्णिमा, दिन शनिवार, कीर्तिका नक्षत्र में नदी में स्नान करते समय धारा में प्रसव हुआ तथा पुत्र को वन देवियों को सौपकर स्वयं अन्तर्हित हो गयी। पं० विश्वनाथ विरह में विक्षिप्त रहने लगे। साथ ही कुछ ही वर्षों के बाद पुत्र को एक गोप-स्त्री को सौपकर स्वर्ग सिधार गए। गोप-दम्पती के संरक्षण में पालित

शिशु 'छुन्नू" पांच साल की अवस्था में ही गोचारण करने जाया करता था। एक दिन वन प्रदेश में मोहक वंशी ध्वनि का अनुसरण करता हुआ, वहाँ पहुँचा, जहाँ एक मनोहर श्यामा शिशु वंशी बजाकर अपनी श्यामा गायों क चरा रहा था। परिचय के क्रम में उसने अपना नाम 'संवरू' बताया। इस प्रकार बालक छन्नू की बाल लीला साक्षात् पर ब्रह्म के साथ होती रहीं। लीला के क्रम में कलि में द्वापर की अवतारणा नित्यप्रति होती रही। ए शाम छन्नू संवरू के घर जाने का हठ करने लगा। उस बालक को क्या मालूम कि व्यापक परमेश्वर का सा ब्रह्माण्ड ही घर है। अस्तु, संवरू उसे लेकर गोवर्धन पर्वत पहुँचा। उसके स्वागत में वहाँ विभिन्न लीलाओं त कथा का आयोजन किया गया था। श्रीमद्भागवत की कथा श्रवण करते हुए ब्रह्मा के मोहप्रसंग में छन्नू अचान ही मूर्च्छित हो गया तथा लीला नागर अपनी लीलाओं को सिमेट कर अन्तर्हित हो गए। होश आने पर छन् स्वयं को एक बीहड़ जंगल में पाया। अब भी उसकी चेतना संवरू के प्रति आकृष्ट थी। यहीं यमुना के किना पं० श्याम किशोर जी से उसकी भेंट हुई। पण्डित जी ने पुत्रवत् स्नेह करते हुए छन्नू को उपनयन संस्कार क बाद वेद-वेदांग पढ़ाकर महान् विद्वान् बना दिया। छन्नू ने पण्डित जी द्वारा प्रस्तुत विवाह-प्रस्ताव को शिष्टत पूर्वक अस्वीकार कर दिया। तथा भगवच्चर्चा में लीन रहने लगे। पं० श्याम किशोर जी भी शिष्य की प्रतिमा ए भक्ति से प्रसन्न थे। इसी बीच तुगलन्दराज के सेनापति द्वारा चढ़ाई किए जाने पर आप दोनों गुरु-शिष्य अयोध्या होते हुए काशी आकर विद्वद् मण्डली में सुप्रतिष्ठित हो गए।

पं० छन्नू लाल जी विश्वनाथ मन्दिर के निकट ब्रह्मपुरी मुहल्ले में रहते थे। बाल्यावस्था में प्राप्त भगवा की अहैतुकी कृपा से भावी भगवत्कृपा पर छन्नू का विश्वास दृढ़ था। महाशिवरात्रि का रात्रि-जागरण प्राची काल से प्रचलित है। इसी रात्रि को विलक्षण शंख-ध्वनि को सुनकर छन्नूलाल की रही-सही भावनाएं भी न हो गयीं। सात्त्विक वृत्तियों का उद्रेक हुआ और वे शंख-ध्वनि के उद्गम- स्थल पंचगंगा घाट पर स्थित श्री रामानन्दाचार्य जी के श्रीमठ पर पहुँच गए। आचार्य श्री का दर्शन होने पर उनकी आज्ञा से काशी का प्रकाण्ड विद्वान् छन्नूलाल भक्तिपूर्वक आश्रम की सफाई के साथ ही हृदय की भी सफाई करने लगे। भक्तिपूर्वक एक साल की निरवच्छिन्न सेवा से प्रसन्न होकर आचार्य श्री ने इन्हें गुरुदीक्षा प्रदान कर कृतार्थ किया। यहीं से पं छन्नूलाल 'अनन्तानन्द' के नाम से प्रसिद्ध हुए। अब वे अधिक तत्परता के साथ गुरु तथा आश्रम की सेवा कर हुए गुरु प्रसाद से बिना किसी साधन के ही जीवन मुक्त हो गए।

एक बार दोपहरी में आकाश-मार्ग से सिद्ध सन्त आश्रम पर पधारे। श्री अनन्तानन्द जी ने उन सिद्धों क स्वागत उसी ढंग से किया। अधर में ही आसन देकर, पैर धोकर उन्हें अधर में ही बैठाया। स्वामी जी के इ कृत्य ने सिद्धों को चमत्कृत कर दिया। जब कोई प्रतिष्ठित या सिद्ध सन्त स्वामी जी के दर्शनार्थ आते, दर्शन बिलम्ब होता तो आप सत्संग के सुशीतल जल से उनका मार्गश्रम दूर किया करते थे। आप गुरु जी के मनोभाव के अनुकूल वर्ताव करते थे, आश्रम में आगन्तुकों के मनोभावों को बिना बताये ही आप जान जाया करते थे ऐसी अन्तर्यामिता दूसरों के लिए अगम थी। काशी के पण्डितों को परास्त कर पाण्डित्याभिमान से परिपूर्ण ए काश्मीरी मीमांसक स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आया, किन्तु इनके निरभिमानी स्वभाव से पराभूत होकर इन चरणों का दास हो गया।

स्वामी रामानन्दाचार्य जी नित्य पायस सेवन किया करते थे। एक दिन दूध न मिलने के कारण अनन्तान जी बहुत परेशान थे। इसी बीच उनके बाल सखा श्रीकृष्ण संवरू रूप में ही उन्हें दूध दे गए। उससे निर्मि पायस में दिव्य स्वाद का अनुभव आचार्य श्री ने किया तथा मर्म जानकर अनन्तानन्द जी पर बहुत प्रसन्न हुए

ब्रह्मा की तृष्णा ही उन्हें अनन्तानन्द के रूप में कर्म जाल में डाल दिया था। उनकी लालसा पूर्ण हुई। पर ब्रह्म ही उन्हें गुरु रूप में प्राप्त हुए। गुरूपदेश से उन्हें उन सभी अवस्थाओं का ज्ञान हो गया, जिनका ज्ञान केवल शिवजी को था। साथ ही उनके द्वारा लोकोपकार हुआ। जिस प्रभु ने उन्हें बचपन में खेलाया, वे ही युवावस्था में गुरु रूप से प्राप्त हुए। फिर सिद्धि उनकी दासी क्यो न बने ?

एक बार गुरुजी की आज्ञा से कबीर के लिए जड़ी हेतु उन्हें गंगा पार जाना पड़ा, जहाँ कि रात वेश में षडक्षर मंत्रराज तारक ब्रह्म के परमनिष्ठ जापक श्री स्वामिकार्तिकेय जी ने दर्शन देकर दिव्यौषधियों का ज्ञान कराया। श्रीरामानन्दाचार्य जी की दिग्विजय यात्रा में भी अनन्तानन्द जी अनेक चमत्कार पूर्ण कौतुक दर्शाये हैं। एक बार समुद्र में स्नान करते समय पैर फिसल जाने के कारण अथाह जल में वे बह गये, जहाँ साक्षात् श्रीलक्ष्मी जी ने उनकी रक्षा की तथा अविरल भक्ति, तीव्रतम वैराग्य एवं सम्यग् ज्ञान का वैराग्य देकर तिरोहित हो गयी । इस घटना की चर्चा उन्होंने स्वरचित 'श्री हरि भक्ति सिंधु वेला' नामक ग्रन्थ में की है। दक्षिण भारत में साम्प्रदायिक उपद्रवों की शान्ति भी स्वामी जी के शान्तिप्रद विचारों का ही परिणाम था। कबीर और रैदास के कारण उपद्रव मचाने वाले दक्षिणी द्विजों के दुराग्रह को दमन करने के लिए स्वामी अनन्तानन्द जी ने धर्मदण्ड चलाया था। स्वामी जी ने गागरौनगढ़ और विजैनगर के राजसिंहासनों पर त्याग और अनुराग को प्रतिष्ठित किया।

स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य जी के सकेतवासी होने पर आपको वैष्णवाचार्य के पीठ पर अभिषिक्त किया गया। किन्तु गुरु विरह को सहन न कर सकने के कारण एक वर्ष के बाद ही अपने वरिष्ठ शिष्य पयोहारी कृष्णदास जी को आचार्य पीठ पर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं स्वच्छन्द परिभ्रमण हेतु चल पड़े। इस बीच आपने श्रीजामवन्त जी का भी दर्शन किया। आपने एक जैनी को वैष्णव दीक्षा दी, जो श्री रंग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आपने शरणागत अल्ह, गजेश और पयोहारी को भी दीक्षा दी। तत्पश्चात् परिभ्रमण करते हुए स्वामी श्री अनन्तानन्द जी काशी पंचगंगा घाट पर स्थित श्रीमठ में आये तथा गुरुपाद पीठ का दर्शन करते हुए ११३ वर्ष की आयु में योगाग्नि से अपने शरीर का अन्तकर साकेत गमन किए। उनमें स्थित ब्रह्मांश चतुर्मुख ब्रह्मा में लीन हो गया।

इति

★★★

महाभागवत

स्वामी श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी महाराज

'महिमा महाप्रसाद की सुरसुरानन्द सांची करी ॥
एक समय अध्वा चलत बरा वाक छल पाये ।
देखा देखि शिष्य तिनहु पीछे ते खांये ॥
तिन पर स्वामी खिझे बमन करि विन विश्वासी ।
तिन तैसे प्रत्येक भूमि पर कीनी रासी ॥
सुरसुरी सुबर पुनि उदगलै पुहुप रेणु तुलसी हरी ।
महिमा महाप्रसाद की सुरसुरानन्द सांची करी ॥
महासती सत उपमा त्यों संत सुरसरी को रह्यो ।
अति उदार दम्पत्ति सुगेह तजि बन को गवने ।
अचरज भो तहँ एक संत सुनि जिनि हो बिमने ।
बैठे हुते एकान्त आइ असुरन दुख दीन्ह्यो ।
सुमिरे सारंगपाणि रूप नरहरि को कीन्ह्यो ॥
सुरसुरानन्द की घरनी को सतराख्यो नरसिंह ज्यो ।
महासती सत उपमा सन्त सुरसरी को रह्यो ॥

(श्री नाभा स्वामी)

परम भागवत, ब्रह्मपुत्र नारद मुनि को एक बार विवाह करने की अत्युत्कट इच्छा जागृत हुयी । किन्तु भक्तवत्सल भगवान् ने उस समय उनकी इच्छा को पूर्ण न होने दिया । इसी इच्छा की पूर्ति हेतु भगवत्प्रेरणा से कलियुग में उन्हें मर्त्यलोक पर अना पड़ा । लखनऊ के पास 'पैरवम' ग्राम के निवासी पं० सुरेश्वर शर्मा परम ज्ञानी धर्मनिष्ठ, गोब्राह्मण सेवी, सरल प्रकृति के ब्राह्मण थे । उनकी धर्मपत्नी भी हर तरह से उनकी अनुगामिनी

थी। भला परम भागवत नारद मुनि को मर्त्यलोक में इससे सुन्दर घर-परिवार अन्य कौन मिलता। वैशाख कृष्ण, नवमी, गुरुवार वसन्त ऋतु की मंगल बेला में पं० सुरेश्वर शर्मा की पत्नी 'सरला' के गर्भ से पुत्र रूप में महाभागवत नारद मुनि का प्राकट्य हुआ। जैसा कि उल्लेख है –

"जातः सुरसुरानन्दो नारदो मुनिसत्तमः।

वैशाखसितपक्षस्य नवम्यां स वृषे गुरौ॥ अं० सं० १३२।२९

जन्म से ही इनके साथ आश्चर्य जनक घटनाएं होने लगीं। जन्म के समय साधारण बच्चों जैसा क्रन्दन न हुआ, अपितु संगीत की सुमधुर रागिणी उच्चरित हुयी। सभी लोग निहाल हो गए। बच्चे का नाम सायण रखा गया।

काल-चक्र ने आठ वर्षों की अवधि को पूरा किया। इस बीच बालक के प्रत्येक जन्म-दिवस पर उसके मातुल के रूप में एक दिव्य विभूति आकर बालक को आशीर्वाद दिया करती थी। उपनयन संस्कार में भी बिना बुलाये ही वह दिव्य विभूति प्रकट होकर अपने अमोघ आशीष से बालक को कृतार्थ कर गयी। उपनयन के बाद बालक सायण लगातार गायत्री का अनुष्ठान करने लगा। इस काल में राम धुनि भी लगती, जिससे आबाल-वृद्ध प्रभावित थे। जब मन्त्रों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गयी तो वेद माता गायत्री के प्रताप से बालक को समस्त श्रुतियों का ज्ञान स्वयं ही हो गया। इनकी तपस्विता से प्रभावित होकर एक विप्र कन्या इन पर आसक्त थी, जिससे इनके अनुष्ठान में कुछ व्यवधान होने लगा, किन्तु ठीक समय वही दिव्य विभूति, जो साक्षात् भगवान् लक्ष्मी नारायण ही थे, ने इन्हें सचेत किया और उनकी ही आज्ञा से आप काशी आ गए। विप्र कन्या भी इनकी अनुगामिनी होकर काशी आ गयी। गंगा-स्नानार्थं आप पंचगंगा घाट पर पधारे, जहाँ श्रीमठ में स्वामी रामानन्दाचार्य जी का सदुपदेश हो रहा था। एक सत्संग प्रेमी को इससे सुन्दर खुराक और कहाँ प्राप्त होगा? अतः आपका मन श्रीमठ में रम गया और वहीं आप भक्ति-भजन करने लगे। आचार्य श्री की अनुकम्पा से सायण का मोह भंग हुआ था चर्चित दिव्य-विभूति का रहस्य भी ज्ञात हुआ। विप्र कन्या 'सुरसुरी' भी यहाँ आ चुकी थी । अतः आचार्य ने शरणागत सायण और सुरसुरी को दीक्षा दी। यहाँ से सायण स्वर सारानन्द (सुरसुरानन्द) के नाम से विख्यात हुए। आचार्य श्री की आज्ञा से आप सुरसुरी के साथ स्वदेश वापस आकर धूमधाम से सुरसुरी के साथ विवाह-संस्कार सम्पन्न किए। कुछ काल तक घर पर रहने के बाद माता-पिता से आज्ञा लेकर आप सपत्नीक भजन हेतु अरण्य-वास के लिए चले गए। वहाँ साधना-क्रम में अनेक प्रकार से आपकी परीक्षा ली गयी, किन्तु धीरमति सुरसुरानन्द सभी प्रकार से सफल रहे। एक रात्रि कोई यवन सुरसुरी के सौन्दर्य से आकृष्ट हो उसका अपहरण करने आया, किन्तु ठीक समय पर व्याघ्ररूपधारी भगवान् ने यवन को मारकर उसकी रक्षा की इसके बाद सुरसुरी, जो स्वयं भगवान् की योगमाया थी, अपने तथा सुरसुरानन्द के मर्त्यलोक आगमन का रहस्य बताकर वैकुण्ठ धाम चली गयी।

सुरसुरानन्द भक्ति-सत्संगति का प्रसाद बाँटते हुए परिभ्रमण करने लगे। इनकी भक्ति-विरक्ति से प्रभावित होकर अनेक सद्गृहस्थ तथा सन्त-महात्मा इनके शिष्य हो गए। जिनमें रहस्यानन्द, कुमारानन्द, चिद्घनानन्द, रसिकेन्द्रदास, विट्ठलदास, रामदास आदि विरक्त शिष्य प्रसिद्ध हैं। स्वामी सुरसुरानन्द जी अपनी सरल प्रकृति से सभी की इच्छाओं का पालन करते थे। एक बार एक पाखण्डी वैष्णव मांस युकत बरा में तुलसीदल रखकर स्वामी जी को अर्पित किया। स्वामी जी उसे महाप्रसाद के रूप में ग्रहण किए। उनके भाव

अलग-अलग थे। स्वामी जी ने बरा का रहस्य खोलकर शिष्यों को वमन कराया तो मांस युक्त बरा निकला, किन्तु स्वामी जी ने तुलसी और पुष्प का वमन किया। इस प्रकार महाप्रसाद का महत्व प्रतिपादित कर आगे बढ़े। रास्ते में एक मृतक को जिला कर अनेक प्रकार से भक्ति और सत्संग का सदुपदेश देते हुए आप श्रीमठ (काशी) आ पहुँचे। गुरु चरणों का दर्शन-पूजन किया और आश्रम में रहकर भक्ति-रसामृत का पान करने लगे। गुरु के सदुपदेश से इनके समग्र संशय छिन्न-भिन्न हो गए, गुरु चरण का अमोघ अभय वरदान तथा आज्ञा प्राप्त कर आप तिरूपति पधारे। वहाँ उस समय मुसलमानों का बोल-बाला था। गान्धर्वों वसुन्धरा, ने पुष्पदन्ताचार्य के शाप से फातिमा नाम से यवन कुल में जन्म ली थी। उसे श्री विग्रह में ही गति पाना था। उसकी भक्ति से आकृष्ट होकर श्रीरंग जी का विग्रह मंदिर से लुप्त हो गया था। श्री वेंकटेश की सत्प्रेरणा से प्राप्त आकर्षणी विद्या के द्वारा आपने पुनः मन्दिर में श्री रंग के विग्रह को पधराया और वहीं आकर फातिमा श्री विग्रह में विलीन हुयी। यहाँ का मुसलमान शासक स्वामी जी से अत्यन्त प्रभावित होकर सभी उपद्रवों को बन्द करवा दिया और स्वच्छन्द रूप से पूजा-पाठ की छूट दे दी।

स्वामी जी भगवदाराधन में आत्म-विभोर हो जाते थे, उस समय स्वयं भगवान् को इनकी रक्षा करनी पड़ती थी। भगवदाज्ञा से आपने पांचरात्र की १०८ संहिताओं को प्राप्त कर लोक कल्याणार्थ प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् पुनः काशी आकर गुरु दर्शन किए व श्रीमठ में ही कुछ काल रहकर गुरु आज्ञा से वैदिक धर्म का प्रचार एवं अधर्म का उच्छेद हेतु पंजाब चले गए। पंजाब में वैदिक धर्म की स्थापना करने के बाद अपने अन्तिम समय में आप श्री अयोध्या आ गए। सरयू के तट पर सानुज भगवान् श्रीराम के दर्शन प्राप्त हुए। भगवान् अविरल और अविचल भक्ति का वरदान देकर अन्तर्हित हो गए।

भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर सुरसुरानन्द जी विकल हो रात्रि भर सरयू तट पर लोटते रहे। निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रही। सुबह होने पर एक राजहंस आया और स्वामी जी से गुरु-दीक्षा प्राप्त की। उसी राजहंस के पीठ पर सवार होकर स्वामी सुरसुरानन्द जी ने साकेत लोक के लिए महाप्रयाण कर दिया।

॥ इति ॥

★★★

महाभागवत स्वामी श्रीसुखानन्दाचार्यजी महाराज

'भक्ति दान भए हरण भुज सुखानन्द पारस परस ॥
सुख सागर की छाप राग गौरी रूचि न्यारी।
पद रचना गुरु मंत्र मनो आगम अनुहारी ॥
निशि दिन प्रेम प्रवाह द्रवत भूधर ज्यों निर्झर।
हरिगुरु कथा अपार भाल राजत लीला भर ॥
भक्ति दान भए हरण भुज सुखानंद पारस परस ॥

(श्री नाभा स्वामी)

उज्जैन के समीपस्थ ग्राम किरीटपुर के निवासी पं० त्रिपुरारि भट्ट की धर्मपत्नी जाम्बुवती संतान-हीन होने के कारण सास से तिरस्कृत होकर अपनी मैके काशी आ गयी तथा यहीं रहती हुयी अपनी कठोर साधना से भगवान् शंकर को प्रसन्न कर उनके समान पुत्र प्राप्ति का वर प्राप्त किया। तदनन्तर वह पतिगृह आ गयी थी और सद्गृहस्थ के धर्मों का विधिवत् पालन करती हुई वैशाख शुक्ल नवमी तिथि को प्रसव पीड़ा के बिना ही पुत्र-रत्न को जन्म दिया। जन्म से ही बालक में अलौकिक गुणों का दर्शन विज्ञों को होता था। बालक के मस्तक पर द्वितीया की चन्द्राकृति बनी हुयी थी। जिससे कभी-कभी दिव्य प्रकाश प्रसरित होता था, बालक का नाम 'चन्द्रहरि' रखा गया। बालक की आँखें सदा अर्ध उन्मिलित ही रहती थीं। ऐसा हो भी क्यों नहीं ? प्रकृति में वह सामर्थ्य ही नहीं था, जो बालक के पूर्ण उन्मिलित नेत्र-ज्योति को सहन कर सके। महाकालेश्वर से इसका रहस्य जानकर एक सिद्ध माली ने उनके माता-पिता को इसका रहस्य बताया, पर वे अभिप्राय न समझ सके।

बालक के साथ घटित अलौकिक घटनाओं से सभी लोग प्रभावित थे। धीरे-धीरे बालक चलने-फिरने लगा। एक दिन समीपस्थ विष्णु मन्दिर में जाते हुए ठेस लगने के कारण चन्द्रहरि गिर पड़े , तो एक अपरिचित बालक ने उन्हें गोद में उठा लिया। इसी दिन आपने पूर्ण उन्मिलित नेत्र से उस बालक को देखा। सदाशिव के पूर्ण स्फुट नेत्र- ज्योति का सहन करने वाला कोई साधारण बालक नहीं था, अपितु स्वयं भगवान् राम ही थे , एक दैवज्ञ ने इनके मस्तक को देखकर इन्हें १२ वर्ष तक नदी स्नान, कुँआ में झांकना, देखना आदि कार्यो से वर्जित किया था। अतः ये कहीं आते-जाते नहीं थे। मानों इन्होंने बचपन में ही सारी इच्छाओं को वश में कर लिया था। आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार के बाद आपको पाठशाला भेजा गया। आपने अपनी स्वाभाविक प्रतिमा से गुरु को चकित कर दिया। सभी विद्याओं का ज्ञान आपको जन्मजात ही था। शास्त्रार्थ में

अपने दादा को परास्त करने वाले पण्डित रंगराज दीक्षित को बारह साल की अवस्था में ही परास्त कर दिया। इनकी विजय के उपलक्ष्य में सभी लोग उत्सव मना रहे थे, किन्तु उन्हें यह विजय रास नहीं आया। सुविस्तृत जलपूर्ण कठौता में खाली ताम्रपात्र को तैरता हुआ देखकर, जो जल भरने से धीरे-धीरे डूबता जा रहा था, इन्होंने स्वयं को माया जाल में फँसता हुआ महसूस किया। यहीं पर जल में वे अपना प्रतिबिम्ब पूर्ण स्फुट नेत्र से देखकर स्तब्ध रह गए। आज उन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया था। वे हठ पूर्वक माता-पिता से आज्ञा लेकर काशी के लिए चल पड़े। एक पंचोली इनकी रक्षा हेतु अव्यक्त रूप से नियुक्त था।

रास्ते में एक रमणी, जो योग माया थी, ने आपको पथभ्रष्ट करने की कोशिश की। किन्तु यथासमय पंचोली द्वारा पंचामृत और तुलसी पाकर आप रक्षित हुए और यहीं आपने महाप्रसाद का महत्त्व जाना। ठाकुर के प्रति सहज अनुराग का उद्रेक हुआ। तत्पश्चात् भगवद् भजन करते हुए, अनेक सिद्ध सन्तों का दर्शन-सत्संग करते हुए कई दिन की दुःसाध्य यात्रा के बाद आप प्रयाग पहुँच गए। संगम पर काशी के एक सिद्ध संन्यासी रमाभारती विराज रहे थे। कुमार चन्द्रहरि के तेजस्वी मुखाकृति से आकृष्ट होकर उन्होंने कुमार को एकाक्षरी विद्या तथा अष्टांग योग सिखाया। संन्यासी महात्मा के साथ ही आप काशी आ गए। गंगा-किनारे घूमते हुह आपकी भेंट सिद्ध-सन्त रोली से हुयी। आपकी साधना तथा तेजस्विता से सभी प्रभावित हुए। उन्हीं की सलाह पर आप नीची बाग के एक पुराने मकान में रहकर साधना करने लगे, जो काफी लम्बे समय से बन्द पड़ा था। सुनसान भवन में तपःरततोतरुण योगी की प्रशंसा सुनकर दर्शनार्थियों और भक्तों की भीड़ लगने लगी। पंचोली द्वारा सूचना प्राप्त कर इनकी माता जी भी आयीं। तथा पुत्र के विवेकपूर्ण सान्त्वना वचन से संतुष्ट होकर वह घर वापस हो गयी। मॉंता अपनी तपस्या के फल से कृतकृत्य हो गयी।

कुछ दिन के बाद जनता का आवागम बन्द कर आप एकान्त वास करने लगे। इस बीच कुछ विचित्र घटनाओं से एक दिन चिन्तित होकर बैठे थे कि महर्षि ऋचीक ने दर्शन देकर पंचगंगाघाट श्री वैष्णवाचार्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के शिष्य बनने की प्रेरणा दी। आप संन्यासी महात्मा श्रीरमा भारती के साथ श्रीमठ में आचार्य श्री के दर्शन हेतु गए। गंगा-स्नान के बाद बिन्दु माधव का दर्शन कर आचार्य श्री का दर्शन किया तथा पूर्ण शरणागति के साथ गुरु दीक्षा की याचना की। चन्द्रहरि में शिष्यत्व की योग्यता देखकर आचार्य श्री ने उन्हें वैष्णवी दीक्षा दे दी। यहीं से आप 'सुखानन्द' के नाम से प्रख्यात हुए। आचार्यश्री की आज्ञा पाकर आप रमाभारती जी के साथ चित्रकूट के लिए प्रस्थित हुए। महर्षि बाल्मीकि के आश्रम के पास बहती हुई नदी की स्वच्छ धारा पर एक अलौकिक शिशु प्रकट हुआ तथा सुखानन्द जी को सांकेतिक-भाषा में कुछ निर्देश देकर अन्तर्हित हो गया। यहाँ से चलकर आप प्रयाग होते हुए चित्रकूट पहुँचे।

चित्रकूट में कुछ दिन रहकर भारती जी काशी वापस आ गए और स्वामी सुखानन्द जी राम शय्या पर रहकर भजन- सत्संग करने लगे। एक दिन तेजस्वी गौरांग दिगम्बर सन्त इनकी कुटिया पर आये और स्वामी जी को साथ लेकर घूमते हुए कामद गिरि पहुँच गए। पहाड़ी पर चढ़ते हुए एक जगह आप दोनों कुछ क्षण के लिए रुके किन्तु वहाँ से आप आगे न बढ़ सके। आपका शरीर स्तब्ध हो चुका था और आप वहीं लुढ़क गए थे। प्रातः एक मौनी सन्त ने आप को उठाने की बहुत चेष्टा की पर आप न उठ सके। उसी समय एक तेजस्वी सन्त ने आकर आपके कान में कुछ कुछ कहा तो आप उठे और सन्तों की सहायता से अपनी कुटिया पर पहुँचे। कुटिया पर सन्तो के साथ स्वामी जी का अपूर्व सत्संग हुआ। आनन्दातिरेक ने 'सुखानन्द' नामको सार्थक कर दिया।

एक यक्ष दम्पती, जो लोमशमुनि के शाप से पक्षी बनकर चित्रकूट में रह रहे थे, उनका उद्धार भी आपने किया तथा वैष्णवी दीक्षा के लिए काशी भेज दिया। स्वामी रामानन्द जी से दीक्षा प्राप्त कर वे पुनः चित्रकूट लौटे और स्वामी जी की सेवा करते हुए भजन करने लगे। यहीं आपने एक बगदादी यवन को दिव्यज्ञान कराया । यवन को अध्यात्म विद्या की तीव्रतम इच्छा थी। अतः आपने अपने अद्भुत स्वरूप का दर्शन भी कराया। घूमते-घूमते एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण स्वामी जी के पास आया। उस समय स्वामी जी राम धुन में मस्त थे। वह ब्राह्मण भी उसी धुन में मस्त हो गया। स्वामी जी के पूर्व परिचित तपस्वी बाबा भी आये और उस अलौकिक दृश्य को देखकर उसी में रम गए। प्रेम-आनन्द का अद्भुत-प्रवाह प्रवाहित होने लगा। उसी तरह सन्ध्या हो गयी, पर उनका ध्यान तब भंग हुआ, जब एक गौरांग तपस्वी बालक ने इन्हें आकर सचेत किया। ध्यान-भंग होने पर बालक की अनुपम रूपराशि में ही तीनों सिद्ध खो गए। बालक यह कहकर कि 'तुम हनुमान धारा पर कभी मत जाना, तुम वहाँ बच नहीं सकते" अन्तर्हित हो गया। उस बालक के जाने पर स्वामी जी सन्तों के साथ सत्संग करने लगे। किन्तु दूसरे ही दिन से उनकी दिनचर्या में परिवर्तन हो गया। वे ब्राह्म मुहूर्त्त में ही स्नानादि से निवृत्त हो, अपनी गुफा में बैठकर भजन करने लगते, किसी से मिलते जुलते नहीं। इस प्रकार तेरह साल की साधना के बाद वे बाहर निकले। इन दिनों क्या कुछ घटनाएं उनके साथ घटित हुईं। इस विषय में किसी को ज्ञान नहीं। तत्पश्चात् आप स्वच्छन्द, परिभ्रमण के लिए निकल पड़े । जन-सामान्य को अपने दर्शन और सत्संग से कृतार्थ करते रहे। स्वामी जी की भक्त मण्डली कोल-किरातों की थी। आपकी सेवा में एक ब्राह्मण रहता था। जो आपके सत्संग भाव से ज्ञानी हो गया था। एक दिन अचानक स्वामी जी गोदावरी की गुप्त गुफा में प्रवेश कर गए। उन्हें खोजने हेतु एक व्यक्ति मशाल लेकर भीतर गया, किन्तु मशक-दंश से पीड़ित होकर बाहर आ गया और रुग्ण रहने लगा।

मरणासन्न होने पर उसने स्वामी जी का ध्यान किया। स्वामी जी उपस्थित होकर अपने स्पर्श से उसे निरोग कर दिए और उसकी प्रार्थना पर पुनः रामशय्या पर आकर रहने लगे। यक्षदम्पती ने आकर स्वामी जी के दर्शन किए। उनकी प्रार्थना पर आप विपुल देवांगनाओं को दर्शन देने हेतु अनन्त कोटि पधारे। यक्ष दम्पती के सत्संग से उन्हें अध्यात्म विद्या का ज्ञान हो गया था। उन्हें अपने उपदेशामृत से कृतार्थ कर आनन्दातिरेक में शरीर की सुधी को विसारे हुए वापस हो रहे थे, तो रास्ता भटक कर वर्जित स्थान हनुमान धारा पर पहुँच गए। वहाँ मारुति नन्दन हनुमान जी ने इन्हें विराट रूप में दर्शन दिया जिसे देखकर आप भयभीत हुए। आपने गुरुदेव का ध्यान किया तो जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी ने आपको दर्शन दिया तथा उन्हीं की आज्ञा से योगाचार्य जी ने आपको दर्शन दिया तथा उन्हीं की आज्ञा से योगाग्नि के द्वारा आपने अपने शरीर का त्याग कर साकेत लोक के लिए प्रस्थान कर दिया।

★★★

स्वामी श्रीनरहर्यानन्दजी महाराज

"निपट नरहर्यानन्द को कर दाता दुर्गा भई।
झर पर लकड़ी नाहिं शक्ति को सदन उजारैं॥
शक्ति भक्त सो बोलि दिनहिं प्रति बरही डारैं।
लगी परोसिनि हबस भवानी भय सो मारैं॥
बदले की बेगारि मूडि वाके शिर डारैं।
भरत प्रसंग ज्यों कालिका लड्डू देखि तन में तई॥
निपट नरहर्यानन्द को कर दाता दुर्गा भई॥

भगवद् दर्शन में बाधा डालने के कारण एक बार सनत्सुजातीय को जय-विजय पर क्रोध आ गया और उन्हें शाप दे बैठे। यही क्रोध आपको कई बार मर्त्य लोक पर ले आया। पहली बार आप महाभागवत प्रह्लाद के रूप में आए और दूसरी बार मिश्रकुल में जन्म लेकर आप नरहर्यानन्द के नाम से प्रख्यात हुए। बृन्दावन के पास एक महेश्वर मिश्र रहा करते थे। देवी के मन्दिर पर धरना देकर आपने देवी का साक्षात्कार किया और उनके अलौकिक सौन्दर्य पर मोहित होकर वरदान में उन्हें पत्नी रूप से माँग लिया। बहुत समझाने पर भी वह नहीं माना। इसी अद्भुत संयोग से वैशाख, कृष्ण पक्ष तृतीया तिथि को बृन्दावन के केलिकुंज में बच्चे को जन्म देकर देवी अदृश्य हो गयी। नरवेशधारी देवों से पालित व पोषित बालक को यथा समय उपनयन संस्कार किया गया। तत्पश्चात् वह अपनी ही इच्छा से समित्पाणि होकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के शरण में आया, आचार्य श्री से दीक्षित होकर दैवीबुद्धि-सम्पन्न बालक नरहर्यानन्द एक माह वेदाध्ययन से श्रुति सिंद्धान्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया। गुरुकृपा से अन्य दर्शन व विद्याओं का भी उसे ज्ञान हो गया।

कार्तिक मासीय आकाश दीपकोत्सव के अवसर पर आप गंगा घाट पर स्नान कर रहे थे। घाट पर ही एक लम्बा बांस गाड़ा हुआ था। एक विप्र बालक उस बाँस पर चढ़कर नीचे देखा तो भय वशात् हाथ से बांस छूट गया और वह बालक गिरने लगा। ऋषिकुमार ने अपनी योग-शक्ति से बालक को त्रिशंकु की तरह अधर में ही लटका दिया और एक टोकरी में दैवी-शक्ति को अभिमंत्रित कर बालक को उसी में बैठाकर किनारे लगा दिया। इस घटना से आपके गुरुचरण व गुरुभाइयों में आपके प्रति आत्मीयता का भाव और बढ़ गया। दीनता, निष्कपटता, सत्यता सर्वाधारता, अनन्यता आदि गुणों ने तो आप में विश्रान्ति ही प्राप्त किया था।

भजन-सत्संग करते हुए कुछ समय आपने श्रीमठ में बिताया। पुनः गुरु आज्ञा से अदम्य उत्साह व

सुखानुभूति के साथ आप चित्रकूट के लिए प्रस्थित हुए। गंगा तट पर धीरे-धीरे घूमते हुए आप जब प्रयाग पहुँचे तो चातुर्मास्य व्रतका समय आ गया था, अतः आप वहीं एक दुर्गा मन्दिर के पास पीपल वृक्ष के नीचे डेरा जमा दिए। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के समय नित्य वर्षा होने के कारण सूखी लकड़ी के न मिलने के कारण भगवान् के लिए भोग न बना पाये थे। भक्त भगवान् को भूखा कैसे सुला सकता था। अतः वह पास स्थित देवी मन्दिर का खम्भा उखाड़ने लगा। भक्त के अनुराग से विभोर होकर देवी ने कहा कि तुम्हारे विस्तर पर प्रति दिन एक बोझ लकड़ी पहुँचा दूंगी, तुम मेरा सदन मत उजाड़ो। अस्तु, आप वापस हो गए। विस्तर पर सूखी लकड़ी आ चुकी थी। इस कृत्य से प्रभावित होकर एक वैश्य भी देवी का सदन उजाड़ने गया। पर देवी ने उस पर आक्रमण कर दिया और ऋषि कुमार हेतु प्रतिदिन एक बोझ सूखी लकड़ी पहुँचाने का वचन लेकर उसे छोड़ा। इस प्रकार के चमत्कार सुनकर दूर-दूर से भक्त उनके दर्शन हेतु आने लगे। नित्य प्रति सत्संग-कथा होती थी।

दुर्गा नवरात्र के अवसर पर देवी मन्दिर में भैंसो और बकरों की बलि पड़ती थी। किन्तु वैष्णव भक्त नजदीक था, अतः देवी ने कुमारी कन्या के रूप में ऋषि कुमार से गुरु दीक्षा लेकर चमत्कार पूर्ण ढंग से बलि को रोक दिया। दीपावली के दिन आज राघवेन्द्र सरकार के चारो ओर दीप जलाकर बीच में ध्यान मग्न हो गए। इसी बीच एक जुआरी जुआ खेलने हेतु एक दीप चुराने आया। ज्यों ही उसने दीप में हाथ लगाया, एक नागिन ने उसके हाथों को बांध लिया। अन्त में भगवान से बहुविध प्रार्थना करने पर वह नागिन-पाश से मुक्त हुआ और हमेशा के लिए जुआ खेलना छोड़ दिया। इसी प्रकार ऋषि कुमार सत्संग के द्वारा वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ ही सामाजिक बुराइयों का भी उन्मूलन किया करते थे। आपके कथा के अवसर पर यदि मेघ बरसने लगता था, तो जहाँ तक श्रोता उपस्थित होते थे, वहाँ तक एक बूंद भी वर्षा नहीं होती थी। चातुर्मास्य समाप्त होने पर आप वहाँ से चलकर घूमते हुए चित्रकूट पहुँच गए।

चित्रकूट के कण-कण में सहज अनुराग से युगल मूर्ति की दिव्य झांकी की अनुभूति होती थी। चित्रकूट में घूमते हुए आप मधुर स्वर का अनुकरण करते हुए एक गुफा में प्रवेश कर गए। वहाँ एक दिव्य सन्त ने उनका स्वागत किया। आप उसी गुफा में रहकर भजन, सत्संग करने लगे। दिव्य स्वाद से युक्त कन्दमूल फल वहीं प्राप्त हो जाया करता था। एक दिन तुलसी हेतु आप वाटिका में गए वहाँ आपको अनायास ही समाधि लग गयी । बहुत वर्षों के बाद एक योगिनी मण्डल ने आकर आपको समाधि से जगाया। सभी सन्त महात्मा आपकी ओजस्विता और साधना से प्रभावित थे।

एक दिन तुलसी खोजते हुए आप एक सुन्दर वाटिका में पहुँचे। एक बालिका ने उन्हें तुलसी दल उतारने से मना किया और कहा कि इस बाटिका की स्वामिनी महामाता अनुसूया हैं और उन्हीं की आज्ञा से कोई तुलसी ले सकता हैं। माता से मिलने की जिज्ञासा होने पर वह कन्या स्वामी जी को अनेक गुफाओं को पार करती हुयी, एक सुरम्य स्थान पर छोड़ दी तथा यह कहकर कि "माता यू ही दर्शन देगी " वापस आ गयी। वहाँ पर स्वामी जी को क्रमशः दो तेंदुए, दो कबूतर और दो मोर दिखायी दिए, पर माता के दर्शन न हो सके। समय बीतता गया। शाम से रात्रि हो गयी। स्वामी जी थककर सो गए तो महर्षि अत्रि के साथ माता अनुसूया ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया और बताया कि कलियुग में साक्षात् दर्शन का सहसा नियम नहीं है, अतएव मैंने तुम्हें तेन्दुआ, मयूर और कपोत दम्पती के रूप में दर्शन दिया था। माता ने उन्हें वहीं रहकर भजन करने की आज्ञा दी। अपनी गुफा से आसन लेकर आते समय बीहड़ में अपने इष्ट श्रीसीताराम का दर्शन किया और एक मुनि-ने उन्हें सचेत किया तथा माता अनुसूया के आश्रम पर पहुँचाया। माता जी के आश्रम में स्वामी जी ने समाधि में

बिना आहार के ५ वर्ष ३ माह व्यतीत कर दिए। जब तन्द्रा भंग हुई तो एक किरात तथा तुलसी वाटिका की कन्या उनकी सेवा में रत थे। जो साक्षात् उनके इष्ट ही थे। स्नानादि से निवृत्त होने पर स्वस्थ होकर आप आसन पर बैठे ही थे कि किरात वटु के रूप में लक्ष्मण जी कन्द-मूल -फल लेकर उपस्थित हो गए। स्वामी जी ने भोग लगाकर प्रसाद पाया तथा किरात वटु के जाने के बाद सो गए। स्वप्न में अनुज के साथ श्रीसीता-राम ने दर्शन दिया, किन्तु नींद टूटने पर कुछ भी नहीं था। विरहावस्था में रोते-रोते बेहोश हो गए तो माता अनुसूया ने आकर सचेत किया तथा पूर्ववत् साधना करने को कहा। माता जी की अनुकम्पा से दत्तात्रेय जी का दर्शन प्राप्त कर सदुपदेश प्राप्त किये।

एक दिन महेश्वर ने दर्शन देकर कहा कि महर्षि बाल्मीकि का अवतार हो चुका है। वे सात वर्ष की अवस्था में हरिपुर में अनाथ-सा रह रहे हैं। अतः वहाँ जाकर उनको सम्भालों,स्वामी जी हरिपुर आ गए और बालक को प्राप्त कर उपनयन संस्कार करवाए तथा उनका नामकरण तुलसीदास के रूप में हुआ। बालक को वेद-वेदांग तथा राम चरित का ज्ञान कराकर पंचगंगा घाट पर स्थित गुरु- आश्रम श्रीमठ में आए। गुरु का दर्शन पूजन-किया। बालक तुलसीदास को एक महापण्डित को सौपकर आप चित्रकूट में माता के आश्रम पर आ गए और यहीं पर भजन करते हुए योगाग्नि के द्वारा पांच भौतिक शरीर का त्याग कर साकेत गमन कर गए।

★★★

स्वामी श्रीयोगानन्दाचार्य जी महाराज

— श्रीनाभा स्वामी

'योग सुपथ उद्धार हित योगानन्द कपिल भए ॥

श्री गुरु पद रज सेई सकल शास्त्रन मथि लीन्हें ।

विजय नगर मँह जाइ चरक कहँ विजय जु कीन्हें ॥

श्री रंगम मँह जाइ वाद करि वर बर जीत्यो ।

चित्रकूट ब्रज अवध अनंदहिं बहु दिन बीत्यो ॥

गुर्जर धर्म प्रचार करि कलिहिं धर्मसह जिन्ह जये ।

योग सुपथ उद्धार हित योगानन्द कपिल भये ॥

सिद्ध क्षेत्र में तपस्वी ब्राह्मण पं० मणिशंकर शर्मा जी ने तपस्या से सूर्यनारायण को प्रसन्न कर पुत्र प्राप्ति का वरदान प्राप्त किया था। जिसके फलस्वरूप उनकी पत्नी के गर्भ से विक्रम संवत् १४५७ के वैशाख कृष्ण पक्ष सप्तमी तिथि, दिन बुधवार को महाभागवत कपिलदेव जी.एक तेजस्वी पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए —

"वैशाखकृष्ण सप्तम्यां मूले परिघ संयुते ।

बुधे कर्केऽथ कपिलो योगानन्दो भविष्यति ॥ अं० सं० १३२।३८

बालक में परम वैष्णवत्ता तथा विद्वत्त के लक्षण जन्म से ही परिलक्षित होते थे। वह दीपक की ज्योति को सदा ही निरखता रहता था। दीपक बुझने पर तब तक रोता ही रहता जब तक दीपक जल न जाए। बहुत ही धूमधाम से बालक का नामकरण संस्कार हुआ। इस तेजस्वी बालक का नाम 'यज्ञेशदत्त' रखा गया। यज्ञेशदत्त जब चार वर्ष का था तो एक सन्त घर पर पधारे। आप उनसे सीत प्रसाद माँग कर खाने लगे। जिसे देखकर भगवत् प्रियता का अनुमान सहज ही होता था। नौ वर्ष की अवस्था में आपका उपनयन संस्कार हुआ तथा विद्याभ्यास के लिए बांसवाड़ा में पं० श्रीनाथ जी के पास भेज दिया गया। गुरु को सेवा से प्रसन्न कर आपने अल्पकाल में ही चारों संहिताओं तथा व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् आप काशी आकर शास्त्री नारायण भट्ट की सेवा करते हुए न्याय, वेदान्त, साहित्य का अध्ययन करने लगे। इनकी तेजस्विता व विद्वत्ता से प्रभावित होकर एक ब्राह्मण, जो मरणासन्न थे, ने अपनी पौत्री 'रामगंगा' का हाथ इन्हें पकड़ा कर स्वर्ग गमन किया। काशी में ही कुटुम्बियों को बुलवाकर आपने शादी की तथा यहीं रहकर अध्ययन करते हुए

सर्वशास्त्र-निष्णत तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इनकी अभिरुचि योग विद्या में भी थी। आप परमयोगी भी थे। काशी में आप 'योगिराज पण्डित' के रूप में प्रसिद्ध थे।

आपकी पत्नी भी धर्म परायणा, पतिव्रता तथा सर्वतोभावेन पति की अनुगामिनी थी। पति को बहुत प्यारी भी थी। एक बार रुग्ण होकर वह मरणासन्न हो गयी, तो योगिराज ने योगबल से उसकी रक्षा की। किन्तु काल भी घात लागाए बैठा रहा। एक दिन आप गंगा पार जाकर सत्संग में रम गए और इधर आपकी धर्मपत्नी काल कवलित हो गयी। वापस आने पर आपने अन्त्येष्टि क्रिया की। श्राद्ध में अपना सर्वस्व दान कर विरक्त दीक्षा लेने हेतु श्रीरामानन्दाचार्य जी के आश्रम श्रीमठ पहुँचे। आचार्य श्री की आज्ञा हुई, "सौ घड़ी तक एक पांव से खड़े रहो, पांव हिलने न पावै।" आपने श्रद्धावनत होकर आज्ञा का पालन किया। परीक्षा सल हुई। आचार्य श्री की आज्ञा से स्वामी अनन्तानन्दाचार्य जी ने आपको वैष्णवी दीक्षा देकर सर्वथा सार्थक 'योगानन्द' नाम रखा।

गुरु-कृपा से प्रस्थानत्रयी तथा सांख्यादि का ज्ञान आपको सहज ही प्राप्ति हो गया था। आचार्यश्री की दिग्विजय यात्रा में स्तुति करते हुए ठाकुर जी को सिर पर धारण कर उल्टा पांव चलने में आप जैसे योगी ही समर्थ हो सकता था। ठाकुर जी की सेवा आपके ही जिम्मे रहती थी। आपकी योग-गाथा की ख्याति भक्तों व गुरु भाइयों में चर्चित थी। दक्षिण यात्रा में बालाजी मन्दिर में द्वार पालों द्वारा दर्शन हेतु रोके जाने पर योग बल से मन्दिर के गर्भ तक जाना आपके लिए सुलभ था। वैष्णव-शैव-विद्रोह की शमन-शक्ति आप में विद्यमान थी। अतः आचार्यचरण की आज्ञा से आप कुछ दिन वहीं ठहर गए। एक दिन एक लिंगायत से आपका शास्त्रार्थ छिड़ गया। मध्यस्थ कोई था नहीं , अतः आपने देवताओं को अधर में बैठाकर मध्यस्थ बनाया। तथा लिंगायत को शास्त्रार्थ में पराजित किया। कुछ दिनों तक यहाँ धर्म-प्रचार करने के बाद आप द्वारावती आ गए। नीड़पाद में एक पोखरा पर वटवृक्ष के नीचे आपका वास होता था। आप योगासिद्धि से सभी भक्तों की सत्कामनाओं को पूर्ण किया करते थे। वहाँ की रानी 'सूर्यवाला' को आपके आशीर्वाद से पुत्र की प्राप्ति हुई थी। एक दिन पक्षियों की टोली के रूप में सिद्ध-मण्डल आया। स्वामी जी ने सरसों छीट कर उन सिद्धों की शक्ति को स्तम्भितकर दिया तथा जल छीट कर उन्हें यथा-स्वरूप में कर दिया। ततः सिद्धों को प्रसाद-सेवन कराकर सप्रेम विदा किया।

आप जिस रास्ते से गुजरते थे, उस रास्ते करुणा वरुणालय भगवान् श्री राम की अविरल भक्ति धारा-प्रवाहित होती थी। इस प्रकार रामभक्ति का प्रचार तथा भक्तों का कल्याण करते हुए सुदामा पुरी होकर श्री द्वारिका पुरी आ गए। द्वारिका से एक भक्त के आग्रह पर आप मद्रास आ गए। श्रीरंग मन्दिर में भण्डारा का आयोजन था। सभी सन्त मोक्ष साधन पर विचार कर रहे थे। स्वामी जी भी पधारे। द्वितीय रामानुजाचार्य वरावर मुनि के साथ कुछ विवाद हो गया। उस विवाद में अपनी योग्यता से उनके भ्रम को दूर कर रामभक्ति का ध्वजा फहरा दिया। मुनिजी से विदा होकर आप कुरुक्षेत्र आ गए। सूर्य ग्रहण के अवसर पर अपार भीड़ लगी थी। बहुत-से सन्त-महात्मा पधारे थे। सभी एक बागीचा में थे। स्वामी जी भी वहीं पधारे। दिल्ली से एक शाहजी भी आए थे। वे भी भक्ति पूर्वक कलमा का पाठ कर रहे थे। आंखों में आंसू और दिल में अनपार भक्ति का सागर लहरा रहा था। स्वामी जी उनकी स्थिति देखकर मुग्ध हो गए। ग्रहण समाप्ति के बाद उनके साथ सत्संग में अपार आनन्द की अनुभूति स्वामी जी को हुई। तदनन्तर वहीं श्रीभाष्य तथा गीता का स्वाध्याय करते हुए कुछ दिन व्यतीत किए।

वहाँ से घूमते हुए आप श्रीबृन्दावन आकर रामघाट पर भजन करने लगे। वहाँ श्रीराधिका जी स्वयं ग्वालिन

के रूप में उन्हें दूध दे जाया करती थी। एक रात श्री राधाजी ने स्वप्न में दूध का रहस्य बताकर आज्ञा दिया कि यह स्थान छोड़ दें तथा ब्रज में भ्रमण करें। प्रातः काल ही स्वामी जी मस्त हाथी की तरह ब्रजधूर से शरीर को रंजित कर व्रज में घूमने लगे। अनेक दिव्य झांकियों के दर्शन से आनन्द की पराकाष्ठा प्राप्त किया। जिसका लेखबद्ध करना असम्भव ही है। क्योंकि वह सिर्फ अनुभवगम्य है। इस प्रकार स्वामी जी कई वर्षों तक श्रीवृन्दावन धाम में घूमते रहे। एक दिन श्री जी ने दर्शन देकर इन्हें आचार्य श्री के आगमन की सूचना दी तथा आचार्य श्री के जाने के बाद भी कुछ दिन यहीं वास करने की इच्छा जाहिर की। दूसरे दिन आचार्य श्री स्वामी जी भी आचार्यचरण का दर्शन किए तथा गुरुभाइयों से मिले। तीन दिन के बाद आचार्यचरण चले गए और आप गुरु आज्ञा से कुछ दिन के लिए वहीं ठहर गए। श्री जी की आज्ञा प्राप्त कर आप मस्त होकर चित्रकूट को चल पड़े। रास्ते भर आपको अपने शरीर की सुध न रही। रूप परिवर्तित कर श्री जी हर प्रकार से आपकी रक्षा करती रहीं। चित्रकूट पहुँचकर मन्दाकिनी में स्नानादि से निवृत्त होकर कन्या रूप में श्री जी द्वारा प्रदत्त दुग्ध-पान करने पर आपकी चेतना वापस आयी। वहाँ से उठकर आप एक वन में पहुँचे। वहाँ लक्ष्मण तथा सीता सहित श्रीराघवेन्द्र सरकार का दर्शन प्राप्त हुआ। श्री जी पास बुलाकर स्नेह से उनका समाचार पूछने लगी। तथा चित्रकूट रहने का आदेश देकर दिव्य झांकी समाप्त हो गयी। प्रभु के विरह से आप अधीर हो गए। अंग-अंग में आराध्य के विरह की चिनगारियां पुत गयीं। इस स्थिति में पुनः दिव्य -झांकी प्रकट भयी। श्रीद्वारा प्रदत्त फल खाकर आप मन्दाकिनी में हाथ धोने गए। इधर दिव्य झांकी लुप्त हुयी। बेचारे हाथ मलते रह गए। रात्रि में स्वप्न हुआ 'श्री अवध धाम चलो।' वही दर्शन होंगे। अस्तु आप अवध के लिए प्रस्थान कर दिए। अवध में सरयू तट पर भ्रमण करते हुए सभी देवताओ से वित भगवान श्री राम का दर्शन हुआ। श्री धाम में कुछ दिन विचरने के बाद आप श्री काशी आ गए। परमाचार्य श्री रामानन्दाचार्य जी साकेत वासी हो चुके थे। आपकी विक्षिप्तावस्था पर सभी लोग चकित थे। कुछ दिन वहाँ रहने पर आपकी अवस्था कुछ ठीक हुई तो अनन्तानन्दाचार्य जी की आज्ञा से आप पीपा महाराज के साथ गुजरात में धर्म प्रचार हेतु चले गए। वहाँ से आप गंगा सागर की ओर प्रस्थान कर गए और वहीं परम तत्व का ध्यान करते हुए गोलोक का गमन कर गए।

★★★

महाभागवत श्रीभावानन्द जीमहाराज

श्रीरामानन्दाचार्य पद अनुगामी मिथिलाधिपति ॥
परमतीव्र वैराग्य त्यागि तिय यति वपु लीन्ह्यो ।
पुनि गुरु आयसु मानि जाय गृह धर्म सु कीन्ह्यो ॥
त्रय "कुमार" हरिभक्ति मुक्ति कन्या एक जायो ।
पुनि गुरु पद महँ जाइ योग जप धर्म कमायो ॥
अनुभानन्दहिं शिष्य करि कीन्ह तिन्हैं वैष्णवाधिपति ।
श्रीरामानन्दाचार्य पद अनुगामी मिथिलाधिपति ॥

श्री नाभा स्वामी ,

विदेह राज पूर्व जन्म में राजा प्रज्ञानदेव थे। उनकी धर्मपत्नी सुमति देवी, पुत्रवधू शीलवनी एवं पुत्र मोहान्ध कुंवर थे। कर्मविपाक के कारण अगले जन्म में मिथिलाधिपति जनक हुए, जो महर्षि याज्ञवल्क्य के सत्संग से विदेह, मुक्त, अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठ हुए। किन्तु उनकी पत्नी, पुत्रवधू तथा पुत्र जन्म-मरण के चक्र में फँस गए यद्यपि उन्हें पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा। राजा जनक के पूर्व जन्म का सुविस्तृत कर्मानुबन्ध बना रहा। परमपद प्राप्त राजा को कलियुग में पुनः मर्त्यलोक पर आना पड़ा।

मिथिला प्रान्त के बहुवर्ह नामक ग्राम के निवासी हरिनाथ मिश्र जी तीर्थाटन करते हुए पंढ्रपुर (महाराष्ट्र) पहुँचे और वहीं अपनी गृहस्थी बसा लिए। उनके पुत्र थे– रघुनाथ मिश्र। जो अपनी विद्वत्ता व रामभक्ति के लिए विख्यात थे। युवावस्था के अन्तिम चरण में भगवान् विट्ठल की असीम अनुकम्पा से वैसाख, कृष्ण, सोमवार को मूल नक्षत्र में विदेह राज ने रघुनाथ मिश्र की पत्नी के गर्भ से जन्म लिया। पत्नी के प्रेमाग्रह पर अपनी पैतृक 'मिश्र' उपाधि का परित्याग कर श्वसुर कुल के पन्त उपाधि युक्त 'विट्ठल पन्त' उसका नाम पड़ा। प्रज्ञानदेव की पत्नी सुमति देवी ने भी एक विप्र कुल में रुक्मिणी नाम से जन्म लिया। सयाना होने पर जन्म-जन्मातर के सहचर-सहचरी का धूमधाम के साथ विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। दोनों को एक दूसरे के प्रति अटूट अनुराग था। पत्नी धर्मपरायणा, सुशीला, पतिव्रता थी। उनके पातिव्रत्य ने भिक्षार्थ आए योगी के बिलम्ब-जनित क्रोध से रसोई घर को जलाने के प्रयास को विफलकर योग पर पातिव्रत्य का ध्वज लहरा दिया था। ऐसी पत्नी के लिए पति का अनुराग सहज ही तो होगा। विट्ठल जी भी जल में कमल की भांति सांसारिक वासनाओं का अतिक्रमण कर भक्ति-पूर्वक रहा करते थे। पत्नी उनकी साधना में बाधा नहीं, सहयोगिनी थी। तथापि पति के सहज वैराग्य की ओट में उन्हें विरक्त-दीक्षा लेने की अनुमति कभी न दे सकी।

एक दिन विट्ठल पन्त के यहाँ भगवत्प्रेरणा से नागदम्पती पधारे । आध्यात्मिक वार्त्ता के बाद उन्हें घर छोड़ने पर विवश कर दिया नये मकान में एक रात्रि व्यतीत करने के बाद प्रातः पूरा घर सुवर्ण-मुद्रायें तथा अन्नादि आवश्यक सामग्रियों से भरा पाया । उन्हें आश्चर्य तो हुआ, किन्तु विरक्त-भाव के कारण हर्ष नहीं । उसी समय नाग दम्पती उपस्थित होकर उन्हें बताया कि यह सारा धन श्री राघवेन्द्र सरकार के दूत रख गए हैं । आप पर सांसारिक वासनाओं का कुछ भी प्रभाव नहीं है । इस धन से आप साधु, ब्राह्मण, दरिद्रनारायण आदि की सेवा कर लोकोपकार करें । यहीं भगवदिच्छा है । दूसरे दिन से सेवाव्रत प्रारंभ हो गया । बाहर से आते कुछ दीखता नहीं, पर घर से सदा ही परिपूर्ण रहा करें । ग्रामवासी प्रसन्न थे । किन्तु सांसारिक क्लेश के कारण उनके सगे-सम्बन्धी जल-भून गए । रहस्य जानने के लिए जो भी घर में जाए, वह दृष्टिहीन हो जाए । वहाँ उसे कुछ न दिखायी दे ।

अभ्यागतों की टोली में अच्छे-अच्छे सन्त भी आया करते थे । एक दिन गुदड़ी में लिपटे 'निराहारी बाबा' कहने वाले दिव्य सन्त पधारे । दर्शन मात्र से पातकियों के पापों को दूर करने वाले उस अलौकिक सन्त के मुखमण्डल पर विराजित अमित तेज चतुर्दिक् फैल रही थी । तीन दिनो तक पन्तजी का आतिथ्य ग्रहण करने के बाद बाबा जी ने कहा– "काशी में साक्षात् पर ब्रह्म श्रीराम ने अवतार लिया है । मैं उनका दर्शन करने काशी जाऊँगा ।" बाबा की इस वाणी को सुनकर परम विरक्त भक्त की चेतना जाग उठी । जीवात्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्यग्र हो उठी । जब जीवात्मा का प्रेम परमात्मा परक हो जाता है, जीव-ब्रह्म की एकता के अन्य साधन अनायास प्राप्त हो जाते हैं । पत्नी से अनुमति लेकर आप बाबा जी के साथ हो लिए । रास्ते में बाबा के साथ श्याम-गौर वटु को चलते देखकर पन्त जी ने बाबा के वेश में विश्वामित्र जी को पहचान लिया । बाबा ने भी पन्त जी के पूर्व जन्म का स्मरण करा दिया, जिसे जानकर पन्त जी मूर्च्छित हो गए, बाबा के प्रयास से होश होने पर उन्होने पर ब्रह्म की अनुपम छवि का दर्शन किया । पन्त जी उस छवि पर मुग्ध हो गए । उसी समय बाबा जी के साथ ही वह दर्शन भी अन्तर्हित हो गया । इस समय आप काशी के नजदीक पहुँच चुके थे । पर आप प्रिय-दर्शन के विरह में पागल हो काशी जाने की बात भूल चुके थे । ध्यान में मात्र वह अनुपम छवि ही बसी थी । अस्तु, वहीं पर दो सुन्दर बालकों ने उन्हें काशी जाने की बात बताकर उन्हें काशी पंचगंगा घाट पर पहुँचाया तथा आंखों से ओझल हो गए । अब पन्त जी ने समझा कि वे दोनों कौन थे । पन्तजी के पास पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं था । उसी समय श्रीमठ में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी मेघ गर्जना के समान गंभीर शंख फूंका, जिसे सुनकर आपकी अन्तर्चक्षु खुल गयी । गुफा के द्वार पर जाकर भगवान् को साष्टांग प्रणाम करते ही कृपा प्राप्त हो गयी । आचार्य श्री ने उन्हें वैष्णवी दीक्षा देकर कृतार्थ किया । पंढरपुर (आलिंदी) का विट्ठल पन्त अब 'भावानन्द' हो गए थे । जिसके हृदय-पटल पर सदैव राघवेन्द्र सरकार का दर्शन प्राप्त होता था । इस स्थिति में मोक्ष की इच्छा का भी ग्याग कर आपने भक्ति के आदर्श रूप को स्थापित किया ।

★★★

महाभागवत श्रीपीपा जी महाराज

— श्री नाभाजी महाराज

पीपा प्रताप जग वासना, नाहर को उपदेश दियौ ॥
प्रथम भवानी भक्त मुक्ति मुक्ति मांगन को धायौ।
सत्य कह्यौ तिहिं शक्ति सुदृढ़ हरि शरण बतायो ॥
श्री रामानन्द पद पाय भयौ अति भक्ति की सीवाँ।
गुण असंख्य निर्मोल सन्त धरि राखत ग्रीवाँ ॥
परसि प्रणाली सरस भई, सकल विश्व मंगल कियौ।
पीपा प्रताप जग वासना, नाहर को उपदेश दियौ ॥

परम भागवत मनुजी व सतरूपा ने भगवान् को प्रसन्न कर पुत्ररूप से प्राप्त किया तथा वात्सल्य रस का पान किया। कलिकाल में मनुजी भक्त और भगवान की सेवा हेतु पुनः मानव शरीर धारण किए। राजस्थान में गागरौनगढ़ के राजा कड़वारावं चौहान ने पुत्र के लिए भगवती की बहुत आराधना किया था। अस्तु, भगवती की असीम अनुकम्पा से संवत् १४१७ चैत्र पूर्णिमा के दिन उनकी पत्नी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम 'पीपाप्रताप' रखा गया। बचपन से ही महाभक्त होने के लक्षण बालक में विद्यमान थे। बढ़ती हुई अवस्था के साथ आपने विद्वानों के सान्निध्य में धर्म तथा राजनीति की शिक्षा प्राप्त की। पिता श्री के गोलोक गमन करने के बाद आप संवत् १४४२ में राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। पिता के समान ही आप का प्रजा के प्रति पुत्रवत् स्नेह था। साधु-ब्राह्मणों की सेवावृत्ति आपको परम्परा से ही प्राप्त थी।

देवी की आराधना आपके राज्य में घर-घर में होती थी। आप स्वयं देवी के महान् उपासक थे। आप हमेशा देवी के भजन-पूजन में मस्त रहते थे। एक दिन वैष्णव-सन्तों की जमात वहाँ आयी। सन्तों की ख्याति सुनकर पीपामहाराज रात्रि में वेश बदल कर दर्शन करने गए। दण्डवत् प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया। तीर्थ-प्रसाद ग्रहण किया, वापस महल में आकर सो गए। स्वप्न में एक सर्प ने कहा कि आज तुम वैष्णव सन्त का दर्शन किए हो, अन्यथा तुम्हें मार ही डालता। सुबह उठकर आपने देवी से अभय वरदान की माँग की। देवी के पास तो वह सामर्थ्य थी नहीं कि वह भक्त को अभय कर सके वह तो सिर्फ सांसारिक कामना की ही पूर्ति कर सकती थी। अतः उसकी प्रेरणा से राज-पाट को मंत्रियों पर सौपकर आप काशी में पंचगंगा घाट पर स्थित श्रीमठ में आ

गए। स्वामी रामानन्दाचार्य जी के दर्शन को बढ़े तो पुजारी ने यह कहकर रोक दिया कि 'हमें राजाओं से क्या काम ?' धीर-गम्भीर मती महाराज पीपा ने अपने साथ का समस्त ऐश्वर्य बांट दिया। सारे राज-चिह्न छोड़ दिए । एक मात्र धोती पहनकर पुनः शरणागति की भिक्षा माँगी, तो आचार्य श्री ने कहला भेजा कि 'कुआं में गिर जाओ।' आप सहर्ष कुँआ की ओर बढ़े। गेहाशक्ति तथा शरीराशक्ति से निवृत्त जानकर आचार्य श्री ने आपको रोका तथा मंत्र दीक्षा देकर.कृतार्थ किया। आचार्य श्री के आशीर्वाद से आप में अलौकिक परिवर्तन आया। वासनाएं स्वतः दूर हो गयीं। पुनः आप गुरु आज्ञा से अपनी राजधानी आ गए और राजमहल में श्री सीताराम सरकार को पधराकर निष्ठा पूर्वक सन्तों व ब्राह्मणों की सेवा करते हुए एक वर्ष तक राज्य सम्भाला। तत् पश्चात् गागनौरगढ़ में आचार्य श्री पधारे। चातुर्मास्य उत्सव अनेक शिष्य-प्रशिष्यों के साथ वहीं सम्पन्न कर चलने लगे तो पीपा महाराज भी सिंहासन पर भतीजे को बैठाकर साथ हो लिए। इस समय आपकी अवस्था सैंतीस वर्ष की थी। आपकी पन्द्रह वर्षीया छोटी रानी भी सभी वासनाओं को छोड़कर 'सीतासहचरी' के नाम से वैष्णव दीक्षा लेकर साथ हो ली थी। वैष्णव जमात के साथ राजा-रानी को विदा करते हुए सभी नगरवासियों ने देखा कि रानी के शरीर पर पड़ी कमरी की अलफी रेशम की हो गयी है। यह चमत्कार ही था।

जमात के साथ आप द्वारिका पुरी आ गए। कुछ दिन के बाद जमात तो आगे बढ़ गयी, पर गुरु आज्ञा से आप वहीं रहकर भजन-सत्संग तथा साधु-सेवा करने लगे। एक दिन आपकी प्रभु-दर्शन की उत्कट अभिलाषा हुई। मन्दिर की ओर विक्षिप्त-सा दौड़े। किसी ने मजाक में कह दिया कि प्रभु तो समुद्र में रहते हैं। क्या था, आप कूद ही तो पड़े। आपकी सहचरी छाया के समान साथ थी। इधर जनता में दुःख तथा अनेक प्रकार की चर्चायें व्याप्त थीं, उधर सपत्नीक आपके सम्मान में रुक्मिणी के साथ-साथ भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य द्वारिका के मुख्य द्वार पर खड़े होकर प्रतीक्षा कर रहे थे। सात दिनों का दिव्य द्वारिका का आनन्द लेकर भगवदाज्ञा से आप समुद्र पर चलते हुए, जनता को आश्चर्य में डालते हुए, अपनी भक्ति को पुष्ट करते हुए पुनः अपने स्थान पर वापस आए। दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ पड़ी। सभी को दिव्य द्वारिका की कथा आपने सुनायी तथा भगवत प्रदत्त शंख-चक्र से अंकित किया। वहीं एक राममन्दिर की स्थापना हुई। भीड़ होने के कारण वहाँ भजन में बाधा उत्पन्न हो रही थी, अतः एक दिन बहुत सबेरे आप दोनो वहाँ से चल पड़े। छः दिन तक चलकर एक जंगल में पड़ाव डाला। वहाँ कुछ पठानों ने सीतासहचरी का हरण करना चाहा, किन्तु श्रीनृसिंह भगवान् ने प्रकट होकर रक्षा की। आगे बढ़कर आपने एक सिंह का हिंसावृत्ति छुड़ाकर उद्धार किया। अब आप श्री चीधर भक्त के घर आए। गरीबी के कारण लहंगा वेचकर तथा स्वयं उधार रहकर भी साधु-सेवा के भाव को चीधर दम्पती में देखकर आपने साधु-सेवा करने का निश्चय किया। तथा वहाँ अन्न, वस्त्र इकट्ठा करके कई दिनों तक साधु-ब्राह्मणों व गरीबों की सेवा करते रहे।

पीपाजी की महिमा सुनकर टोंड़े का राजा 'सूर्य सेनमल' दीक्षा लेने आया। पीपा महाराज की आज्ञा से अपनी सारी सम्पत्ति तथा रानियों को स्वामी जी के चरणों में अर्पित कर दिया तथा गुरु आज्ञा से अनासक्ति-भावेन राजकार्य देखने लगा। एक बार राजदरबार में एक स्त्री के साथ समान रूप-रंग वाले दो युवक आए। दोनों स्त्री को अपनी-अपनी पत्नी बता रहे थे। स्त्री भी अपने पति को पहचानने में असमर्थ थी। पीपा महाराज ने युक्ति से पुरुषवेशधारी प्रेत को बोतल में बन्दकर दिया तथा स्त्री अपने पति के साथ गयी। इधर आप झगड़ा का निपटारा कर रहे थे, उधर कुटिया पर सन्तों का समागम हुआ। कुटिया में अन्न के नाम पर कुछ भी नहीं था । सीतासहचरी ने एक बनिया से यह कहकर अन्न लाया कि मैं रात्रि मे तुम्हारी अंकशायिनी बनूँगी। इस प्रकार उसने साधु सेवा की। रात्रि में पीपा महाराज ने स्वयं उसे कन्धे पर बैठाकर बनिया के घर पहुँचाया।

वैष्णव दर्शन तथा घर के अन्न से साधु-सेवा के कारण बनिया की बुद्धि सात्त्विक हो चुकी थी। वह सीतासहचरी तथा पीपाजी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। इस प्रकार से अनेक कामी, क्रोधी, लोभी जनों का उपकार आपके द्वारा हुआ। अनेक प्रकार से वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुए काफी दिन आपने राजा सूर्य सेनमल के यहाँ बिताया। सम्मान तथा भीड़ को बढ़ता हुआ देखकर आप अपनी सहचरी के साथ चुपचाप जंगल में आकर भजन करने लगे। द्यौसा (जयपुर) में श्री अनन्तानन्दाचार्य जी के शिष्य श्री रंगजी परमभक्त थे। उनकी उत्कट अभिलाषा से आप जयपुर पधारे। वहाँ अनेक प्रकार से सत्संग तथा रामभक्ति का प्रचार करते रहे। श्रीरंग जी के यहाँ से आप पुनः टोंडे सूर्यसेनमल के यहाँ पधारे। राजा सूर्यसेन के यहाँ एकादशी जागरण के उपलक्ष में भजन-कीर्तन हो रहा था। सभी लोग कीर्तन में विभोर थे। पीपाजी अचानक उठ खड़े हुए तथा दोनों हाथों को ऊपर उठाकर मलने लगे। हाथों में कुछ कालापन आ गया। पूछने पर बताया कि द्वारका में भी कीर्तन हो रहा है, मशाल ऊपर चांदनी में लग गयी, जिससे चांदनी में आग लग गयी थी। उसे ही बुझाया है। इस बात की पुष्टि के लिए दूत द्वारिका गया बात सत्य थी। लोगों ने बताया कि यदि पीपा जी न होते तो आग लग ही जाती। सभी लोग इस घटना से उनके प्रति भक्ति व श्रद्धा से अवनत होगए। एक बार देश में महान् अकाल पड़ा तो सूर्यसेन को आपने खेतों में छुपा धन बताकर अकाल से जनता की रक्षा की।

संवत् १४७२ में आप पुनः गागनौरगढ़ गए। वहाँ लोगों को वैष्णवता का उपदेश दिया। कुछ दिनों के बाद काशी आ गए तथा गुरु जी के साकेत-गमन करने के बाद श्रीमठ में ही रहे। फिर श्री योगानन्दाचार्य जी के साथ गुज़रात में धर्म प्रचार हेतु पधारे। इस प्रकार आपका सम्पूर्ण जीवन लोकोपकार, धर्म प्रचार तथा आदर्श आचरण की स्थापना में व्यतीत हुआ। आप योगाग्नि के द्वारा शरीर का त्याग कर साकेतवासी हुए। आपकी सहचरी प्रत्येक क्रियाकलापों में आपकी सहयोगिनी बनी रही। कभी वह आपके मार्ग में बाधा नहीं बनी।

महात्मा कबीर दास

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षटदरसनी ॥
भक्ति विमुख जो धर्म, सो अधरम करि गायौ ॥
जोग जग्य व्रत दान, भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरक प्रमान, रमैनी शबदी साखी ।
पक्षपाति नहिं वचन, सबहि के हित की भाखी ॥
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी ।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षटदरसनी ॥

— श्री नाभा स्वामी

कबीरदास ने भक्तिहीन षड्दर्शन एवं वर्णाश्रम धर्म को मान्यता नहीं दी, उनकी मर्यादा नहीं रखी। ये भक्ति से विरुद्ध धर्म को अधर्म ही कहते थे। इन्होंने बिना भजन के योग, यज्ञ, व्रत और दान आदि को व्यर्थ सिद्ध किया। इन्होंने अपने बीजक, रमैनी, शब्दी और साखियों में किसी का पक्षपात न कर के सभी के कल्याण के लिए उपदेश दिया। हिन्दू, मुसलमान सभी के लिए उनके वाक्य प्रमाण हैं। ज्ञान एवं पराभक्ति की आनन्दमयी अवस्था में आप सर्वदा स्थित रहते थे। आपने किसी के प्रभाव में आकर मुँह देखी, किसी के मन की सी झूठी बात नहीं कही। आप जगत् के प्रपँचों से सर्वथा दूर रहे।

महाभागवत कबीर दास जी भक्तप्रवर प्रह्लादजी के अवतार माने जाते हैं। आपका प्राकट्य काल ज्येष्ठ शुक्ल संवत् १४५५ के ज्येष्ठ पूर्णिमा, सोमवार माना जाता है। आपके जन्म से सम्बन्धित एक आख्यान प्रसिद्ध है कि जगद्गुरू रामानन्दाचार्य के आश्रम में एक विप्र कन्या चौका-बर्तन किया करती थी। उसकी अटूट निष्ठा से प्रसन्न होकर आचार्यश्री ने उसे पुत्रवती होने का आर्शीवाद दे दिया। एक कुँआरी कन्या को लोक निन्दा से बचाने हेतु आचार्य जी ने अन्तः प्रेरणा से उसके आंचल में कुछ फल देकर विदा किया। वही फल रास्ते में एक सुन्दर शिशु का रूप ले लिया। लोक-निन्दा से बचने के लिए विप्र-कन्या ने नवजात शिशु को लहरतारा तालाब पर रख छोड़ा। वहां से नीरू-नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने उसे उठाकर घर लाया तथा बालक का पालन-पोषण किया। यही बालक भक्तों के इतिहास में कबीर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भक्तराज प्रह्लाद की तरह कबीर भी जन्म से ही श्रीराम भक्ति से युक्त थे। बाल्यकाल से ही आपके मुख से सहज राम-ध्वनि निःसृत होती थी। एकान्त सेवन आपका सहज स्वभाव था। एक दिन इन्हें आकाशवाणी सुनायी पड़ी कि श्रीरामानन्दाचार्य जी से वैष्णवी दीक्षा लो। ब्राह्म मुहूर्त में पंच गंगा घाट की सीढ़ियों पर आप लेट गए। उसी समय गंगा-स्नान हेतु सीढ़ियां उतरते हुए आचार्यश्री का पैर 'कबीर' के सिर से लग गया। सहसा

मुख से निकला – "राम, राम कहो बच्चा।" बस कबीर को और चाहिए क्या था ? उसे ही गुरू-मन्त्र मानकर जपने लगे अगले ही दिन से वैष्णव स्वरूप धारण कर राम-राम रटते हुए गलियों में घूमने लगे। किसी के पूछने पर बताते – "मैं श्री रामानन्दाचार्य जी का शिष्य हूं।" यह बात आचार्य श्री के पास तक पहुँच गयी। एक दिन आचार्य जी ने इन्हें बुलाकर पूछा तो आपने सीढ़ियों पर घटित घटना का हवाला देते हुए कहा कि श्री रामनाम ही महामन्त्र है। आचार्य श्री गद्‌गद् होकर शिष्य को गले से लगा लिए।

पिता की मृत्यु के बाद सन्त कबीर जी अपना पैतृक काम बुनाईगिरी करते रहे। उसी से अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। पर कभी भी श्रीराम नाम व उनकी दिव्य छवि हृदय से हटती नहीं थी। एक दिन एक साधु को आपने पूरे कपड़े दे दिए। उस दिन कमाई कुछ नहीं हुई। जिससे घर का खर्च तथा सूत खरीदा जा सके। आप एकान्त में बैठकर राम नाम का जप करने लगे। इस प्रकार तीन दिन बीत गए तो भगवान् स्वयं साहूकार का रूप धारण करके इनके घर आवश्यक खाद्य सामग्री व बहुत-सी स्वर्ण मुद्रायें पहुंचा दिए। माता ने इन्हें खोज कराकर घर बुलाया। घर आकर आप भगवत्कृपा को समझ गए। साथ ही पुनः सारी चीजें सन्त फकीरों को बाँट दिए। पूरे शहर में इनकी यशोपताका लहराने लगी।

बढ़ती हुए प्रतिष्ठा से आपके भजन में बाधा होने लगी तो एक दिन आपने एक स्वांग रचा। एक वेश्या के कन्धे पर हाथ रखकर एक हाथ में पानी से भरे बोतल लेकर शराबियों जैसा बनारस की गली-गली में घूमते हुए काशीराज की सभा में पहुँचे। काशीराज ने इस दशा में उनका कोई सम्मान नहीं किया। आप वहीं कालीन पर बोतल का जल गिराते हुए "राम राम" कहने लगे। इस अभद्रपूर्ण व्यवहार का कारण पूछने पर आपने बताया कि जगन्नाथ जी के पण्डा का थाल ले जाते समय पैर जलने वाला था, अतः अग्नि बुझाकर मैंने उसकी रक्षा की । अनन्तर आप अपने घर आ गए। राजा ने गुप्तचरों से पता लगाया तो बात सही थी। पण्डा का पैर अंगारा पर पड़ने वाला था। राजा अपनी गलती की क्षमा हेतु सपत्नीक कबीर के शरणागत हुए।

विद्वेषी ब्राह्मण कबीर से जलते थे। उसी समय तत्कालीन बादशाह सिकन्दर लोदी आया हुआ था। ब्राह्मणों तथा मुसलमानों ने मिलकर कबीर की शिकायत की। बादशाह ने सिपाहियों के द्वारा पकड़वा कर कबीर को दरबार में बुलाया, पर कबीर का बादशाह तो केवल श्रीराम थे, अतः वह इस बादशाह को सलाम नहीं किया। क्रोध से राजा ने इन्हें जंजीरों से बंधवाकर गंगा में फेंकवा दिया, पर आप राम-राम कहते हुए तट पर आ खड़े हुए। पुनः इन्हें आग से जलाने तथा हाथी से कुचलवाने का भी प्रयत्न किया गया। पर भगवान् श्रीराम स्वयं आपकी रक्षा करते थे, अतः आपको कुछ नहीं हुआ। उल्टा आपके ऐश्वर्य का ज्ञान बादशाह को हो गया और वह आपका शरणागत हुआ।

प्रयाग कुंभ के अवसर पर कबीर जी स्नान करने गए। सिकन्दर लोदी भी फकीर शेखतकी के साथ पहुँचा था। तीनों त्रिवेणी स्नान करने गए। उसी समय धारा में एक बालक का शव बहता हुआ दिखायी पड़ा, जिसे पुकारकर कबीर ने अपने पास बुला लिया। इसी प्रकार एक राजा ने अपनी मृत लड़की को जमीन में दफना दिया था। तीन दिन बाद कबीर ने उसे जीवित निकाल लिया। यही दोनों बालक-बालिका कमाल और कमाली के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपकी पत्नी लोई भी सिद्धा थी। कबीर की साधना व सिद्धि समकालीन गोरखनाथ से बहुत ही प्रशस्त व उच्च कोटि की थी।

एक बार जगन्नाथ पुरी में एक ही काल में सत्संग तथा जगन्नाथ जी को चंवर करने की लीला से आपने सभी को स्तम्भित कर दिया। आपकी सिद्धि की ख्याति सुदूर देश तक थी। आपने बलखबुखारा जाकर वहां के बादशाह के पुत्र को जीवित किया था। एक दिन सन्त-सेवा के लिए घर में कुछ न होने के कारण आपने कमाल

के साथ एक घर में सेंध लगाई। स्वयं तो निकल गए, पर कमाल जाग होने के कारण न निकल सका, तो आपने उसका सिर काट लिया। घर आकर सन्तों की सेवा किए। प्रातः उसी रास्ते से सन्तों की टोली वापस होने लगी, तो कमाल के धड़ ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। रहस्य जानकर पुनः कमाल को जीवित किया गया। कभी कबीर दास जी अपने शरीर को रक्षा-चक्र में बाँधकर सूक्ष्म रूप से तीर्थ-भ्रमण व सन्त दर्शन के लिए निकल जाया करते। एक दिन-रक्षा चक्र लगाये बिना ही आप चले गए। शरीर को रिक्त जानकर एक भूत ने उसमें निवास ग्रहण कर गया। उसने कई शिष्य बनायें तथा उल्टे-सीधे उपदेश देकर निरगुनिया बना दिया। कबीर जी के आने पर भूत शरीर छोड़कर चला गया। योग बल से कबीर ने सारी स्थिति समझ लिया। आपने अपने प्रयास से भूत द्वारा बनाये गए कुछ शिष्यों को तो रास्ते पर ले आये, पर कुछ निरगुनिया ही रह गए। यही कारण है कि आज कबीर-पन्थ में दोनों प्रकार के सिद्धान्तानुगामी पाये जाते हैं।

श्री तत्वाजी तथा जीवाजी नामक दक्षिणी ब्राह्मण को अपना शिष्य बनाकर आपने दक्षिण में भी वैष्णवता का प्रचार किया। एक बार श्रीपद्मनाभ जी नामक दिग्विजयी विद्वान् कबीर से शास्त्रार्थ करने आए। कबीर दास जी ने किसी पाठशाला में गुरुमुख से अध्ययन नहीं किया था। आप निरक्षर थे। जिसे आपने प्रस्तुत बीजक में स्वीकार किया है – "मसी कागद छुयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ।" आपने पुस्तक नहीं पढ़ा था, वरन् जीवन का, अध्ययन किया था। मानवता को सही रूप में पहचाना था। जो बीजक आदि कृतियों में संलक्षित होता है। अस्तु, श्री पद्मनाभ से प्रश्न किया – "आपने पढ़कर समझा है या समझकर पढ़ा है।" इस अटपटे प्रश्न से स्तम्भित पण्डित जी को अपने प्रश्न का आशय समझाते हुए आपने कहा कि प्रह्लाद जी और शुकदेव जी ने गर्भावस्था में ही समझ लिया था, पढ़ा था बाद में। युधिष्ठिर 'सत्यं वद' का पाठ पहले पढ़े और समझे बाद में कुछ देर के बाद पण्डित जी अगले दिन आने का वादा करके चले गए। गंगा तट पर उनसे एक प्रेत मिला, जिसने बताया कि यदि आप किसी गुरु का आश्रय लेकर भक्ति का आचरण नहीं करेंगे तो प्रेत-योनि में जन्म लेना पड़ेगा। भयभीत होकर पण्डित जी कबीर दास के शरणागत हुए। कबीर ने उन्हें रामपरत्व का उपदेश दिया, जिससे उनका जीवन कृतकृत्य हो गया।

कबीर के त्याग-वैराग्य और भक्ति से देवगण भी ईर्ष्या करते थे। अतः उन्हें पथ-भ्रष्ट करने के लिए एक सुन्दर वेश्या आयी। उसने हर एक प्रयास किया, पर असफल रही। उसे अति थकित व चकित देखकर आपने उसे बहन शब्द से सम्बोधित करते हुए रामभक्ति का उपदेश दिया। अप्सरा स्वर्ग लौट गयी। साक्षात् भगवान् श्रीराम ने दर्शन देकार इच्छानुसार मर्त्यलोक में रहकर स्वधाम आने को कहकर अन्तर्धान हो गए। पर कबीर ने सत्संग के सामने साकेत धाम को भी ठुकरा दिया –

"राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख यहँ सत्संग में, सो बैकुण्ठ न होय॥"

शरीर त्यागने की जब इच्छा हुयी तो आप मगह चले गए। मगधराज काशीराज की उपस्थिति में ही सम्बत् १५४९ के अगहन शुक्ल एकादशी तिथि को आप सदेह श्री साकेतधाम पधार गए।

●

महाभागवत श्री सेन जी महाराज

विदित बात जग जानिये हरि भए सहायक सेन के ॥
प्रभूदास के काज रूप नापित को कीन्ह्यो ।
क्षिप्र क्षुर हरि गह्यो पाणि दर्पन तहँ लीन्ह्यो ॥
तादृश होइ तेहि काल भूप के तेल लगायो ।
उलटि राव भयो शिष्य प्रगट परिचौ जब पायौ ।
श्याम रहत सन्मुख सदा ज्यों वच्छाहित धेनु के ।
विदित बात जग जानिये हरि भए सहायक सेन के ॥ —*श्री नाभा स्वामी*

कुरूक्षेत्र की रणभूमि में भगवान् के शस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा भीष्म पितामह के भीषण युद्ध के कारण भंग हुई थी । भगवान् ने तो अपनी प्रतिज्ञा भंग करके भक्त की रक्षा की थी । किन्तु भीष्म का यही अपराध उन्हें कलियुग में जन्म का कारण बना ।

बान्धवगढ़ के निवासी उग्रसेन नापित की सुशीला धर्म-पत्नी यशोदा के गर्भ से वृद्धावस्था में वैशाख, कृष्ण, द्वादशी, रविवार को पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में बालक के रूप में पितामह ने जन्म लिया । तुला राशि में जन्म लेने के कारण बालक का नाम 'रामसेन' रखा गया । बालक का भरण-पोषण माँ-बाप बड़े प्यार से करते थे । काल-चक्र के साथ रामसेन के शारीरिक अवयवों में भी वृद्धि होती गयी । अंग-अंग से स्फूर्ति व तेज की छटा छटकती थी। पाँच साल की अवस्था में उससे पंजा लड़ाने में कोई जीत नहीं पाता था । दस वर्ष में तो वह एक पहलवान-सा दीखता था । शुभ मुहूर्त्त में रामसेन ने हर्षोल्लास के वातावरण में अपना पैतृक कार्य का श्रीगणेश किया । उसे क्षौर-कर्म में इतनी दक्षता प्राप्त थी कि सोए हुए व्यक्ति को भी क्षौर कर्म कर देता था । इस गुण के कारण ही रामसेन को बाधवगढ़ के राजा ने अपनी व्यक्तिगत सेवा में नियुक्त कर लिया । राजा हमेशा उसे अपने साथ रखता था । एक बार बांधवेश के साथ रामसेन काशी पहुँचा । राजा की सेवा से निवृत्त होकर वह गंगा तट पर घूमते हुए एक संन्यासी से मिला । संन्यासी बाबा का उसनें क्षौर-कर्म तो किया, पर बहुत समझाने के बाद भी चोटिया नहीं मुँडा । लोगों के कहने पर संन्यासी-नाई श्रीमठ में जगद्गुरू रामानन्दाचार्य के पास निर्णयार्थ पहुँचे। आचार्य श्री के समझाने पर उसने बाबा की चुटिया मुड़ी । पुनः वह आश्रम पर पहुँचा उसी समय आचार्यश्री की गम्भीर शंख-ध्वनि के श्रवण मात्र से उसे पूर्व कर्मों का ज्ञान हो गया और आचार्य श्री के शरणागत होकार दीक्षा की याचना करने लगा । आचार्य श्री से दीक्षा तथा साधु-सेवा की आज्ञा प्राप्त कर राजा के पास वापस आ गया। जब राजा काशी में रहे, रामसेन प्रतिदिन गुरू-दर्शन हेतु आता था । एक दिन महाभारत कथा का श्रवण करते हुए धर्मराज के प्रति भीष्म पितामह के उपदेश को सुनकर रामसेन का बलिष्ठ शरीर पसीना से लथपथ हो निश्चेष्ट हो गया । अनन्तानन्दाचार्य जी के प्रयास से उसकी चेतना वापस आयी । आचार्य श्री ने तो परमभक्त रामसेन को

गले से लगा लिया तथा अपने गले का पुष्पहार उसके गले में डाल दिया। तथा सदुपदेश व साधु-सेवा की आज्ञा देकर घर जाने को कहा। आचार्य-चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर व गुरू-भाइयों से गले मिलकर रामसेन राजा के साथ घर आकर सुखपूर्वक पारिवारिक जीवन व्यतीत करने लगा।

रामसेन निष्ठापूर्वक साधु-सेवा करने लगा। साधु-सेवा की निष्ठा से मनुष्य श्रीमत्, विभूतिमत् व ऊर्जित्व तक पहुँच जाता है। इसी निष्ठा से निरवच्छिन्न बारह वर्षों की सेवा के बाद आपको दिव्य महात्माओं के दर्शन प्राप्त होने लगे। एक दिन ह्रष्ट-पुष्ट व तेजस्वी महात्मा द्वार पर पधारे आसनादि प्रदान कर महात्मा की आज्ञा सें अपने साश्चर्य एक पाव मीर्च का रस उन्हें भोजन रूप में अर्पित किया। महात्मा जी ने उन्हें समझाया कि मन के स्वस्थ रहने पर ही शरीर स्वस्थ रह सकता है, अतः मन को ही स्वस्थ रखना नितान्त आवश्यक है। सत्संग के बाद चलते समय महात्मा ने सेन जी को एक बीजक तथा एक मूँजा दिया। बीजक को भण्डार में रख दिया गया। महात्मा जी की सेवा में रत होने के कारण कुछ बिलम्ब हो गया था। सेन जी मूँगा लेकर राजा के पास उपस्थित हुए तथा बिलम्भ हेतु क्षमा याचना करने लगे। सेंन जी से अपराध हुआ हो तब तो क्षमा की बात उपस्थित हो। उधर सेन जी साधु-सेवा में रत थे। इधर भगवान् तद्रूप होकर भक्त का काम कर गए थे। राजा तुरन्त ही इस बात को ताड़ गया और जिसकी भक्ति के वश में आकर भगवान ने यह लीला रची थी, उसके पैरों में गिरकर दीक्षा की याचना करने लगा। दोनों एक दूसरे के भाग्य की सराहना कर रहे थे। एक के वश में भगवान थे, तो दूसरे को स्वयं भगवान ने सेवा की थी। अस्तु; राजा ने रामसेन को गुरू बना लिया तथा राजकोष से विपुल सम्पत्ति साधु-सेवा के लिए प्रदान कर नित्य रात्रि में गुरू-दर्शन व सत्संग के लिए सेन जी पास जाने लगे । सेन जी भी अब एकान्त में भगवच्चिंतन किया करते थे। साधु-सेवा अनवरत चलती थी। उनके मकान के पास एक सुन्दर आमराई थी। उसी में आप यदा-कदा बैठ कर भजन करते थे।

एक दिन आप आमराई में पहुंचे तो एक दिव्य सन्त को बैठा पाया। जिसके सिर से रक्त-स्राव तथा मुख पर प्रसन्नता व अमिट तेज विराजमान था। भक्त सेन जी उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर उस शोभा को निहारने लगे। महात्मा के निवेदन करने पर सेन ने उनके सिर पर तीन बार हाथ फेरा, जिससे सिर का रक्त-स्राव व वेदना समाप्त हो गयी। पुनः सत्संग व सदुपदेश देकर महात्मा के अदृश्य हो जाने पर एक पक्षी ने आपको बोध कराया कि महात्मा के वेश में अश्वत्थामा थे। महात्मा ज़ी के सदुपदेश से भगवद्दर्शन की लालसा तीव्रतम हो गयी। भूख-प्यास, नींद सब कुछ समाप्त हो गये। प्रिय-वियोग में रोते-रोते आप मूर्च्छित हो गए तो भगवान् बालक के रूप में खीर लेकर उपस्थित हुए, जिसे खाकर स्वस्थ होने पर आपने भगवान् को पहचान कर चरणों में गिर पड़े तथा अपराध क्षमा करने की व वास्तविक रूप से दर्शन की याचना करने लगे। भगवान् ने विभिन्न रूपों में दर्शन देकर भक्त को कृतार्थ किया। भक्त की आंखें सजल थी, जिसे भगवान का पीताम्बर पी रहा था। भक्त-भगवान् के इस मिलन पर आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी तथा भगवान के सामने ही भगवत् पार्षदों ने दिव्य विमान में बैठाकर उन्हें नित्य धाम साकेत पुरी ले गए॥

महाभागवत श्री धनानन्द जी

धन्य धना के भजन को बिनहि बीज अंकुर भयो ॥
घर आए हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये ।
तात-मात डर खेत शोथ लांगूल चलाये ॥
आस-पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई ।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई ॥
अचरज मानत जगत में कहुं निपज्यो कहूँ वै वयो ।
धन्य धना के भजन को बिनहिं बीज अंकुर भयो ॥ —*श्री नाभा स्वामी*

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के साथ बलि से मिलने गए । बलि को दैत्य-कुल पर अभिमान था। देवता व मनुष्य को नीच समझता था । अतः भगवान को अन्दर बुला लिया और युधिष्ठिर से छिप गया । बस, यही अहंकार उसके जाट कुल में जन्म का कारण बना । इस अभिमान को प्रोत्साहन देने के कारण उसके गुरू शुक्राचार्य को भी नृसिंह शर्मा के नाम से जन्म लेना पड़ा !

वैशाख कृष्णाष्टमी शनिवार को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में पन्ना जाट की पत्नी रेवा के गर्भ से कलियुग में बलि ने जन्म लिया, जिसका नाम पड़ा — 'धन्ना' । बालक की मनोहारिणी छवि सभी को आकर्षित करती थी । नृसिंह शर्मा भी घूमते-घूमते इस गांव में पधारे तथा पन्ना जाट के यहाँ अतिथि हुए । धन्ना उनके ठाकुर-पूजन हेतु फूल-तुलसी लाया करता तथा बैठकर ध्यान से ठाकुर-पूजन देखा करता । शर्मा जी के जाते समय हठपूर्वक वह एक शालिग्राम को ले लिया, जिसकी सेवा में वह निरत रहता । पहले ही दिन वह ठाकुर के समक्ष भोग की थाली अर्पित किया, पर भगवान को भोग लगाते न देखकर स्वयं न खा सका । चार दिन व्यतीत हो गए, वह इसी आशा में भूखा-प्यासा बैठा रहा कि भगवान को खाने के बाद ही खाएगा । पाँचवे दिन भगवान प्रकट होकर भोग ग्रहण किए । अब प्रतिदिन भगवान उसका भोग ग्रहण करने लगे । भगवान और भक्त की घनिष्टता बढ़ती गयी। धन्ना की गायों को भगवान स्वयं चराने लगे ।

कुछ दिनों के बाद नृसिंह शर्मा उपस्थित हुए तो धन्ना ने बताया कि भगवान मेरा भोग ग्रहण करते हैं तथा सदा मेरे साथ ही रहते हैं । नृसिंह जी के दर्शन करने की इच्छा पर भगवत् प्रेरणा से धन्ना ब्राह्मण की गोद में बैठा, तो उन्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी । भगवान ने दर्शन से उसे पूर्व-जन्म का स्मरण हो गया । वे भगवत् स्तुति करते हुए क्षमा याचना करने लगे । एक दिन दूध दुहने के बाद कुछ साधु आए, जिन्हें धन्ना ने सारा दूध पिला दिया । माता छुप कर यह कृत्य देख चुकी थी और प्रसन्न ही हुई थी । माता के बोलने के भय से वह जंगल में जा बैठा । इधर माता जब घर गयी तो सभी पात्र दूध से भरे पड़े थे । पता किया तो बाहर कहीं से दूध आया

नहीं। वह आश्चर्य में पड़ गयी। पर वह भगवत् कृपा न समझ सकी। इसी प्रकार रसोई घर के सारे भोजन भगवान को अर्पण कर अवशिष्ट साधुओं को बाँट दिया करते, पर रसोई घर में भोजन की कमी नहीं होती थी। नित्य-नये चमत्कारों से पारिवारिक-सदस्य चमत्कृत थे।

एक बार एक जटाधारी सन्त ने आकर धन्ना जी को त्रिशंकु की तरह अधर में लटका दिया और भिक्षा की याचना किया। भगवत्कृपा से उनके हाथ में दो फल आ गए। वह सन्तजी से आकर भिक्षा लेने को बोले। सन्त आकाश-अवरोहण की विधि जानते न थे। संकुचित हो गए, तो धन्ना जी नीचे उतर कर उन्हें भिक्षा प्रदान कर विदा किए। इनके जीवन में विवाह प्रसंग भी आया, किन्तु जब फलदान की बारी आयी, तो आप नकार गए। भला ऐसा हो भी क्यों नहीं ? जो जन्म-जन्मान्तर से केवल दान देता हो, वह दान कैसे ले सकता था। इस प्रकार आप विवाह-प्रसंग को टाल दिए। यथा समय ठाकुर की प्रेरणा से आप काशी आ गए। श्रीमठ में जाकर श्री रामानन्दाचार्य को साष्टांग दण्डवत् प्रणाण किए। आचार्य श्री सभी रहस्यों को जानते थे। शरणागत को श्री वैष्णवी दीक्षा तथा साधु-सेवा की आज्ञा प्रदान किए। कुछ दिन श्रीगुरू-चरणों के अलौकिक आनन्द-रस का पान कर आप घर चले आये। समदर्शिता की भावना आप में भरी थी। निष्ठापूर्वक साधु-सेवा आपका धर्म था। एक बार बीज के गेहूँ को साधु-सेवा में लगा कर खेत में यों ही हल चौकी चलाकर चले आए। पड़ोस वाले इस कृत्य का मजाक उड़ाते थे किन्तु यथासमय उस खेत में बीज़ उग आए तथा अन्य साल की भांति अच्छी उपज हुई। इनके दिव्य चरित्र की ख्याति चतुर्दिक् फैल रही थी। दूर-दूर से लोग इनके दर्शन को आते थे। इनके दर्शन में अधिकांश युवतियाँ थीं, जो इनकी अलौकिक आभा से आकर्षित थीं। धन्ना जी पर न्योछावर होने वाली युवतियों में एक विधवा जाटिन थी, जो हर प्रकार से इनकी तथा इनके अभ्यागतों की सेवा करती थी। इन्हीं के घर में रहती थी। अतः उसके संसर्ग से इनके अन्तर्जगत् में हलचल मच गयी। इनके हृदय को काम ने मथ दिया। अस्तु, आप हमेशा विवेकपूर्वक काम करते थे। 'न मे भक्तः प्रणश्यति' इस भगवत्-वचन पर आपकी दृढ़ निष्ठा थी। यह सब तो उनकी परीक्षा के लिए रचा हुआ जाल था। साधु-सेवा करने से उस रमणी का हृदय भी निर्विकार हो गया। उसके विचार पवित्र हो गए। इस प्रकार आपने अपने विकारों को नष्ट कर दिया। जिसके जीवन की बागडोर स्वयं भगवान सम्भालते हों, वह भला धोखा कैसे खा सकते थे। आप रामभक्ति तथा भजन-सत्संग में सदा लीन रहते थे। एकान्त सेवन करते हुए भगवत्चिंतन करते थे। सुबह-शाम केवल दर्शनार्थियों को उपदेश देने ही बाहर आते थे।

एक समय एकान्त कोठरी में भजन करते समय राघवेन्द्र सरकार के पार्षद आए तथा उन्हें दिव्य विमान में बैठाकर नित्य-धाम साकेत पुरी लेकर चले गए।

★★★

महाभागवत रैदास जी

सदाचार श्रुति शास्त्र वचन अविरूद्ध उचारयो।
नीर क्षीर विवरन परम हंसिनि उर धारयो॥
भगवत्कृपा प्रसाद परगति इहि तनु पाई।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई॥
वर्णाश्रम अभिमान तजि पदरज वन्दहिं जासु को।
सन्देह ग्रन्थि खण्डन निपुण वाणी विमल रविदास की॥ —*स्वामी नाभाजी*

महाभागवत रैदास जी को धर्मराज का अवतार माना जाता है। विप्र शापवश आपको तीन बार माता के गर्भ से जन्म लेना पड़ा। पहला जन्म तो विदुर रूप में हुआ। दूसरा जन्म बनारस प्रान्त के असला नामक ग्राम के एक पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ। एकलौता पुत्र होने के कारण आप परिजनों को बहुत प्यारे थे। प्रसव-काल में ही अपनी दिव्य आभा से जन्म-कर्म की दिव्यता का ज्ञान करा दिया था। आपका नाम कपिलदेव रखा गया। आपका बाल स्वभाव सामान्य बच्चों से विलक्षण था। कुछ बड़े होने पर आपने माता का दूध व अन्य खाद्य सामाग्री का त्याग कर मात्र पायस ही सेवन करने लगे। कुमारावस्था में आप एक दिन आम्रवन में घूम रहे थे। सर्वत्र वसन्त का साम्राज्य था। वातावरण का प्रभाव मन पर पड़ा, पर आपके उद्‌गार और उमंग सब सात्त्विक थे । अतः आपने चार विलक्षण संकल्प किया। पहला तो भजन करना चाहिए। दूसरा यह कि बाल ब्रह्मचारी को एकान्त में नहीं रहना चाहिए। अतः जगद्‌गुरू.रामानन्दाचार्य से दीक्षा ग्रहण कर वहीं रहना चाहिए। तीसरा क्रोध नहीं करना चाहिए और चैथा निश्चय किया कि कभी भी बुद्धि को विचलित नहीं होने देना है। अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति हेतु आप दूसरे दिन ही काशी के लिए प्रस्थित हुए। काशी पहुँचने पर एक वैश्य ने आपका सत्कार किया। उससे प्राप्त सामग्री से प्रसाद (पायस) बनाकर भोग लगाया तथा वैश्य से पूछकर पंच गंगा घाट पर स्थित श्रीमठ पहुँचे। यथोचित समय में जगद्‌गुरू रामानन्दाचार्य का दर्शन कर वैष्णवी दीक्षा प्राप्त कर वहीं रहने लगे। धीरे-धीरे आचार्य का पायस बनाने की सेवा आपके जिम्मे आ गयी। आपकी सेवा से सभी आश्रमवासी प्रसन्न थे। एक दिन कथित वैश्य के घर से भीक्षा प्राप्त कर आपने पायस बनाया। वैश्य की दुकान में चमारों का दूषित धन था। अतः वैष्णवों के लिए त्याज्य था। यही कारण था कि भोग लगने वाला था, उसी समय कन्या के रूप में स्वयं गंगा जी एक कटोरा पायस लेकर आचार्य श्री के सामने उपस्थित हुई और ब्रह्मचारी द्वारा निर्मित पायस को अग्राह्य बताकर चली गयीं। योग से स्वामी जी ने सारावृत्तान्त जान लिया। गंगा द्वारा प्रदत्त पायस को भोग लगाकर सभी को प्रसाद वितरित किया गया, पर कटोरा कभी खाली न हुआ। ब्रह्मचारी कपिलदेव के अज्ञात अपराध के कारण स्वामी जी का शाप लग गया। उसका शरीर छूट गया और वह पुर्यष्टक

वह पुर्यष्टक में स्थित होकर भजन करने लगा। कपिलदेव की मृत्यु से सभी आश्रमवासी दुःखित थे। आचार्य श्री ने उन्हें मर्म समझाकर आश्वासन देते हुए कहा कि वह शीघ्र ही अपने एक जन्म को पूरा करने आएगा।

गंगा दशहरे के दिन स्नान करते समय काशी निवासी रग्घू चर्मकार ने धारा में बहती हुई एक स्त्री को बचा कर घर लाया। पूछने पर स्त्री ने बताया कि वह विप्र-कन्या है। उसके माता-पिता मर चुके हैं और वह भी प्राणान्त करने के लिए गंगा में कूद पड़ी थी। कई ब्राह्मणों ने उससे विवाह का प्रस्ताव रग्घू के पास रखा। पर रग्घू ने वर चुनने का अधिकार कन्या को ही दिया। रग्घू की स्त्री भी मर चुकी थी और वह पत्नी की खोज में था। इधर कन्या ने सोचा कि गंगा से इसने मुझे बचाया है। मेरे अंगों का स्पर्श किया है। अतः मेरा जीवन इसके लिए ही है। जाति-विरादरी की सहमति से दोनों का विवाह हो गया। वर्ष भर में ही उस ब्राह्मणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जिसके जन्म लेते ही आकाशवाणी हुई –

"धर्मराज-यमराज महाभागवत परोपकारी।
सेत मेत कला पाँच वैद्य स्नायुधारी॥

तीन लोक रहित शोक कपिल ब्रह्मचारी।
आयो है तारन जग मोह-तिमिर हारी॥"

'गोर शरीर लाल दोउ नैना' वाले बालक को देखकर लोगों ने उसे 'छत्तीसा' कहा अर्थात् यह बालक कुल छत्तीस दिन ही जीवित रह सकेगा। अतः जन्मोत्सव छत्तीस दिन के बाद ही मनाने का निश्चय हुआ। पिछली गुरू सेवा के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान था। अतः इन्होंने बिचारा कि एक दिन भिक्षा ग्रहण मात्र से यह स्थिति हुई तो यहाँ रहने पर और क्या हो, सकता है। अतः उसने अनशन करके प्राणान्त करने का निश्चय किया और माता का स्तन-पान छोड़ दिया। सर्वज्ञ श्री रामानन्दाचार्य जी को सब कुछ मालूम हुआ तो शिष्यों के साथ रग्घू के घर पधार कर एकान्त में बालक को समझाकर शिष्य बनाया तथा रमादास या रैदास नाम रखा तथा यह वचन दिया कि तुम इसी शरीर से भजन करो। मेरी कृपा हमेशा तेरे साथ रहेगी। स्वामी जी की आज्ञा से बालक दूध पान करने लगा। ३६ दिन बीत जाने पर जन्मोत्सव मनाया गया। बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति देखकर बालक का लैकिक नाम 'भगत' रखा।

एक दिन परिजनों के साथ भगत जी गंगा-स्न्दन के लिएं गए। लोगों को नहाते देखकर बालक भगत भी कपड़ा पहने ही गंगा में घुस गया। पर आश्चर्य कि बाहर आने का उसका कपड़ा सूखा ही रहा। एक बार वाराह पूजा के अवसर पर प्रज्वलित अग्नि कुण्डमें चुपके से भगत जी चले गए, पर उनका बाल भी न जला। सयाना होने पर भगत जी पैतृक व्यवसाय सीख कर निपुणता से काम करने लगे। इनके काम की सराहना सभी लोग करते थे। कुछ छोटी आयु में ही आपका विवाह हो गया; पर छोटी आयु की कन्या का गौना न हुआ। भगत जी अपने व्यवसाय से उपार्जित धन को साधु-सेवा में खर्च किया करते थे। पिता के समझाने पर भी आप न माने, तो पिता ने घर से अलग कर दिया। साथ ही आपकी माता से कलहपूर्ण व्यवहार करने लगे। जिससे ऊब कर माता ने गंगा में अपना शरीर विसर्जित कर दिया। गंगा की धारा में एक सुन्दर युवती आपकी माता को गोद में लेकर अदृश्य हो गयी। पिता दूसरी शादी रचा लिया तथा बहू को भी बुला दिया। बहू भी पति के सदृश सात्विक बुद्धि की थी, पर आपकी नयी माँ स्वभावतः दुष्टा थी। अतः दोनों में नहीं पटती थी। आपकी पत्नी हमेशा सन्त-सेवा में रत रहती थी। जो माता को अच्छा नहीं लगता था। अतः आपके तीर्थयात्रा जाने पर पत्नी को लांछित करके घर से बाहर कर दिया। तीर्थयात्रा से वापस आने पर आपने जन-समूह के सम्मुख पत्नी को

अग्निज्वाला में छोड़ दिया, पर वह आदर्श भारतीय नारी अग्नि-ज्वाला से पातिव्रत्य तेज से दीप्त होकर बाहर आ गयी। साथ ही इसे लांछना लगाने वाली सास को अग्नि देव ने जलाना प्रारम्भ किया तो भगत जी ने उसकी रक्षा की। अब आपकी प्रसिद्धि हो गयी। यही भगत जी अब रैदास के रूप में सिद्धों की मण्डली में सुप्रतिष्ठित हो गए।

अब रैदास अलग झोपड़ी बनाकर साधु-सेवा में रत रहने लगे। भगवान् श्रीराम रैदास की भक्ति से बहुत ही प्रसन्न थे। अतः सन्त वेश में आपके घर पधारे। रैदास कृतकृत्य होकर उनकी सेवा करने लगे। अलग भोजन की व्यवस्था होने पर भी सन्त जी ने हठ करके रैदास के हाथ का बना प्रसाद ही भोग लगाया। चलते समय सन्त जी ने आपको एक पारसमणि दिया, पर आपने लेने से साफ इन्कार कर दिया तो सन्त जी उसे छप्पर में सुरक्षित रखकर चले गए किन्तु तेरह मास व्यतीत होने पर भी आपने उसका उपयोग नहीं किया, पुनः आकर सन्त रूप में भगवान ने उसे सोना बनाकर दिया, पर उसे भी आपने इनकार कर दिया। अब भगवान पूजा के समय ठाकुर जी के आसन से समीप पाँच स्वर्ण मुद्रायें रोज रखने लगे, जिसे चिमटा से पकड़कर आप गंगा को आर्पित किया करते। अन्ततः भगवान ने स्वप्न में उसे ग्रहण कर साधु-सेवा करने की आज्ञा दी, जिसे परमधर्म मानकर आपने स्वीकार किया। नित्य ही पाँचों मुद्राओं को सन्त-सेवा में खर्च कर देते थे। नित्य भव्य भण्डारों का आयोजन होता। भव्य मन्दिर व सन्त निवास का आयोजन हुआ। काशी के विद्वेषी ब्राह्मण रैदास की समृद्धि से जलभून गए। भक्तों के विरोध से भक्ति का प्रचार होता है अतः भगवान भी विरोध के लिए प्रेरित करते हैं। अस्तु, विद्वेषी ब्राह्मणों द्वारा काशिराज से शिकायत किये जाने पर काशीराज ने रैदास को बुलाकर कहा कि तुम्हारा आचरण वेद विरुद्ध है। अतः भगवत्पूजन छोड़ दो। रैदास ने कहा कि भगवान को मेरी भक्ति प्रिय है। इसकी परीक्षा के लिए जनसमूह के सामने ब्राह्मणों ने वेद-मन्त्रों से भगवान का आह्वान किया, पर वे न आए। रैदास ने स्तुति की तो सिंहासन सहित भगवान शालग्राम उनकी गोद में आकर बैठ गए।

चित्तौड़ की रानी झाली धर्मनिष्ठ महिला थी। दीक्षा हेतु गुरु की खोज करती हुई वह काशी आयी। रैदास का नाम सुन रखी थी, अतः दर्शन करने गयी और प्रथम दर्शन में ही उन्हें गुरु रूप में स्वीकार कर लिया। दीक्षा की प्रार्थना को रैदास जी स्वीकार नहीं कर रहे थे। परन्तु रानी के अन्न-जल त्याग देने पर विवश होकर दीक्षा देना पड़ा। जिससे ब्राह्मणों में विद्वेष की लहर दौड़ गयी। रानी विदा होते समय चित्तौड़ में दर्शन देने के लिए रैदास को राजी कर ली। रानी के आग्रह पर आप चित्तौड़ पधारे। वहाँ आपका भव्य स्वागत हुआ। बड़े-बड़े भण्डारे हुए। ब्राह्मणों ने भोजन करना स्वीकार नहीं किया, तो उन्हें भोजन-सामाग्री दे दी गयी। पर जब वे भोजन के लिए पधारे तो हर दो ब्राह्मणों के बीच एक रैदास दिखायी पड़ें। इस चमत्कार के सबकी आंखें खुलीं । जब सिंहासन पर बैठकर आप उपदेश कर रहे थे। उस समय राजा-रानी के साथ विशाल जन-समूह था, जिसमें सभी ब्राह्मण ही थे। वहीं आपने अपनी त्वचा छिलकर सोने का यज्ञोपवीत सभी को दिखाया। अब आपके दिव्य पुरूष होने में किसी को भी सन्देह नहीं था। उसी समय मीरा ने भी आपकी गोद में गोपाल का दर्शन कर आपका शिष्यत्व स्वीकार किया —

मीरा मेरे सन्त हैं, मैं सन्तन की दास।
चेतन सन्ता सेन थे, दीसत गुरू रैदास॥

नहीं मैं पीहर सासरे, नहीं पिया के पास।
मीरा को गोबिन्द मिले, गुरू मिले रैदास॥ *—मीरावाणी*

एक दिन काशी नरेश आपके दर्शन के लिए आए, तो आपने उन्हें चरणामृत दिया, पर राजा चमड़ा भिगोने वाली कठौती का जल समझकर उसे न पी सका, कोट पर गिरा दिया। पानी का पीला दाग छुड़ाने के लिए धोबी को दिया। दाग छूटता नहीं था। धोबी ने उसे दांत से नोचा और रामभक्ति की धारा में बह गया। राजा हाथ मलते रहे। एक दिन गुरु गोरखनाथ जी आए। पीने के लिए पानी मांगने पर रैदास ने कठौती का जल दिया, जिसे अशुद्ध समझकर गोरखनाथ अपने खप्पर में रखकर कबीर जी के यहाँ गए। वहाँ कमाली उस जल को पी गयी। कालान्तर में वह ब्याह कर मुल्तान चली गयी। गोरखनाथ घूमते हुए वहाँ पहुँचे। अपनी सिद्धि से वे सभी को प्रभावित करते थे। इनके खप्पर को कोई अन्न से भर नहीं पाता था। कमाली ने आमन्त्रित कर दो चम्मच अन्न से इनका खप्पर भर दिया और अपना परिचय देते हुए कहा कि यह आपके खप्पर के जल का प्रभाव है। आप रैदास से पुनः कठौती का जल माँगो, तो उन्होंने कहा –

"प्याते थे तब पिया नहीं, जिन पिया पिया को जान लिया।
भूला जोगी फिरे दीवाना वह पानी मुल्तान गया॥"

एक ब्राह्मण नित्य गंगा स्नान करने जाते थे। कार्तिक पूर्णिमा स्नान के अवसर पर रैदास ने उन्हें दो केला दिया और कहा कि गंगा जी को दे देना तथा वे आशीर्वाद स्वरूप जो दें, मुझे दे देना। गंगा जी ने स्वयं हाथ बढ़ाकर आपके केले लिए तथा एक सुवर्ण कंकण दिया। ब्राह्मण लोभवश वह कंकण ले जाकर सुनार के घर बेच दिया। सुनार की पत्नी से रानी ने वह प्राप्त किया तथा वैसा ही कंकण बनवाने के लिए पति से प्रार्थना की, पर कोई भी सुनार वैसा कंकण बना नहीं पाया। खोज होने पर पता चला कि वह कंकण गंगाजी ने रैदास को दिया था। राजा रैदास के पास पहुँचा, तो रैदास ने गंगा का आवाहन किया। वहीं पर गंगा ने हाथ बढ़ाकर कंकण दिया। इस चमत्कार से सभी लोग नतमस्तक हो गए।

★★★

स्वामी रामानन्द – संत रैदास

– डॉ० वेणी प्रसाद शर्मा

स्वामी रामानन्द के समय (वि०१३५६-१५००) से सन्त रैदास के समय (१४५६-१५८४ वि०) तक भारत यर मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के साथ तुर्किस्तान से भी लुटेरे भारत पर आक्रमण करते रहे और ११९२ ई० में पानिपत के मैदान में मुहम्मद गोरी द्वारा भारत सम्राट पृथ्वीराज चौहान की पराजय के साथ भारत पर यवन आक्रमणकारियों का पूर्ण रूप से कब्जा हो गया था। फिरोज तुगलक जैसे धर्मान्ध दिल्ली के सुल्तान भारतीयों की हत्याएं कर अट्टहास करते थे और तैमूरलंग जैसे आततायी निरपराध भारतीयों की कत्लो-गारत में लगे थे। मुल्लाओं के दुर्नीतिपूर्णफतवों पर भारतीयों की हत्याएं एवं बलात् धर्म परिवर्तन करना एक साधारण बात थी। देवालय खण्डित किए जाते थे और देव-मूर्तियां समुद्र में फेक दी जाती थीं। भारतीय जनता इन अत्याचारों से त्राण चाहती थी। ऐसी भयंकर स्थिति में समस्त भारतीय जनता आतंकित एवं सर्वथा निराश्रित हो चुकी थी। सुल्तानी शासकों की यह योजना थी कि जोरस्तर वादी वैदिक धर्मी प्राचीन आर्यनाम्-ईरान की तरह समस्त भारत को मुस्लमानियत में परिवर्तित कर दिया जाय।

ऐसे भयावह काल में जब कि भारतीय जनता देवालयों के खण्डहरों पर खड़ी कराह रही थी, स्वामी रामानन्द का जन्म त्रिवेणी संगम के किनारे प्रयाग में स्वयं रांम रूप में "रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतोमहीतले"। माघ कृष्ण सप्तमी सम्वत् १३५६, सन् १२९९ में गौड़ ब्राह्मण कुल में माता सुशीला देवी की कोख से हुआ। पिता का नाम पुण्यसदन और रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में पाचवें गुरु राघंवानन्द के शिष्य परम्परा में दीक्षित हुए। काशी में ओंकारेश्वर से विद्याध्ययन कर अठारह वर्ष की आयु में दीक्षित हुए। काशी में ओंकारेश्वर से विद्याध्ययन कर अठारह वर्ष की आयु में स्वामी रामानन्द शास्त्र-पारंगत हो गए थे –

खं नभो वेद, वेद प्रमिते वर्षं गते कलौ।
कालिन्दी जान्हवी, संग शोभिते देवपूजिते।
तीर्थराजे महापुण्ये, प्रयागतीर्थं उत्तमे।
माघ कृष्णस्य सप्तम्यां शुद्ध धर्म प्रवर्त्तके।
आविर्भूतो महायोगी, द्वितीय इव भास्करः।
रामानन्दः इति ख्यातो, लोकोद्धरण कारणः॥

– अगस्त्य संहिता

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सर्वप्रथम सेनानी एवं समग्र स्वाधीनता चिन्तन के गुरु अठारह वर्षीय युवक स्वामी रामानन्द चौदहवीं शती के अन्त में अपने गुरु राघवानन्द के प्रयाग स्थित आश्रम से बाहर निकले और समस्त भारत का भ्रमण किया। गिरनार पर्वत पर साधना कर योगी तपस्वी के रूप में काशी में पंचगंगा घाट पर अपने आश्रम की स्थापना की। वहाँ एक गुफा खुदवाई गई जो कि आज भी यथावत मौजूद है। इस गुफा में रामोपासना की साधना भी चलती रही और देश की दयनीय स्थिति पर चिन्तन भी होता था। सुल्तानी शासकों द्वारा भारत में पैदा की गई आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक गुलामी का मुकाबला करने का एक मात्र माध्यम धार्मिक स्वतंत्रता की मांग थी। भारत में सर्वप्रथम भावात्मक एकता पैदा करने के लिए निम्न वर्गीय रैदास चमार से लेकर उच्चवर्णीय ब्राह्मण अनंतानंद तक अपने द्वादश दित्य रूप बारह शिष्य चुनकर वैष्णव भक्ति आन्दोलन के माध्यम से स्वामी रामानन्द ने सामाजिक क्रान्ति के अभियान का शुभारम्भ किय। ईश्वरोपासना के अधिकार की मांग वास्तव में आर्थिक-सामाजिक स्वतंत्रता की मांग थी। इसी कारण इस आन्दोलन का बाह्य रूप धार्मिक और आन्तरिक स्वरूप संघर्षमय था। वर्ष व्यवस्था के बन्धनों को ढीला कर स्वामी जी ने ऊँच-नीच, अमीर-गरीब अभी वर्णों से अपने शिष्यों का चुनाव किया था।

"जाँति पाति कुल भेदन कीजै, सबै बराबरि रंक अरु राजा" — भक्त रत्नावली॥

स्वामी जी के पंचगंगा स्थित आश्रमवासी पांच सौ शिष्यों में से रैदास चमार, धना जाट, सेननाई एवं गांगरौनगढ़ के राजा पीपाराव आदि बारह शिष्यों को प्रमुखता देकर वैष्णव भक्ति आन्दोलन की निम्न मुख्य नारा दिया —

"हरि का भजे सो हरि का होय, जात-पात पुछे नहीं कोय"

इसके साथ ही राम-भक्ति के क्षेत्र में सगुण-निर्गणोपासना का विवाद भी मिटा दिया

सगुन निगुन कथै जिनि कोई,
सब जग पूरी रह्यो हरि सोई। — भक्त रत्नावली।

इस भक्ति-पद्धति को स्वामी रामानन्द जी ने विशिष्टाद्वैतवाद की संज्ञा दी है —

"सगुन निगुन एक विचारा"

इसी-भक्ति-पद्धति का स्वामी जी की शिष्य-परम्परा में पांचवे शिष्य (स्वामी अनन्तानन्द—श्री रंगनर हरिदास—तुलसीदास) गोस्वामी तुलसीदास ने "रामचरित मानस" में उजाग्रत किया है।

"ओं रामाय नमः " से अंकित भगवांध्वज के नीचे सभी वर्णों को एकत्रित कर सम्पूर्ण भारत में जनजागरण के अभियान का शंखनाद किया।

झाल पषावज ताल म्रिदंगा, कीरतन रमै राम रस रंगा।
महा प्रलै में राखै सोई, जन को पीर न व्यापै कोई। —भक्त रत्नावली।

इसके साथ ही रामभक्ति के प्रचारार्थ एवं भारतीय संस्कृति, धर्म तथा देवालयों के रक्षार्थ भारत के विभिन्न नगरों अयोध्या, कोटा एवं आमेर आदि में अखाड़ों की स्थापनाएं की गई। इन अखाड़ों के निवासी साधु-संन्यासियों का अधिकतर समय गुप्तरूप से सैनिक शिक्षा में व्यतीत होता था। इस सैनिक शिक्षा का पांच प्रकार से विभाजन था।

(१) निर्वाण अनी (२) निरालम्बी अनी (३) दिगम्बर अनी (४) निर्मोही अनी (५) महानिर्वाणी अनी। नागा साधुओं की "दिगम्बर अनी" ने सिकन्दर लोदी द्वारा गंगा स्नान पर लगे प्रतिबन्ध को प्राणों की आहुतियां देकर तोड़ा था और यह नागा साधुओं की सेना आज भी महापर्वों (कुम्भ) पर गंगा स्नानार्थ सर्वप्रथम आगे बढ़ती हैं। संक्षेप रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी रामानन्द जी ने सुल्तानी शासनकाल में विपद्ग्रस्त भारतीय समाज के भौतिक एवं सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाया और अपनी धर्म-संस्कृति के रक्षार्थ भारतीयों के मनोबल को ढाँढ़स दिया —

म्लेच्छ मध्य युगे तीव्रे, जात अंशेन महा प्रभु।
रामानन्दो महायोगी, लोकानां नायकाग्रणी।
मृतवत्-भारतीयानां दशां संधार्य मानसे।
भारतीयानां, पुनरुत्थानं कृतवान् बुद्धिबलेन वै। —पीपा चरितम्

संत रैदास स्वामी रामानन्द के "द्वादशादित्यरूप" बारह शिष्यों में से प्रमुखतम शिष्य थे। भारत की मध्ययुगीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक निराशाजनक परिस्थितियों में संत रैदास का एक चमार के घर जन्म लेकर ख्याति के चरम शिखर पर पहुंचना मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की क्रान्तिकारी घटना है। सुलतानी शासन काल में विपद्ग्रस्त भारत भूमि पर अवतरण, उनके एक ही जीवन का प्रतिफलन नहीं कहा जा सकता। चिरन्तन भारतीय संस्कृति के वे एक मनस्वी व्याख्याता रहें हैं — एकमात्र अनन्य राम भक्ति के भरोसे। अतः महाकवि कालिदास की निम्न उक्ति उनपर अक्षरशः घटित होती है।

"सती च पोषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि"

अर्थात् सती, साध्वी, पतिव्रता स्त्री एवं मनुष्य की निश्चल प्रकृति आगामी जन्म में भी उसका अनुसरण करती है। इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आलोक में सम्बत् १६४५ (सन् १५८८ में अतंतदास वैष्णव रचित -"भक्त रत्नावली") में वर्णित रैदास विषयक जन्म-कथा यथार्थ एवं वास्तविक है :—

काशी में गंगा के किनारे पंचगंता घाट पर स्थित स्वामी रामानन्द के आश्रम की भोजन व्यवस्था नित्यप्रति भिक्षा-वृत्ति से एकत्रित खाद्य सामग्री द्वारा चलती थी। एक दिन आश्रम निवासी एक ब्रह्मचारी शिष्य नगरी में भिक्षार्थ गया। वर्षा हो रही थी, अपने घर के बारमदे में खड़े एक प्रौढ़ दम्पति ने गली में जाते हुए ब्रह्मचारी से प्रार्थना की, महाराज "आश्रम के लिए आज की "सौजल"- खाद्य सामग्री हमसे स्वीकार कीजिए। दुकान से यथेष्ठ खाद्यान्न ब्रह्मचारी को दिलवा दिया गया। उस दिन सभी आश्रमवासियों की उदरपूर्ति इसी अन्न से हुई। उस दिन अर्द्ध रात्रि में गुफा के अन्दर समाधिपस्थ स्वामी रामानन्द जी के ध्यान में एक नवजात शिशु की प्रतिच्छाया घूमती रही। पौ फटने की बेला में स्वामी जी को भान हुआ कि प्रौढ़ दम्पत्ति ने पुत्र प्राप्ति की कामना से आश्रम में भोजन सामग्री भेजी है। अतः प्रातः प्रार्थना सभा में उसी ब्रह्मचारी शिष्य को बुलाकर

आदेश हुआ "तुम्हें पुत्र रूप में उसी दम्पत्ति के घर जन्म लेना होगा"। परिणामतः कालान्तर में उस ब्रह्मचारी ने चोला छोड़कर उक्त दम्पत्ति-करमादेवी और राघवदास के घर में जन्म लिया।

नगर वाणांरसि उत्तिम गाँऊ, पाप न नियरे आतै कांउं।
स्रुति सिम्रित का अधिकारा, तहां रैदास लियौ अवतारा।
जाति चमार पिता अरु माई, साषित के घर जनम्यौ आई। —भक्त रत्नावली

पूर्वजन्म की स्मृति में गुरु दीक्षक के अभाव में शिशु रैदास ने माता करमा देवी का स्तन-पान नहीं किया।

दूध न पीवै रुदन कराई, ऐसी देखी कुटुम्ब डराई।
कुटुम्ब सहित पिता दुखपावै, रैदास ही निज मरिवै भावै।

उधर पंचगंगा घाट स्थित आश्रम की गुफा में स्वामी रामानन्द जी को अन्तर्ज्ञान हुआ :—

"अरध राति भई आकासे वानी, तब रामानंदहि मन मंह जानी
चमरा के घरि बेटा जाया, जो मेरा जन औतरि आया।

स्वामी रामानन्द जी प्रातः होते ही राघवदास के घर पहुंचे तो —

"तब चमरा उठि लागो पाई, ज्यो जीवै सो करौं उपाई।
तब रामानन्द गहर नहिं कीनू, माथे हाथ चमरा के दीनूं।
माला तिलक भद्र कराये, पाछले भजन सबै दुराये।
रं राम गुरु दच्छया दीन्हीं, सब कुटुम्ब भगतिमय कीन्हौ।
सबसीं के मन भयो उल्हासु, अस्थन पान करै रैदासु

गुरु स्वामी रामानन्द से दीक्षित होकर सात वर्ष की आयु में ही रैदास नवधा भक्ति में पारंगत हो गए :—

वरष सात कौ भयौ है जबही, नवधा भगति चलाई जबही।
न्यारे मन्दिर भोग लगावै, तहाँ न कोउ मथिम आवै।
पूजा अरचा अधिक अचारु, जानै भगति रीति व्यौहारु।

संत रैदास ने गुरु-दीक्षानुसार विशिष्टाद्वैती भक्ति-पद्धति का अनुसरण करते हुए भारत की सांस्कृतिक परम्परा एवं वेदशास्त्रों में आस्था-निष्ठा रखते हुए ब्रह्म के सगुण निर्गुण रूप का समान रूप से वर्णन किया है :—

नष प्रशेद जाके सुरसरि धारा, रोमावली अठारह भारा। (१८ पुराण)
चारो वेद सिम्रिति स्वासा, भगति हेत गावै रैदासा —रैदासवाणी

प्रस्तर प्रतिभा में भी भगवान् का निवास है —

वपुरो रैदास कहै रे।
ग्यांन विचारि चरन चित लावै, हरि की सरनि गहै रे।
मूरति मांहि बसै परमेसुर, तौ पांनि मांहि तिरै रे।
कहै रैदास राम जपि रसना, माया काहु के संग न रहैरे।

रैदास जी कहते हैं कि पूर्व जन्मार्जित सत् कर्मों से स्वामी रामानन्द जैसे पारस मणि रूप गुरु से भेट हुई तो मेरी मनः स्थिति उन्मनि अवस्था में पहुंची और मेरे मन के अंज्ञान रूपी वज्र-किवाड़ खुल गए और रामभक्ति में मेरा मन स्थिर हो गया। मेरे मन की सब शंकाएँ और भ्रम बाधाएँ समाप्त हो गईं और मेरा मन राम-रस में सराबोर हो गया एवं राम के सगुण-निर्गुण रूप में मेरे लिए कोई अन्तर नहीं रहा।

परम पारस गुरु भेटिए पूरब लिषत ललाट।
उनमनि मन मनहि मिले, छुटकत बज्र कपाट।
भगति जुगति मति सति करि, भ्रमबंधन काटि विकार।
सो रसि बीस मन मिलै, गुन-निरगुन एक विचार —रैदासवाणी

संक्षेपतः सत्य के लिए आग्रह, कर्मनिष्ठा, देश भक्ति, भारतीय संस्कृति के संरक्षणार्थ सतत् संघर्ष एवं आन्य' राम भक्ति के सहारे चर्मकार कुलोत्पन्न संत रैदास ने भारत में सर्वत्र प्रसिद्धि पाई। राणा सांगा की पत्नी रानी झाली, और इनकी पुत्रवधू मीरा इनके शिष्यत्त्व में आई और अंततः भारत सम्राट् राणा सांगा ने "सकलराजधानी" को अगवानी में लेकर चित्तौड़गढ़ में रामभक्त रैदास का शाही स्वागत किया था और राणा सांगा परिवार के राजगुरु घोषित किए गए तो रैदास ने आंखों में कृतज्ञता के आंसू ढुलकाते हुए विह्वल भाव से राज चरणों में विनती की :—

"ऐसी लाज तुम विन कौनु करे।
गरीब निवासु गुसईयां मोरे, माथे छत्र धरे।
जाकि छोत जगत कै लागै, ता पै तू ही दूरै।
नीच हु ऊँच करै मेरा गोविंदु, काहु ते नर डरे।
नाम देव कबीरु त्रिलोचन, सदना सैनु तरै।
कह रैदास सुनहु रे संतो, हरि जिउ ते सभै सरै॥ —रैदासवाणी

इस प्रकार १२९ वर्ष की आयु में सम्बत् १५८४ में चित्तौड़गढ़ के नीचे गांभीरी नदी के किनारे वैसाखी के दिन मध्यान्ह में संत रैदास की लौकिक लीला समाप्त हुई :—

पन्द्रह से चऊ असी, चित्तौरे भई भीर।
जर जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ सरीर। —भक्त रत्नावाली

चित्तौड़गढ़ के कुम्भश्याम मन्दिर के आँगन में परम संत रैदास का स्मारक "रैदास छतरी" अपने भव्य रूप में आज भी अपना सिर ऊँचा उठाए अनन्य राम-भक्त की यादगार को ताजा किए हुए हैं। ★★★

स्वामी रामानन्द और सन्त कबीर

— गंगाशरण शास्त्री

संसार में महापुरुरुषों का अवतरण होने का कोई न कोई कारण होता है। जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन्हें समाज की मांग ने प्रकट किया है। जब संसार में अशान्ति फैल जाती है अवांच्छितत्वों से जगत् क्षुब्ध हो उठता है लोग एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं मानव का मानव विनास करने लग जाता है। आस्तिक जगत के अनुसार परमात्म शक्ति संसार के स्थिर रखने के लिए एवं शान्ति-प्रदान करने के लिए किसी न किसी महापुरुष का पर्दापण कराती है। उक्त महापुरुष के द्वारा शान्ति का वातावरण बनता है और लोग चैन की श्वांस लेते हैं। उन्हीं महापुरुषों में सद्गुरु रामानन्दाचार्य आते हैं। जिन्होंने बहुतकाल तक शरीर धारण कर संसार का बहुत उपकार किया था। भारतीय संत परम्परा में भगवान महावीर एवं भगवान बुद्ध के बाद सद्गुरु श्री रामानन्द स्वामी का नम्बर आता है। जिस प्रकार से भगवान बुद्ध चली आ रही परम्परा को नकार दिया स्वविवेक से मानवहित्त का मार्ग स्थापित्त किया। जिस प्रकार से स्वामी महावीर ने पूर्ण अहिंसा का उपदेश दिया उसी प्रकार से स्वामी रामानन्द जी सभी प्रकार के वातावरणों एवं वर्णाश्रम के घातक स्थापनाओं का डटकर विरोध किया। वे ऐसे समय में प्रकट हुए जब देश पर विदेशी शासक शासन करता था और भारतीय मनीषा को दासता की बेड़ीी में जकड़ दिया था। भारतीय संस्कृति को छिन्न-भिन्न करके दुर्गन्ध के टोकरी में डाल दिया था। भारतीय समाज अत्यन्त क्षुब्ध हो गया था। निरन्तर संस्कृति के केन्द्र मठ-मंदिर तोड़े जाते थे। बक्तियार खिलजी के द्वारा नालन्दा तथा तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय को पूर्णरूप से ध्वस्त कर दिया गया था। चित्रकूट के विश्व पुस्तकालय को फूंक दिया गया था। जिसमें छः महीने तक अग्निदेव कुपित होकर अपने उपासकों की ही धारोहर भस्म कर रहे थे। निरन्तर लोग हिन्दू धर्म को त्याग कर मुस्लिम धर्म को ग्रहण कर रहे थे। हिन्दुओं की बहु-बेटियां बालात् अपहरण की जा रही थी। भारतीय भूभाग रूपी समुद्र में आर्यजनों की नौका बिना पतवार और बिना कैवर्त्य के इधर से उधर चक्र काट रही थी। आक्रान्त कार्यों के लहर स्वरूपी थपेड़े में नौका समुद्रीय पहाड़ों की चट्टानों से टकराकर चूर-चूर हो रही थी। भारत की अस्मिता समूल रूपेण दूषित हो चुकी थी। कुछ ही लोग श्वांस लेते हुए जीवित थे। विक्रम की आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवी शताब्दी तक विदेशियों के द्वारा भारत खूब रौंदा गया। विशाल देश होने के पर भी अपने को बचा नहीं सका। धर्म के एवं भोग के उन्मादियों ने इस पवित्र धरती पर नरक की महानदी वैतरणी का प्रवाह कर दिया। लोग जीते जी उसमें डूबने लगे क्राहि क्राहि और त्राहि-त्राहि की ध्वनि धरती से व्योम तक फैल गयी। भक्तों की पुकार पर परात्पर शक्ति ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का अन्त होते होते एक दृढ़ कवचधारी पुरुष प्रकट किया। जो भारत भूमि का उद्धार करने में समर्थ हुआ। जिसके बारह शिष्यों में प्रधान शिष्य युग-प्रवर्तक सद्गुरु कबीर भी अवतरित हुए। स्वामी रामानन्द रूप वटवृक्ष में द्वादश स्कन्ध ऐसे उत्पन्न हुए। जो किसी के काटने से कटने

वाले नहीं थे । जो देश के कोने-कोने में घूमकर भारतीय समाज का उद्धार किया । जो प्रवाह तुरुक धर्म को स्वीकार करते जा रहा था उस प्रवाह को रोक कर पुनः अपने धर्म की ओर लौट गया । आज से ६ सौ वर्ष पहले ही आज के नारा को लगाया गया था कि जाति विहीन,वर्ण विहीन समाज का निर्माण स्वामी रामानन्द जी और उनके सुशिष्य सद्गुरु कबीर साहब कुव्यवस्था की बेड़ियों को तोड़ चुके थे । स्वामी रामानन्द के समाज में न कोई ब्राह्मण था न कोई शूद्र था, सभी मानव थे । सभी मंदिर में जाने के अधिकारी थे । सभी को वेद-ज्ञान प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार था, सभी लोग ईश्वर की कृपा-पात्र थे । स्वामी रामानन्द के विचार को यदि जानना है समझना है तो रविदास जाति के चमार थे, सेन जी जाति के नापित थे, धन्ना जाट थे, कबीर साहब जुलाहे द्वारा पालित थे । कुछ ही अग्रजन्मों को छोड़कर उनके प्रधान शिष्यों में दलित वर्ग के लोग ही थे । इससे स्वामी जी की महानता और विचारधारा स्वयं ही अवगत हो जाती है । महानता तब होती है जब प्राप्त राजपाट को त्याग दिया जाय । महानता तब होती है जब स्वयं उच्च कुल में जन्म लेकर उच्चता को नकार दिया जाय । ये गुण स्वामी रामानन्द जी में स्वयं थे । वे सम-सामयिक पुरुष थे,समय की पुकार को पहचानते थे । वे कुण्ठाग्रस्त नहीं थे और वे पूर्णयोगी पुरुष थे । जिन लोगों ने अनन्तकाल से स्वार्थपरता के कारण भेद-भाव को जन्म दिया था, मानव-मानव में निम्न और श्रेष्ठा की श्रेणियां बाटी गयी थी उन सब लोगों के विचारों को उन प्रथाओं को स्वामी रामानन्द ने पूर्णरूपेण नकार दिया । उन्होंने एक नये समाज का निर्माण किया जिसका नाम वैष्णव रखा । स्वामी रामानन्द जी संसार का बहुत बड़ा उपकार किया । जब तक वे जीवित रहे जब तक उनके बारह शिष्य विद्यमान थे तब तक उनके विचार समाज पर लागू थे उनके समाने पोंगा पंथियों की नहीं चली वे टरटराते रह गये परन्तु खेद का विषय यह है कि जिस मानवता का और मानव समाज का प्रस्थान पर स्वामी जी के द्वारा हुआ था उनके और उनके शिष्यों के पश्चात् उस रूप में वह नहीं रह गया । पुनः वैष्णव समाज वर्णाश्रम की बेड़ियों में जकड़ गया । जिस मन्दिर में संत रैदास जी सेन जी पूजा करते थे उन्हीं मंदिरों में उनकी जाति वालों को जाने से रोक दिया गया । स्वार्थियों ने व्यवस्थावादियों ने वैष्णव सम्प्रदाय में घुसकर इसके सुन्दर स्वरूप को कुरूप कर डाला । जिन तथ्यों को जिन कर्मकाण्डों का जिस छुवाछूत का जिस ऊंच-चीच को स्वामी रामानन्द और उनके शिष्यों ने नकार दिया था वही सब गन्दगी और घृणा पुनः वैष्णव समाज में प्रवेश कर गयी । आज जाति के नाम पर सभी जातियों के मन्दिर अलग-अलग बन गये हैं । ब्रह्मण मन्दिर, शूद्र मन्दिर, अन्त्यजा मन्दिर, अयोध्या आदि नगरों में देखे जा सकते हैं । क्या स्वामी रामानन्द ने यही सुझाया था । क्या उनकी यही सीख थी । हमें अपने कृत्य पर पश्चाताप करना चाहिए हमें लज्जा करनी चाहिए क्योंकि हम गुरु के बताये उपदेशों पर नहीं चल रहे हैं । हम पुनः समाज को अनेक टुकड़ों में बाट रहे हैं जिस गुरु ने मानव से मानव को जोड़ने की बात की थी वहीं पर आज हमने मनुष्यों को अनेक टुकड़ों में विभाजित कर दिया है । नारा और उद्घोष मेरा वही है जो गुरु ने दिया था परन्तु हमारे भण्डार गृह में हमारे भोजनालय में पादज एवं उरज तथा बाहुज भी नहीं घुस सकते हैं । आज मेरी करनी और कथनी में महान अन्तर हो गया है इसलिए हमारा प्रभाव समाज से उठ चुका है हम अपनी कमजोरियों के कारण समाज पर प्रभावी नहीं हो पा रहे हैं । जिस योगध्यान की उपासना का मार्ग गुरु रामानन्द ने और उनके सुशिष्यों ने समाज को दिखाया था आज वह सब छोड़कर हम उससे पृथक हो गये हैं । इसलिए हमारा समाज हमको नकार रहा है । हम भगवती नारायणी के चक्र में पड़ गये हैं । संसार हमें समझ गया है इसलिए हम इस धारा से कटते जा रहे हैं । उल्टे हम कहते हैं कि लोगों में अब श्रद्धा नहीं रह गयी है । लोग सन्तों की पूजा नहीं करते हैं लोग धर्म हीन होते जा रहे हैं । भला यह कितनी बड़ी ऐषणा है हम लोगों से पुजाना चाहते हैं लोगों के सिर पर बैठना चाहते हैं पर हम अपनी करनी और कथनी की ओर झांक कर नहीं देखते कि हम सन्त गुरु को भजना चाहते हैं आकृष्ट हम मान

रहे हैं। और अपने को सन्त और गुरु कहलाने के लिए आकुल हो उठे हैं। आज हम शूद्र और ब्राह्मण का नारा लगा रहे हैं यह हमारे लिए शोभा नहीं देती। यदि हमें अपनी अस्मिता और अपने गौरव को बचाना है पुनः प्राप्त करना है तो हमें कथनी और करनी को एक करना पडेगा। बाहर भीतर एक भाव रखना पडेगा। जब एक भाव होगा तभी हम सम्प्रति डूबते हुए समाज का उद्धार कर सकते हैं। अन्यथा थोथे नारों से लच्छेदार लेखों और भाषणों से कुछ होने जाने का नहीं है। क्योंकि जब हम दास थे जो हम पर अपना स्वामित्व लादा था वह विदेशी था वह मुझे दूर से देखता था। उसके देखने में भ्रम भी होता था। जिसके कारण हम बचे रहे। आज हमारा ही रक्त हम पर शासन कर रहा है और मुझे बहुत नजदीक से देख रहा है। हम उसकी आंखों से ओझल नहीं हो सकते। हमारी कथनी और करनी को पहचान रहा है। इसलिए हमें प्रत्येक वक्तव्यों को करनी के अनुसार देना पडेगा जितना हम चल सकें, जितने का हम अनुपालन कर सकें उतना ही मुझे कथन करना चाहिए। तभी हम समाज को और देश को सुरक्षित रख सकते हैं। तभी हम गुरु और सन्त कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। क्योंकि आज का शिक्षित युग प्रत्येक अन्ध-परम्परा को नकारते जा रहा है, मुझे सत्य का उद्घाटन करना होगा और ऐसे समाज का सृजन करना होगा जो सभी प्रकार के कल्मषों से विरत होना पड़ेगा। तभी हम देश की एकता और समाज की सुरक्षा और अपनी गौरव-गाथा को अक्षुण्ण रख सकेंगे। अन्यथा मेरा शास्त्रीय ज्ञान न मुझे पावन कर सकेगा और न मेरा कहा हुआ समाज पर असर डाल सकेगा। आज हमारे में सौहार्द की इतनी कमी आ गयी है कि अपनी शाखाओं को हम एक नहीं रख पा रहे हैं। कबीरपंथी और रविदासी, रामदासी, दादूदासी आदि हमारी शाखायें हैं हमें गुरु परम्परा में होने के कारण सबको बुलाना पड़ेगा। तभी हम गुरुपीठ पर आचार्य एवं पीठाधीश्वर बन सकते हैं। जिस गुरु ने इतने बड़े समाज का निर्माण किया था अग्रजन्मों की अपेक्षा के अतिरिक्त उपेक्षा कर निरपेक्ष समाज का निर्माण किया था। एक दूसरे से गला मिलाकर चलने की सीख दी थी उस पीठ पर बैठकर मुझे घृणा और ईर्ष्या को त्याग करने की आवश्यकता होगी। हमारी कमी के कारण नानक पंथ अलग हो गया दादू पंथ अलग हो गया। कबीरपंथ बन गया, रामसनेही बन गया। रामदासी और रविदासी बन गया। यह सब हमारी उपेक्षा का ही परिणाम है। मुझे यदि जीवित रहना है तो उदार बनना होगा। सारी मानवता को अपना कुटुम्ब समझना होगा। घोर तपस्या करना पड़ेगा । शास्त्रीय ज्ञान का और वाचक ज्ञान का अभिमान छोड़ना पड़गा। घोर इंन्द्रिय-निग्रह करना पड़ेगा। बिना आत्म-संचय के हमारे में तेज नहीं आ सकता। इसलिए, मुझे स्वच्छ वृत्ति अपनानी होगी। तभी हम गुरु के पीठ पर सुशोभित हो सकेंगे। तभी सारा संसार बिना कहे सुने, विना उपदेश के मुझे अपना गुरु स्वीकार करेगा। गुरु स्वामी रामानन्द जनश्रुति के अनुसार अधिक मौन रहते थे। अहर्निश बहुत काल तक गुफा में बैठकर घोर साधना भी की थी। वे सिंह-पुरुष थे उनके आचरण को देखकर लोग उनकी ओर आकृष्ट हो जाते थे। उस भारतीय मनीषा के विषय में गौरव के साथ कहना पड़ेगा कि वह मुझे बचा लिया। सनातन धर्म को सुरक्षित रखा । यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सद्गुरु श्री स्वामी रामानन्द जी एवं उनके सुशिष्य सद्गुरु कबीर यदि नहीं हुए होते तो यह देश का नामकरण भी तुर्किस्तान व वृहद् पाकिस्तान हो गया होता। परन्तु उन्हीं युग महापुरुषों के प्रयास से आज भारत, भारत कहला रहा है। आज रामकृष्ण के चिन्ह-चक्र यहां दिखायी न देते। जिस प्रकार से आर्याना ईरान के ईल वंश का आज नामोनिशान नहीं रह गया है जो अग्नेनय सुपथाराम की उपासना करते थे जो हमारे सगे भाई थे आज वे अपने देवता को ही अपशब्दों से विभूषित करते हैं। इसी प्रकार से वृहद्ता भारत के अंग तुर्वसु के देश को भी हम बचा नहीं सके जो आज तुर्किस्तान के नाम से जाना जाता है । उसी प्रकार से कुम्भी नदी के तट पर बसा हुआ काबुल देश जो आर्यों से आवृत था जहां पर वेद की बहुत सी ऋचायें उत्पन्न हुयी थी वह कुम्भी नदी का किनारा भी अपने ब्राह्मणत्व को त्याग कर

म्लेच्छ धर्म में परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार से जम्बू दीप के अनेक देश आर्य धर्म को स्वीकार करके अपने भाई का ही गला काटने पर उतारू हो गये। इस भारत आर्यों की मूल भूमियों में बहुत से भूखण्ड म्लेच्छ धर्म से दूषित हो गये हैं। केवल हम अब थोड़ से बचे हैं। यहां हमारी संख्या खरबों में थी, अरबों में थी आज कुछ करोड़ में ही रह गयी है। जो स्वामी गुरु, रामानन्दजी एवं कबीर साहब की कृपा का फल है। यदि हम सच्चे गुरु के शिष्य हैं तो मुझे ऋषि युग को लाना पड़ेगा और महान उदारता का उदाहरण उपस्थित करना पड़ेगा। मुझे कृणवन्तो विश्वमार्य का उपदेश ग्रहण करना पड़ेगा। समस्त भेदभाव को समस्त छुआछूत को मिटाकर सबको आर्य बनाना पड़ेगा। आर्यत्व की स्थापना करनी पड़ेगी। जो दूसरे धर्मों में चले गये हैं जो हमसे बिछुड़ गये हैं उन भाइयों की पुर्नशुद्धि करनी पड़ेगी। उदारता और प्रेम के द्वारा ही हम महाभारत की स्थापना कर सकते हैं। और अपने चिरन्तन ऋषियों के उपदेश को, ऋषियों के उद्घोष को संसार में विखेर सकते हैं। आज उन कठोरजनों के तालों को खोलना पड़ेगा जिसमें मंदिर में जाने की छूटट देनी पड़ेगी। तभी हम वैष्णव कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं और आचार्य पद पर अपनी शोभा बढ़ा सकते हैं। अन्यथा रोजी-रोटी की समस्या हल करने वाली बात आ जायेगी तो समाज और देश टूटेगा और हम अपने को असुरक्षित पायेंगे। क्योंकि हमारे यहां लिखा है कि संघे शक्ति कलौ युगे। पहले तो मुझे अपने समाज को निष्कलुष, उदार, चरित्र वाला महान बनाकर संसार को दिखाना पड़ेगा कि हम भारत जैसे पहले सबके गुरु थे उसी प्रकार से आज हम गुरु कहलाने के अधिकारी-हैं, सन्त कहलाने के अधिकारी हैं, आर्य कहने के अधिकारी हैं। तभी हम अपने अभियान में सफलीभूत हो सकते हैं। हमारा समीकरण होना नितान्त और अत्यन्त परमावश्यक है। क्योंकि कबीर साहब ने कहा है कि 'भक्ति द्रविण ऊपजी लाये रामानन्द, प्रगट किया कबीर ने सात द्वीप नव खण्ड।'

इसी प्रकार से मुझे इस दोहे को चरितार्थ करना पड़ेगा। अग्रिम मेरा नम्र निवेदन है कि मेरी श्रद्धांजलि स्वीकार करते हुए आक्रोश के जगह वास्तविकता का अनुभव करना चाहिए और वास्तविकता को पहचानना चाहिए यही मेरा नम्र निवेदन है।

* * *

रामानन्द-संप्रदाय में संत तुलसीदास

— स्वामी योगिराज

रामोपासना के क्षेत्र में आचार्य रामानन्द और उनके शिष्यों के बाद उस महान् पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ जिसके द्वारा न केवल भारत ही अपितु सारा भूमण्डल ही कृतार्थ हो गया था। इतिहास के सुनहरे पन्नों में लिखा हुआ हम उसका नाम तुलसीदासजी महाराज पढ़ते हैं। भारत के नर-नारियों में इस महापुरुष के प्रति कितनी श्रद्धा है उसे व्यक्त कर देने के लिये हमारे कोश में कोई शब्द नहीं है। उनका लिखा हुआ श्रीरामचरितमानस आज मानव-जाति के लिये एक स्वर्गीय अमर संदेश है। एक झोंपड़ी से लेकर राजभवनों तक में बैठकर सभी वर्ग के प्राणी उस अमृत को बार-बार पीते हैं और नहीं अघाते।

आचार्य रामानन्द की चौथी पीढ़ी में तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव हुआ है। उनके जन्म की कथा बड़ी मार्मिक है। जन्म के बाद ही उन्हें माता-पिता ने त्याग दिया, इसका कारण उनका विचित्र जन्म था। बत्तीस दाँतों के सहित माता के उदर से जन्म लिया और जन्मते ही मुख से 'राम' शब्द उच्चारण किया। आकृति भी बड़े बालक की-सी थी। इन सब लक्षणों को देखकर घरवाले भयभीत हो गये। लोग कहने लगे कि घर में किसी राक्षस ने जन्म लिया है। माता हुलसीजी ने अपनी दासी से बालक को रात में ही ले जाने को कहा। वे अनुभव कर चुकी थीं कि उन्हें शीघ्र ही मृत्युलोक से चले जाना है और उनके शरीर-त्याग के बाद लोग उस बालक को कहीं भी फेंक कर मार देंगे। उन्होंने अपना भूषण भी दासी को सौप कर कहा कि वह अपनी ससुराल में बालक को ले जाकर पाल ले। दासी ने वैसा ही किया और बालक को लेकर चली गई। उधर माता हुलसी ने जन्म से पांचवें दिन बालक के त्यागने के बाद अपना नश्वर शरीर भी त्याग दिया। वे भगवान् के परमधाम को चली गईं। पाँच वर्ष और पाँच महीना के बाद बालक को पालने वाली दासी भी भगवान् के लोक को चली गई। तदनन्तर बालक का संसार में कोई नहीं रहा। संसार उसे छूना भी नहीं चाहता था क्योंकि उसके ध्यान में वह बहुत ही अशगुनी था। अनाथ बालक की दीनता का कोई पार नहीं था। द्वार-द्वार बिललाते फिरा परन्तु किसी ने भी दया का हाथ रक्षा के लिये उसकी ओर नहीं उठाया। कौन जांनता था कि वह असहाय अभागा बालक एक दिन संसार का सबसे बड़ा महापुरुष होगा। करोड़ों, अरबों प्राणी युगों-युगों तक उसका नाम श्रद्धा से स्मरण करेंगे।

भगवान् के पवित्र धाम श्री चित्रकूट में स्वामी नरहरियानन्दजी महाराज एकान्त भगवद्भजन करते थे। वे आचार्य रामानन्द के प्रधान शिष्य अनन्तानन्दजी के शिष्य थे। उन्हें भगवान् शंकर ने दर्शन देकर उस बालक को लाने की आज्ञा दी। स्वामी नरहरियानन्दजी हरिपुर नाम के ग्राम में गये और वहाँ उस बालक को प्राप्त किया। उन्होंने अपनी कृपा का पवित्र हाथ उस बालक के मस्तक पर फेरा और बड़े प्रेम से उठाकर उसे अपने हृदय से लगा लिया। संसार ने जिसे अभागा समझ कर त्याग दिया था, महात्मा उसे हृदय से लगा लिया। यह अमर इतिहास सदैव मनुष्यों के हृदय में महात्माओं के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता ही रहेगा। स्वामी नरहरियानन्द

नरहरियानन्द जी उस बालक को अवध ले गये। वहाँ १५६१ वि० सम्बत् में माघ शुक्ल-पंचमी शुक्रवार के दिन उसका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा वैष्णवधर्म की मर्यादा के साथ उसे मंत्र का उपदेश मिला। उन दयालु महात्मा ने उस बालक का नाम तुलसीदास रखा। भाग्य की रेखाओं का किसी को पता नहीं कब क्या करती है। तुलसीदास का अध्ययन उसी समय प्रारम्भ हो गया और वह उन्हीं महात्मा की देख-रेख में हुआ। तुलसीदास अब अभागे और अनाथ बालक नहीं थे। अब वे एक भारत के प्रख्यात स्वामी नरहरियानन्दजी के प्यारे शिष्य थे । इन्हीं पूज्य गुरुदेव को महाकाव्य 'रामचरितमानस' रचते समय तुलसीदासजी ने आरम्भिक वन्दना में बड़ी ही श्रद्धा से स्मरण किया है --

'बन्दों गुरुपद कंज कृपा सिंध नर रूप हरि।

महामोह तमपुंज जासु बचन रविकर निकर' ॥

तुलसीदासजी का जन्म-वृत्तान्त बहुत ही रोमांचकारी है। जन्म लेने के बाद ही वे किन-किन कठिनाइयों में प्रतिक्षण गिरते गये पढ़ने से हृदय स्तब्ध हो जाता है। यह प्रसंग 'मूलगुसाईंचरित' ग्रन्थ से लिया है। इसका समर्थन स्वयं तुलसीदासजी ने अपनी 'विनय पत्रिका' में किया है।

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।

है दयालु दुनि दश दिशा दुख दोष दलन क्षम कियो न संभाषण काहू।

त्वचा तजत कुटिल कांट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।

काहे को रोष काहियौ मेरे ही अभाग मोसों सकुचत सब छुइ छाहूँ।

दुखित देखि सब सन्तन कह्यो शोचे जनि मन माहूँ। (विनय २७६ पद)

प्रभु राम से विनय करते समय अपने जन्मकाल की दुखभरी कहानी तुलसीदासजी कहते हैं 'हे राम' हर एक द्वार पर पाँव पड़कर दीनता सुनाते हुए दाँत काढ़-काढ़ रोया। दुनिया में दशो दिशाओं के अन्दर दुख-दरिद्रता को हटाने वाले अनेकों दयालु हैं पर किसी ने भी मेरी बात नहीं पूछी। साँप की कैंचली के समान माता-पिता ने भी मुझे त्याग दिया। हे प्रभु ! मैं किस पर रोष करूँ और किसे दोष दूँ यह सब मेरा ही अभाग था। सभी लोग मेरी छाया छूने में ही सकुचाते थे। हे नाथ ! वैसी दयनीय परिस्थिति में तुम्हारे भक्त-सन्तन ने मुझे हृदय से लगाया, मेरे आँसू पोछे और मुझे अभय दी।

महापुरुषों के जन्म तथा अन्त बड़े ही घटनात्मक होते हैं। साधारण मानव का हृदय उन्हें देखकर विचलित हो उठता है। तुलसीदासजी एक महान् विभूति थे उनके चरित्र यदि हृदय को विचलित करने वाले हो तो आश्चर्य की बात ही क्या है। भक्त लोगों ने उन्हें भगवान् वाल्मीकिजी का अवतार माना है। 'कलि कुटिल जीव निस्तार हेतु वाल्मीकि तुलसी भये' 'भक्तमाल' में नाभाजी ने ऐसा ही लिखा।

तुलसीदासजी की मेधाशक्ति बाल्यकाल में बड़ी ही प्रखर थी। वे एक बार जो कुछ सुन लेते थे वह उन्हें स्मरण हो जाता था। उनका बहुत कुछ अध्ययन उनके गुरुदेव के द्वारा ही हुआ। कुछ काल के लिए उन्हें उनके गुरुदेव ने काशी भेज दिया। वहाँ उन्होंने रामानंदपीठ पंचगंगा घाट में रहकर साम्प्रदायिक परंपरा के साथ समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया। कहते हैं कि थोड़े ही काल के अन्दर तुलसीदासजी ने संपूर्ण शास्त्रों का क्रमशः अध्ययन कर डाला उनकी प्रतिभा को देखकर बड़े-बड़े विद्वान् उनका आदर करने लगे। तुलसीदासजी अब विश्व का कल्याण करने में समर्थ हो गये। उनका ध्यान फिर उस ओर गया जिसके लिये वे आये थे।

आचार्य रामानन्द स्वामी तथा उनके अनेक शिष्यों ने भूलोक में लम्बे काल तक रहकर जिस विशाल साम्राज्य को धार्मिक क्षेत्र में स्थापित किया था उसका बहुत-सा उत्तरदायित्व तुलसीदासजी के ऊपर भी आया। सारा देश रामोपासना से व्याप्त हो रहा था। लोक के सामने मर्यादा पुरुषोत्तम.राम का महान् आदर्श रूप रखा जा चुका था और जनता उसकी ओर बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ झुक चुकी थी। लोग राम के दिव्य चरित्र सुनने के लिये बहुत ही उत्सुक रहते थे परन्तु संस्कृत भाषा में होने के कारण उन्हें उसका कम लाभ होता था। प्राचीन युगों में भगवान् वाल्मीकिजी ने उस अमृत को आदिकाव्य के रूप में संसार के सामने बहाया था। उन युगों में निरन्तर ही सभी प्राणियों ने उसे पिया था। काल-चक्र के बदलने पर वह मधुर रस प्रायः सभी के लिये दुर्लभ-सा हो गया। उपासना के क्षेत्र में वह एक बड़ी ही कमी थी। तुलसीदासजी ने बाल्यकाल में ही उसका अनुभव किया था। उनके गुरु भगवान् ने जब उन्हें बार-बार उस अमर काव्य को देव-बाणी में सुनाया, उसी समय उन्हें हृदय में बोध हुआ कि यह दुर्लभ चरित्र सर्वसुलभ हो तो कितना अच्छा है। वे उसके लिये संकल्प करते हैं।

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सुसूकर खेत,
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेऊ अचेत।
श्रोता वक्ता ज्ञान निधि कथा राम की गूढ़,
किमि समुझों मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित विमूढ़।
जदपि कही गुरु बारहिं बारा, समुझ परी कछु मति अनुसारा।
भाषाबद्ध करब मैं सोई, मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

—(रामचरित मानस)

वे कहते हैं, 'मैं इस महाकाव्य को भाषाबद्ध (मनुष्यों की भाषा में) करूँगा जिससे मुझे शान्ति मिले'। गोस्वामीजी अपनी शान्ति में विश्व की शान्ति का अनुभव करते हैं। यह उनकी अबोध बाल्यकाल की प्रतिज्ञा है । वे जिस महान् कार्य के करने को आये थे उसी के पूरा करने के लिये उनकी आत्मप्रेरणा हुई। वे उसके लिये खड़े हुए और उसे पूरा किये।

आचार्य रामानन्द ने अपने शिष्यों को लोक की भाषा में अपने विचार जनता तक पहुँचाने का आदेश दिया। उसका पालन उनके सभी शिष्यों ने किया, आचार्य ने लोक की भाषा में हिन्दी का रूप खड़ा किया और उसी में उन्होंने स्वयं ही कुछ रचनाएँ कीं। हिन्दी के क्षेत्र में जो कुछ भी साहित्य का रूप सर्वप्रथम देखा गया वह आचार्य रामानन्द की ही देन है; इसीलिये वे हिन्दी के जन्मदाता माने जायँगे। उनके तमाम शिष्य-प्रशिष्यों ने हिन्दी में ही अपनी-अपनी रचनाएँ कीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी हिन्दी को ही अपनाया और उसी में उस स्वर्गीय गान 'श्रीरामचरितमानस' को लिखा जो लोक को बहुत ही प्रिय हुआ। उन्होने उस महान् कमी को पूरा किया जो रामोपासना के साम्राज्य में नितान्त खटकती थी। तुलसीदासजी की रचना में क्या स्वर्गीय रस भरा है इसे भारत की जनता जानती है। हजारो-हजारों महाकवियों ने इस भूलोक में अपना-अपना अमर गान किया है परन्तु तुलसीदासजी का भी यह अमर गान अपने स्थान में अनुपम माना गया है। इसमें न केवल गाना और सुनना ही है किन्तु जीवन की बहुमूल्य सामग्री भी विद्यमान है। सारा लोक जो इसकी ओर खिंचा है यह तुलसीदास का अलौकिक तप है।

बहुत से मत-मनान्तर — जो भारत में फैले हुए थे और जिनका समन्वय आचार्य रामानन्द स्वामीजी ने देश-हित के लिये किया था — राम और शिव के अन्दर ऐसा सम्बन्ध स्थापित किया जो राम और शिव के उपासकों को एक जगह ले आया। रामायण सब को प्रिय होगई और रामायण का उपदेश भी सब का गुरुमन्त्र बन गया। रामायण ने वेद का स्थान ले लिया और रामायण का ज्ञान ही वेद का ज्ञान बन गया। प्रजा उस बात को धर्म रूप में बिना संदेह के स्वीकार कर लेती है जो रामायण में आ गई हैं। अनेक प्रकार के आडम्बर अब रामायण के सामने से हटते जा रहे हैं इसलिये कि उसके प्रकाश में उनका अस्तित्व नहीं ठहरता।

तुलीदासजी रामानन्द सम्प्रदाय के प्रबल प्रचारक हैं परन्तु प्रत्यक्ष में वे कहीं भी सम्प्रदाय का नाम नहीं लेते हैं। आचार्य रामानन्द ने श्री सम्प्रदाय के मूलतत्व श्रीराम की उपासना को लोक के सामने रखा और उनके प्रतापी शिष्यों ने उसका व्यापक प्रचार किया, उसी उपासना को तुलसीदासजी ने अपने अथक् परिश्रम से अमर बना दिया। आचार्य रामानन्द के व्यापक विचार, व्यापक कार्य तथा व्यापक आदेश निबन्ध के रूप में तुलसीदास ने रामायण में संग्रहीत कर दिये। तुलसीदासजी सर्वसमर्थ होते हुए भी जीवन भर रामानन्दी ही बने रहे। उनके हृदय में उस रामानन्दीयत्व के लिये बड़ी ही श्रद्धा थी, इसलिये कि वे उसी में पाले गये, उसी में विद्वान् बनाये गये और उसी में तुलसीदास के नाम से प्रख्यात कराये गये। वे उसे कैसे भूल सकते थे कि उस असहाय बालक को जिसे संसार ने जन्मते ही तिरस्कृत करके फेंक दिया था उसे उसी रामानन्द सम्प्रदाय ने हृदय से लगाया और प्यार से उसके आँसू पोंछे। तुलसीदास यदि चाहते तो अपने नाम एक नया सम्प्रदाय चला सकते थे परन्तु उन्होंने नहीं चलाया। वे दास ही बने रहे और उसी में अपना गौरव समझे।

भारत की प्रजा आज तुलसीदासजी से बहुत ही प्रभावित है। इस समय उन्हें राष्ट्र की निधि ही मान लिया गया है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे उनका भारी सम्मान है। वस्तुतः वे उस क्षेत्र के एक विषय बन गये हैं। उनके ऊपर अनेकों ग्रन्थ लिखे गये हैं और लेखकों ने उन्हें अपनी-अपनी रुचि के साथ लिखा है। सभी लेखों में उनके व्यक्तित्व के प्रति बड़ी ही श्रद्धा व्यक्त हुई है परन्तु कहीं-कहीं वह श्रद्धा मोह के तरफ मुड़कर कुछ लेखकों को प्रमाद में खींच ले गई है। लेखकों ने वहाँ यही सोचा है कि तुलसीदास जैसे महान् व्यक्ति को उनके तर्कपूर्ण मत में खींच लें। उसी से उनके लेख की कुछ प्रतिष्ठा होगी। वैसे स्थलों में हम लेखकों को अनर्गल भी लिखते देखते हैं। 'तुलसीदासजी स्मार्त वैष्णव थे' उन्हें रामानन्द सम्प्रदाय में नहीं घसीटा जा सकता, इत्यादि अनेक लेख आश्चर्य से पढ़ने में आते हैं। स्मार्त वैष्णव कैसे ? क्या स्मार्त वैष्णव भी कोई संसार में सम्प्रदाय है। तुलसीदासजी रामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित हुए हैं और उसके अनुसार उन्होंने वैष्णव धर्म के नियमों को जीवन भर पालन किया है, वे राम के अनन्य भक्त हैं और उन्हीं की कृपा के आधार पर जीवित रहे हैं। राम उनके परात्पर ब्रह्म और सभी देवता उनके शासन में खड़े हैं यही तुलसीदास को मान्य है।

हरिहि हरिता विधिहि विधिता शिवहि शिवता जो दई।
सोई जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।

— विनयपत्रिका

तुलसीदासजी ने अपने राम को विष्णु, ब्रह्मा और शिव के लिये भी विष्णुत्व, ब्रह्मत्व और शिवत्व देते हुए लिखा है। उनके मत में चराचर जगत् ही राम के अधीन है। यह उनके उपास्यदेव राम का स्वरूप है। वे राम से अलग दूसरे देवताओं को साधारण मानते हैं और उनसे अपने लिए कुछ भी नहीं माँगते हैं। यह तो केवल रामानन्दी वैष्णवधर्म को ही मान्य है इसलिये तुलसीदासजी रामानन्दी वैष्णव हैं ही। उन्हें स्मार्तर वैष्णव कहना भारी भ्रम है। जिन लोगो ने स्मार्त वैष्णव कहा है उन्होंने वैष्णव धर्म के सम्बन्ध में या तुलसीदासजी के सम्बन्ध

ने कुछ भी अध्ययन नहीं किया है। धर्मों की परिभाषायें जाने बिना धर्मों के बारे में निर्णय देना बुद्धिमत्ता नहीं होती। लोगों ने वैष्णवधर्म के सम्बन्ध में यही समझा है कि जो विष्णु परक देवता को छोड़कर सभी देवताओं का खण्डन करे तथा खास तौर से जो शिव का खण्डन करे वही वैष्णव होता है। पंच देवों की उपासना स्मार्त करते हैं। इसलिये उन देवताओं का नाम लेने वाला भी स्मार्त हो सकता है। तुलसीदासजी ने सभी देवताओं का नाम अपने लेखों में लिया है, इसलिए उनके साथ स्मार्त शब्द भी जोड़ा जाय, वैष्णव तो वे हैं ही अतः उन्हें स्मार्त वैष्णव कहना चाहिये। इस प्रकार लेखक महानुभावों के मस्तिष्क में भाव उत्पन्न हुए होंगे। यही एक भ्रम है। तुलसीदासजी पर यह भाव लागू करना भूल है और वैष्णवधर्म को भी वैसा समझना भूल है। वैष्णवता यह नहीं कहती कि किसी देवता का या शिव का विशेष रूप से खण्डन किया जाय। यदि कोई वैष्णव शिव का या अन्य देवताओं का खण्डन करता है तो उसके उपास्यदेव का व्यापक स्वरूप कट जाता है क्योंकि वह सब मे व्यापक है, यही भावना वैष्णवधर्म की है इसी को आधार मानकर गोस्वामीजी ने अपने इष्ट को व्यापक माना है – 'सियाराम मय सब जग जानी' कहा है। यदि वे किसी देवता का खण्डन करते तो उनके सियाराम का खण्डन हो जाता है। उपासना के सम्बन्ध में वे केवल राम के ही अनन्य उपासक हैं दूसरे देवता के नहीं। दूसरे देवताओं के जो नाम हैं उन्हें उन्होंने उपासना के रूप में ग्रहण नहीं किया है, उन्हें केवल राम की महत्ता सिद्ध करने को ही ग्रहण किया है। श्रीरामायण में शिव-पार्वती के प्रसंग से राम की महत्ता बढ़ाई गई है। उसी प्रकार गणेश आदि के नाम का भी उपयोग हुआ है। तुलसीदासजी की विचार-धारा को लोगो ने समझा नहीं उसी से उन्हें स्मार्त वैष्णव लिखा है।

तुलसीदास रामानन्द सम्प्रदाय के भीतर नहीं थे यह प्रमाद की सी बात है। लोग खैंच तानकर कहेंगे कि तुलसीदासजी ने स्वयं ऐसा कहीं स्वीकार नहीं किया है, यह बात नहीं है। पहले लोगों को तो इस बात की शंका ही नहीं थी। क्योंकि वे तुलसीदासजी को भलीभाँति समझते थे। तुलसीदासजी का जीवन इतिहास या उनके विचार और व्यवहार इतने प्रसिद्ध थे कि तुलसीदासजी के रामानन्दी होने में कोई शंका ही नहीं थी। 'पाश्चात्य अन्वेषकों ने तो उन्हें साफ-साफ रामानन्दी ही लिखा है।

> As a teacher he was liberal minded ever for a Ramanandi.....like all Hindus he was endwed with great tolerance of belief and was able to find a room for atleast, passive acceptance of Doctrines which did not rise with him to a place in the sphere of the true and abiding.
>
> — *Theology of Tulsi Dass by Carpenter*

कार्पेन्टर साहब कहते हैं कि तुलसीदासजी एक रामानन्दी उपदेशक होते हुए भी बड़े उदार विचार के थे। हिन्दुओं के समान वे भी धार्मिक भावना में विश्वास रखते थे। दूसरों के विचारों को अपने में मिलाने की उनमें बड़ी क्षमता थी, यही कारण था कि उनके तरफ सभी मतवादी खिंचे और उनके अनुयायी बने। ऐसा होते हुए भी उन्होंने कोई अपना पंथ अलग नहीं चलाया, यह एक यथार्थ निर्णय है। इसी प्रकार बहुत से महानुभावों ने तुलसीदासजी को स्पष्ट रूप से रामानन्दी ही लिखा है।

तुलसीदासजी के रामानन्दीत्व होने के सम्बन्ध में स्वयं श्रीतुलसीदासजी ही हर एक क्षण घोषणा करते हैं 'उनकी घोषणा उनके पंचभौतिक शरीर तथा साहित्यक शरीर दोनों से हो रही है। तुलसीदास जी का प्राचीन मूलचित्र जो आज संसार के सामने हैं स्पष्ट करता है कि वे रामानन्दी वैरागी विरक्त सन्त थे। उनके मस्तक पर श्री युक्त ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक, गले में तुलसी की युगल कण्ठी तथा हृदय पर चमकता हुआ यज्ञोपवीत आदि

चिन्ह संसार को कह रहे हैं कि विश्ववन्द्य तुलसीदास रामानन्द सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। यह आसानी से समझा जा सकता है कि कोई भी इतर सम्प्रदाय का अनुयायी उन चिन्हों को कभी नहीं धारण कर सकता। किसी भी सम्प्रदाय के चिन्ह उसके अनुयायी को बिना कहे बताने में समर्थ होते हैं। एक स्मार्त गले में तुलसी की कण्ठी और मस्तक पर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक कभी नहीं कर सकता। वह राख या चन्दन का त्रिपुण्ड्र मस्तक पर तथा रुद्राक्ष की मनियाँ या माला गले में लटका सकता है। यदि हाथ में एक बाँस की लकड़ी का दण्ड लिये, सिर मुड़ाये तथा गले में रुद्राक्ष का कण्ठा डाले किसी को भी देखा जाय तो जानकार व्यक्ति कहेगा यह अद्वैतवादी संन्यासी है। यदि मुँह पर कपड़ा बाँधे सिर के बाल नुचाये तथा सूत की मोंटी सी झाड़ू पीछे लटकाये हुए किसी भी व्यक्ति को देखा जाय तो बिना पूछे कोई भी समझदार कहेगा कि यह जैन धर्म का सन्त है। इसी प्रकार बौद्ध, क्रिश्चियन तथा मुहम्मडन आदि के सन्तों को हम आसानी से उनके साम्प्रदायिक चिन्हों के नाते से पहचान सकते हैं। वैष्णवधर्म के भीतर भी कई सम्प्रदाय हैं। हम उनके अनुयायियों की पहचान बिना पूछे आसानी से चिन्हों के आधार पर कर सकते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव सन्त को जब हम देखेंगे तब उसके मस्तक पर झीनी दो रेखाओं का तिलक जिसके बीच में बहुत ही हल्की एक बिन्दी होगी और गले में तुलसी की युगल कण्ठी होगी। उसी तरह विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के सन्त का भी तिलक निम्बार्क सम्प्रदाय से मिला सा होगा परन्तु उसके भ्रुवोर्मध्य से नीचे सिंहासन नहीं होगा। युगल कण्ठी तुलसी की एक सी ही होगी। गौड़ सम्प्रदाय के सन्त का तिलक नासिका के अग्रभाग से नोकदार शुरू होगा और आगे भ्रुवोर्मध्य से दो झीनी रेखाओ में परिणत हो जायेगा, यही तिलक माध्वसम्प्रदाय का भी है। इस प्रकार विरक्त आश्रम के महात्माओं की पहचान उनके नियत सम्प्रदायिक चिन्हों के आधार पर आसानी से की जा सकती है। तुलसीदासजी के बाह्य चिन्हों के आधार पर कोई भी सम्प्रदायिक रहस्यों को जानने वाला विद्वान् उन्हें रामानन्दसम्प्रदाय से अलग नहीं कह सकता। यह तो है गोस्वामीजी के भौतिक शरीर के सम्बन्ध का परिचय, अब उनके साहित्यिक शरीर पर विचार करते हैं।

महापुरुष का साहित्य भी उसका शरीर होता है। वह जब तक भूतल पर रहता है तब तक वह महापुरुष भी जीवित माना जाता है। तुलसीदास जी का साहित्य-शरीर खुलकर यही घोषणा करता है कि तुलसीदासजी उसी लक्ष्य पर परमार्थिक जीवन को लेकर खड़े हैं जो रामानन्द स्वामी का निर्धारित किया हुआ है। आचार्य रामानन्द ने दशरथनन्दन राम का मर्यादावतार उपासना काण्ड में ध्यान और पूजन के लिये स्वीकार किया है। उन्होंने इस अवतार को परात्पर ब्रह्म माना है और इसकी भक्ति के द्वारा जीव का कल्याण बताया है। उनके सम्प्रदाय में इन्हीं साकार ब्रह्म श्रीराम और पराशक्ति श्रीसीताजी की विग्रह-पूजन में ली जाती हैं। दार्शनिक सिद्धान्त के आधार पर निराकार ब्रह्म और साकार ब्रह्म में आचार्य रामानन्द ने एकता स्थापित की है। उनके राम निर्गुण और सगुण दोनों एक ही हैं। तुलसीदासजी भी इन्हीं रामानन्द के दाशरथि राम को परात्पर ब्रह्म मानते हैं और इन्हीं की कृपा द्वारा मोक्ष प्राप्ति स्वीकार करते हैं। तुलसीदासजी का सारा साहित्य इन्हीं राम की भक्ति में ओत-प्रोत है। आचार्य रामानन्द ने जिस व्यापक राम-भक्ति का स्वरूप संसार में स्थापित किया तुलसीदास ने उसी व्यापक राम-भक्ति को अमर बना दिया। उसी भक्ति पर उन्होंने 'रामचरितमानस' जैसा महाकाव्य रचकर संसार को दे दिया जिसका प्रकाश एक झोंपड़ी से लेकर राजभवनों तक फैल रहा है। जब तक तुलसीदास का साहित्य भूलोक में रहेगा तब तक रामानन्द से अलग उन्हें कोई नहीं कर सकेगा। यह ऐतिहासिक आधार पर तुलसीदास का साम्प्रदायिक परिचय दे दिया।

इसी बीच में एक बात और आवश्यक रूप में कह देना है और वह यह है कि जो लोग रामानन्द से तुलसीदास को अलग बताने का प्रयास करते हैं वे बहुधा स्मार्त भावना के हैं। स्मार्त-धर्म के अन्दर शाक्त और शैवों का सम्मिश्रण है। इन लोगों की पिछली परिपाटी तुलसीदासजी को राम-भक्ति का प्रचार करते देख उनका

जन्मभर भारी विरोध करती रही। उन्हें, धूर्त, अवधूत, जुलाहा आदि बताकर जनता में उनकी प्रतिष्ठा घटाती रही, इसका उत्तर तुलसीदासजी बड़े मार्मिक और नम्र शब्दों में देते रहे —

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी से बेटा न ब्याहब, काहू को जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सर नाम गुलाम है रामको जाको रुचै सो कहै कुछ ओऊ।
माँगिकै खैवो, मसीदको सोइबो, लैवोको एकु न दैवे को दोऊ।

(कवितावली)

तुलसीदासजी ने उन लोगों को उत्तर दिया है जो उनकी निन्दा करने में लगे थे। गोस्वामीजी का यह उत्तर अपने हृदय को पकड़कर शान्ति के रूप में देना हुआ है। वे कहते हैं 'भले ही मुझे कोई धूर्त कहे, चाहे अवधूत (अवधूत=शब्द का समाज से बहिष्कृत, स्मार्तों ने अर्थ किया है) कहे, चाहे कोई रजपूत कहे और चाहे कोई जुलाहा कह दे, जो मन हो सो कहे, मुझे किसी की बेटी से अपना बेटा नहीं ब्याहना है और न किसी की जाति ही बिगाड़ना है। मैं तो अयोध्यानाथ रामचन्द्र का नामी गुलाम हूँ। मुझे तो माँग के खाना है और मसान में सोना है, मुझ से किसी से क्या मतलब ?'

कोऊ कहै, करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै, राम को गुलाम खरो खूब है।
साधू जानें महा साधू खल जाने महा खल,
बानी झूँठी-साँची कोटि उठत हबूब है।
चहत न काहूँ सों न कहत काहू की कछु;
सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है।

(कवितावली)

कुछ लोग कहते हैं कि मैं बड़ा ही धोखेबाज और आडम्बरी हूँ। कुछ लोग कहते हैं कि मैं खूब खरो—पक्का धूर्त, राम का भक्त हूँ, यह तो ऐसी ही बात है जो जैसा होता है वह वैसा ही दूसरे को जानता है। सन्तजन मुझे महान् सन्त जानते हैं और खल लोग मुझे महाखल कहते हैं। मेरे पीछे इसी प्रकार की झूठी-साँची सहस्रों प्रकार की लहरें उठा करती हैं परन्तु मैं उन्हें अपने अन्तःकरण को दबाकर सह लेता हूँ, किसी से भी कुछ नहीं कहता और न कुछ बदलना ही चाहता हूँ। मैं तो बुरा-भला जैसा भी हूँ रघुनाथजी का ही हूँ और उन्हीं की भक्ति के आश्रय में जीवित हूं।

यह गोस्वामी जी के जीवन का इतिहास है। उनके पीछे हठधर्मी ब्राह्मणों का विरोधी दल चलता था जो उन्हें हर तरह से नीच और पाखण्डी बनाकर जनता के बीच में अपमानित करना चाहता था। उन स्मार्तों की यही इच्छा थी कि तुलसीदास राम-भक्ति का प्रचार न कर सकें अथवा रामानन्दी झण्डा न उठा सकें।

तुलसीदास के प्रचार से उन लोगों का वह सिंहासन उलट जाता था जो हिन्दुओं की छाती पर बड़े बन कर पुजाने के लिये जमाया गया था। सत्य की विजय होती है, वे लोग तुलसीदास की राम-भक्ति को नहीं दबा सके और न उनके अस्तित्व को ही मिटा सकें। उन्हें जुलाहा (मुसलमान) कहना तथा धूर्त दगाबाज बताना कितने शर्म को बात है। यह पिछले उन स्मार्त महानुभावों की कथा है जिन्हें यह मिथ्याभिमान था कि उनका स्मार्त धर्म और वे ही महान् थे। आज उनके उत्तराधिकारी श्रीमान् लोग तुलसीदासजी को बुरा-भला न कहकर उनसे स्मार्त-धर्म का सम्बन्ध जोड़ते हैं यह आश्चर्य की बात है। इससे उनकी कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ सकती, तुलसीदासजी जो हैं वे ही रहेंगे'। तुलसीदासजी राम के अनन्य भक्त हैं और पवित्र रामानन्दी वैष्णव-धर्म के अनुयायी हैं। उन्हें ऐसा ही कहना या लिखना उपयुक्त है। लेखकों को चाहिये कि उनका पवित्र चित्र संसार के सामने सही-सही रखें, जिससे भावी राष्ट्र की पीढ़ियों को उनके इतिहास की ठीक जानकारी हो।

★★★

सिद्धान्त खण्ड

स्वामी रामानन्दाचार्य जी का दार्शनिक चिन्तन

— डा० डी० ए० गंगाधर

हिन्दू संस्कृति की नींव अध्यात्म तत्व के सुदृढ़ धरातल पर आधारित है। अनादि काल से अनेक युगद्रष्टा इसी संस्कृति में जन्म लेकर अध्यात्म की ज्योति को प्रज्ज्वलित करते रहे हैं। अध्यात्म तत्व की दीप-शिखा प्रेम रूपी घृत से सतत् जाज्वल्यमान है। अतएव इस प्रेम-घृत के संचय की महती आवश्यकता है। अध्यात्म की दृष्टि से प्रेम को वह डोर कहा जाता है जो मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ता है उसे परमेश्वर के निकट ले जाता है। यहां "प्रेम" शब्द को जिस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है उससे "धर्म" अथवा "रिलीजन" का भाव घोषित होता है। "रिलीजन" का शब्दार्थ भी मनुष्य का परमेश्वर के साथ सम्बन्ध है तथा "धर्म" शब्द वैशेषिक सूत्रकार की दृष्टि में अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति का वाचक है। अतः यह कहना उचित होगा कि धर्म मनुष्य के लौकिक व परमार्थिक जीवन को जोड़ता है। धर्म में यह गत्यात्मकता "प्रेम" के अनुपम आदर्श से ही आती है। स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने इसी प्रेम - घृत को संचय करने के लिए अपना अद्वितीय योगदान किया है ।

सर्वप्रथम हम उनके पूर्व के भारतीय चिन्तन पर संक्षेप में प्रकाश डालना चाहेंगे। हिन्दू धर्म एवं दर्शन अपने साथ अनेक विचारों, मतों एवं वादों को समेटते हुए गतिशील प्रतीत होता है। प्राचीन काल में इसकी दिशा गहन चिन्तन, सूक्ष्म तत्वज्ञान की खोज में प्रवृत्त थी। धीरे-धीरे यह चिन्तन इतना जटिल हो गया कि तत्व-दर्शियों को व्यवहार एवं परमार्थ जगत् में भेद दिखलाई देने लगा। इससे सांसारिक जीवन के प्रति विरक्ति के भाव को बढ़ावा मिला। सामाजिक स्तर पर हिन्दू संस्कृति की चेतना भेद- भाव, मिथ्या आडंबरों एवं कुरीतियों के कारण कुण्ठित होने लगी। इसके परिणामस्वरूप बौद्ध एवं जैनं संस्कृतियों का उदय हुआ । इससे हिन्दू अध्यात्म परम्परा की प्रगति पर बुरा प्रभाव पड़ा नैरात्मवाद एवं निरीश्वरवाद ने हिन्दू धर्म-दर्शन को निष्प्राण तो नहीं कर पाया लेकिन उसे झकझोर अवश्य दिया। साथ ही इस्लामी एवं ईसाई परम्पराएं भी हिन्दू धर्म-दर्शन को उद्वेलित की। इसके परिणामस्वरूप भारत की चिन्तन-धारा में आशातीत प्रगति हुई।

दक्षिण भारत में विशिष्टाद्वैत दर्शन का उदय हुआ। इस दर्शन ने एक नई दिशा दी। आचार्य रामानुज ने परम्परागत ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या के स्थान पर ब्रह्म एवं जगत् के साथ जीव की सत्यता के रहस्य को उद्घाटित किया। उन्होंने ज्ञान के गूढ़ स्थान पर प्रेम रूपा भक्ति के प्राधान्य पर बल दिया। इसी समय आलवारों ने भी प्रेम-काव्यों के माध्यम से प्रेम का रस प्रवाहित किया।

उत्तर भारत में विशिष्टाद्वैत दर्शन के पोषक स्वामी रामानन्दाचार्य अपनी कुशल प्रतिभा से जन-मानस में व्याप्त अनेक भ्रमों को दूर कर समाज में एकत्व एवं प्रेम स्थापित करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने "रामोपसना" के सरल एवं सुगम मार्ग को प्रचारित किया। उनके शिष्यों में अनेक सम्प्रदाय एवं जाति के लोग

महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जिनमें पीपा, रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, भावानन्द, सुखानन्द, आनन्दानन्द, सुरसुरानन्द, परमानन्द एवं श्रीयानन्द के नाम उल्लेखनीय है।

रामानन्द की परम्परा में "राम" को परमपुरुष विष्णु का अवतार माना गया है। इसी आचार्य-परम्परा में स्वामी रामानन्दाचार्य को २२ वें स्थान पर रखा जाता है। इनका जन्म संवत् १३५६ विक्रमी अर्थात् सन् १३०० ई० में उत्तर प्रदेश में प्रयाग में हुआ था। हिन्दू संस्कारों में पले आचार्य रामानन्द ने दीक्षा ग्रहण के उपरान्त गहन विद्याध्ययन में रुचि ली। उन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन किया तथा अनेक मतावलम्बियों के साथ शास्त्रार्थ कर अपने मत की स्थापना की। यहाँ एक घटना का उल्लेख समीचीन जान पड़ता है। एक बार काशी में कुछ नास्तिकों ने आचार्य से ईश्वर की सिद्धि पर शंका व्यक्त की। आचार्य ने ईश्वर की सत्ता सिद्ध करते हुए अपनी युक्ति प्रस्तुत की।[1] उन्होंने कहा "ईश्वर तर्क का विषय नहीं है, न तो वह शब्दों का विषय है । यह सत्य है कि सृष्टि की रचना प्रकृति करती है, वह भी पंचभूतों के द्वारा। लेकिन प्रश्न उठता है कि ये पंचभूत कहाँ से आये ? इसका उत्तर उन्होंने गीता से प्रस्तुत किया –

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

अर्थात् हे अर्जुन मेरी अध्यक्षता में , मेरे आश्रम में रहकर प्रकृति इस चराचर जगत् को पैदा करती है। इसी कारण यह जगत् परिवर्तनशील है। प्रकृति जगत् में परिवर्तन नहीं कर सकती। क्योंकि वह स्वयं हो जाता है। परिवर्तन करना चेतन तत्व का कार्य है। वही चेतन सत्ता जो प्रकृति पर शासन करती है उसी का नाम ईश्वर है ।

'उपनिषदों से युक्ति देते हुए स्वामी रामानन्द जी ने श्वेता-श्वेतर, तैतिरीय से उद्धरण दिये जिसमें कहा गया है कि "सृष्टि से पहले जिस ब्रह्मा को रचकर उसको वेदों का उपदेश दिया। उस प्रकाश स्वरूप अनन्य ज्ञान के प्रकाशक परमात्मा की मैं मुमुक्ष शरण में हूँ।" उन्होने "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते......................" ईशोपनिषद के तर्क को प्रस्तुत किया।

स्वामी रामानन्दाचार्य के उक्त मत विरोधियों से पराभूत करने के लिए पर्याप्त थे। इस प्रकार उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा करते हुए जन मानस में इसके प्रति श्रद्धा एवं आदर का भाव पैदा किया। वे "राम - भक्ति" को एक मार्ग बतलाया, जिसके द्वारा लोगों में व्याप्त भेद - भाव का भ्रम समाप्त हो सकता था। दैनिक जीवन में एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रकट करने लिए उन्होने हमें "राम - राम" सम्बोधन प्रदान किया। इस सम्बोधन का प्रयोग आज भी हम हिन्दू करते हैं। वस्तुतः यह रामानन्दाचार्य की देन है जो हमें वह मार्ग प्रशस्त करती है जिस पर चलकर ऊच-नीच का भाव भूला जा सकता है।

स्वामी रामनन्दाचार्य के दार्शनिक विचारों को हम स्पष्टतः रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत दर्शन के धरातल पर रखते हैं। इस दर्शन के अनुसार चित् (जीव) अचित् जड़ ; या प्रकृति ये दोनों तत्व एक तृतीय सत् अर्थात् ईश्वर (ब्रह्म) के विशेषण हैं। विशेषण से रहित विशेष्य का बोध नहीं होता। अतः ब्रह्मचिद-चिदविशिष्ट तत्व है। ब्रह्म के दो रूप हैं – कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्म। इसी प्रकार चिदचित् के दो रूप हैं – सूक्ष्म चित् और सूक्ष्म अचित, स्थूल चित् और स्थूल अचित्। सृष्टि के पूर्व ब्रह्म कारण रूप में रहता है। सृष्टि

---

[1] १. स्वामी मनमोहनाचार्य - आचार्य जीवन वृत्त १९८८ पृष्ठ १६।

के उद्येश्य से वह कार्य ब्रह्म हो जाता है। "प्रत्यावस्था में सूक्ष्म चिदचिदविशिष्ट अद्वैत ब्रह्म होता है। दोनों अवस्थाओं में चिदचित् के विशेषण ब्रह्म के साथ भी जुड़े रहते हैं। इस प्रकार सूक्ष्मावस्था का विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म और स्थूलावस्था का विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म । दोनों अवस्थाओं मे ब्रह्म विशिष्ट ही रहता है। दोनों का समास क्रिया - "विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे विशिष्टयोरद्वैतमिति विशिष्टाद्वैतम्" । (१) रामानन्दचार्य जी के मतानुसार तत्व तीन प्रकार के हैं – (१) अचित् अर्थात् प्रकृति (२) चित् अर्थात् चेतन जीव, (३) सर्व जगत् के कारण स्वरूप परमेश्वर श्री राम।

अचित् का अभिप्राय है जो चेतन न हो। वह स्वतंत्र न होकर पराधीन अर्थात् ईश्वराधीन तत्व है। यह तत्व, रजस, और तमस् का आश्रय है। यह महत् आदि समस्त पंच महाभूतों एवं अहंकार की कारण मूलक जगत् की रचना करने वाली प्रकृति ही तत्व के नाम से जानी जाती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्वामी रामानन्दाचार्य ने प्रकृति को सत्य की संज्ञा दी है। किन्तु यह प्रकृति जिसे जगत् के निर्माण में सहायक कहा जाता है, वह सदा ईश्वर तत्व से संचालित है। उनका यह मत सांख्य दर्शन से भिन्न प्रतीत होता है, क्योंकि सांख्य के अनुसार तो प्रकृति स्वतः कारण है।

चेतन जीव की व्याख्या करते हुए रामानन्दाचार्य ने आचार्य रामानुज का अनुसरण किया है। उनके अनुसार जीव नित्य है, सर्वदा एक रूप है। सनातन तथा अनादिमध्यनियन है। यह अतिसूक्ष्म है किन्तु इसमें असीम गुण हैं। (१) उनके अनुसार जीव स्वरूपतः निर्मल होते हुए अनादिकालिक भव-परम्परा से उपार्जित कर्म के कारण विभिन्न योनियों से गुजरता है। यह जीव पशु, वनस्पति, मनुष्य, स्त्री-पुरुष न होते हुए बंध से ग्रस्त है। इसी कारण यह जन्म-मृत्यु के बंधन में रहता है। यह कर्ता-भोक्ता दोनों है। उन्होंने स्वीकार किया है कि जीवात्मा तीन मार्गों से गुजरता है। (१) देवयान अर्थात् योगियों के मार्ग (२) पितृयान अर्थात् अपूर्ण योगियों के मार्ग (३) आवागमन के चक्र का मार्ग अर्थात् सांसारिक जीव। ये जीव भी पांच प्रकार के हैं – (१) जीव (२) मुमुक्ष (३) मुक्त (४) नित्य (५) केवल। जीव का तात्पर्य सांसारिक आसक्ति से युक्त जीवों से है। यह काम, क्रोध, लोभ एवं मोह जैसे मनोविकारों से ग्रस्त होता है। मुमुक्ष वह है जिसे संसार से वैराग्य हो गया हो, जो संसार को परिवर्तन शील मानकर नित्य, शाश्वत सत्य की अनुभूति का जिज्ञासु होता है। मुक्त जीव ज्ञान, भक्ति, योग के द्वारा नित्य आत्मा की अनुभूति कर चुका होता है। इस स्थिति में जीव सब भूतों मे आत्म तत्व को देखता है। यह समदर्शी मुक्त जीव है। तथा केवल जीव योग समाधि के द्वारा ब्रह्म का अनुभव करके आत्मा को ब्रह्म के रूप में अनुभव करता है। यह "अहं ब्रह्मास्मि" की चेतना है। स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य ने अपनी 'प्रभा किरण' व्याख्या में रामानन्दाचार्य के विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जो चित् पदार्थ है वह इहलोक परलोक-यात्रा तथा मोक्ष का अधिकारी है। वह नित्य है। क्योंकि यदि इसे अनित्य मान लिया जाय तो स्वर्ग आदि की व्यवस्था तथा मोक्ष की बात सन्देहास्पद हो जायगी। इस प्रकार हमें चार्वाक् जैसे मत को मानना पड़ जायगा। अतः जीव को नित्य ही समझना चाहिए। नित्यत्व के अतिरिक्त जीव को "ज्ञः" भी कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि जीव ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञाता ज्ञानाधिकरण है। यहाँ ज्ञान के दो रूप स्पष्ट किये जा सकते हैं। पहला स्वरूप ज्ञान तथा दूसरा धर्मभूत ज्ञान धर्मिज्ञान। स्वरूप ज्ञान आत्मा का स्वयं का स्वरूप है तथा धर्मिज्ञान के द्वारा वह वस्तुजगत् का ज्ञान करता है इसी अर्थ में जीव को ज्ञाता कहा जाता है। जीव को अत्र अर्थात् अजन्मा भी कहा जाता है। ईश्वर के अधीन होकर भव संस्कारों के कारण जन्म धारण करता है। इस प्रकार रामानन्दाचार्य जी ने जीव की नित्यता स्थापित करते हुए इसकी विभिन्न कोटियों को बतालाया है, जिसका विवेचन ऊपर किया गया है।

अब हम तृतीय तत्व की व्याख्या करेंगे।

यह तत्व "ईश्वर" है। स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने ईश्वर को सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ, विश्वव्याप्त, स्रष्टा, पालक एवं संहारक कहा है।[१] यह चेतन तथा अचेतन पर नियन्त्रण रखता है। इसे "श्रीराम" नाम से अविहित किया गया है। यह स्वयं प्रकाश तत्व है। इसी के प्रकाश से सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि प्रकाशित होते हैं। सृष्टि अर्थात् प्रकृति इसी द्वारा संचालित है।

श्री रामानन्दाचार्य जी ने परम तत्व के रूप में "ईश्वर" को प्रतिष्ठित किया है। यह वह तत्व है जो मनुष्य को समस्त बंधनों से मुक्त करता है। यह आराधना, पूजा तथा जप का विषय है। मनुष्य इसके शरण में जाकर अपने दुःखों से छुटकारा पाता है। उन्होने "राम" नाम को महामन्त्र अथवा तारक मंत्र की संज्ञा दी है। अतः यहाँ संक्षेप में "राम" शब्द की व्याख्या अपेक्षित है।

"र" का अर्थ संघात भी होता है अम् धातु गत्यर्थक है। जिसका अर्थ गति होता है उसका प्राप्ति अर्थ भी होता है। "रस्य तन संघातस्य आमः इति आलम्बनं रामः " अर्थात् मानव समूह की गति का जो आलंबन हो वही राम है। "अम्यते प्राप्यते इति आमः। राणां नित्यानां ज्ञानान्दादीनां आमः प्राप्यः प्रापकः आधारश्चेति रामः।" अर्थात् जो नित्य ज्ञान आनन्द आदि पदार्थों का प्राप्य प्रारक और आधार है उसे राम कहते हैं।[२]

"प्राप्यवाची ततश्च रा पदबोधानाम् आमः प्राप्यो यः सः रामः।"[३]

"राम" शब्द की महिमा का उल्लेख अगस्त्य संहिता में भी आया है :

सुतीक्ष्णं मंत्र वर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते।

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्त सौरेष्वभीष्टदः॥

वैष्णवेस्वादि सर्वेषु राममंत्रफलाधिकः।

मंत्र राज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः॥

अर्थात् हे सुतीक्ष्ण गणपति शिव-शक्ति तथा सूर्य के जितने मंत्र हैं, उन मंत्र वर्गों में वैष्णव मंत्र श्रेष्ठ है क्योंकि उनसे अभीष्ट की सिद्ध होती है। सम्पूर्ण वैष्णव मन्त्रों में श्री राम मंत्र सर्वाधि फलदायक है।

स्पष्ट है कि श्री रामानन्दाचार्य ने "रामोपसना को सर्वश्रेष्ठ मंत्र मानकर मानव मात्र के लिए एक सुगम मार्ग प्रशस्त किया है। यही उनके अनुसार भक्ति का मार्ग है। यह भक्ति क्या है ? रामानन्द जी के अनुसार भक्ति का अर्थ है सर्वतो भावेन राम सेवा में रत होना।[४] भक्ति का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा है कि जो विवेक प्रभृति अर्थात् विवेक विमोक अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद तथा अनुद्धर्ष — इन सातों बोधायन वृत्ति प्रतिपादित कारणों से उत्पन्न है तथा जिसकी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ प्रकार के कारण समुचित रूप से बोध कराने में कारणात्मक अंग है। तैलधारा के सदृश नित्य

---

१. श्री रामानन्दाचार्य : श्री वैष्णवमताब्जभास्कर : ८–९
२. आचार्य जीवन वृत्त, पृ० १८६
३. श्री रामानन्दाचार्य : श्री वैष्णवमताब्जभास्कर : किरण प्रभा, पृ० ३८१
४. वही ४ – १२

संस्मृति अर्थात् अविच्छिन्न स्मरण प्रत्यक्षाकार ज्ञाने के जायमान जो भगवान् श्री राम जी में परम अनुराग है उसी को अनन्याभक्ति कहते हैं। उसी से मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। १

स्वामी रामानन्दाचार्य के अनुसार यह भक्ति भगवद्नाम का ध्यान है। इस नाम का ध्यान करना ही भक्ति है। मनुष्य ईश्वर के साथ पिता-पुत्र सम्बंध से जुड़ा है। उन्होने स्पष्ट किया है कि ध्यान की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि ईश्वर अर्थात् राम जगत् का स्रष्टा है, पिता है। अतः पुत्र को पिता के शरण में रहना स्वाभाविक है।

पितापुत्रत्वसंबंधों जगत् कारणवाचिना।

रक्ष्यरक्षकभावश्च रेणरक्षक वाचिना।।

(श्री वैष्णवमताब्जभास्कर २-५)

स्वामी रामानन्दाचार्य का उपर्युक्त विचार ईसाई धर्म में स्वीकृत ईश्वर-विचार के समान प्रतीत होता है। ईसाई धर्म में भी ईश्वर (गॉड) को परम पिता (गॉड दि फादर) माना गया है। बाइबल के प्रारम्भ में ही यह कथन किया गया है कि स्रष्टा के रूप में ईश्वर पिता है। रामानन्दाचार्य जी ने सगुण ब्रह्म के रूप में ईश्वर को स्वीकार किया है। यह ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न परमात्म तत्व है। वह जगत् का रचयिता, निर्माता एवं मुक्तिदाता है ।

अंत में मैं स्वामी रामानन्दाचार्य द्वारा प्रतिपादित एवं पंथ विशेष की संक्षेप में चर्चा करना चाहूँगा। वे मनुष्य को वैष्णव मत में दीक्षित कुछ विशिष्ट संस्कारों से युक्त देखना चाहते हैं। इसके लिए उन्होने कुछ संस्कारों का उल्लेख किया है जो मोक्ष-प्रप्ति में सहायक हैं। ये संस्कार हैं –

(१) अग्नि तापित बाण तथा धनुष से दोनों भुजाओं के मूल में अंकन करना।

(२) सफेद मिट्टी से मस्तक पर उर्ध्व पुण्ड्र करना।

(३) नाम (भगवत् सम्बन्धी)।

(४) षडक्षरराम मंत्र।

(५) तुलसी की माला धारण करना।

दार्शनिक विवेचन के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि रामानन्दाचार्य जी भक्त के लिए एक विशेष अनुशासन की व्यवस्था में जीवन-यापन करना उचित मानते हैं। इन संस्कारों से युक्त होने पर ध्यान तथा भक्ति का रास्ता स्वयं प्रशस्त हो जाता है। अतः निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने भारतीय धर्म एवं दर्शन की परम्परा में एक नये युग की आधारशिला रखी थी। इसी ने इस दिशा में अनेक सन्तों, साधकों को वह अवसर प्रदान किया जो समाज में नवीन चेतना जागृत की।

★★★

---

१. वही, ४ – १ – २ १

गुरु का स्वरूप और रामानन्द सम्प्रदाय में गुरु

— डा० गंगा सागर राय

भारतीय वाङ्मय गुरुतत्व के महामहिमा मण्डित स्वरूप के वर्णन से ओतप्रोत है। गुरु तत्त्व परम पुरुषार्थ के प्रमुख साधकों के साधक के रूप में वर्णित है। मोक्ष के साधक के रूप में वर्णित कर्म-ज्ञान तथा भक्ति तीनों ही अपने स्वरूप की प्राप्ति में गुरु-तत्त्व की परम अपेक्षा करते हैं। वैसे तो संसार के अर्थ काम एवं धर्मात्मक समस्त व्यवहार भी अपने साधक ज्ञान की सिद्धि में गुरु की अपेक्षा करते हैं। नवजात शिशु माँ की गोद में लेटकर ही पारिवारिक वृद्ध जनों के व्यवहार के आधार पर शब्दार्थ का ज्ञान करता है। जो कालान्तर में उसी शब्दात्मक व्यवहार का सम्पादक होता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य अपने ज्ञान राशि की अभिवृद्धि में सचेष्ट दीखता है। ज्ञानार्जन का माध्यम चाहे जो भी हो। ज्ञान की प्राप्ति मनुष्य के माध्यम से भी होती है तथा प्रकृति के माध्यम से भी। ज्ञान का साधक विविध स्रोतों को ही गुरु शब्द से अभिहित किया जाता है। ऐसे गुरुओं का अस्तित्व प्रत्येक मानव जीवन में असंख्य है। दत्तात्रेय के चौबीस गुरुओं की सुप्रसिद्ध कथा भी इसी रहस्य का प्रकाशक है। चौबीस शब्द वहाँ उपलक्षण है। केवल वह चौबीस का ही बोध नहीं करता अपितु अपने से भिन्न अन्य सभी संख्याओं का बोध कराते हुए असंख्येयत्व का भी परिचय कराता है। यदि किसी व्यक्ति से पूछा जाय कि आपनें अपने जीवन में किस किस से ज्ञान प्राप्त किया तो निश्चित रूप से उसे संख्या एवं गुरु नाम के सम्बन्ध में असमर्थता बतलानी पड़ेगी। संसार के समस्त व्यवहारों व कर्मों को ज्ञान की अपेक्षा है तथा ज्ञान को गुरु की अपेक्षा है। व्यवहार व कर्म शास्त्रीय हो अथवा अशास्त्रीय, विहित हो अथवा निषिद्ध ज्ञान के बिना किसी का अस्तित्व नहीं।

कुछ ऐसे भी व्यक्तित्व शास्त्रों में चर्चित हैं जिन्हें ज्ञान व भक्ति की प्राप्ति में गुरु की अपेक्षा नहीं हुई। पूर्णरूप से ही ये जन्म लिये (ऐसे महामानवों में महर्षि कपिल, देवर्षि नारद, सनत्कुमारादि तथा शुकदेव जी आदि का नाम लिया जा सकता है।) इनके पूर्व जन्म के गुरु-साधना ने ही यहाँ काम कर दिया यहाँ गुरु-तत्त्व की अपेक्षा नहीं हुई।

शास्त्रों में जिस गुरु-तत्त्व की महिमा एवं उपादेयता का वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है वह मोक्ष साधकों (ज्ञान-भक्ति) के साधक के रूप में ही है। मोक्ष का परम साधक ज्ञान की प्राप्ति में गुरु की परमापेक्षा है तभी तो भगवती श्रुति कहती हैं — द्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं " अर्थात् उस ब्रह्म को जानने के लिए मुमुक्ष समित्पाणि होकर (अर्थात् हाथों में गुरु के अनुकूल वस्तु लेकर) श्रोत्रिय एवं ब्रह्म-निष्ठ गुरु के पास ही जाय। इन्हीं भावों को भगवद्गीता भी अभिव्यक्त करती है। "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया, उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्वदर्शिनः ॥" श्रुति जिस गुरु के पास मोक्ष की अभिलाषा वाले व्यक्ति को जाने के लिए प्रेरित कर रही है उसे दो योग्यताओं से विशिष्ट होना नितान्त आवश्यक है। वे हैं श्रोत्रियत्व एवं ब्रह्म-निष्ठत्व। श्रोत्रिय वह है जिसने ब्रह्म प्रतिपादक वेद आदि का विधिवत् अध्ययन कर लिया है तथा ब्रह्म-

निष्ठ वह है जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है। शास्त्राध्ययन से ब्रह्म का परोक्षात्मक ज्ञान ही उत्पन्न होता है। जब वह सतत् मनन तथा निदिध्यासन के माध्यमं से अपरोक्षात्मक हो जाता है तभी ब्रह्म-निष्ठत्व सम्पन्न होता है। ब्रह्म साक्षात्कार से रहित "व्याकरण-मीमांसा-न्याय आदि शास्त्रों में निपुणता प्राप्त का उपदेश नहीं। आजकल तो वेश तथा गद्दी व पद की दृष्टि से बड़ा प्रत्येक सन्त-महान्त मण्डलेश्वर अपने नाम के साथ श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठत्व तो बहुत दूर की बात है। केवल लोगों को ठगने के लिए ये सभी कलियुगी हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं। गुरु बनने की इसी भूमिका को कालनेमि भूमिका कहा गया है। केवल अपने पैड पर छपवाकर ही लोग श्रोत्रियत्व एवं ब्रह्मनिष्ठत्व को अर्जित करना चाहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि ब्रह्मनिष्ठ कभी भी अपने लिए ऐसा नहीं लिख सकता। शुकदेव, वामदेव तथा जनक आदि ब्रह्मनिष्ठों ने भी इस वंचक हथकण्डे को नहीं अपनाया था। ये सम्पूर्ण भूमिकायें शिष्य के शोक-मोहादि के हरण में असमर्थ तथा धन हरण में पूर्ण समर्थ गुरुओं की है। "हरई शिष्य धन शोक न हरई – सो गुरु घोर नरक महँ परयीं। उनकी ये योजना नरक को अवश्य ही प्राप्त कराने वाली है। मैंने कई ऐसे सन्तों को देखा जो अपने नाम के साथ "पद– वाक्य– प्रमाण पारावारीण लिखते हैं। इस उपाधि से वस्तुतः युक्त सम्पूर्ण भारत में शायद ही कोई हो। परन्तु सन्तों में इसे लिखने में सामान्य सन्त को भी संकोच व लज्जा नहीं है। भले ही उन्हें पदशास्त्र का स्वल्प ज्ञान भी नहीं हो। ऐसे वंचकों से साधक एवं भक्तों की सावधान रहना चाहिए।

जैसे परमेश्वर के प्रकाश से ही प्रकाशवान् होकर सूर्य-चन्द्र विद्युत्- अग्नि आदि सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करते हैं। इनके पास स्वयं प्रकाश करने की क्षमता नहीं है। "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" परमेश्वर में ही प्रकाशकत्व निरतिशयत्व को प्राप्त है। उसी प्रकार से गुरुत्व का मूल व वास्तविक स्रोत परमेश्वर ही है। अन्यों का गुरुत्व उससे प्राप्त होता है। संसार के सभी गुरुओं को पहले गुरु बनाना पड़ता है अतएव उनका गुरुत्व सातिशय एवं सापेक्ष है। केवल परमात्मा में ही निरपेक्ष एवं निरतिशय गुरुत्व है। क्यों कि गुरुत्व की प्राप्ति में उसे किसी की अपेक्षा नहीं होती है। ब्रह्मर्षि पतंजलि सूत्र के माध्यम से परमेश्वर में गुरुत्व के इसी निरतिशय को प्रतिपादित कर रहे हैं। 'सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानयच्छेदात्॥

परमेश्वर के ही गुरुत्व से विशिष्ट होने से तथा जीवों के अज्ञानान्धकार विनाशनरूप परमेश्वर के प्रयोजन का साधन होने से परमेश्वर के अभिन्न रूप में गुरु को स्वीकार किया गया। "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।" आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिंचित्। न मर्त्य बुद्ध्या सूयेत सर्वंदेव मयो गुरुः॥ उनका कहना है कि "यो मन्त्रः स गुरुः साक्षाद् यों गुरुः स हरिस्मृतः। गुरुर्यस्य भवेत्तुष्टस्तस्य तुष्टो हरिः स्वयम्॥ अस्तु॥

ज्ञानकी प्राप्ति में जैसे गुरुकी परमापेक्षा है वैसे ही मोक्ष की साधिका भक्ति की प्राप्ति में भी गुरु की भूमिका अनुपम है। पंच संस्कारों की मुक्ति के प्रति कारणता को आचार्य प्रवर स्वामी रामानन्द जी ने स्वीकार किया है। इन संस्कारों से विशिष्ट ही श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि साधन भक्ति के माध्यम से श्री राम के चरणों में परम प्रेम स्वरूप मुख्य भक्ति को प्राप्त कर सकता है। गुरु शिष्य की विधिवत् परीक्षा लेकर पंच संस्कारों से संस्कृत करता है। ये संस्कार हैं मुद्रा (धनुषवाण) तिलक (ऊर्ध्व पुण्ड्र) नाम-मन्त्र-माला। इन सस्कारों के आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक महत्व की चर्चा स्मारिका के दूसरे निबन्ध में देखी जा सकती है। यहाँ उनकी विस्तृत चर्चा विस्तार के भय से नहीं की जा रही है। पंच संस्कारों की प्राप्ति गुरु के माध्यम से ही होती है। श्रुतियों-स्मृतियों तथा पुराणों में गुरु के जिस स्वरूप व लक्षण की चर्चा की गयी है, वह अत्यन्त संक्षिप्त एवं परम रहस्यात्मक है। जिसका परिचय मुमुक्षु व साधक साधना के प्रारम्भिक क्रम में नहीं कर पाता है। श्रोत्रियत्व एवं ब्रह्मनिष्ठत्व को पढ़ने की दृष्टि उसके पास नहीं होती है। वह तो पैडों से प्रमाणित श्रोत्रियों एवं ब्रह्मनिष्ठों को

ही सच्चा श्रोत्रिय एवं ब्रह्म-निष्ठ समझकर गुरु बनाने के लिए तत्पर हो जाता है। मुमुक्षुओं को इसी भ्रान्ति से बचाने के लिए आचार्य प्रवर स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने "वैष्णवमताब्जभास्कर" में सुस्पष्ट रूप से गुरु के स्वरूप का वर्णन किया। जिसके आधार पर प्रत्येक साधक कालनेमि गुरुओं से बच सकता है। आचार्य प्रवर के ही शब्दों में गुरु का स्वरूप इस प्रकार है –

१. यतेन्द्रियः शुचिः शुद्धवेशधृक् सुकुलोद्भवः।
सदाचारपरो नम्रः शास्त्रज्ञो देशनापटुः॥

२. विरक्तधर्मनिरतो ध्यानाभ्यासी सुबुद्धिमान्।
निग्रहेऽनुग्रहे चैव समर्थो देशिको मतः॥

३. हीनाङ्गो ह्यधिकाङ्गश्च कपटी कृष्णदन्तवान्।
नेत्ररोगी च कुष्ठी च वावदूकश्च वामनः॥

४. व्यसनी बहुनिद्रश्च कुनखो बहुभोजनः।
नेदृशो देशिको योग्यो मुमुक्षोर्मोक्षसाधने॥

इन चार श्लोकों में आचार्य श्री ने गुरु के स्वरूप का बहुत ही स्पष्ट वर्णन कर दिया। गुरु को यतेन्द्रिय होना चाहिए। अर्थात् बाह्य तथा आन्तर इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से विजयी होना चाहिए। शुचिः का तात्पर्य पवित्रता से है। आन्तरिक पवित्रता के साथ ही बाहरी पवित्रता भी गुरु के लिए परमावश्यक है। आजकल के तथाकथित ब्राह्मणादि गुरु तो बाहरी पवित्रता को ढोंग मानते हैं तथा पवित्रता समबन्धी शास्त्रीय मान्यताओं को तोड़ने तथा तोड़वाने में ही अपने गुरुत्व की अनुपमता समझते हैं। ऐसे गुरुलोग ऐसा प्रचार करते हैं कि पूर्णता को प्राप्त करने के बाद बाहरी शुद्धता की कोई आवश्यकता नहीं। पूज्य आचार्य प्रवर की मान्यता इससे सर्वथा भिन्न थी वे पूर्णता की प्राप्ति के बाद भी शारीरिक पवित्रता को परम आवश्यक समझते थे। क्यों कि उनके मत में जीव का स्वरूप परमात्मा का सेवक होना ही है। सेवक को स्वामी की प्रसन्नता के लिए स्वच्छ रहना अत्यन्त आवश्यक है। गुरु का स्वरूप तो परमलोक-संग्रही होता है। दूसरे लोग उसका ही आचरण करते हैं। अतएव उसकी बाहरी अपवित्रता भी समाज के लिए परमघातक सिद्ध होगी।

गुरु को सादा वेश वाला होना चाहिए। वेश का सादापन शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित हो। वस्त्र के धारण में गुरु का वस्त्र के प्रति आकर्षण परिलक्षित नहीं होना चाहिए। वस्त्राकर्षण की दलदल में फँसे गुरु से कल्याण की आशा नहीं की जा सकती है। आजकल तो गुरुओं ने वस्त्र के क्षेत्र में सांसारियों को भी पीछे छोड़ दिया है। उन्हें ऐसा पूर्ण विश्वास हो गया है कि वस्त्रों की तड़क भड़क से ही आध्यात्मिक छवि का विस्तार होगा। आचार्य प्रवर रामानन्दाचार्य जी महाराज ने वेश धारण के सम्बन्ध में किसी वस्त्र विशेष एवं रंग विशेष का नाम लेकर उल्लेख नहीं किया है। उन्होने कहा "शुद्ध वेश धृक्" जिसका शब्दार्थ है शुद्ध वेश धारण करने वाला। वस्त्र एवं रंग का नाम नहीं लेकर भी आचार्य प्रवर ने वस्त्र धारण को पूर्णरूप से शुद्ध शब्द जोड़कर नियन्त्रित कर दिया। वेश व वस्त्र शुद्ध होना चाहिए। किसी भी वस्तु की शुद्धता एवं अशुद्धता शास्त्रों के द्वारा ही निर्णीत होती है। मनुष्यों के द्वारा नहीं शास्त्र सन्तों के लिए जिस प्रकार के वस्त्र एवं रंग का विधान करते हैं वैसा ही वस्त्र वाला गुरु को होना चाहिए॥

"सुकुलोद्भवः" के द्वारा आचार्य श्री ने यह निर्देश किया है कि गुरु वैदिक मान्यताओं एवं परम्पराओं से पूर्णरूप से विशिष्ट कुल में उत्पन्न हुआ हो। ऐसे कुलों को ही सुकुल कहा जाता है। चार वर्णों में वेदाध्ययन एवं यज्ञादि का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को ही दिया गया है। अत एव सुकुल शब्द से इन्हीं तीनों वर्णो को लेना चाहिए। वस्तुतस्तु वैदिक निष्ठाओं से युक्त ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य कुल ही सुकुल के रूप में आचार्य श्री को अभीष्ट है। केवल इन से रहित ब्राह्मण आदि कुल नहीं। शूद्र कुल में उत्पन्न रैदास आदि स्वामी रामानन्दजी के शिष्यों ने भी परम गुरुत्व को प्राप्त किया था। जिसमें स्वामी जी का पूर्ण समर्थन था। ऐसा उनके जीवन क्रम से पता चलता है। इस घटना से संकेतित होता है कि स्वामी जी ने रैदास आदि महाभागवतों के उत्पादक कुल को अनुमान के द्वारा सुकुल के रूप में सहर्ष स्वीकार किया था। कार्य का सौन्दर्य कारण के सौन्दर्य का अनुमापक होता है। जिस कुल में ऐसे श्रेष्ठ भक्त उत्पन्न हों उसे सुकुल नहीं कहना ही परम अपराध है। श्रीमद्भागवतादि में भी इसकी पुष्टि की गयी है। इसी आधार पर शूद्र कुलोत्पन्न परम संन्तों को भी मुमुक्षुओं ने गुरु के रूप में प्राप्त कर अपना परम कल्याण किया। वैष्णवी परम्परा में इसके अनेक ज्वलन्त उदाहरण हैं। अन्योन्य गुरु लक्षणों से युक्त शूद्र कुलोत्पन्न भी गुरु के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। गुरु का एक लक्षण सदाचार समन्वित होना भी है। सदाचार से रहित निश्चित रूप से आन्तरिक दृष्टि से खोखला होता है। उसके पास कोई आन्तरिक धन सम्भव नहीं। अतएव ऐसे गुरु से बचना चाहिये। गुरु को नम्र होना चाहिए। शास्त्रों के मर्मों का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए। इतना ही नहीं "देशना पटुः " होना चाहिए अर्थात् अपने भावों को अच्छी रीति से शिष्य को समझाने में पूर्ण योग्यता होनी चाहिये। अन्यथा केवल शिष्य के धन का ही हरणकर सकेगा उसके शोक संशय एवं मोहका नहीं। 'भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उपदेश की पटुता के आधार पर ही अर्जुन के शोक एवं मोह का इलाज किया। भगवत्ता के आधार पर नहीं। गुरु के चुनाव में इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि मानव जीवन में गुरु की आवश्यकता आध्यात्मिक प्रकाश के लिए ही होती है । जिसके लिए गुरु का उपदेश में निपुण होना परमावश्यक है।

गुरु के लक्षणों का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि वैराग्य सम्पन्न धर्म निरत ध्यान का अभ्यास करने वाला, सुबुद्धिमान्, निग्रह तथा अनुग्रह में समर्थ को ही गुरु के रूप में ग्रहण कर अपनी परम कल्याणमयी यात्रा करनी चाहिए।

हीनाङ्ग अर्थात् कम अङ्गों वाला, अधिक अङ्गों वाला, कपटी, काले दाँत वाला, नेत्रका रोगी, कुष्ठ रोगी, निरर्थक अधिक बोलनेवाला, वामन (छोटे कद वाला), गाँजा बीड़ी आदि सेवन करने वाला, बहुत सोनेवाला, कुरूपनखवाला, बहुत खाने वाला मुमुक्षुओं के मोक्ष की प्राप्ति में गुरु की भूमिका नहीं निभा सकते हैं। अर्थात् ऐसे लोगों को कभी गुरु के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए। एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है जिस देव में, जिस उपासना पद्धति में अपनी रुचि हो उसके अनुसार ही गुरुको स्वीकार करना चाहिए। राम के चरणों में अनुराग रखने वालों को ऊपर कहे गये लक्षणों से युक्त किसी राम भक्त को ही गुरु के रूप में स्वीकार करना चाहिए। ऐसे ही शास्त्रों की दृढ़ मान्यता है। स्वयं शिव, नारायण देवी, गणेश अथवा कृष्ण मन्त्र जपने वाले से राम मन्त्र नहीं लेना चाहिए। वैसे ही राम मंत्र जपने वाले गुरुओं से शिव-कृष्णादि मंत्र नहीं लेना चाहिए।

जो मंत्र गुरु-परम्परा से गुरुको प्राप्त हुआ हो तथा उसका अनुष्ठान भी निरन्तर चल रहा हो उसे ही गुरु के माध्यम से प्राप्त कर कृतार्थ हुआ जा सकता है। आजकल तो पास में आए हुए साधक से ही पूछकर उसके मन के अनुरूप गुरु लोग मन्त्रोपदेश कर देते हैं। जिसको उन्होंने अपने गुरु से नहीं प्राप्त किया था तथा जिसका कभी भी अनुष्ठान नहीं किया था। यह सर्वथा शास्त्र विरुद्ध एवं गुरुत्व सम्पादन के लोभ की श्रेष्ठ वृत्ति है। गुरु दीक्षा एवं उपासना पद्धति के सर्वनाश का सफल प्रयास है। यदि इस रीति से ही मन्त्रों को प्राप्त करना हो तो

पुस्तकों से मन्त्रों को याद किया जा सकता है। सभी मन्त्र पुस्तकों में लिखे हुए रहते हैं। कई लोग तो आजकल अपने नामको ही मंत्र के रूप में प्रचार कर रहे हैं। आजकल तो शिखा एवं यज्ञोपवीत का पूर्ण त्याग किये संन्यासी भी यज्ञोपवीत तथा गायत्री मंत्र का उपदेश करने लगे हैं। जिनके छूने से भी यज्ञोपवीत अशुद्ध हो जाता है वे भी यज्ञोपवीत का दान करने लगे हैं। शिखा एवं सूत्र से रहित का दिया हुआ गायत्री मंत्र कभी-भी कल्याणकारी नहीं हो सकता है। केवल उपदेशक की वित्तैषणा एवं लोकैषणा का ही पोषक सिद्ध होगा। ऐसे लोगों से सर्वथा सावधान होना चाहिए॥ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के द्वारा वर्णित गुरु स्वरूपों को ध्यान में रखते हुए यदि गुरुका वरण किया जाय तो अवश्य ही परम कल्याण की यात्रा सफल होगी। इसके विपरीत होने पर गुरु एवं शिष्य दोनों भव सागर में डूबेंगे।

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई।

★★★

पंच संस्कारों के स्वरूप

— वेंकटेश शर्मा

ईश्वर ही गुरु रूप में अवतीर्ण हो स्वेच्छा स्वरूप अन्तःप्रेरणा से मानव वपुधारी जीवों को सर्वतोभावेन आत्म समर्पित करवाकर उनमें परमार्थ पथ के पाथेय भूत पंच संस्कारों के आधान द्वारा उपासना हेतु अधिकृत करता है। इसे ही दीक्षा भी कहते हैं। जो साधुना की चार अवस्थाओं में द्वितीय अवस्था है। इसी अवस्था में साधक भाव देह से आराध्य का वरण कर उनकी दिव्य लीला के विभिन्न अंगों से परिचित हो कैंकर्य (उपास्य सेवा) की योग्यता सम्पादित करता है। इस योग्यता के बाह्य तथा आभ्यन्तर दो रूप होते हैं। जैसे गंदे पात्र का स्वच्छ एवं पवित्र गंगाजल तथा स्वच्छ एवं पवित्र पात्र का गन्दा जल इन दोनों ही परिस्थितियों में जल अग्राह्य होता है। जल की ग्राह्यता के लिए पात्र एवं जल दोनों की स्वच्छता परमापेक्षित है, वैसे ही आराध्य की आराधना का अधिकार प्राप्ति हेतु बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों ही दृष्टि से संस्कृत होना नितान्त अपेक्षित है ।

तप्तेन मूले भुजयोः समंकनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम्।

श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः ॥

के अनुसार धनुष-वाणादि पंच संस्कार बाह्य हैं तथा सांसारिक विषयों से वैराग्य तथा उपास्य के चरणों में अनुरागादि आभ्यन्तर संस्कार हैं। इन दोनों में किसी के अभाव में भी आराध्य की आराधन योग्यता साधक में नहीं आ सकती। अर्थात् यह जीव परमात्मा का प्रियपात्र तभी बन पाएगा जब वह बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों ही दृष्टि से संस्कृत हो। अतएव वैष्णवाचार्य शरणागत भक्तों को उच्च पंच संस्कारों से संस्कृत कर भक्ति के अधिकार द्वारा भक्त और भगवान् के बीच पुरुषकार बनते हैं। उपास्य के भेद से वैष्णव भक्तपरम्परा में संस्कारों की विभिन्नता पायी जाती है , विष्णु के उपासक भक्तों में (तापः पुण्ड्रं तथा नाममन्त्रो भागस्तु पंचमः) के अनुसार बाहुमूलों में शंखचक्रांकण, ऊर्ध्व पुण्ड्र, तिलक धारण, भगवत् (उपास्य) भागवत परक नामकरण, अष्ठाक्षर द्वय-चरम मन्त्रों का उपदेश तथा आत्मसमर्पण रूप भाग में पांच संस्कार दिये जाते हैं। किन्तु दूसरे भक्तों की संस्कार-दीक्षा कुछ भिन्न ही है। सबका पृथक उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं, साथ ही मुझे तो राम-भक्ति-परम्परा के पंच संस्कारों पर विचार करना है अतः विषयान्तर विमुख हो राम-भक्ति-परम्परा के पंच संस्कार स्वरूप विषय पर केन्द्रित होना चाहूँगा।

वेदों एवं पुराणों के अनुसार अग्नि तप्त शंख चक्र तथा धनुषबाण को बाहुमूलों में धारण करने के पश्चात् ही मनुष्य अन्य वैदिक कर्मों के सम्पादन में अधिकृत होता है। इससे रहति व्यक्ति के द्वारा किये गये वैदिक कर्म तथा ऐसे व्यक्ति को दिए गए दानादि व्यर्थ ही होते हैं। ठीक इसके विपरीत सविधि उक्त आयुधों को अपने बाहुमूलों में धारण करने वाले मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण तीर्थों, व्रतों तथा यज्ञों के फल निःसंदेह प्राप्त हो जाते हैं। और वह परात्पर ब्रह्म भगवान् विष्णु (श्रीराम) के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है। राम भक्ति परम्परा के प्रवर्तक जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने अपनी गागर में सागर स्वरूप रचना "वैष्णवमाब्जभाष्कर" में मुद्राङ्कण

(धनुषबाण धारण) ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण, नामकरण् मंत्रोपदेश तथा तुलसी मालिका धारण रूप पंच संस्कारों का उल्लेख किया है । पूर्वोक्त पंच संस्कारों की अपेक्षा इनके द्वारा वर्णित ताप (मुद्राङ्कण) मन्त्र तथा तुलसीमालिका धारण ये तीन संस्कार भिन्न ही हैं । इनकी परम्परा के भक्त शंख चक्र की जगह अपने परमोपास्य श्रीराम के आयुध धनुष बाण को अपने बाहुमूलों में धारण करते हैं । विष्णु भक्तों के मंत्र (मूल, चरण तथा द्वय) की अपेक्षा इनके मंत्र भी भिन्न ही हैं तथा विष्णु भक्तों के पंचम संस्कार आत्म समर्पण भाग की जगह में तुलसी माला धारण संस्कार को अंगीकार करते हैं । इन संस्कारों में भेद का मुख्य एवं मूल कारण उपास्य देव स्वरूप की भिन्नता ही है । वैदिक एवं पौराणिक मान्यतायें तो उभयत्र समान ही हैं । मुद्राङ्कण के रूप में धनुषबाण धारण की महत्ता भी उनमें उसी रूप से प्रतिपादित है, जिस रूप में शंख चक्र धारण की । शुक्ल यजुर्वेद के अनुसार जो मनुष्य [१] अपने बाहुमूलों में धनुषबाण को धारण करता है वह पापकर्मों एवं उनके फलों से ऊपर उठकर संसार सागर का सन्तरण करते हुए भगवान् श्री सीता पति का सायुज्य प्राप्त कर लेता है । श्री मद्वाल्मीकीय रामायण तथा महारामायण के अनुसार अपनी वाँयी भुजा में धनुष तथा दाहिनी भुजा में वाण को धारण करने वाला मनुष्य ही संसार में धन्य है वह पापों को नश करने वाले देवताओं से भी वन्दनीय है । भगवान् श्री राम का परम प्रिय एवं सायुज्य मुक्ति का उत्तम अधिकारी है । अतः परम कल्याण की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को अपने बाहुमूलों को धनुर्वाणांकित कर श्री सीतापति की प्रसन्नता करनी चाहिए ।

शास्त्रों की तो यहाँ तक मान्यता है कि धनुष-वाण[२] (मुद्रण संस्कार) से असंस्कृत मनुष्य तो षडक्षर (श्रीराम) मन्त्र उपास्य के साथ सम्बन्ध सूचक नाम तथा श्रीराम भक्ति के लिए अधिकृत ही नहीं है ।

यद्यपि शीतल तथा तप्त दोनों ही आयुधों से संस्कृत मनुष्य राम भक्ति तथा मुक्ति का अधिकारी है, किन्तु शीतल की अपेक्षा तप्त आयुध-धारण की महत्ता [३] अधिक बतालायी गई है । आधाचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्द जी ने उक्त को ही मुद्राओं के धारण का सुस्पष्ट उल्लेख किया है किन्तु राम-भक्ति की एक ऐसी भी परम्परा है जिसमें उक्त मुद्राओं के साथ नाम (सीता राम) चन्द्रिका तथा मुद्रिका भी धारण कराई जाती है । इन मुद्राओं के धारण स्थान के सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है । एक वर्ग नाम (युगल नाम) तथा मुद्रिका को वक्षस्थल तथा चन्द्रिका को ललाट में धारण करता है तो दूसरा वर्ग ललाट पर तिलक की दायीं और वायीं ओर युगल नाम कपोल और ललाट के बीच तथा दाहिने हाथ में मुद्रिका और मस्तक पर चन्द्रिका धारण करता है । ये दोनों ही धनुषवाण को श्री राम चन्द्र जी का चन्द्रिका-मुद्रिका को श्रीसीताजीका तथा नाम को युगल विग्रह के प्रतीक स्वरूप अंगीकार करते हैं । वैष्णवाचार्यों की मान्यता है कि धनुष, वाण, नाम, चन्द्रिका तथा मुद्रिका ये पाँच मुद्रायें क्रमशः शब्द, सपर्श, रूप, गन्ध और रस स्वरूप माया के पंच अवयवों के प्रभावों से उपासक की रक्षा करती हैं और कालान्तर में उपास्य के सायुज्य प्राप्ति में प्रयोजन बनती है । पंच संस्कारों में दूसरा स्थान

---

१. धन्वनागा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम् ।
धनुः शत्रोरपक्राम कृणोति धन्वना सर्वां प्रदिशो जयेम् ।
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्य मिषवः शर्म संसन् ॥
यो वै नित्यं धनुर्वाणाङ्कितो भवति स पाप्मानमन्तरति संसारन्तरित
स भगवदाश्रितो भवति स भगवद्रूपो भवति ।
— शु० य० वेद

२. नाङ्कितश्चापवाणाभ्यां न मन्त्रोऽस्ति षडक्षरः
न नाम राम सम्बन्धि न रामोपासको भवेत् ॥ अगस्त्य संहिता

३. बाहुमूले धनुर्वाणेनाङ्कितो रामकिंकरः । शीतलेनाथ तप्तेन तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥
शीतलाच्छतगुणं प्रोक्तं तप्तं चं परियार्यते ॥ अ० सं०

ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण का है। जो आध्यात्मिक दृष्टि से उतना ही महत्वपूर्ण है। उपास्य देव के दोनों चरणांविन्दों की आकृति तथा उनके बीच में दोनो ओर से रिक्त स्थान छोड़कर श्री रेखा को भृकुटी तथा ललाट के मध्य भाग में धारण करते हैं और उसी के सटे निम्न भाग में भृकुटी के नीचे एक आसन देते हैं, किन्तु पहले आसन[१] तत्पश्चात् उपास्य की पादाकृति और अन्त में श्री रेखा धारण करना चाहिए।

ललाट और नासिका प्रदेश में लगा उक्त चिन्ह ही ऊर्ध्वपुण्ड्र शब्द से अभिहित होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह युगल मूर्ति दिव्य दम्पति श्री सीताराम का प्रतीक है। क्यों कि स्वयं भगवत्पादका वचन है कि पुण्ड्र के रूप में मुझे तथा श्रीरेखा के रूप में सीता को ललाट एवं बाहु वक्षस्थलादि पर जो धारण करते हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। इसके धारण किए विना यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण इत्यादि समस्त धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रिया-कलाप निष्फल हो जाते हैं। यहाँ तक कि ऊर्ध्व पुण्ड्र से रहित शरीर श्मशान की तरह अदर्शनीय है।

मस्तक सहित शरीर के बारह अंगों में इसके धारण करने का तात्पर्य संपूर्ण शरीर को उपास्य के चिन्हों से प्रकाशित कर उसे उनका भोग्य बनाना तथा कैङ्कर्य की स्वरूप योग्यता प्रदान करना है। इससे उपास्य की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

हमारे ज्ञान तन्तुओं का विचार केन्द्र भृकुटी और ललाट का मध्य भाग है। किसी विषय पर अधिक विचार करने से इस केन्द्र में वेदना की अनुभूति होती है, यह आपामर-विद्वान् विदित है। हमारा यह विचार केन्द्र जितना शुद्ध एवं स्वस्थ रहेगा, हमारा तात्विक परिशीलन उतना ही वास्तविक एवं महत्वपूर्ण होगा। अतः मन्त्रद्रष्टा मनीषी महर्षियों ने उसी ज्ञान तन्तुओं के केन्द्र स्थल में शीतलता प्रदान करने हेतु ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण का वैदिक आचरण स्वयं किया तथा हमें भी धारण करने का निदेश दिया है। जिससे उसकी शक्ति अक्षुण्ण बनी रहे। यह हमारी ऊर्ध्व गति का भी संकेत चिन्ह है[२]। जिसका सतत् धारण हमें अपने क्रिया कलापों से ऊपर उठने का संकेतक है।

व्याहारिक दृष्टि से यह आध्यात्मिक रहस्यों का प्रतिपादक संकेत चिन्ह है जैसे मानव समाज की अन्य सामाजिक राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इकाइयों का उनके सैद्धान्तिक भावों के प्रकाशक झण्डा आदि कोई विशेष चिन्ह होते हैं वैसे ही मनुष्य समाज की आध्यात्मिक इकाई राम-भक्ति-परम्परा के सैद्धान्तिक भावों का प्रकाशक चिन्ह ऊर्ध्व पुण्ड्र है।

---

१. पूर्वं सिंहासनं कुर्युः ततः पार्श्वं द्वयं पुनः
ततः पश्चाच्च तन्मध्ये लिखेयुः सुन्दरीं श्रियम् वा. रा. अ. ४
पुण्ड्ररूपेण मां विद्धि रेखारूपेण वै श्रियम्
संधारयन्ति ये भाले बाहुवक्षस्थलादिषु ॥ वृ. ब्र. सं. ३।१०
यज्ञो दान तपो होमः स्वाध्यायपितृतर्पणम्।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥
यच्छरीरं मनुष्याणाम् ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ।तन्मुखं नैव पश्यामि श्मशान सदृशं हि तत्
स्कन्द पुराण वैष्णव खण्ड ३

२. ऊर्ध्वगत्यां तु यस्येच्छा तस्योर्ध्वपुण्ड्रमुच्यते
ऊर्ध्वगत्यां तु देवत्वं स प्राप्नोति न संशयः ॥ बाधूल स्मृतिः

ऊर्ध्व पुण्ड्र में पादाकृति के लिए श्याम, रक्त, पीत तथा श्वेत मृतिका[१] विदित है, जो क्रमशः शान्ति वश्य श्री (लक्ष्मी) तथा मोक्षप्रद है और श्री रेखा के लिए नींबू रस तथा सुहागा समन्वित (मिश्रित) हरिद्रा चूर्ण। ये दोनों ही उपर्युक्त दृष्टियों से परमोपादेय हैं। मृत्तिका में सर्वविध संक्रामक किटाणुओं की विनाशक क्षमता तो है ही तीर्थों की मिट्टी में तो लोकोत्तर पवित्रता भी है और तीर्थ की मृत्तिका ही ऊर्ध्व पुण्ड्र के लिए सर्वोत्तम मानी गई है। आयुर्विज्ञान के अनुसार हल्दी में संयोजन तथा त्वचा-शोधन की अद्वितीय क्षमता है।अतः त्वचा को शुद्ध तथा मस्तिष्क के स्नायुओं को संयोजित करने के लिए मध्य में हल्दी चूर्ण धारण करने का विधान है[२]।

रामभक्ति-परम्परा के भक्तों की एक ऐसी श्रेणी है जिसके अन्तःकरण में यह रसमयी भावधारा अहर्निश तरंगायित होती रहती है कि चित्रकूट निवास करते समय अनसूया जी ने सीता को जो अंगराग दिया था उसे श्रीरामचन्द्र जीने अपने हाथों से धारण कराया था। युगल विहार तथा रास-लीला में वह श्री सीताजी के अंगों से झड़कर चित्रकूट की पुण्यभूमि में गिरा था। फलतः वहाँ की मिट्टी में पीतिमा आ गई जिसके ऊर्ध्व पुण्ड्र के रूप में धारण करने से युगल मूर्ति का परम प्रसाद प्राप्त होता है। अतः वे चित्रकूट के रामरज का ही ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करते हैं।

मुद्रांकण संस्कार की तरह ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण के सम्बन्ध में भी इस भक्ति-परम्परा के अनुयायियों में कोई कम वैमत्य नहीं है। इसके मूल में भी भक्ति भागीरथी के विविध तरंग स्वरूप रसमय भाव ही है। यों तो इस भक्ति परम्परा के प्रवर्तक आचार्य पाद ने उपरिवर्णित ऊर्ध्वपुण्ड्र का ही प्रवर्तन किया था किंतु आगे चलकर श्री कृष्ण दास जी पयहारी, अग्रदास जी बालानन्द जी प्रभृति भक्त शिरोमणियों ने अपने अपने भावानुसार परिवर्तन भी किया किन्तु इस अनेकता में भी एकता का पूर्ण परिज्ञान होता है। आज भी इनके अनुयायी संपूर्ण भारतवर्ष में अपनी परम्परानुसार राम-भक्ति द्वारा उसी एक श्री सीतापति का सायुज्य प्राप्त कर रहे हैं इन सबका दिङ्मात्र परिचय भी विषय विस्तार का प्रयोजन होगा।

नाम संस्कारः— परमार्थ के प्रयोजक पंच संस्कारों में यह तृतीय संस्कार है। वैष्णव दर्शन के अनुसार जिस प्रकार[3] रसायन विशेषज्ञों के द्वारा अनुष्ठित रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप कांस्य में रहने वाले रूपादि गुण धर्मों का नाश हो जाता है और उसकी जगह उसमें स्वर्ण- (कांचन) गत गुण धर्मों की उत्पत्ति हो जाती है उसी प्रकार सांसारिक विषयों से विमुख तथा ईश्वरोन्मुख जीव प्रभुचरणारविन्दों को ही एक मात्र अपना उपाय मानकर पूर्ण रूपेण उन पाद पद्नो में समर्पित हो जाता है तो उनकी दीन दशा से द्रवीभूत सुपुनीत सन्त उन चरणों में जाने वाले मार्ग के प्रकाशक के रूप में प्रभु कृपा से ही प्राप्त होते हैं। वे उन्हें पंच संस्कार स्वरूप प्रकाश से समन्वित कर भगवच्चरणों में लगा देते हैं। इसके परिणाम स्वरूप उनमें पूर्व प्राकृत शरीर के अतिरिक्त भाव देह पर आधारित पूर्व जन्म द्वारा द्विजत्व का आधान होता है। इन जन्म के बाद उनके प्राकृत

---

१. श्यामं शान्ति करं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा।
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम्॥ प. पु. उ. ख.

२. हरिद्रासम्भवं चूर्णं टंकणेन समन्वितम्।
भावितं चाम्लद्रव्येण रक्तत्वमुपयाति हि।
—वृ. ब्र. सं० पाद ३/१०

३. यथा कांचनतां याति कांस्यं रस-वियानतः।
तथा दीक्षा वियानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

शरीर से सम्बन्धित सभी दोषों का नाश होकर उनमें दिव्य गुणों का उदय होता है, अतएव इनके प्राकृत देह विषयक नामकरण करते हैं। यही वैष्णव भक्ति शास्त्रों में नामकरण संस्कार से जाना जाता है।

शास्त्रीय मान्यता है कि जिस व्यक्ति का वैष्णव-सम्बन्धि नामकरण नहीं होता[1] है इसमें द्विजत्व के आधायक अन्य संस्कार निष्फल होते हैं क्यों कि नाम रहित होने से वह समस्त वैदिक कर्मों के सम्पादन में निन्दित माना गया है , अतः उक्त पुनर्जन्म के आधार पर शरणागत जीव के नाम गोत्र आदि परिवर्तित हो जाते हैं क्यों कि पूर्व नाम के स्मरण से उसके स्वरूप की हानि तथा अहंकार के उदय की आशंका रहती है जिससे सुरक्षा के लिए शरणागति सूचक नाम संस्कार करने की परम्परा है, भगवान् विष्णु तथा उनके विविध अवतारों में अन्य आश्रयों के परित्यागपूर्वक किसी एक को ही अपना उपास्य मानने वाले विष्णु भक्तों की परम्परा के अनुसार यह नामकरण दासान्त या प्रपन्नान्त ही होता है जो उनकी भक्ति या प्रपत्ति का सूचक है। इसकी पुष्टि "अरं दासो न मीढुषे पराष्याहं देवाय भूर्णयेऽनगाः "ऋ. वे. म. ६ अनु. ५ सूक्त ८६ मंत्र ७ तथा

"ब्रह्म दाशा ब्रह्म दासा ब्रह्म मे कितवाः" अथर्व. उ. ब्र. सू. अ. ६–

इन वैदिक मंत्रों से भी होती है। इसके अतिरिक्त बृहद्धारीत स्मृति, पद्म पुराण प्रभृति सच्छास्त्रों में तो यहाँ तक वर्णन मिलता है कि ईश्वर की दासता ही जीव का स्वरूप है।[2] ईश्वर दास्य ही मनुष्य जीवन का चरमोत्कर्ष है, परम पुरुषार्थ है जिस शरीर को प्राप्त कर ईश्वर दास्य भाव की प्राप्ति नहीं हुई वह शरीर सम्पूर्ण क्लेशों का कारण नरक तुल्य है। दास्य-वृत्ति ही जीवों की अमरता का स्वरूप है।

अतएव जीव और ईश्वर— उपासक और उपास्य के दास्यभावादि अनवरत सम्बन्धों का अनुसन्धान कराने वाला नामकरण नितान्त अपेक्षित है। फलतः भक्त के हृदय में एक क्षण के लिए भी किसी दूसरे सांसारिक सम्बन्ध का स्मरण न हो। राम भक्तों की प्रायः यही परम्परा रही है। किन्तु श्री स्वामी रामानन्दजी के बाद इस परम्परा में कुछ ऐसे सिद्ध सन्त भी हुए हैं जिन्होने ईश्वर की सायुज्य प्राप्ति में सौविध्य की नीयत से जीवको ईश्वर तक पहुँचाने वाली भावनात्मक सीढ़ियों की संख्या में वृद्धि की। उन्हें दासान्त नाम से होने वाले अनुसन्धान में भगवान् और भक्त के बीच भक्ति तथा उसके साधनों से जन्म अंहता की गन्ध अनुभूत हुई। अतः उन्होंने सर्व विधि साधन विहीन अकिन्चन भाव से प्रभुपाद पद्मो में गिरकर अपनी उपाय हीनता का अनवरत अनुसन्धायक "शरणान्त" नामकरण करने की परम्परा चलायी। इस नामकरण का सार्थक्य एक मात्र प्रभु-चरणों के अतिरिक्त परम कल्याण का और कोई कारण का स्मरण भी न होना है। इसके अतिरिक्त राम-भक्तों की एक ऐसी भी परम्परा है जो उपास्य के साथ सखा-भाव का अनुसन्धायक "सखान्त" नामकरण करते हैं।

मन्त्र संस्कार :— उपासना के अधिकार साधन के रूप में वेदादि-शास्त्र-सम्मत पंच-संस्कारों में मन्त्र संस्कार भी है। महामुनि पतंजलि के "तस्य वाचकः प्रणवः" इस योग सूत्रानुसार सर्व व्यापक सम्पूर्ण संसार के निमित्तोपादान भगवान् श्री सीतापति का वाचक प्रणव है। यहाँ प्रणव भगवदर्थ विषयक मन्त्र मात्र का उपलक्षण है । तद्नुसार "मन्त्र" उपास्य के शब्दमय रूप ही है। अतः आचार्य शरणागत जीव को मन्त्र का उपदेश करते

---

[1] यस्य वैष्णवं नाम नास्ति चेत्तु द्विजन्मनः।
अनामकः स विज्ञेयः सर्व कर्मसुगर्हितः॥

[2] यस्मिन् शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः।
तदेव निरयं प्रोक्तं सर्वदुःख फलं भेवत् ॥
दास्यमेव फलं विष्णोर्दास्यमेव परं सुखम्।
न दास्यवृत्तिर्जीवानां नाशहेतुः परस्य हि॥

बृ. हा. स्मृति

हैं। जिसका अनुसन्धान भी ईश्वर प्राप्ति साधन तथा उपासना का एक अंग है, महर्षि पतंजलि ने भी "तज्जपस्तदर्थभावनम्" इस सूत्र से ईश्वर के वाचक यानी ईश्वर के शब्दमय स्वरूप मन्त्रों के जप और मन्त्रार्थ का अनुक्षण अनुसन्धान अर्थात् प्रत्यक्ष समानाकार तैल-धारा की तरह अविच्छिन्न प्रत्येय प्रवाह रूप ध्यान को ईश्वर प्राप्ति के परम साधन के रूप में स्वीकार किया है।

आद्याचार्य स्वामी रामानन्दजी ने "वैष्णवमताब्जभास्कर" के मन्त्र रहस्य में सुरसुरानन्द के द्वितीय प्रश्न का समाधान देते हुए राम-भक्तों को मन्त्रत्रय के अनुसन्धान का निर्देश दिया है, पूर्ववर्ती वैष्णवाचार्यों ने भी तीन मन्त्र के अनुसन्धान का प्रवर्तन किया था। किन्तु उनकी अपेक्षा इनके मन्त्रों में भेद है। वे नारायण को अपना एक मात्र प्रधान उपास्य मानकर तदनुसार मूल, द्वय और चरम मन्त्र का भक्तों में प्रचार किये। अन्य रामादि को नारायण का अवतार माना और इन्होंने श्रीराम को ही प्रधान उपास्य मानकर तदनुसार राम मन्त्रः– "रां रामाय नमः" (इसे मन्त्र राज तथा बीज मन्त्र भी कहते हैं) द्वय मन्त्र "श्री रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये, श्री रामचन्द्राय नमः" तथा चरम मन्त्र "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥" का प्रवर्तन किया। इस रहस्य त्रय में प्रथम रहस्य श्री सीताराम की शरणागति ही जीव के भव-सागर-सन्तरण तथा परम पद प्राप्ति का एकमात्र साधन है।" इस तथ्य को प्रकाशित करता है। द्वितीय के द्वारा शरणागति स्वरूप एवं विधि की व्याख्या की जाती है और तृतीय से शरणागति के स्वरूप का ज्ञान कराया जाता है। इस भक्ति-धारा के कुछ आचार्य मन्त्र-राज के साथ "सीता-मन्त्र" का भी उपेदश देते हैं। क्यों कि यहाँ युगलोपासना विहित है। किन्तु अधिकांश आचार्यों ने तो राम-मंत्र को ही सीता-मन्त्र का वाचक माना है। क्योंकि ये दोनों एक ही परब्रह्म के दो स्थितियों के प्रतीक हैं। अस्तु जो भी हो, उक्त रहस्य त्रय ही सर्वमान्य तथा सर्वाधिक प्रसरित है।

तुलसी माला-धारण :– मन्त्रोपदेश के पश्चात् आचार्य शिष्य को तुलसी काष्ठमयी द्विगुणित माला (कण्ठी) धारण कराते हैं तथा उक्त मंत्रों एवं युगलनाम जप के उद्देश्य से तुलसी निर्मित एक माला प्रदान करते हैं। जिसे आधार बनाकर भक्त जप-योग की साधना में प्रवृत्त होता है। इसे ही तुलसीमाला-धारण संस्कार कहते हैं। युगल कण्ठी धारण शिष्य को तुलसी और श्री सीतानाथ के मधुर सम्बन्धों का स्मरण दिलाकर उपास्य के प्रति उनकी तादात्म्य भावना का सतत अनुसन्धान कराता है। कण्ठी-धारण के सम्बन्ध में राम भक्ति परम्परा के वैष्णवाचार्यों की आस्था है कि गले में तुलसी मालिका धारण के फलस्वरूप रसना से गृहीत पदार्थ गल-विवर मार्ग से जाते समय उस (कण्ठी) का स्पर्श प्राप्त कर पवित्र हो जाते हैं। फलतः उन (पदार्थों) से पोषित इन्द्रियां तुलसी के समान ही अनन्य भाव से प्रिय स्मरण में प्रवृत्त होती हैं। शास्त्रों ने तो इसके महत्व का प्रतिपादन करते हुए यहाँ तक कहा कि जिस प्रकार यज्ञोपवीत[१] विहीन द्विज, वैदिक रीति विहीन कर्म तथा सत्यहीन वाक्य आदरणीय नहीं होते उसी प्रकार तुलसी मालिका रहित वैष्णव भी अनादरणीय होते हैं। उपवीत विहीन द्विज, जैसे श्रौत स्मार्त कर्मों में अनधिकृत होने के कारण चाण्डालवत् हो जाता है, फलतः उसके हाथ का अन्न-जल का ग्रहण निषिद्ध माना गया है, वैसे ही तुलसी मालिका रहित वैष्णव के हाथों का उक्त धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के साथ यह संस्कार अपनें वैज्ञानिक मूल्यों से भी ओत-प्रोत है। वनस्पति विज्ञान के आचार्यों ने परीक्षण के आधार पर यह कहा है कि तुलसी नामक प्रसिद्ध औषधि त्रिदोष जन्य अनेक ज्वरों एवं

---

[१] यज्ञसूत्रं विना विप्राः वेदहीना क्रिया यथा।
सत्य हीनं यथा वाक्यं माला हीना न वैष्णवाः ॥
तेन स्पृष्टमबन्नादि न ग्राह्यं वैष्णवैः क्वचित्।
दूरं चाण्डालवत्याज्यो द्विजत्कर्मबहिष्कृतः ॥

मलेरिया के किटाणुओं को समूल नष्ट कर देती है। आयुर्वेदशास्त्र तो तुलसी गुण गौरव गान करते अघाता ही नहीं। अतएव व्यास ने भी इसके आयुर्वैज्ञानिक महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि – "तुलसी स्पर्शनेनैव नश्यन्ति व्याधयो नृणाम्।" अतएव वैष्णवाचार्यों ने अपने पंच संस्कारों में इसे भी महत्त्व पूर्णस्थान दिया है।

उक्त पंच संस्कारों के तात्विक चिन्तक के आधार पर संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि इनका प्रत्येक संस्कार युगलोपासना की स्वरूप योग्यता का आधायक है। इसके विना उनकी उपासना हेतु मनुष्य अधिकृत नहीं होता और युगलोपासना ही इन्हें मान्य है। तभी तो इसके प्रतीक रूप में मुद्रादि पाँचों संस्कार युगल ही होते हैं। यद्यपि मन्त्र संस्कार में आपाततः थोड़ा वैपरीत्य दिखाई पड़ता है किन्तु तत्त्वतः वह भी युगल ही है। इन वाह्य संस्कारों की उपादेयता प्राकृत शरीर के मायाकृत प्रभावों के निवारण द्वारा उसे पवित्र कर उपासना की स्वरूप योग्यता प्रदान करने में है। किन्तु उपासना के पूर्ण योग्य बनने के लिए आन्तरिक वृत्तियों का शोधक आभ्यन्तर संस्कार भी उतना ही अपेक्षित है। अतः एतदर्थ ज्ञान की आवश्यकता है। जिसका प्रयोजन वैष्णवचार्यों ने अर्थपंचकोपदेश को माना है।

★★★

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की उपासना

पं० अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि'
(श्रीरामानन्द आश्रम जनकपुरधाम)

श्री रामानन्द सम्प्रदाय एक महान् सुप्रतिष्ठित सम्प्रदाय है, इस सम्प्रदाय के आचार्य भी श्रीवशिष्ठ श्रीव्यास-श्रीशुकदेव- श्रीबौधायन श्रीरामानन्दाचार्यजी श्रीकबीर श्रीतुलसी इत्यादि महान् विश्वदन्दनीय सन्त हो गये हैं, इनका विपुल साहित्य परात्पर परब्रह्म श्रीरामप्रेम से ओतप्रोत है, फिर भी जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा तृप्त करने के लिये यह स्वल्प प्रयास किया जा रहा है, जो इस पंक्तियों से उपासक सन्तों को प्रसन्नता हुई तो लेखक अपना श्रम सफल समझेगा।

उपासना का आधार स्तम्भ

(आचार्य शरणागति)

उपासना का आधार स्तम्भ श्री गुरुदेव की कृपा ही है।

मन्त्रे तद्देवतायां च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ। त्रिषु भक्तिः समाकार्या सा हि प्रथमसाधनम्।

उपासना में अपना उपास्यदेव सर्वोत्कृष्ट होना चाहिये, उसका मन्त्र सर्वोत्कृष्ट मन्त्र होना चाहिए तथा उपासना के मार्ग प्रदर्शक आचार्य भी सर्वोत्कृष्ट महान् आचार्य होने चाहिये, श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में ये तीनों ही परमश्रेष्ठ सर्वोत्कृष्ट है, इस लिये उपासक को इन तीनो में सहज भाव हो जाना स्वाभाविक ही है, आचार्य चरणों ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में ही यह प्रशस्त मार्ग दिखलाया है –

प्राचीनाचार्यवर्यान् यतिपतिसहितान् सादरं सं प्रणम्य।
सम्यक् शास्त्रानुसारं गुरुनिरत ? समाधीयते श्रूयतां तत् ॥५॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर

अपने पूर्वाचार्य 'सीतानाथसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम्' सब का सादर स्मरण करके उनके श्रीचरणों में प्रणाम वन्दना कर के तब अपने आचार्य यतिराज श्रीराघवानन्दाचार्य के वचनों का सार-तत्त्व हम सुना रहे हैं, जो सम्यक् प्रकारेण सर्वशास्त्रानुमोदित हैं, उसको ध्यानपूर्वक सुनो–

शास्त्र का सिद्धान्त श्रीगुरुदेव के वचनों द्वारा ही जाना जा सकता है, इसलिये उपासना करने वाले उपासक को श्रीआचार्य चरणों का आश्रय गुरुदीक्षा लेना परम आवश्यक है, यह श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की प्रणाली है।

गुरु भी परमदयालु तत्त्वद्रष्टा प्रभु के प्रेम में परायण शिष्य का सन्मार्ग का ज्ञान करा देने वाले महापुरुष होने चाहिये। ऐसे महाभागवत मिल जाय तो श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में आपकी आज्ञा है कि—

ते सर्वतीर्थाश्रियभूतदेहा देशे महाभागवता वसन्ति

यस्मिन् सतद्दर्शनसंस्थितिभ्यां सूतेसुपुण्यं निखलाघशून्यम् ॥

तदर्चनात्तत्पदनीरपानात्तत्संगतेस्तत्प्रणतेर्विधानात्

नृणां हि तच्छिष्टसुभाजनाच्च स्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः ॥

ऐसे महान् श्रीवैष्णव सन्त जिस देश में निवास करते हैं वहीं सभी तीर्थ आकर निवास करने लगते हैं। उन महाभागवतों के दर्शन से तथा उनके रहने से ही वह प्रदेश महान् पुण्यपद तथा सभीपापों का नाश करनेवाला बन जाता है। ऐसे महान् सन्तों के दर्शन करने से चरण स्पर्श करने से, उनका चरणोदक पीने से, उनकी संगति करने से उनके श्रीचरणों में प्रणाम करने से तथा उनके भोजन करने के पश्चात् उनका प्रसाद भोजन करने से करोड़ों जन्मों का पाप नाश हो जाता है। ऐसे गुरुदेव की कृपा प्राप्त कर उपासक श्रीवैष्णवीदीक्षा प्राप्त करके धन्य धन्य हो जाता है, फिर तो वह —

एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं परमां प्रकुर्यात्।

महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीलक्ष्मणसंयुतस्य वै ॥

"इस प्रकार पंचसंस्कारों से संस्कृत होकर वह महाभागवत रात-दिन श्रीरामकी प्रकृष्टभक्ति को निरन्तर करता रहता है, श्री सीतालक्ष्मण संयुक्त नीलमणी श्यामल कान्ति सम्पन्न कृपानिधान श्रीराम की उपासना में तल्लीन रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में आचार्य तथा शिष्य पंचसंस्कार सम्पन्न होकर उपासना परायण रहे।

उपासना का आधार स्तम्भ श्रीआचार्य शरणागति ही है इसीलिए - आचार्य देवो भव, स रामाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" "आचार्यं मां विजानीयात्" इत्यादि श्रुति-स्मृति वाक्यों ने हमें मार्गदर्शन करके कृतार्थ किया है। उपासना का दूसरा स्तंभ है, सर्वोत्कृष्ट मन्त्रराज-

॥ सर्वोत्कृष्ट मन्त्रराज ॥

श्रीरामषडक्षरतारकमन्त्र

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इह चाव्यापकानां तु मध्ये-

ऽतिश्रेष्ठोव्यापकः सश्रुतिमुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः।

नित्यानामाश्रयोऽयं परितउरुशुभो राममन्त्रः प्रधानः

प्राप्योऽथ प्रापकश्च प्रचुरतरगुणज्ञानशक्त्यादिकानाम् ॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर २।२

व्यापक तथा अव्यापक सभी भगवन्मन्त्रों में श्रीराममन्त्रराज ही सर्वप्रधान है। यह वेदों तथा मुनिजनों से वन्दनीय है तथा परमश्रेष्ठ महापुरुषों द्वारा सेवनीय है, प्रभु के नित्यमुक्त पार्षदों का परमाश्रय परमधाम है। कल्याणप्रद सभी मन्त्रों में सर्वोत्कृष्ट परमप्रधान है। भगवत्स्वरूप का साक्षात्कार कराने वाला है एवं परब्रह्म प्रभु श्रीरामका मन्त्रमय दिव्य श्रीविग्रह है। स्वयं भगवत्स्वरूप होने से प्राप्य भी है तथा इस मन्त्रराज के आराधन से प्रभु की प्राप्ति होती है इसलिये प्रापक भी है। इस प्रकार यह श्रीरामषडक्षरतारक मन्त्रराज उपासक को नवधा साधन भक्ति एवं प्रेम साध्य भक्ति तथा भगवत्स्वरूप का दिव्यज्ञान तथा प्रभु के परम प्रिय दिव्य भगवदीय गुणों का भण्डार बनाकर प्रभु की आंराधना अखण्डित रहे ऐसी दिव्य शक्ति प्रदान करता है।

परम पूज्य श्री आचार्य चरणों ने इस एक ही श्लोक में सम्पूर्ण वेदशास्त्रों का सारांश "गागर में सागर" की भाँति भर दिया है। तथापि जिज्ञासुओं की आत्म-सन्तुष्टि के लिये कुछ शास्त्र-वाक्य नीचे दिये जा रहे हैं –

"ऋते ज्ञानान्मुक्तिः" सिद्धान्त होते हुए भी "काश्यां मरणान्मुक्तिः" का कारण स्पष्ट किया गया है कि–

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव। ब्रह्महत्यादि पोपेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ः॥

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वाऽपि ये लभन्ते षडक्षरम्। जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युरन्ते मां प्राप्नवन्ति ते ॥ ११।

मुमूषोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्षसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥१२॥

श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् ४ कंडिका मन्त्र १०।११।१२।

हे शिवजी ! इस काशी क्षेत्र में मेरे इस षडक्षर "रां रामाय नमः" इस तारकमन्त्र द्वारा जो भक्ति भावना से मेरा पूजन आराधना करेगा, मैं उसको ब्रह्म-हत्यादिक महान् पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम कुछ भी चिन्ता मत करो ॥१०॥ तुम्हारे द्वारा अथवा ब्रह्माजी की परम्परा द्वारा जो यहाँ षडक्षर मेरे मन्त्रराज को प्राप्त करेंगे, वे जीतेजी तो मन्त्रसिद्ध महात्मा बन जायेंगे तथा मृत्यु के पश्चात् जन्ममरण के बन्धन से मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेंगे। जिस किसी मरणासन्न प्राणी के दाहिने कान में तुम मेरे इस महामन्त्रराज का उपदेश करोगे वह निश्चय ही मुक्त हो जायगा।

इस प्रकार स्वयं परब्रह्म परमात्मा प्रभु श्रीराम के द्वारा वरदान प्राप्त कर श्रीराममन्त्र प्रदान करने से ही काशी में मरने वाला जीव सर्व साधन हीन होने पर भी सद्यः मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इससे भी अधिक स्पष्ट इसी उपनिषद् की श्रुति कहती है कि –

श्रीरामचन्द्रमनुस्मरणेन गायत्र्याः शत सहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । प्रणवानामयुत कोटि जपाः भवन्ति । दशपूर्वान् दशोत्तरान्पुनाति स पंक्तिपावनो भवति। स महान् भवति। सोऽमृतत्त्वं च गच्छति।

(श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् निर्णयसागर प्रेस बम्बई का छपा पृ० ११७ मन्त्र संख्या २६ तथा ३० देखें।)

श्रीरामचन्द्रजी के इन षडक्षरात्मक मन्त्रराज का मात्र एक ही बार स्मरण करने से गायत्री मन्त्र के एक लाख जप करने का फल प्राप्त हो जाता है तथा ॐकार प्रणवमन्त्र के दश अरब (दसहजार करोड़) जप करने का फल प्राप्त होता है। इस मन्त्र का जापक अपने पूर्व की दश पीढ़ी तथा अपने पश्चात् होनेवाली दशपीढ़ी एवं अपने समेत २१ पीढ़ी का उद्धार कर देता है। वह जिस पंक्ति में बैठकर भोजन करता है उसके साथ

भोजन करने वाले सभी पवित्र हो जाते है वह महान् बन जाता है, वह अमृतत्व को (मेरे दिव्य धाम को) चला जाता है। [१]

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि छोड़ो चिन्ता जपो श्रीराममन्त्रराज–

वेगि विलम्ब न कीजिए लीजीये उपदेश। महामन्त्र सो जपहु जेहि जपत महेश ॥

अब दो चार संहितायें तथा पुराणों के भी प्रमाण देख लीजिए– श्रीमहारामायण का वचन इत्यादयो महामन्त्रा वर्तन्ते सप्त कोटयः। आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनाम प्रकाशकः ॥ – बृद्धमनुस्मृतिवचनम्

सप्तकोटि महामन्त्राचित्तविभ्रान्तकारकाः। एक एव परोमन्त्रो सम इत्यक्षरद्वयम् ॥

सात करोड़ महामन्त्रों का प्रकाशक प्राणात्मा श्रीरामनाम ही है। चित्त को विभ्रम में डालने वाले सात करोड़ मन्त्र है परन्तु सबमें परात्पर मन्त्र तो श्रीरामनाम ही है। – हारीतस्मृति अ० ६ श्लो० २४०

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रह्म गद्यते। सर्वैश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥

एतदेव परं मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादि देवता। ऋषयश्च महात्मानो जप्त्वा मुक्ताभवाम्बुधौ ॥

श्रीदशरथनन्दन परब्रह्म श्रीराम का यही षडक्षर मन्त्र तारक ब्रह्म कहाता हैं, जो सभी ऐश्वर्यो को तथा सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला है। इसी परममन्त्र को ब्रह्मा-रुद्रादि महान् देवगण जपते हैं तथा सभी ऋषी महात्मा इसी को जपकर भवसागर से तर गये हैं। – अगस्त्य संहिता अ० १९ श्लो० १-२

सुतीक्ष्ण मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते। वैष्णवेस्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः ॥

हे सुतीक्ष्ण सभी देवताओं के मन्त्रों से श्रीवैष्णव-मन्त्र श्रेष्ठ हैं तथा सभी वैष्णवमन्त्रों में भी श्रीराममन्त्र अत्यन्त अधिक फलप्रदायक है। –पिप्पलाद संहितायाम्

शान्तः प्रसन्नो वरदः अक्रोधो भक्तवत्सलः। अनेन सदृशोमन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ॥

सम्यगाराधितो रामः प्रसीदत्येव सत्वरम्। ददात्यायुष्यमैश्वर्यमन्ते रामपदं व्रजेत् ॥

श्रीराममन्त्र परम शान्त है, सदैव प्रसन्न रहने वाला है, इच्छित वर प्रदायक है, किसी पर क्रोध तो करता ही नहीं है, भक्तवत्सल है, अधिक तो क्या कहें इसके समान दयालु मन्त्र त्रिभुवन मे कोई नहीं है। इसका भली-भांति आराधन करने से श्रीराम तुरन्त प्रसन्न होकर इस लोक में सुखद ऐश्वर्य तथा आयु प्रदान करते हैं एवं अन्त में श्रीराम के दिव्य-धाम साकेत में जाता है।

इस प्रकार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का जपनीय मन्त्र श्रीराममन्त्र सभी मन्त्रों का शिरताज हैं सर्वश्रेष्ठ है, यह सभी शास्त्र-वेद-पुराणों ने एक स्वर से उद्घोषित किया है,अतः इसका सर्व श्रेष्ठता निर्विवाद है।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

पद्मपुराण उत्तर खंड अ० २५५ श्लो० २०

---

[१] परमपूज्य महामना श्रीमदनमोहन मालवीयजीने भी अपने "सनातनधर्म दीपिका" ग्रन्थ मे यह प्रमाण उद्धृत किया है जो हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से उनके समय में ही प्रकाशित हुआ था। ७०

श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के उपास्य देव

उपासना में उपास्यदेव की सर्वोत्कृष्टता ही प्रधान है, श्री रामानन्द सम्प्रदाय के उपास्यदेव सर्वेश्वर श्रीरामकी महान् महिमा अपरंपार है, अद्वितीय है, इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी ने डंके की चोट से श्रीराम उपासना का डटकर प्रतिपादन किया है –

को करि कोटिक कल्पना, पूजे वहु देव। तुलसीदास तेहि सेइये, शंकर जेहि सेव॥

× × ×

बने तो रघुबर से बने बिगड़े तो भरपूर। तुलसी और नते बने, वा बनिबे मे धूर॥

तुलसी श्रीरघुबीर तजी, करे भरोसे और। वा अपराधी जीवको, नरकहुँ नाहिन ठौर॥

स्वयं आचार्य चरणों ने भी स्पष्ट आज्ञा प्रदान की है –

द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम। ध्यानमेवं विधातव्यं सदा राम-परायणैः ॥३६॥

हे परमप्रिय शिष्य ! समस्त शक्ति सम्पन्न देवों के शिरोमणि द्विभुज धनुर्धारी सर्वेश्वर श्री राम का ही श्रीरामानुरागी सज्जनों को सदासर्वदा इसी प्रकार निरन्तर ध्यान करना चाहिये।

श्री मानर्च्यः शरण्यो बहुविधविबुधैर्योगिगम्यांघ्रिपद्नोऽस्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहित महिमा साधुवेदैरशेषैनिर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुष विजरोगीर्मनोभ्यामगम्यः ।१९॥

हमारे आराध्य उपास्य श्रीमान् सीतपति हैं, जो शरणागतवत्सल हैं, ब्रह्मादिक प्रमुख देवगणोंद्वार वन्दनीय हैं, योगियों की भावना द्वारा अनुभवगम्य श्रीचरणारविंद वाले हैं, जो अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशादिक पंचमहाक्लेशों से सदासर्वदा अछूते रहते हैं, जो विना कष्ट सहन किये भक्तों को केवल कृपा द्वारा ही प्राप्त होते हैं, जिनका सुयश सर्वत्र सुप्रकाशित है जो नित्यधाम के दिव्यसूरियों द्वारा सम्माननीय है, जो अत्यन्त सुकोमल शील स्वभाव वाले हैं, जिनकी महान् महिमा सम्पूर्ण वेदों तथा महापुरुषो द्वारा निरन्तर गायी जाती है, वे अजर-अमर सर्वशक्ति सम्पन्न निर्मल निर्विकार मनवाणी से परे अगम्य परात्पर परब्रह्म प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ही परमतत्त्व हैं, अतएव वही उपास्य हैं आराधनीय है। अन्यान्य शास्त्र पुराण इसी सिद्धान्त का एकमत होकर समर्थन करते हैं - सनत्कुमार संहितायाम् –

श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं, परात्परं राममहं भजामि ॥२५॥

परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकं। मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४८॥

अपार संवित् सुखमेकरूपं परात्परं राममहं भजामि ॥६२॥

परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महान्तम् ॥६८॥

स्कन्द पुराण में भी –

रामात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने। श्रीरामः शरणं समस्त जगतां रामं विना का गतिः॥

श्रीमद्भागवत में —

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्। तन्नाकपालवसुपालकीरीटजुष्टं-पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥

पद्मपुराण में उत्तर खंड अ० २४३ श्लो० ३९—

त्वन्नामजापिनी गौरी त्वन्मन्त्रजपवानहम्। अतस्त्वं जानकीनाथ परब्रह्मासि निश्चितम् ॥

× × ×

रामान्नास्ति परोदेवो रामान्नास्ति परं व्रतम्। नहि रामात्परोयोगो नहि रामात्परो मखः ॥

तं स्मृत्वा चैव जप्त्वाच पूजयित्वा नरः परम्। प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुस्मिकीं तथा ॥

— पद्मपुराण पातल खंड अ० ३६ श्लो० ४६।४७

तस्मात्सर्वात्मनारामचन्द्रं भज मनोहरम्। यथागोष्पदवत्तुच्छो भवेत्संसारसागर ः ॥

आदि काव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में —

येषां रामप्रियो नास्ति रामे न्यूनत्त्वदार्वीनाम्। द्रष्टव्यं न मुखं तेषां संगतिस्तु कुतः पराम् ॥

श्रीविश्वामित्रवाक्यम् —

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्। वशिष्टोऽपि महातेजो ये चेमे तपसि स्थिताः ॥

— बालकांड सर्ग १९ श्लो० १४

बृहद्ब्रह्मसंहितायाम् श्रीमन्नारायणवाक्य लक्ष्मी प्रति—

वासुदेवादिमूर्तिनां चतुर्णां कारणं परम्। चतुर्विंशतिमूर्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥

सर्वावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः। दीनानुद्धरते योऽसौ श्रीरामः शरणं मम ॥

शिवसंहिता में —

न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा।
स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः ॥
उक्तेन किं स्याद् बहुनाम विश्वं सर्वमुधास्याद् यदिराम शून्यम् ॥
तदेव सत्यं विहितं तदेव तदेव युक्तं रघुनाथयुक्तम् ॥

महारामयणे—

वेदादौ वेदमध्ये च वेदवेदान्तपालकः। परात्परतरं यो वै स तु रामः सनातनः ॥

स्कंद्पुराणीय रामायणमाहात्म्ये —

ब्रह्मा विष्णु महेशाद्याः यत्यांशाः लोकपालकः। तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥

वशिष्ठसंहितायाम्—

परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि। यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिः स्वराट् ॥

इत्यादिक हजारों प्रमाण शास्त्रों में भरे पड़े हैं श्लोक सीधे सरल भाषा में है इसलिये अर्थ विस्तार न करके संक्षेप में ही भावार्थ लिखा जा रहा है—

(सनत्कुमार संहितान्तर्गत श्रीरामस्तवराज) सनातन आद्यदेव परात्पर प्रभु श्रीहरि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का मैं भजन करता हूँ ॥२५) सच्चिदानन्दस्वरूप परात्पर तत्त्व राघवेन्द्र प्रभु श्रीराम को मैं तन-मन-वचन से प्रणाम करता हूँ ॥२८॥ परात्पर पवित्रों में परम पवित्र, महान् में महान् सर्वश्रेष्ठ प्रभु श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ ॥

स्कंद पुराण में— श्रीराम से भी कोई परमतत्त्व है ऐसा मैं नहीं जानता हूँ न मानता हूँ। श्रीमद् भागवत में - उन महापुरुष प्रभु श्रीराम के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ जो समस्त ब्रह्माण्ड के लोकपाल दिक्पाल तथा देवलोकपालकों के रत्नजटिल किरीट जिनके चरणों पर लोटते रहते हैं उन श्रीरामचन्द्रजी की मैं शरणागति ग्रहण करता हूँ।

पद्मपुराण में- श्रीशंकरजी कहते हैं हे प्रभु ! आपके नामको पार्वती जपती रहती है तथा मैं भी आपके ही मन्त्र का निरन्तर जप करात रहता हूँ। क्योंकि हे श्रीजानकीनाथ आपही परब्रह्म परमात्मा हैं।

श्रीरामसे परात्पर देव कोई नहीं है, श्रीराम के व्रत से परम श्रेष्ठ कोई व्रत नहीं है। श्रीराम से श्रेष्ठ कोई योग नहीं है तथा श्रीराम पूजन से श्रेष्ठ कोई पूजन नहीं है। उन्हीं प्रभु श्रीराम का स्मरण करंके पूजन करके मनुष्य इस लोक में परम श्रेष्ठ सुख प्राप्त करता है तथा परलोक में परम कल्याण की प्राप्ति कर लेता है। इसलिये सर्व प्रकार की शंकाओं का परित्याग कर अत्यन्त भक्ति-भावना से सभी प्रकार से श्रीराम का ही अत्यन्त मनोहर भजन करो, इसके प्रताप से भंयकर भवसागर गोखुर की तरह सहज में ही तर जाओगे।

श्रीमहर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि जिनको श्रीराम प्रिय नहीं है तथा श्रीराम में किसी प्रकार की न्यूनता दिखाते हैं वे संसार में निन्दनीय होते हैं उनका तो मुख भी न देखना चाहिये फिर संगति करना तो दूर रहा।

श्रीविश्वामित्रजी श्रीदशरथजी से कहते हैं कि -राजन् ! मैं महात्मा श्रीरामको भलीभांति जानता हूँ कि वे क्या हैं ? उसी प्रकार महान् तेजस्वी श्रीवशिष्ठजी तथा तपस्या परायण महान् सन्त सभी श्रीराम के परत्त्व को जानते हैं।

वृहद्ब्रह्म संहिता में श्रीमन्नारायणजी श्रीलक्ष्मीजी से कहते हैं— वासुदवादि चतुर्व्यूहों का तथा प्रभु के चौवीसों अवतारों का मूलकारण परात्पर प्रभु श्रीराम ही हमारा शरण है। सभी प्रकार के अवतार धारणकर दीनजनों को अपने दर्शन तथा श्रीचरण स्पर्श से उद्धार करने वाले प्रभु श्रीराम ही हमारे रक्षक हैं। हमारे आश्रय हैं।

श्रीशिवसंहिता में - वह पुराण पुराण नहीं है, वह संहिता संहिता नहीं है, वह इतिहास इतिहास नहीं है तथा वह काव्य काव्य नहीं है जिसमें भगवान् श्रीराम का वर्णन नहीं। बहुत विशेष आडंवर करके कहने से क्या लाभ ? सारांश यही है कि श्रीराम के बिना सब कुछ मिथ्या है यथार्थ बात यही है कि जिसमें श्रीराम विराजमान हैं वही सत्य है वही वैधानिक परम तत्त्व है।

महारामायण में भी - वेदों के आदि में तथा वेदों के मध्य में वेदवेदान्तपालक प्रभु श्रीराम ही परात्पर सनातन परमतत्त्व हैं यह प्रतिपादन किया गया है। स्कंदपुराणीय श्रीरामायण माहात्म्य में भी ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादिक जिनके अंशाश मात्र किंचित् शक्ति प्राप्त कर लोकपालक बने हुए हैं उन आदि देव परमविशुद्ध परमतत्त्व श्रीराम का मैं भजन करता हूँ।

वशिष्ठसंहिता में भी - श्रीमन्नारायण से जो परमश्रेष्ठ हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण से भी जो परात्पर हैं वही परात्परतम सर्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रभु श्रीराम ही दशरथराजनन्दन होकर प्रकट हुए हैं।

परान्नारायणाच्चपि कृष्णात्परतरादपि। यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिः स्वराट्॥

ये सभी प्रमाण आचार्य चरणों द्वारा प्रवर्तित श्रीराम उपासना को परिपुष्ट करते हैं। विशेष समझना हो तो "श्रीरामपरत्त्वम्" नामक ग्रन्थ जो परमपूज्य श्रीब्रह्मदास जी महाराज प्रणीत है तथा मेरी प्रेमामृतवर्षिणी टीका सहित श्रीमहान्त पीताम्बरदासजी, श्रीअवधविहारी मन्दिर कोट पुतली, जिला जयपुर राजस्थान से प्रकाशित है, पढ़ने की कृपा करें —

श्रीरामानन्दसम्प्रदाय की उपासना प्रणाली में प्रथम श्रीरामभक्त सदाचारी विरक्त संत की शरणागति ग्रहण करके पंचसंस्कार सम्प्न्न होना चाहिये। तब मन्त्रराज तारकमन्त्र मूलमन्त्र बीजमन्त्र आदि नामों से सुविख्यात षडक्षर श्रीराममन्त्र के जपध्यान अनुष्ठान करके परात्पर पूर्णब्रह्म उपास्यदेव परामाराध्य प्रभु श्री सीतारामजी की कृपा से उनके दिव्य दर्शनों का अधिकार प्राप्त कर धन्य-धन्य हो जाना चाहिये, यही मानव जीवन की सार्थकता है। श्रीराम के चरणों में श्रीरामभक्तों के चरणों में श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों में तथा श्रीराममन्त्रराज में पूर्ण निष्ठा पूर्णश्रद्धा विश्वास रखना ही श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की उपासना का सार सिद्धान्त है। इस परमलाभ को सहज मे प्राप्त करने के लिए साधक को प्रथम श्रीरामनाम का निरन्तर जप-कीर्तन स्मरण करते रहना तथा श्रीरामायण का पाठ प्रेमपूर्वक प्रतिदिन करते रहना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीरामनाम तथा रामायण की कृपा ही श्रीरामोपासना की दृढ़ता प्रदानकर जीवों को कृतकृत्य धन्य-धन्य बना देने में समर्थ हैं। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

★★★

राम-द्वय मन्त्र

— व्याख्याकार वैदेहीकान्त शरण

श्री-रामद्वयमन्त्रमद्भुततमं वाक्यद्वयं षट्पदं,
वाणाक्षिप्र मिताक्षरं तु खलु विद्धि त्वं दशार्थान्वितम्,
युक्तं तत् त्रिपदैस्तु तत्र सुमते पूर्वं शुभस्यास्पदं
वाक्यं पंचदशाक्षरं तदनु दिग्वर्णात्मकं तूत्तरम् ॥

"श्री वै० म० भा० २१।२५"

विषय :— इस श्लोक में श्रीरामद्वयमन्त्र के स्वरूप, अकार-प्रकार, रूपरेखा, शब्दसौष्ठव, पदयोजना एवं रहस्यों का दिग्दर्शन है।

व्याख्या - श्री = परम रस ('अथ या एतेषां सप्तानां पुरुषाणां श्रीः यो रस आसीत् तमूर्ध्वं समुदौहम्-शतपथम् ।' 'ऋचः सामानानि यजूंषि सा हि श्रीरमृतासताम् - वैत्तिरीयारण्यकम् ।') संपत्ति (संपत्तिः श्रीश्च लक्ष मीश्च - अ० को २। ८। ८२)। वेश, रचना, शोभा, सरस्वती, लक्ष्मी, त्रिवर्ग संपत्ति विविध उपकरण ८'श्रीर्वेश रचना शोभा भारती सरलद्रुमे ॥ लक्ष्मी त्रिवर्ग समपत्ति वियोकरणेषु। विभूतौ च मतौ च स्त्री - मे० रान्तवर्ग १—२) 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया। इन्दिरालोक माता मा क्षीरोदतनया रमा। भार्गवी लोकजननी क्षीरसागर कन्यका ॥ अ० को० १।१।२७ ।' 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या- शु० य० ३१।२२ ।' आचार्य चरण ने श्री पद का अर्थ आगे सर्वाधीश्वर श्रीराम जी की प्राप्ति कराने वाली सीता जी कहा है- "सर्वाधीशेश्वरस्याप्तिर्हेतुरगाभिधीयते सीता पुरुषकारार्थां श्रीत्यनेन पदेन तु" श्लो० २।२६ ।' 'विभुत्वतो निर्भता परैस्तैः श्रीव्याप्तिराय्यैरभिधीयते हि। प्रपंच निर्मातृ विरन्चिहेतु श्रीरामपादाब्ज निविष्टचित्तैः ॥ नित्यं सा पुरुषकार-भूता सीताऽनपायिनी। अनुपायान्तरैर्विज्ञैरुच्यते तदुपायता ॥ श्लो० ४-४५-४६ ॥ राम= रामत्पर ब्रह्म-श्री-राम (विश्वं जातं यतोद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते, सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः यद्भीत्या वातिवातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरोज्ञः, साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्त्ता ॥ श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहु विधविबुधैर्योगि — गम्याङ्घ्रिपद्मोऽस्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदित सुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः। शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधु-वेदैरशेषैर्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुष विजरो गीर्मनोव्यां गम्यः ॥

॥ श्लो० १।८-९।'

द्वय = द्वय पद संख्या वाचक है, अर्थ होता है - दो, यहां पर यह द्वय पद श्री-सीता एवं राम इन दोनों का प्रकाशक होने से श्री-राम द्वयं कहा गया है।

मन्त्रम्-मननात्रायते इति मन्त्रः' 'वेद भेदे गुप्तवादे मन्त्रः' आदि लक्षण एवं अभिधान से प्रोक्त वैदिक परम्परा -प्राप्त- गोपनीय एवं मनन करने पर रक्षा करने वाला अक्षर समूह मन्त्र कहा जाता है। यह हमारे आचरण का भी अनु-प्रेरक है। वेद ऋषि कहते हैं कि मन्त्र (मन्त्रार्थ) के अनुसार आचरण करें- 'मन्त्र श्रुत्यं चराभसि' सामवेद पूर्वार्चिक १७६। यहाँ 'श्रीरामद्वयमन्त्रम्' कहा गया है। इसके दो अर्थ निष्पन्न होते हैं - (१) श्रीराम जी का द्वयमंत्र (दो वाक्यों वाला मन्त्र अथवा दो मंत्र, (२) श्री (सीताजी) का मंत्र और रामजी का मंत्र (अर्थात् सीता जी और राम जी इन दोनों का ही मंत्र यहाँ 'मन्त्रम्' यह एक वचन पर दोनों ही वाक्यों एवं दोनों ही देवताओं की अभिन्नता एवं एकत्व के ज्ञापन के लिए है, अतः श्री राम जी का द्वयमंत्र (दो वाक्य वाला मंत्र) एक ही मंत्र हैं, दो मंत्र नहीं। इस प्रकार श्रीराम द्वय मंत्र एवं सीता द्वय मंत्र भी एक ही मंत्र है, दो नहीं- ऐसा एकवचनान्त पद 'मन्त्रम्' से सिद्ध है। इसे ही 'मता पुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते' - श्लो० २-२६ में दर्शित किया गया है। 'श्री- मद्रामचन्द्र' पद से श्री (सीता) और राम में समानाधिकरण्य और एकत्व बताया गया है।

अद्भुततम् = विस्मयोऽद्भूतमाश्चर्यं चित्रम् अ० को० १।७।१९ विलक्षण वस्तु को अद्भुत कहते हैं। यह श्रीमद्रामद्वयमन्त्र सर्व विलक्षण ही नहीं अपितु परम विलक्षण है। इससे बढ़कर कोई भी विलक्षण नहीं है, न था और नहीं हो सकता है। इस मंत्र को परम अद्भुत होने के कारण- श्रीमन्तं श्रुतिवेद्यमद्भुतगुणग्रामाग्र्य-रत्नाकरं -श्लो० १।१' एवं श्री सीता जी भीं ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगच्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या, विद्युत्पुंज समान कान्तिमितक्षान्तिः सुपद्नेक्षणा - श्लो० १।२' अद्भुततम है। अतः मन्त्र के प्रतिपाद्य देवता के अद्भुततम होने से यह मन्त्र भी अद्भुततम सिद्ध है। इस मन्त्र में आकारिक और वास्तविक दोनो प्रकार की अद्भुतता है। इसके आकारिक औद्दभुत्य का दिग्दर्शन इसी प्रस्तुत श्लो० २।२५ में ही "वाक्यं द्वयं षट्पदं - वर्णात्मकं तूत्तरम्" वाक्य में कराया गया है एवं वास्तविक उद्भुतता का दिग्दर्शन अग्रिम श्लोक २।२६-३४ में कराया गया है।

वाक्य = 'वाक्यं पद समूहः स्यात्।' 'तिङ्सुबन्त चयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता- अ० को १।६।२।' शब्द अथवा शब्दों का समूह जो पूर्व अर्थ वा भाव प्रकट करता है वाक्य कहलाता है भाषा विचार का व्यंजक है और विचार वस्तु का जब हमारा मानसिक निर्णय भाषा द्वारा व्यक्त (प्रकाशित) होता है, तब वह वाक्य कहलाता है। प्रत्येक वाक्य के तीन अंग हैं - (१) उद्देश्य (२) विधेय और (३) संयोजन। वाक्य मानसिक निर्णय और आन्तरिक भावनाओं की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। यह तत्त्व का ज्ञापक और प्रतिपादक है।

द्वयम् = श्री राम मंत्र को 'वाक्यद्वयम्' इसलिए कहा गया है कि इसमें दो वाक्य हैं - (१) श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं पपद्ये।' एवं (२) श्री मते रामचन्द्राय मनः। ये दोनों ही तिङ्सुबन्त युक्त क्रिया और कारक पूर्ण उद्देश्य विधेय लक्षण युक्त पूर्ण अर्थ एवं भाव को प्रकट करने वाले हैं। अतः इनका वाक्यद्वयम् होना सिद्ध है। पुनः यह मन्त्र दो बातों– (१) शरणग्रहण करना और (२) नमस्कार करना को बतलाने वाला होने से भी वाक्य द्वयम् है। इसी प्रकार यह मंत्र श्री राम जी के साथ ही श्री सीता जी के सम्बन्ध में भी ज्ञापन कराने के कारण भी वाक्यद्वयम् है। दोनों वाक्यो कों उद्देश्य पद (श्री रामचन्द्र) एक ही है और क्रिया पद दो हैं – (१) शरणं प्रपद्ये एवं (२) आय नमः। दोनों क्रिया-पद परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। 'शरणं प्रपद्ये' संकल्प-वाक्य है और 'नमः' क्रिया वाक्य। दोनों परस्परापेक्षित हैं।

षट्पदम् = 'पदं व्यवस्थित त्राण स्थान लक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु अमरकोष ३।३।९६ ॥" पदम् 'न' के व्यवसाय रक्षा, स्थान, चिन्ह, पैर, शब्द, वाक्य, एक वस्तु और उपदेश ये दश अर्थ होते हैं। व्याकरण शास्त्रानुसार जिन

शब्दो के अन्त में सुप् और तिङ् प्रत्यय हो उसकी पद संज्ञा होती है– 'सुप्तिङन्तं पदम्" पा० १।४।१४ " किन्तु तर्कशास्त्रानुसार शब्द और पद में अन्तर है। सभी पद शब्द हैं पर सभी पद नहीं हो सकते हैं। पद होने के लिए शब्दों में शब्द होने के अतिरिक्त इस गुण का भी रहना आवश्यक है कि वे स्वतंत्र रूप से किसी वाक्य के उद्देश्य अथवा विधेय बन सके। सभी शब्दों में वाक्य के उद्देश्य अथवा विधेय बनने की शक्ति नहीं है। अतः सभी शब्द पद नहीं बन सकते। अतः केवल वे शब्द या शब्द समूह जो स्वतंत्र रूप से किसी भी वाक्य के उद्देश्य या विधेय हो सकते हैं या होते हैं पद कहलाते हैं। न्यायशास्त्रानुसार शक्तिमान पद कहा जाता है। जिस शब्द में एक अंर्थ विशेष द्योतन करने की शक्ति रहती है, वह पद कहलाता है अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्यः ईश्वर संकेतः शक्तिः' तर्कसंग्रहः, इस पद से इस अर्थ का बोध होता है, यह संकेत ईश्वरीय है। यहाँ प्रस्तुत राम द्वय मन्त्र में प्रयुक्त शब्दों का संकेत ईश्वरीय है। ऐसा बोध कराने के लिए आचार्य चरण ने यहाँ 'पदम्' शब्द का व्यवहार किया है। षट् पद संख्या वाचक है। पद्यते ज्ञायते अनेन इति पदम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पद शब्द का अर्थ प्रत्यायक (बोधक) है। जिस प्रकार षट्दर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्ययोग, मीमांसा, वेदान्त) से परब्रह्म परमेश्वर का बोध एवं उनकी प्राप्ति का उपाय (साधनबोध) तथा दर्शन (फल) होने से उन्हें षट्दर्शन कहा जाता है। उसी प्रकार इस द्वय मंत्र के षट्पदं (प्रत्यायकं) से भी परात्पर ब्रह्म श्री राम का बोध उनकी प्राप्ति का प्रत्यय (उपाय) एवं उनका दर्शन और प्राप्ति होता है। अतः षट्पदं का व्यवहार हुआ है। श्रीरामद्वय मंत्र के षट्पदम् कहने में अनेक रहस्य हैं। तारक मंत्र षडक्षर है (रसमितशुभदस्वक्षरः श्लो० २।१) तो द्वयमन्त्र षट्पद (षट्पदं श्लो० २।२५) है। यह दोनो का साधर्म्य, समानाधिकण्य, एक रूपता एवं एक वाक्यता का निरूपक है। दोनों का रस (रसास्वादन स्नेहयोः) एवं शुभद साधर्म्य का प्रतिपादक है। तारक मंत्र के समान ही यह द्वयमंत्र भी षड्व्याप्ति भेदक (श्रुति मुनि गतितोत्कृष्टषड् व्याप्तिभेदम्- श्लो० २।३) अर्थात् नाम, रूप, यश, गुण, स्वरूप मन्त्र-इन षड्व्याप्ति पूर्ण है। जहाँ तारक मन्त्र में षड्अक्षर है वहाँ द्वय मंत्र में षट् पद है इस प्रकार मूल तारक मंत्र का ही विकास यह द्वय मंत्र है। अतः द्वय मंत्र का ही अंग (वृक्ष-पल्लव, फूल-फल) रूप यह द्वयमंत्र है। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार सर्वत्र षडङ्गों की ही कल्पना वा मान्यता है। पूजा काल में एवं श्रीरामभक्त जप काल में भी षट् अंग न्यास ही किया जाता है। ज्ञान पुरुष रूप वेद भगवान् के भी षट् अंग ही हैं – कन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। 'तस्मात् सांगमधीत्वैव ब्रह्मलोके महीयते॥ पणिनीय शिक्षा ४१-४२ ॥" इस प्रकार भगवन् मंत्र के भी छः अंग है और उन छः अंगों के साथ उनका सांग अध्ययन एवं उपासना करने से ब्रह्म लोक (साकेत) की प्राप्ति होती है। 'अभिधानकोशतः पदार्थः निश्चयः १।३।५ पदाधानोद्धरणमवेक्षणम् १।३।१५। काव्यालंकार सूत्र ॥" अतः इस द्वय मंत्र का अभिधान कोश के परिज्ञान से पदों के ठीक अर्थ का अनुसन्धान करना चाहिए एवं इन षट् पदों की रचना विशेष में रखे हुए उनके सौन्दर्य और उपयोगिता की परीक्षा किये हुए अर्थात् उनके अवेक्षण को स्थान्य परिवर्तन, परिवर्तन वा क्रम भेदकर नष्ट नहीं करना चाहिए – ऐसा ही उस 'षट्पदं' में प्रयुक्त 'पदं' पद से सिद्ध होता है। जिस प्रकार – संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियमेव च। अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥" के छः लक्षणों से सूत्र का ज्ञापन होता है। उसी प्रकार श्री राम तारक मन्त्र के छः अक्षरों एवं श्री रामद्वयमंत्र के छः पदों से इन मंत्रों का ज्ञापन होता है। षट्पद नाम भ्रमर का है – "मधुव्रतो मधुकरो मधुलिण्मधुपालिनः। द्विरेफ पुष्पलिङ्ग भृङ्ग षट्पद भ्रमरालयः॥ अ० को० २।५।२९ ॥" इस प्रकार षट्पद होने से यह श्रीरामद्वयमत्र भी भ्रमर रूप है। जिस प्रकार भ्रमर पुण्य के ही चारों ओर भ्रमर रूप अपने षट्पद द्वारा परात्पर ब्रह्म श्रीराम जी के चरणारविन्द के मधुरस का पान करता है– "पद कमलपरागा रस

अनुरागाममन मधुप करै पाना ।" षट्कर्मा नाम ब्राह्मण का है– "षट्कर्मा यागादिभिर्वृतः – अ० को० २।७।४" अतः यह षट्पद द्वयमंत्र ब्राह्मण के यागादि षट् कर्म रूप है ।

अब इस द्वयमंत्र के षट्पदों का विभाग बतलाया जाता है । यह द्वयमंत्र समष्टि रूप से षट्पद है– (१) श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ (२) शरणं (३) प्रपद्ये (४) श्रीमते (५) रामचन्द्राय (६) नमः ॥" इस प्रकार यह द्वयमंत्र व्यष्टि रूप से भी षट्पद है – प्रथम वाक्य (१) श्री (२) मत् (३) रामचन्द्र (४) चरणौ (५) शरणं (६) प्रपद्ये द्वितीय वाक्य (१) श्री (२) मते (३) रामचन्द्र (४) आय (५) न (६) मः ॥ पुनः दोनों वाक्यों में उद्देश्यपद (श्रीमतेरामचन्द्राय) उभयनिष्ठ है । अतः उनका एक ही बार गणना करने पर षट्पद इस प्रकार बनते हैं – (१) श्री (२) मद् (३) रामचन्द्र (४) चरणौ (५) शरणं प्रपद्ये (६) नमः । अतः दोनों ही वाक्यों में ये ही मूल छः पद हैं ।

बाणाक्षिप्रमिताक्षरम् – बाण शब्द का अर्थ तीर होता है – "पृषत्कः वाण् विशिखा अजिह्मग खगाशुगाः । कलम्बमार्गन शराः पत्रीरोप इषु द्वयोंः ॥ अ० को० २।८।८६-८७ ।" आक्षिका अर्थ नेत्र होता है– " लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी ॥ अ० को० २।६।९३ ॥" प्रमित का अर्थ प्रमाण एवं यथार्थ ज्ञान होता है – "प्रमितौ प्रभा– अ० को० ३।२।१० ॥" "यत् अर्थ विज्ञानं साप्रमितिः वा० भा० १।१।१ ।" अक्षर शब्द का मोक्ष– परब्रह्म, वर्ण, प्रकाश, धर्म, तप, मूलकारण अपामार्ग– ये आठ अर्थ होते हैं – अक्षरं तु मोक्षेऽपि अ० को० ३।३।१८२ ॥" यहाँ "वाणाक्षिप्रमिताक्षरम्' शब्द में वाण का सांकेतिक अर्थ पांच संख्या है क्यों कि कामदेव के पाँच वाण प्रसिद्ध हैं (अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पल च पंचैते पंचवाणस्य सायकाः ॥ अ० को० क्षे० ॥" अक्षिका साङ्केतिक अर्थ दो संख्या है । क्योंकि सर्वत्र दो नेत्र प्रसिद्ध है । एक नेत्र केवल कौआ को ही होता है – ' स एव च चिरंजीवी चैकदृष्टिश्च मौकुलिः । अ०को० क्षे०) ।' त्रिनेत्र केवल शंकर है और सहस्र नेत्र इन्द्र) ॥" अतः अंकानां वामतो गतिः के अनुसार बाणाक्षि का सांकेतिक अर्थ पच्चीस संख्या है अक्षर शब्द का अर्थ वर्ण है प्रमित शब्द निश्चितार्थक है । अतः 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्" का अर्थ हुआ पच्चीस अक्षरों वाला । इस श्री रामद्वय मंत्र में "श्री१ मर द्रा३ म४ च५ न्द्र६ च७ र८ णौ९ श१० र११ णं१२ प्र१३ प१४ द्ये१५ । श्री१६ म१७ ते१८ रा१९ म२० च२१ न्द्रा२२ य२३ न२४ मः२५ ॥" ये पच्चीस अक्षर हैं । पुनः बाण शब्द का सांकेतिक अर्थ ५ संख्या इसके अनुमान प्रमाण के पंचावयव (प्रतिज्ञा-हेतु उदाहरण -उपनय-निगमन) एवं पंचरूप (तानि पंचरूपाणि पक्ष सत्वं, सपक्षत्वं, विपक्षव्यवृत्तिः, अबाधित विषयत्वं, असत्प्रतिपक्षत्वं चेति) ।' का बोधक होने से अनुमान प्रमाण का बोधक है । इसी प्रकार अक्षि शब्द प्रति+अक्ष्ण = प्रत्यक्षम्' अथवा 'अक्षमाक्षं प्रतीत्योत्पद्यते इति प्रत्यक्षम्" से यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण का बोधक है । अक्षि का सांकेतिक अर्थ दो संख्या प्रत्यक्ष के लौकिक प्रत्यक्ष एवं अलौकिक प्रत्यक्ष इन दोनों भेदों का बोधक है । यहाँ 'बाणाक्षि' का अंकानां वामतोगातिः के अनुसार प्रथम प्रत्यक्ष तब अनुमान – इस क्रम का निरुपण है । अक्षर पद शब्द प्रमाण का बोधक है । अतः 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्' का अर्थ हुआ कि यह रामद्वयमंत्र 'त्रिधा प्रमाणमध्यक्षानुमानशब्दभेदतः के अनुसार प्रत्यक्ष अनुमान– शब्द इन सभी प्रमाणों से प्रमाणित है । इसी प्रकार इसका बाण पद – धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महा, शरं ह्युपासानिशतं सन्धयीत । आयभ्य तद्भागवगतेन चेतसा, लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोभ्यविद्धि । प्रणवोधनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत्तनमयो भवेत् ॥ मु० २।२।३-४ ।' का बोधक और अक्षि पद– 'न तु मां शवयसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य में योगमैश्वरम् ॥' में कथित दिव्य चक्षु का बोधक है । इस प्रकार यह श्रीराम द्वय मंत्र श्रीरामजी के ईश्वरीय रूप का साक्षात्कार करने वाला है– इस तत्व का बोधक यह 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्' पद है । इसके अतिरिक्त यह बाण पद इस श्री रामद्वय मंत्र की अमोघता (जिमि अमोघ

रघुपति करबाणा) एवं भव वारिधि शोषण (लक्षिमण बाण सरास आनू। शोषौ वारिधि विशिख कृशानु ॥) आदि तथा प्रव्यूहव्यूहभंग——रामशस्त्रास्त्रसंघः ।' आदि का भी ज्ञापक है, अक्षि पद "राजीव नयन धरे धनु शायक। भक्त विपत्ति भंजन सुखदायक ॥" आदि का बोधक है। इस द्वयमंत्र के पच्चीस अक्षर अविनाशी है। अतः इन्हें अक्षर (नित्य) शब्द से ज्ञापित किया गया है। पुनः यह 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरं' अर्थात् पच्चीस अक्षर प्रमित पद पच्चीस तत्वो में चौबीस तत्वों से मुक्ति तथा पच्चीसवें तत्व ईश्वर की प्राप्ति का साधक है। ऐसा इसके मोक्ष वाचक अक्षर पद से ज्ञापित है। प्रमित पद इस द्वय मंत्र की प्रमाणिकता का निरुपक है। तु= यहाँ 'तु' पद पाद पूरण के अतिरिक्त श्रीरामद्वयमंत्र की अवधारण (निश्चयीकरण) के लिए भी प्रयुक्त है– 'तु स्याद्भेदेऽवधारणे– अ०को० ३।३।२४२ ॥" खलु– यहाँ खलु' पद वाच्यालंकार के अतिरिक्त जिज्ञासा अनुनय और संशय निषेध के लिए भी प्रयुक्त है– "निषेधवाक्यालंकार जिज्ञासाऽनुनये खलु अ०को० ३।३।२५५।'

विद्धि= यहाँ विद्धि (विद् ज्ञाने, विद् विचारणे) क्रिया पद ज्ञापनार्थ, ज्ञानार्थ एवं विचारणार्थ प्रयुक्त है। लोट् लकार से प्रश्न कर्त्ता जिज्ञासु श्री सुरसरानन्द जी को एवं समस्त जिज्ञासु जगत् को जानने एवं विचारने (मनन करने) का परामर्श आज्ञा वा आदेश दिया गया है। लोट लकार मध्यम पुरुष में आज्ञा अथवा मृदु उपदेश वा मन्त्रणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

त्वं = यह युष्मद् सर्वनाम प्रत्यक्ष उपस्थित प्रश्नकर्त्ता श्री सुरसरानन्द जी के व्याज से सभी मोक्षार्थी जीवों के लिए प्रयुक्त है।

दशार्थान्वितम् = दश पद संख्या वाचक है। अभिधेय, प्रयोजन आदि को अर्थ कहते हैं– 'अर्थोऽभिधेयरैवस्तु प्रयोजन निवृत्तिषु अ० को० ३।३।८६।" साहचर्य एकत्र स्थिति एवं तज्जन्य (सन्तान) को अन्वय कहते हैं– "साध्यसाधनयोः साहचर्यमन्वयः (पदकृत्य) तत्सत्त्वे तत्सत्ता अन्वयः। सन्ततिगोत्र जनन कुलान्यभिजान्वयौ, वंशोऽन्वयः सन्तानः (अ० को० २।७।१)' 'दर्शार्थान्वितम्' से श्रीरामद्वयमन्त्र के दश पदों (१) श्री (२) मत् (३) रामचन्द्र (४) चरणौ (५) शरणं (६) प्रपद्ये (७) श्रीमते (८) रामचन्द्र (९) आय (१०) नमः ॥' केअर्थों का बोध होता है, जिसका प्रतिपादन आचार्य चरण ने अग्रिम श्लो० २।२६-३१ में इस प्रकार किया है– "सर्वाधीशेश्वरस्याप्तिर्हेतुरत्राभिधीयते। सीतापुरुषकारार्या (१) श्रीत्यनेन पदे न तु ॥ (२) मता पुरुषकारस्य नित्य सम्बन्ध उच्यते। ३ रामचन्द्रेति पदतो वात्सल्यादि गुणस्य च ॥ ४ चरणावित्यनेनैव वात्सल्यादिक सीतयोः। विलक्षणस्य दिव्यस्य विग्रहस्याश्रयस्य च ॥ ५ शरणेतिपदेनैवोपायस्तविग्रहो बुधैः। उपायाध्यवसायस्तु ६ प्रपद्येति प्रतिपाद्यते ॥ प्राप्यमिथुनमेवोति ७ श्रीमते पदतोमतं ८ रामचन्द्रेतिपदतः स्वामित्व प्रतिपाद्यते ९ विभत्तयायेति पदतः शेषवृत्तिर्महात्मभिः। विरोधिनो निरासस्तु १० नमः पदेन वर्ण्यते ॥ २।२६-३१ ॥" इस प्रकार उक्त दश पदों उनके कथित अर्थों में साध्य साधन भाव एवं नित्यसाहचर्य तथा अभिव्यक्ति है। इसीप्रकार "दशार्थान्वितं" पद का तात्पर्य दश प्रकारक अर्थों से है (अवयवार्थ और समुदायार्थ) १.तात्पर्यार्थ २. वाक्यार्थ ३. प्रधानार्थ ४. अनुसन्धानार्थ ५. शब्दार्थ ६. इष्टार्थ ७. अभिधार्थ ८. लक्षणार्थ ९. व्यंजनार्थ १०. सांकेतार्थ। इसमें प्रथम चार प्रकारक अर्थों (तात्पर्यार्थ, वाक्यार्थ, प्रधानार्थ, अनुसन्धानार्थ) का प्रतिपादन स्वयं आचार्य ने ही श्लो० ३२-३४ में इस प्रकार किया है– "तात्पर्यार्थोस्य विज्ञेयः आचार्यरुचिसंश्रयः। वाक्यार्थो मंत्ररत्नस्य त्वथ निर्णीयते बुधैः। प्राप्यप्रापकसम्बन्धस्वरूपाभिनिरुपणम्। प्रधानार्थस्तु तद्युग्मकैंकर्यस्य प्रधानता ॥ स्वदोषाभ्यनुसंधानमनुसंध्यर्थ उच्यते। एवमेवानु संध्येयं मोक्षकामैरहर्दिवम् १२।३२-३४ ॥" पांचवाँ शब्दार्थ के सम्बन्ध में भामह कहाते है "शब्दार्थो सहितं काव्यम्"। 'अनन्यलभ्य एवहि शब्दार्थः छठे 'इष्टार्थ' के सम्बन्ध में दण्डि ने कहा है "इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।" सप्तम से नवम 'अभिधार्थ, लक्षणार्थ एवं व्यंजनार्थ' का निरूपण न्याय ग्रन्थों एवं काव्यों

में बहुत ही विस्तार के साथ किया गया है। दश में 'संकेतार्थ' का प्रयोग ज्योतिषशास्त्रों, गणितशास्त्रों एवं काव्यशास्त्रों में द्रष्टव्य है। यह श्रीराम द्वयमंत्र इन दश प्रकार के अर्थों से अन्वित है ऐसा इसके 'दशार्थोन्वितम्' पद से ज्ञात होता है। इसी प्रकार 'दशार्थोन्वितम् पद से काव्य के दश अर्थ गुण (श्लेषः प्रसादः समता, समाधि, माधुर्य, ओजः पदसौकुमार्यम्। अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च, कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते 'भरत' श्लेषः प्रसादः श्लेष समता समाधि माधुर्य-सौकुमार्य-उदारताऽर्थ व्यक्तिकान्तयो बन्धगुणाः ॥ वामन ॥" "त एवार्थ गुणाः =वामन ॥ का बोध होता है। इसका थोड़ा संकेत यहाँ किया जाता है। श्रीराम द्वयमंत्र में राम के साथ चन्द्रपद का प्रयोग हुआ है। यह चन्द्र सम्बन्धी अनेक अर्थों का ज्ञापक है– सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पुर विधु बाढ़इ सोई ॥ प्रकटेउ जहाँ रघुपति शशि चारु। विश्व सुखद खल कमल तुषारू ॥ भगति सुतीय कल करण विभूषण जगहित हेतु विमल विधूपूषण ॥ रामचरित राकेश कर, सरिस सुखद सब काहु। सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विशेष बड़ लाहु ॥ रामचन्द्र मुख चन्द्रछवि, लोचन चारु चकोर। करत पान सादर सुखद, प्रेम प्रमोद न थोर ॥ हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकाशा। सूचित किरण मनोहर हासा ॥ भए मगन देखत मुख सेवा। जनु चकोर पूरण शशि लोभा ॥ सहज विराग मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द्र चकोरा ॥ इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। वरबश ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ॥ अधिक जिमि चन्द्र चकोरा ॥ इन्हहि विलोकत अति अनुरागा। वरवश ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। अधिक सनेह देह भए भोरी। सरद शशिहि जिमि चितव वकोरी ॥ 'आदि' इस प्रकार काव्यशास्त्र के दश अर्थ गुणों के परिप्रेक्ष्य में किये गये अर्थों का निरुपक यह आचार्योपदिष्ट दशार्थोन्वितम् पद है।

युक्तम्= युक्ति युक्त नियमबद्ध– "युक्तमौपयिकं लभ्यं भजमानाभिनीतवत्। न्यायं च त्रिषु षट्। अ० को० २।८।२४-२५।

तत्= श्रीरामद्वयमंत्र की विशेषता का बोधक सर्वनाम।

त्रिपदैः त्रिसंख्यावाचक है। पद का अर्थ चरण एवं वर्ण (अक्षर) समूह होता है। इस रामद्वय मंत्र के पूर्व मंत्र (खण्ड) में भी तीन पद– 'श्रीमते, २.-रामचन्द्राय ३. नमः' है सप्त पद से मैत्री (साप्तपदीनां सख्यम्- पा० ५।२।२२) होती है एवं त्रिपद से शरणागति। एक पग में दो चरण होते हैं। शरणागति के प्रथम पग का दो चरण 'अनुकूलस्य संकल्पः - प्रतिकूलस्य वर्जनम्' द्वितीय पग का दो चरण 'रक्षिष्यतीति विश्वासः - गोप्तृत्वं वरणम्, तृतीय पग का दो चरण 'आत्मनिक्षेप- कार्पण्य' होता है। इस प्रकार त्रिपग शरणागति का बोधक है। इसे ही वेद भगवान् कहते हैं 'इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरुथं स्वस्तये। छर्दिर्यच्छ मधवद्भयश्च मह्यं च गावया दिद्युमेभ्यः ॥ सा० २६६ ॥ अर्थात् हे परमेश्वर तीनो लोक अपने कल्याण के लिए आपके शरण में है आप सभी के लिए प्रकाशमय स्वधान (साकेत) प्रदान कीजिये ॥" परमेश्वर ने अपने तृतीय पद से बलि के शरीर को मापकर उसे अपना चरणाश्रित (शरणागति) किया था – "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूलस्य पांसुले ॥ त्रीणि पदा क्रिवचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ऋ० १।१२।१६-२१ ॥ इसका भी स्मारक आचार्योक्त "त्रिपदैः" पद हैं। क्योंकि यह द्वयमंत्र और ये वेद मंत्र दोनों ही परात्पर ब्रह्म के चरणों की उपासना और चरणाश्रित होने के विषय के ही प्रतिपादक होने से इनमें एक विषयता है। "यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्य अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति। य उ त्रिधातु पृथिवीमुताद्याम् एको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ऋ० १।१५४।२ ॥" भी इसी तत्व का ज्ञापक है। यदि त्रिपदैः पद से यहाँ तीन प्रकारक वाक्य का ही आग्रह किया जाए तो 'त्रिपदैः' के द्वारा– "चत्वारि वाक्यमरिमितानि पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रिणि

निहतानेंगयन्ति.पदानि तानि विदु ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रिणि निहितानेंगयन्ति पदानि तानि विदु ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रिणि निहितानेंगयान्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ऋ० १।१६४।४५ ॥" में प्रोक्त गुहास्थित पदों का संकेत है । एवं– 'तिस्त्रो वाच ईंरयाति प्र ब्रह्मिर्ऋतस्य थाति ब्रह्मणो मनीषाम् । गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वा वशानाः ॥ सा ५२५ ॥" का भी बोधक है ।

सुमते= सुमते का अर्थ है– हे सुन्दर बुद्धि वाले । यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह पद जिज्ञासु भी सुरसरानन्द जी के लिए प्रयुक्त हुआ है । तथापि अप्रत्यक्ष रूप से इसका संकेत मंत्र के अधिकारी के निरुपण में है । सुन्दर विचार (वाले) ही इस मंत्र के अधिकारी है । दुष्ट विचार वाले अश्रद्धालु व्यक्ति नहीं "तमुस्तोतारः पूर्व्यं यथा विद् ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन । अस्य जानन्तोनाम चिद् विवक्तान महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ऋ १।१५६।३॥"

पूर्वम् = यह पूर्वपद क्रम निरुपक है और रामद्वय मंत्र के पूर्व वाक्य (श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये) के लिए प्रयुक्त हुआ है । यह पूर्वपद आगे कहे जाने वाले उत्तर पद का पूर्वापर आनुपूर्वी सम्बन्ध बोधक परस्परापेक्ष है । उत्तर पद के साथ संगति, सामंजस, समन्वयं एवं एकव्यक्तिद्योतन के लिए यह पूर्वम् पद यहाँ व्यवहृत हुआ है । पुनः 'पूर्वम्' पद 'उत्तर' पद के साथ मिलकर द्वयमंत्र का वाक्य विभाजन और द्विविभागत्व स्थापित करता है। न्यायशास्त्र में पूर्व और उत्तर पद क्रमनिर्देश के अतिरिक्त प्रश्नोत्तर निरुपक भी है ।

शुभस्य = शुभ का अर्थ परम कल्याण का या मोक्ष है– "श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम् । अ० को० १।४।२५ ।" शुभस्य का अर्थ हुआ कल्याण (मोक्ष) का ।

आस्पदम् = आस्पदं का अर्थ है स्थान देने वाला प्रतिष्ठा कृत्यमास्पदम् अ० को० ३।३।९४ ।" शुभस्यास्पदम् का अर्थ हुआ मोक्ष पद देने वाला ।

वाक्यम् = अर्थ प्रतिपादन द्वारा अन्य पदों अथवा अन्य अर्थों के विषय में श्रोता की आकांक्षा को उत्पन्न करने वाले और प्रतीयमान स्पष्ट रूप से परस्पर अन्वयोग अर्थ के प्रतिपादक सन्निधियुक्त पदों का समूह वाक्य कहलाता है – "अर्थ प्रतिपादन द्वारा श्रोतुः पदान्तर विषयामर्थान्तर विषयां वाकाङ्क्षा जनयतां प्रतीयमान परस्परान्वययोग्यार्थप्रतिपादकानां सन्निहितानां पदानां समूहो वाक्यम् । त० भा० ॥"

पंचदशाक्षरम्= पंचदशाक्षरम् का अर्थ पन्द्रह अक्षर- १. श्री २. मत् ३. रा ४. म ५.चं ६.द्र ७.च ८. र ९. णौ १०. श ११.र १२. णं १३प्र १४प १५द्ये ।" यदि 'वाक्यं पंचदशाक्षरम्' का विग्रह 'वाक्य पंच' एवं 'दशाक्षरम्' किया जाए तो वाक्यं पंच का अर्थ हुआ - '१ श्री शरणं प्रपद्ये, २. मत् शरणं प्रपद्ये, ३. राम शरणं प्रपद्ये, ४. चन्द्रशरणं प्रपद्ये, ५. चरणौ शरणं प्रपद्ये, ।" एवं दशाक्षरम् का अर्थ इस वाक्य में प्रयुक्त पन्द्रह अक्षरों में दश अक्षर क्योंकि इसमें म, र, और ण दो-दो बार आये हैं । अतः वास्तविक अक्षरों की संख्या दश ही है ।

तद्= यह सर्वनाम श्री रामद्वयमंत्र के लिए प्रयुक्त है ।

अनु= अनु का अर्थ पश्चात्, सादृश्य, लक्षण, तत्त्वाख्यान, भाग, वीप्सा, लम्बाई और वितर्क होता हैं । यहाँ अनुपद पश्चात् के साथ ही पूर्व वाक्य से सादृश्च के अर्थ में भी प्रयुक्त है ।

दिग्वर्णात्मकम् = "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः । अ० को० १।३।१ । दिक् का सांकेतिक अर्थ दश है क्योंकि दिशायें दश प्रसिद्ध हैं । इस रामद्वयमंत्र का उत्तर वाक्य दश अक्षरों वाला (१श्री २म ३ते

२म ३ते ४रा ५म ६चं ७द्रा ८य ९न १०मः) है। उक्त कोशवचनानुसार यदि दिक् को ककुभ (ककुभोर्जुन) धवल का वाचक माना जाए तो दिग्वर्णात्मकम् का अर्थ होगा धवल वर्ण (अक्षर) अर्थात् भास्कर वर्ण वाला, यदि काष्ठा (कार्षोत्कर्षे स्थितौ) का वाचक माना जाए तो अर्थ होगा उत्कर्ष वृद्धि एवं मर्यादा देनेवाला, यदि आशा का वाचक माना जाए तो अर्थ होगा आशा मनोरथ पूर्ण करनेवाला, यदि हरित का वाचक माना जाए तो अर्थ होगा हरियाली (खुशीयाली) लानेवाला या हरि (श्रीराम) को प्राप्त करनेवाला तु— यहाँ भी 'तु' पद पादपूरण के अतिरिक्त अर्थावधारण के लिए प्रयुक्त हुआ है।

उत्तरम्— उत्तर शब्द का अर्थ उत्तरदिशा, श्रेष्ठ, प्रतिवाक्य (जबाव), पश्चात् आदि होता है। यह उत्तर पद द्वितीय वाक्य— 'श्रीमते रामचन्द्राय नमः' के लिए प्रयुक्त हुआ है जो इसका सम्बन्ध पूर्ववाक्य श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये, के साथ प्रतिपादित करता है तथा दोनों वाक्यों के आनुपूर्वी को निरुपित करता है । प्रथम वाक्य 'श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये, संकल्प (संकल्पकर्ममानसम्) वाक्य है और द्वितीय वाक्य केवल मन अथवा मन और वचन का ही व्यापार है, जबकि द्वितीय वाक्य, मन, वचन और शरीर-इन तीनों का व्यापार। इस प्रकार पूर्व वाक्य में संकल्प बताया गया है और उत्तर वाक्य में उस संकल्प का कर्म प्रथम सिद्धान्त है और दूसरा व्यवहार । अतः दोनों में नित्य साहचर्य्य, अपृथक सिद्धि सम्बन्ध (व्याप्ति) परस्परापेक्षित्व, पूरकत्व एवं एकत्व ज्ञापन के लिए यहाँ 'पूर्व' एवं 'उत्तर' पदों का व्यवहार हुआ है। दोनों ही एक ही सूत्र में ग्रथित है तथा दोनों ही में एकतानता और एक वाक्यता है। दोनो हीएक ही मंत्र के अंग हैं। सामवेद के पूर्वार्चिक एवं उत्तरार्चिक भागों के समान यहाँ पूर्व और उत्तर पद का प्रयोग है। जिस प्रकार सामवेद के पूर्वार्चिक सिद्धान्त भाग (दैवतकाण्ड) अर्थात् ज्ञानात्मक या उत्तरार्चिक क्रिया भाग (सूक्त) अर्थात् उपासनात्मक या कर्मोपयोग है, उसी प्रकार श्री रामद्वयमंत्र को भी पूर्वभाग संकल्प (ज्ञानात्मक) तथा उत्तरभाग क्रिया (कर्म और उपासना) परक हैं। जिस प्रकार पूर्वमीमांसा में ज्ञान का प्रतिपादन है उसी प्रकार पूर्ववाक्य में ज्ञान एवं उत्तर अर्थ का आग्रह करने पर पूर्व संकल्प वाक्य मनोद्भूत प्रश्नरूप एवं उत्तर क्रिया वाक्य उसका उत्तर रूपसिद्ध है। यदि पूर्व और पदों से दिशा अर्थ का भी आग्रह किया जाए तो पूर्व तथा उत्तर दिशाओं की सन्धिस्थान का नाम ईशान (दिशा) है जो रामद्वय मंत्र के पूर्ण एवं उत्तरवाक्यों की सन्धि (योग से "ईशान मस्यजगतः सा० ६८०" का प्रतिपादक होने से वह भी सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार श्रीरामद्वयमंत्र अनेक रहस्यों का समुद्र है। इसका सतत् मनन करते रहना चाहिए ।

इस लघुलेख में इस मंत्र पर प्रकाश डालना 'खोजहि भानु दीप कर लिन्हें, के समान हास्यास्पद है अस्तु 'थोड़ेहि में जानि अहि सयाने' कहकर विश्राम लेता हूं।

★★★

सगुण निर्गुण तत्त्व विवेक

– श्री वैदेहीकान्त शरण

ब्रह्म के सम्बन्ध में जितने भी प्रश्न हैं उनमें सगुण निर्गुण का प्रश्न सबसे प्रमुख है। इसीलिए श्री रामचरितमानस में पार्वती सर्वप्रथम इसी विषय का प्रश्न पूछती हैं – "प्रथम सों कारण कहहु विचारी। निर्गुण ब्रह्म सगुण वपु धारी ॥" और शंकर जी सगुण विरोधियों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं "अज्ञ अकोविद अंध अभागी। कोई विषय मुकुर मन लागी। लंपट कपटी कुटिल विशेषी। सपनेहु संत सभा नहि देखी। कहहि ते वेद असंभव बानी। जिनके सूझ लाभु नहिं हानी। मुकुर मलिन और नयन विहीना। राम रुप देखहिं किमि दीना॥ जिन्ह के अगुण व सगुण विवेका। जल्पहि कल्पित वचन अनेका। हरिमाया वश जगतभ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं ॥ पुनः सगुण निर्गुण के सम्बन्ध में सिद्धान्त मत देते हुए कहते हैं– "अगुणहि सगुणहि नहि कछु भेदा। गावहि मुनि पुराण बुध वेदा। अगुण अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेमवश सगुण सो होई। जोगुण रहित सगुण सोई कैसे। जलु हिम उपल विलग नहिं जैसे ॥ राम सच्चिदानंद दिनेशा। नहिं तहँ मोह निशा लवलेशा ॥" पुनः उपसंहार रूप में उत्तरकांड में कहते हैं– "निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण जान नहिं कोई। सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होई ॥"

अतः निर्गुण सगुण विवेक होना आवश्यक विषय वस्तु है। निर्गुण सगुण का तात्त्विक (प्रमाणोपपन्नं स्वरूपं तत्त्वं- पदपंचिका) विवेक के लिए सर्वप्रथम सगुण निर्गुण पदों का अर्थ समझ लेना अत्यावश्यक है। इस क्रम में सर्वप्रथम गुण का अर्थ गुण की परिभाषा और तब सगुण निर्गुण का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

गुण शब्द का अर्थ धनुष की डोरी, द्रव्याश्रित २४ गुण (रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्वापरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुखदुःखेच्छाद्वेष प्रयत्न धर्माधर्म संस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणाः - त० सं०) सत्त्व रज तम (सांख्य) तीन गुण साहित्य के १० गुण (श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पद सौकुमार्यम्। अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणादशैते। भरत) औदार्यादि (मनोवैज्ञानिक) गुण इन्द्रियवाचक आदि होता है – "मौर्व्यां द्रव्याश्रिते रुत्व शौर्य सन्ध्यादिकैर्गुणः अ० को ३।३।४७ " "गुणो मौर्व्यामप्रधाने रूपादौ सूद इन्द्रिये। त्याग शौर्यादि सत्त्वादि सन्ध्याद्यावृत्तिरज्जुषु । मे० ।' व्याकरण में अ० ए० ओ को गुण कहा गया है– "अदेङ् गुणः पा० १।१।४५ पुनः अ इ मिलकर ए, अ ऊ मिलकर ओ आदि बन जाने के सन्धि को भी गुण संज्ञा हैं – आद् गुणः पा० ६।१।७७ गुण की परिभाषा के सम्बन्ध में 'गुण आमन्त्रणे गुणयति (चुरा०) धातु पाठ ही लक्षण कहा जायेगा। परन्तु न्याय वैशेषिक के अनुसार "द्रव्य कर्म भिन्नत्वे सति सामान्यवत्त्वम् " संक्षेप में द्रव्याश्रितत्त्व लक्षण है। इनके अनुसार परमात्मा के आठ गुण हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, ईच्छा, कृति (प्रयत्न) और जीवात्मा में उसके अतिरिक्त सुख, दुःख, द्वेष, धर्माधर्म, संस्कार ये छः गुण और हैं। जो परमात्मा में नहीं हैं। व्याकरण का गुण 'अ' अक्षराणामकारोऽस्मि–गीता' एवं 'अकारो वासुदेवः स्यात् (एका० को०) के अनुसार परमात्मा में है।

गुण के सम्बन्ध में साहित्य का लक्षण भावात्मक (सगुणत्व) ही नहीं अपितु अभावात्मक (दोषराहित्य) भी है- "महान् निर्दोषता गुणः।' इस प्रकार साहित्य के अनुसार ब्रह्म का गुण होना (सगुणत्व) ही नहीं है अपितु ब्रह्म का निर्दोष (दुष्ट गुण रहित) होना भी गुण है। अतः हेय गुण साहित्य (निर्गुणत्व) भी गुण (सगुणत्व) है।

निर्गुण शब्द में दो पद हैं निर्+गुण। निर् का अर्थ निश्चय और निषेध दोनों होता है– "निर्निश्चयनिषेधयोः अ० को० ३।३।२५३ ॥ अतः निर्गुण पद का अर्थ निश्चित (नित्य) गुण वाला भी है। अचिन्त्यभेदाभेदवादी निम्बार्क दर्शन निर्गुण का लक्षण गुणातीतो निर्गुणः कहते हैं। कुछ लोग "निर्गुतोगुणः निर्गुणः" कहते हैं। तो कुछ लोक अविकृतो गुणः निर्गुणः कहते हैं कुछ लोग निखिल– हेयप्रयत्नी को गुणो निर्गुणः कहते हैं। कुछ लोग अगमो– गुणः निर्गुणः कहते हैं जो सभी निर्गुण के पद निर्निश्चय अर्थ के अनुसार सम्पुष्ट है।

सगुण पद में भी दो पद है स+गुण। 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भाव पश्चाद्ययानुपूर्व्ययौगपद्य सादृश्य सम्पतिसाकल्यान्तवचनेषु- पा० २।१।३ के अनुसार १ यौगपद्य (सगुणः = गुणेन युगपत्) २ सादृश्च (सगुणः = गुणस्य सदृशः) ३ सम्पत्ति (सगुणः = गुणानां सम्पत्तिः) ४ साकल्य (सगुणः= गुणमपि अपरित्यज्य) ५ अन्त (सगुणः= गुणपर्यन्तम्) ये अर्थ होते हैं। ब्रह्म के सम्बन्ध में शंकराचार्य जी स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म के विषय में सविशेष (सगुण) और निर्विशेष (निर्गुण) दोनों प्रकार की श्रुतियां हैं "सन्ति उभयलिङ्गाः श्रुतियो ब्रह्मविषयाः। सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरस इत्येवमाद्याः सविशेषलिङ्गाः, अस्थूलमनणु अह्रस्वम् अदीर्घम् इत्येवमाद्यश्च निर्विशेषलिङ्गाः!

श्रुति में ब्रह्म का निर्विशेष और सविशेष दोनों रूपों का प्रतिपादन तो है– यत्तदद्रेश्यम् ग्राह्यमगोत्रमवणरचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः। मु० १।१।६ ॥ परन्तु श्रुति ने निर्विशेष वाचक प्रथम वाक्य (यत्तदद्रेश्यम्०) को नपुंसकलिंग में एवं सविशेष वाचक द्वितीय वाक्य (नित्यं विभुं०) को पुलिंग में प्रतिपादित कर यह अति स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्म का अचित् शरीर ही निर्विशेष है और सच्चिदानन्द परमेश्वर सविशेष हैं क्योंकि निर्विशेष नपुंसक लिंग और सविशेष पुलिंग में निरुपित है। इस प्रकार ब्रह्म का शरीर (सपर्य्यगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् पापविद्धम्) नपुंसक लिंग में तथा ब्रह्म का रूप (कविर्मनीषी परिभूः स्वयंम्भूः यथा तथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः। शु० य० ४०। ८ ॥) पुल्लिंग में निरुपित किया है।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आचार्य जी के अनुसार ब्रह्म का गुण सामान्य गुण नहीं है वह प्राकृतिक (भौतिक) गुणों से सर्वथा विलक्षण है। ज० गु० रामानन्दाचार्यजी ने "निर्गता निकृष्टाः सत्त्वादयः प्राकृतागुणाः यस्मात्तन्निर्गुणमिति व्युत्यत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम्। तथैव च सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृतागुणाः। सशुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु ॥ योऽसौ निर्गुणः प्रोक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः। प्राकृतैर्हेयसत्वाद्यैर्गुणैहीनत्वमुच्यते ॥ वि० पु०। इत्यादौ प्रतिपादित्वात्प्राकृतसत्वादिगुणनिषिद्धे सति ब्रह्मणोदिव्यगुणाभयत्वसिद्धेः। तादृशदिव्यगुणानान्च "परास्य शक्तिर्विधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानवलक्रिया च (श्वे० ६।१८) इत्यादौ स्वभाविकत्वाभिधानात्प्राकृतहेयगुणरहितत्वेन निर्गुणत्वं दिव्यगुणवत्वेन च सगुणत्वमित्युभयथैकस्यैव ब्रह्मणोनिर्देश इति न किन्चिदनुपपन्नम् (आनन्दभाष्य १।२) इत्यादि रूप से निरुपित किया है। तथैव इसे अद्भुत गुण और दिव्यगुण कहा है। अद्भुत पद से विलक्षणत्व एव दिव्य पद से नित्यत्व और अलौकिकत्व निरुपित किया है – "श्रीमन्तं श्रुतिवेद्यमद्भुतगुणग्रामान्यरत्नाकरम् श्री वै० म० भा० श्लोक-१।१ चित्रं चाखिलमदभुतं शुभगुणा श्लो० १।२ श्रीमान् दिव्यगुणाब्धिरोपनिषदोहेतुः शरण्यः प्रभुः श्री

रामानुजाचार्यजी ने निखिलहेयप्रयत्नीककल्याणैकतानः स्वेतरसमस्तवस्तुविलक्षणानन्तज्ञानानन्दैकस्वरूपः, स्वभाविकानवधिकाशय ज्ञान बलैश्वर्य शक्ति तेजः प्रभृत्यसंख्येय कल्याण गुणमहोदधि कहा है जिसमें उनके गुण में १ अखिलहेयप्रयत्नीकत्व २स्वेतर विलक्षणत्व ३ स्वाभाविकत्व ४ कुल्याणत्व ये ४ विशेषण हैं वा लक्षण हैं। श्री शंकराचार्यजी ने इसे सदसद्विलक्षण अनिवर्चनीय कहा है। श्री निम्बार्काचार्य के मत में इसे अचिन्त्य (१. अपरिमितमहिमत्वादचिन्त्यत्वम् २. अचिन्त्यं तर्कासह यज्बानँ ३. दुर्घटघटत्वं ह्यचिन्त्यत्वम् कहा है और वल्लभाचार्य ने इसे अविकृत (अविकृतपरिणामीत्वं अविकृत्वम्) कहा है। ये सभी विपर्यय बोधक पद विलक्षण अनिर्वचनीय, अचिन्त्य, अविकृत, विपर्यय बोधक निर्गुण पद के प्रकार के प्रकाशक हैं। साधारणतया विपर्यय के तीन अर्थ होते हैं – १. अभाव २. अन्यथाभाव ३. वैपरीत्य यहाँ अन्तिम दोनो में ही तात्पर्य संभव होने से यहाँ निर्गुण पद से अन्यथा गुण अथवा विपरीत (लौकिक गुण विरुद्ध) गुण सिद्ध होता है।

शास्त्रो में ब्रह्म के गुण के सम्बन्ध में कहा गया है– "जगतः कारणत्वं च सगुणत्वं स्वभावतः त्रिपाद्विभूतियुक्तत्वं ब्रह्मणों रूपमुच्यते ॥ "प्राप्यं सर्वं गुणार्णवो निखिलभृत्, रक्षैक दीक्षो महान् नित्यश्चेतन ईश्वरः सकरुणः सर्वज्ञता भूमिराट्। औदार्यादिगुणावलिश्रितऋतं सत्यं च सर्वाश्रयः, श्रीरामो हि परात्परः सुगतिभिः सेव्यः सदा सर्वगः ॥"

भगवान् के गुणों का निरूपण ज०ग० श्री मधुराचार्य कृत भगवद् गुण दर्पण में किया गया है। यहाँ भगवान् का गुण लेख का विषय नहीं है, प्रत्युत निर्गुण सगुण तत्त्व की विवेचना लेख का विषय है। अतः भगवद् गुणो की चर्चा छोड़ निर्गुण सगुण की विवेचना करता हूं। निर्गुण पद गुणों का अत्यन्ताभाव शास्त्रों को इष्ट नहीं है। क्योंकि सर्वत्र निर्गुणपद के साथ ही सगुण पद का भी प्रयोग होता है। अतः निर्गणपद का अर्थ नित्यगुण मानने पर ही निर्गुण सगुण में अन्वय और सामंजस्य स्थापित हो सकता है। अन्यथा नहीं किंच निर्गुण का अर्थ अत्यन्त गुणाभाव मानने पर ब्रह्म की सत्ता ही स्थापित हो जाएगी। गुण रहित कोई भी वस्तु नहीं है। गौतम ने कहा है "व्यक्तयाकृति जातयस्तु पदार्थाः– न्या० सू० २।२।६६।" निर्गुण मानने पर निरालम्ब की उपासना भी सम्भव नहीं है – "रूपरेख गुन जाति जुगुति विनु, निरालम्ब मन चकृत धावे। सब विधि अगम विचारहि तातें 'सूर' सगुण लीला पद गावै।

गुण के अत्यन्ताभाव के अर्थ में निर्गुण की कहीं सत्ता नहीं है। अतः गोपियाँ उद्धव से प्रश्न कर निरुत्तर कर देती है – "निर्गुण कौन देश के वासी ? मधुकर, हँसि समुझाय सौंह, बुझति सांच न हांसी। को है जनक जननी को कहियत कौन नारि को दासी। कैसो बरन वेश हैं, कैसो केहि रस के अभिलाषी ? पावैगो पुनि कियो आपनो ओरे कहैंगे गांसी। सुनत सुनत मौन है रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सवै मतिं नाशी ॥" यह प्रश्न सुनते ही उद्धव जी मौन होकर ठगी सी रह गये। उनका सब मिथ्या ज्ञान नष्ट हो गया।

भ्रमर-गीतकार नन्ददास जी की गोपियां इसी प्रकार उद्धव से प्रश्न करती हैं– जो उनके गुण नाहिं और गुण भये कहाँ तें। बीज बिना तरु जमै मोहि तुमं कहो कहाँ ते ?' प्रह्लाद जी ने भगवान् से कहा है– "रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे, बीजांकुराविव न चान्यदरूपकस्य। युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वा योगेन वह्निमिवदारुषु नान्यतः स्यात् ॥ श्री मद्भा०। ब्रह्म ही जगत् का कारण (बीज) है। यदि कारण (ब्रह्म) में गुण नहीं हो तो कार्य (जगत्) में गुण कहाँ से आवेगा। क्योंकि कारण का गुण ही कार्य में अनुगत होता है। कारणाभावे कार्याभावः – वै० सू० कहा गया है। अतः गोपियों का उक्त तात्विक प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है। जगत् में ब्रह्म के गुणो के प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव का कारण तो प्रह्लाद जी ने ही बतला दिया है– 'जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत वीजम् ॥

श्रीमद्भ० ॥ अतएव अनुमान एवं ध्यान (तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः – मु० ३।१।८ ॥' कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद् आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् । का० ४।१। तद्विष्णोः परम् पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । ऋ० १।२।५) द्वारा ही ब्रह्म के गुण एवं रूपों को देख सकते हैं। वेदों में ब्रह्म को बृहद् (महान्) युवा (श्रेष्ठ) कुमार (सुन्दर) शरीर वाला कहा है– 'बृहच्छरीरो विमिभाग ऋक्वविभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवन् ॥ऋ १।१५५ ।६ ।' यह उनके रूप की विशेषता– 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतवायाः । माघ । का द्योतक है।

परात्पर हम राम के अनन्त गुण हैं– 'राम अनन्त अनन्त गुण अमित कथा विस्तार ।' कहा है– असित गिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे, सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वीम् । लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं, तदपि तव गुणानामीशपारं न याति ॥ अतः ब्रह्म सगुण है । निर्गुण का तात्पर्य लौकिक गुणों से एवं सगुण का तात्पर्य अलौकिक (दिव्य) गुणो से है ।

श्री बिन्दु जी ने कहा है– "होगा वह निराकार निर्गुण निर्लेप निरंजन भी होगा । हम को दिखलाई पड़ता है, सौवार हमारी आखों में ॥" अतः निर्गुण का अर्थ गुणाभाव नहीं है । प्रत्युत लौकिक गुण विक्षण "नित्यगुण" है । ब्रह्म नित्यगुण वाला (निर्गुण) और सत् गुण वाला (सगुण) है ।

सगुण और अगुण पद गुण का विरोधी नहीं है । गुण का संयोग सगुण और गुण का विभाग (पार्थक्य) अगुण पद है । अन्यत्र गुण और गुणी में पार्थक्य तथा आधाराधेय सम्बन्ध है, परन्तु ब्रह्म में इसके विपरीत तादात्म्य । दृष्टान्त के लिए ज्ञान गुण को लें । ज्ञानाधिकरणमात्मा के अनुसार ज्ञान गुण का आत्मा द्रव्य के साथ आधाराधेय भाव सम्बन्ध है । परन्तु 'समवायेन नित्यज्ञानवत्वम् परमात्मत्वम्' तथा 'समवायेन जन्यज्ञानत्वं जीवत्वम् भेद से जीव ज्ञान युक्त है और परमात्मा ज्ञानरूप है । अतः यहाँ जीवात्मा ज्ञानयुक्त (सगुण) दोनो स्थितियों में रहता है । परन्तु परमात्मा ज्ञानयुक्त सगुण या ज्ञानरहित अगुण नहीं है । या ज्ञान रहति (अगुण) अपितु ज्ञानरूप (गुण) ही है । अतः वह गुण रूप से ही अभिहित है – 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इसी प्रकार रस को लें 'रसना ग्राह्यो गुणो रसः' रसना से जिसका ग्रहण किया जाए वह रस है और 'पृथिवी जल वृत्तिः' के अनुसार इसका अधिकरण पृथिवी और जल है । इस प्रकार यहाँ गुण और गुणी में आधाराधेय भाव है । परन्तु ब्रम रस युक्त या रस रहित नहीं अपितु रस रूप हैं – "रसो वै सः" अतः वह रस के प्रकरण में भी न तो रस युकत (सगुण) न रस रहित (अगुण) है, प्रत्युत रस रूप (गुण) ही है । इस प्रकार ब्रह्म का गुण स्वतंत्र होने (द्रव्याश्रित नहीं होने गुण स्वरूप होने से सगुण अगुण से भिन्न विशुद्ध गुण है और ब्रह्म सगुण अगुण भिन्न विशुद्ध गुण है । जो निश्चित (नित्य) होने से निर्गुण कहा जाता है उसके गुण का लक्षण द्रव्याश्रितत्त्व समाप्त हो जाने से वह द्रव्य रूप (स्वाश्रित स्वतंत्र) है । अतः इसमें गुणत्वाभाव (द्रव्याश्रयित्वाभाव) के कारण इसे निर्गुण का गुण निषेधपरक अर्थ भी मान लिया जाता है ।

गुण को सभी नहीं जान सकते और न समझ सकते हैं– 'गुणीगुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः' । ब्रह्म का सबसे बड़ा गुण प्रेम कहा गया है और उसे इस प्रेम (गुण) रूप ही मानकर कहा गया है– 'प्रेम ही ईश्वर है ।' यहाँ भी प्रेम गुण न होकर द्रव्य रूप है अतः ईश्वर इस अर्थ में निर्गुण है । ब्रह्म का गुण त्रिगुणातीत (अप्राकृतिक) होने से वह निर्गुण है ।

★★★

रामानंद सम्प्रदाय में दास्यभाव की अवधारणा

– स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य
श्री कोसलेन्द्र मठ अहमदाबाद- १

शास्त्रों का अविचल सिद्धान्त है कि मानवजीवन का चरम लक्ष्य है– सायुज्य मुक्ति। यह भक्ति के बिना असम्भव है। "रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निश्रेयसम्"। जगद्गुरु श्री सानन्दाचार्य जी ने इस प्रकार 'एवं' शब्द का प्रयोग कर शुष्क ज्ञानादि अन्य साधनों को भक्ति के अंग के रूप में शास्त्रों का निचोड़ दर्शाया है। भक्ति के नौ भेद प्रधानतया शास्त्रों में प्रदर्शित हैं–

"प्रधानंतया कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (भा० ७।५।२३)

प्रकृत श्लोंक की व्याख्याओं में दास्यं कर्मार्पणम्, दास्यं- तद्यासोऽस्मीति अभिमानः, दास्ये- स्वस्यदासत्वभावना, दास्यं– जन्मान्तरसहस्त्रेषु यस्यस्मान्मति- रीदृशी। दासोऽहं वासुदेवस्य सर्वान् तददासत्वे भावनमातदनुकुलाचरणकृतस्य कर्मणेस्तस्मिन् अर्पणं च इत्यादि विविधरूप से निरुपण कर अन्यापेक्षया दास्यभाव को उत्कृष्ट प्रदर्शित किया गया है। संकलित निष्कर्ष यह हुआ कि दास्यभाव ही सख्य आदि सभी भावों का प्राण है। साधक के हृदय में जब-तक दास्य भाव पोषक सर्वेश श्री रामचरण में स्वात्म समर्पण की पूर्ण भावना जागरित नहीं होती है, श्रवणादि की पूर्ण फलदात्मक नहीं सिद्ध होते हैं। कारण कि दास्य सभी का प्राण है। प्राण के बिना निर्जीव होना स्वाभाविक है। श्रीचरणों के अनन्यानुरागी दासों की प्रभु से यही प्रार्थना है कि–

अहं हरे तव पादैकमूल

दासानुदासो भवितास्मि भूयः।

मनः स्मरेताशुपतेर्गुणांस्ते

गृणीत वाक कर्म करोतु कायः॥ (भा०६।११।२४)

आचार्य-चरण से दीयमान किसी भी श्रेष्ठ पदस्थानादि की कामना को सर्वतोभाव से त्यागकर कर मात्र अभिलाषा व्यक्त करता है कि आपके श्रीचरण सेवक रहना दास के भी दास बनकर स्वीकार है, पर इतर कोई पदस्थानादि नहीं। दास्य भक्ति की महिम ही है कि श्रीहरि सान्निध्य छोड़ अन्यों की आकांक्षा ही नहीं। कारणादि अन्य में यह रस ही नहीं है, जो दास्यभाव में है। श्री वहमी राजा, जो दास्यभाव के प्रधाननिदर्शनभूत हैं कहते हैं " स्वयंमुपेन्द्रणात्मान- मयाचता ऽऽ त्मानश्चाशिषो नो एव तद् दास्यमतिगम्भीर-वयसः कालस्य

मन्वन्तर परिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥ यस्यानुसास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु रवपित्र्यं यदुताकुतोकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परामिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥"

(भाग० ५।२४।२४-२५)

अर्थात् स्वयं उपेन्द्र भगवान् ने मुझसे भिक्षा मांगी, तो मैं अपना सर्वस्व समर्पण क्यों न कर दूँ ? कारण भगवान् की परमानन्दमयी सर्वोत्कृष्ट दास्य के समक्ष एक मन्वन्तर तक रहने वाला शीघ्र विनाशी त्रिलोक की राज्य भोग की क्या गणना है ? अतः उन परेश प्रभु की दास्यता ही भक्त प्रवर मेरे पितामह श्री प्रहलाद जी ने मांगी। जब उनके पिता हिरण्यकशिपु के मरने पर भगवान् का दिया हुआ सर्वतोभाव से भयवर्जित राज्य को स्वीकार न करते हुए यही यांचा की कि हे- सर्वाभयप्रद। सर्वशरण्य !! हे नाथ !!! मैं आयु, श्री, विभव तथा इन्द्रियारामादि प्रदायक ब्रह्मलोक तक का भी ऐश्वर्य नहीं चाहता। क्योंकि ये सब श्री चरणाराधन के अवरोधक हैं। पर सर्वाशाप्रपूरक प्रभो ! अविवेकी पुरुषों की विषयों में जैसी अनपायिनी भक्ति होती है, उसी प्रकार श्री चरणों में सर्वदा मेरी दास्यासक्ति बनी रहे, यही मेरी सर्व मनोरथ पूरक आप से यांचा है–

"या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
आयुः श्रियं विभवेन्द्रियमाविरंच्यात्।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण ॥"

परेश के श्रीचरणों में जिनकी दृढ़निष्ठा होकर दास्यरूपता में सम्पृक्त हो चुके हैं, उनकी दृष्टि में सर्वेश श्री रामचरण-शरण सिवा सर्व पदार्थ या भोगादि यत्किंचितकर हैं। अभियुक्तों की उक्ति है –

"दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत्।
आत्मदास्यं हरेः स्वाम्यं स्वभावं च सदास्मर ॥
ददाति परमां मुक्तिं सद्यो मुक्तिं विशेषतः।
दास्येमेव परं धर्मं दास्यमेव परंहितम्।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथानिरये व्रजेत् ॥
सोऽहं सोऽहं परित्यज्य दासोऽहं यो वदेत् सदा।
वैष्णवः स जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ॥
पभुक्त स्रग्गन्धपासोऽलंकारचर्चितः।
अच्छिष्ट भोजिनो दासा तव मायां जपेमहि ॥"

अतः एक पादविभूतिस्थ भोगों का अनादरपूर्वक त्रिपाद विभूति सम्प्राप्ति रूप भगवत्कैंकर्य-दास्यता ही मानव जीवन का तुरीय लक्ष्य है। उसी के लिए सर्वदा सजग प्रयत्न प्राप्त होकर मुक्ति का साधन बनता है। जगदाचार्य पाद श्री ने गीता २-१२ के व्याख्यान-प्रसंग में—

"मुक्तौ हेतुस्तु भक्त्यपरपर्यायं तैलधारावद् अविच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तं च साधन दीपिकायामाचार्यवर्यैर्जगदगुरु श्री गंगाधराचार्यैः "रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः, सा च विवेकादिक सप्तकात्" इति । ऊचुश्च तथैव भगवन्तः श्री देवानन्दाचार्य चरणा अपि "त्वदीया स्मृतिस्तारिकामृत्युसिन्धोस्तथा विस्मृतिः पातिका तत्र चैवापरं योगिनां हार्द्रमालम्बनं त्वां श्रये राघवं सच्चिदानन्द-रूपम् ॥"

कहा है। संक्षिप्त तात्पर्य यह है कि - मुक्ति में कारण तो भक्ति है। अपर नाम जिसका ऐसा जो तेल के धारा के समान अविच्छिन्न भगवत्स्मृति सन्तान रूपा अनन्या भक्ति है — दास्य भावापन्नता, वही सायुज्य मुक्ति में कारण है। केवल ज्ञान या क्रिया मात्र मोक्ष में कारण नहीं है। इसलिए नीताचार्य जी ने कहा है —

"नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।

शक्यमेवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

भक्तया त्वनन्यया लभ्यः "

अर्थात् मैं वेदाध्ययन, दान, तपस्या आदि से प्राप्त नहीं होता हूँ, किन्तु अनन्या-दास्य स्वरूरूपाभक्ति से ही प्राप्त होता हूं। अतः भगवत्कैंकर्य प्राप्ति रूप मोक्ष में अनन्या भक्ति ही कारण है, तो यह मोक्ष का कारण भक्ति जिस जीव को भगवत्कृपा प्राप्त हो गयी, वह मुक्त हो गया, जिसे प्राप्त होगी, वह भविष्य में मुक्त होगा। साधन दीपिका नामक ग्रन्थ में आचार्यवर्य जगद्गुरु श्री गंगा धराचार्य जी ने इसी प्रकार से भगवद्भक्ति को मोक्ष-कारण रूप से निर्वचन किया है। परमात्मा पर ब्रह्म श्री रामचन्द्रजी की जो अनन्याभक्ति है, उसी से जोवों को मोक्ष की प्राप्ति होती है, ध्रुवास्मृति ही भक्ति है। वह ध्रुवा-स्मृति-रूपा भक्ति विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण अनवसाद तथा अनुद्धर्ष इन सात कारणों से प्राप्त होती है। (इसका विशेष विवेचन ज० गु० श्रीगंगाधराचार्य प्रणीत साधन दीपिका की टीका में किया हूँ, अतः विशेषार्थी वहीं देखें)

इसी प्रकार जगदाचार्य श्री देवनन्दाचार्य जी ने भी कहा है — "हे भगवन् श्रीराम! दास्य-भाव से आपका जो स्मरण है, वह जीवों को मृत्यु-सागर से ऊद्धार करने वाला है, और आपका जो विस्मरण है, वह मृत्युरूप समुद्र में गिराने वाला है। अतः योगिजन के हृदय के आलम्बक- योगीश्वरों के हृदय-निवासी सर्वेश्वर श्री राघवेन्द्र सरकार के आश्रम में — श्रीचरणों में अपने को सर्वतोभाव से आत्म-सर्मपण - दास्यभाव से समर्पित करता हूं।" यहाँ आचार्य-चरण ने अन्वय व्यतिरेक द्वारा दास्य भगवद्भक्ति को ही प्रधानतया मोक्षकारणता के रूप में अभिव्यक्त किया है। अतः —

"सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेर्वात्सल्यजलधेर्भगवतः श्रीरामस्य स्वभाव एवैष यत् स प्रार्थित एव सर्वकरोतीत्युपायत्व प्रार्थनाऽवश्यं कर्त्तव्येत्यपि ध्येयम्" (गी० आ० भा० १८।६६) इस आचार्य वचन प्रामाण्यानुसार मुमुक्षुजीवों को अत्यन्त कारूण्य-भाव से असहाय होकर परेश श्री रामचन्द्र जी की प्रार्थना करनी चाहिए। तभी श्रीरामचन्द्र जी

की कृपादृष्टि होती है, जो साधक को सायुंज्य देती है। निम्नांकित अभियुक्त वचन भी इसी बात की पुष्टि करते हैं —

"न हि रामात्परं किन्चित् त्राणकर्त्तारमीक्षते।

तदा जीवो भवस्यान्तं कुशलः परिपश्यति॥

रामो यदा कृपादृष्टिं पातयेत् खलु जन्तुषु।

तदैव तेषां कल्याणमुभयं प्रतिपद्यते॥

साधकों का प्रधान लक्ष्यभूत भगवत्कैंकर्य श्रीराम शरणागति के बिना असम्भव है, अतः सर्वस्वात्म समर्पण रूपदास्यभावना पर पर्याय शरणागति मुक्ति प्राप्ति के लिए अवश्य अनुष्ठेय है, जो निम्नांकित श्रुति कह रही है —

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमातमबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥" (श्वे० ६।१७) सारांश यह कि जो पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं, तथा ब्रह्मा जी को निश्चित रूप से वेद का ज्ञान प्रदान करते हैं, उन आत्म विषयक बुद्धि को प्रकाशित करने वाले सर्वनियन्ता सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्र जी की शरणागति को उनकी नित्य कैंकर्य रूपी सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति के लिए सर्वतोभाव से प्राप्त यानी स्वीकार करता हूँ॥

श्रीरामशरणापन्न जीवों को सर्वभूतवर्गों से अभयदातृत्वरूप सर्वेश श्रीराम जी की सर्वातिशायी प्रतिज्ञावाक्य-व्रत को स्मरण कराती हुई प्रकृत-मन्त्र के आनन्दभाष्य में जगद्गुरु श्री की दिव्य वाणी पूर्णतया ध्येय है —

"अहं तं आत्म बुद्धि प्रकाशं स्वविषयकबुद्धिप्रकाशकं देवं ब्रह्मेशादि सर्वपूज्यं भगवन्तं श्रीरामं शरणं प्रपद्ये, 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेव्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' इति भगवच्छ्रीराम प्रपत्तेरेव सर्वाभंवनिदानत्वात् सर्वेश्वरं श्रीराममेव शरणमहं प्रपद्ये। उक्ता च कृद् रामप्रपत्त्यैव परधामावाप्तिर्जगद् गुरुभिः श्री चिदानन्दाचार्यैः न्यासकलानिधौ नावाप्यते परं धाम तपोयोगसमाधिभिः।

सकृद् रामप्रपत्त्यैव प्राणिभिः प्राप्यते हि तत् "इति। ततो भगवच्छीराम प्रपत्तिरेव मोक्षार्थं विधेया मुमुक्षुभिरिति भावः।"

महर्षि श्री वाल्मीकि जी दास्यभावापन्न साधक के विषय में सर्वेश्वर श्रीराम जी के स्वभाव के तरफ ध्यान दिलाते हुए कहते हैं —

"कथन्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।

न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥"

सर्वाराध्य श्री राघवजी का यह सामान्य नियम है कि यथा कथान्चित् स्मरण या कीर्तन प्रभृति कोई भी उपकारक कार्य का सम्पादन करता है तो दास्य भाव से शरणापन्न जीवो के प्रति अति प्रसन्न हो जाते हैं। परम दयालुता के कारण पूर्व के अनेक भवोपार्जित दुष्कर्म रूप अपकारों के स्मरण नहीं करते हैं। अर्थात् "साध्यभक्तिस्तु सा हन्त्री प्रारब्धस्यापि भूयसी" इस आगम वचन प्रामाण्य से दास्यभावेन स्वप्रपन्न जीवों को

सर्वदा के लिए अभय कर देते हैं। ऐसी उदारता श्रीरामातिरिक्त में नहीं है, जिनकी घोषणा ही तत्काल सर्वभूतों से अभय कर देने की है —

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद व्रतं मम॥"

अतः सर्वभियप्रद श्रीराम जी की शरणागति दासभावनया मुनीश्वर गौतम जी ने स्वीकार की, जिसका उल्लेख ऋग्वेद के ९।८६।९ में प्राप्त होता है —

"अरं दासो न मीढुसे कराण्यहं देवाय भूर्णये अनागाः।
अचेत यदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति॥"

(वेद रहस्य ३०) इसके मार्त्तण्ड भाष्य में जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्य जी लिखते हैं —

"अहं तव श्रीरामस्यानुग्रहपात्रं गौतमः दासो न दास इव" यानी संक्षिप्त तात्पर्य यह है कि यज्ञरक्षा तथा विद्या प्राप्त कर श्रीविश्वामित्र जी के साथ अपने आश्रम में आये हुए श्रीराम जी की स्तुति करते हुए श्रीगौतम मुनि कहते हैं —

'मैं गौतम दास के समान पत्नी रूप अभीष्ट देने वाले तथा सभी अभीष्टों के देने वाले आप श्री राम जी की पुष्प चन्दन आदि से पूजा करता हूँ; क्योंकि अभीष्ट देने के कारण स्वामी तथा अचेतन प्रस्तर अवस्था को प्राप्त हुई मेरी पत्नी को आपने पद-स्पर्श से निष्पाप चेतन बनाया है। इसलिए कवियों में श्रेष्ठ मैं गौतम-चेतना को प्राप्त हुए अपनी पत्नी के शरीर को यज्ञादि कर्म की समृद्धि के लिए स्वीकार करता हूँ।

इस प्रसंग के पूर्वापर तथ्यों के पर्यालोचन से यही तथ्य सामने आता है कि— "दासभूतमिदं सर्वं ब्रह्माद्यं सकलं जगत्" इस शास्त्र वचन के अनुसार ब्रह्मादि कीट पर्यन्त सभी सर्वेश्वर श्रीराम जी के दास है। अतः नित्य पार्षद श्री हनुमन्त लालजी ने घोषणा की कि —

"दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥"

अर्थात् आक्लिष्ट कर्मा कोशल प्रदेश नरेश श्री रामचन्द्र जी का मैं दास हूँ, मेरानाम हनुमान् है।

इस श्री हनुमान् जी की घोषणा में अति गूढ़ रहस्य यह सन्निहित है कि मैं श्रीरामचन्द्र जी का बनावटी दास नहीं हूँ, पर स्वस्वरूप यानी जीवो के स्वाभाविक रूप से प्राप्त जो श्रीरामदासता है, वैसा दास हूँ। यह 'अक्लिष्टकर्मणः' इसमें निगूहित 'स्व- जीवदास्यं च न कर्मकृतमपितु स्वस्वरूप प्रयुक्तम्" से स्पष्टतया परिलक्षित है। इससे यह भी सुस्पष्ट होता है कि जीवमात्र उन्हीं श्रीराम का स्वाभावाविक दासतानुसन्धान से संसार-सागर तैर सकता है, अन्यथा नहीं। महात्मा तुलसीदास इन्हीं तथ्यों का सारांश अति सरल वाणी में कहते हैं —

"सेवक सेव्य भाव विनु भवन तरिअ उरगारि।
भजिय रामपद पंकज अस सिद्धान्त विचारि॥"

पूर्व में प्रपचिंत प्रकार से अन्वय तथा व्यतिरेक दृष्टि से अवगम करने पर यह निश्चित हो जाता है कि प्रभु सम्प्राप्ति में इतर-साधनापेक्षया श्रीरामदास्यता ही सुगम तथा श्रेष्ठ साधन है, जो जीवों के लिये स्वाभाविक रूप से सन्नियत है। तथापि कितने ही शास्त्र रहस्यानभिज्ञों ने ईश्वर दास्यता तथा सर्वेश्वर पराधीनता के विषय में कुशंका उपस्थापित की है। उसका समाधान शास्त्रीय रीति से अति संक्षिप्ततया जगद्गुरू रामानन्दाचार्य रामप्रपन्नचार्य जी योगीन्द्र ने 'वैदार्थचन्द्रिका' में किया है। जो निम्नांकित है –

"अथैवमपि पराधीनत्वदास्यत्वयोः दुःखजनकतया तदर्थं कथं प्रवृत्तिः ? तदुक्तम् "सर्वं परवशं दुःखम् सर्वमात्मवशं सुखम्" सेवाश्ववृत्तिराख्याता तस्मात् तं परिवर्जयेत्" 'सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम् । स्वातंत्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम्" इत्योदिनापराधीनत्वसेवकत्त्वयोः निषेधात्।

अत्रोच्यते– सर्वो हि संसारीभ्रम-वशाद् देहमेवात्मेति विजानाति, तस्मिंश्च देहे संसारिणामहमिति प्रतीतिर्भवति देहानुगुणं च स्वातन्त्र्यादिक प्रतीतिर्जायते। परन्तु वस्तुतोनैकम्। जीवस्य रूपन्तु देहादि विलक्षणं ज्ञानरूपं परमात्मशेषरूपम् आत्माज्ञानमयोऽमलः' इत्यादिना ज्ञानाकारत्वमात्मनः। तथा 'पतिं विश्वस्य' इत्यादिना परमात्मशेषता च विदिता भवति। ततश्च देहाभिमानवत् स्वातन्त्र्याभिमानोऽपि कर्मकृत एव तस्मात् सर्वेश्वरातिरिक्तविषयाणां सुखत्वं कर्माधीनमेव। ततस्तेषामल्पत्व- मस्थिरत्वन्च। स्वाभाविकसुखरूपं तु परमेश्वरस्यैव। अतस्तदेव नित्यं निरतिशयं च। 'कं ब्रह्म खं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति श्रुतेः । तस्मात् ब्रह्ममात्रं सुखात्मकम्' जडे सुखदुःखात्मकत्वं कर्मकृतं न स्वरूपत इति कर्मणामभावे वस्तुनो जडस्य सुखाद्यात्मकत्वमपि निवर्तत एवेति।

यद्यपि 'सर्वं परवशमित्यादि तत्तु परमेश्वर व्यतिरिक्तप्रतीतिज्ञातव्यम्। सेवायाः स्ववृत्तित्व कथनत्व सेव्य सेवाविषयकमेवेति 'सह्याश्रमैः सदोपास्यः समस्तैरेक एव च' इत्युक्तेः। परमात्म या थात्म्यज्ञातृभिः सर्वैरपि सर्वदा सर्वेश्वर एवोपास्यों नान्य इति। भगवता कृष्णेनापि कथितम् 'मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते इत्यादि। इयं च भक्ति रूपा सेवा ज्ञान रूपैवेति ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यादि स्थले वेदन पदेन कथितम्'।

अर्थात् पूर्व में कहा गया है कि ये जो जीव वर्ग हैं, अपने को परमेश्वर का परतन्त्र तथा दास समझकर के सेवा करें यही उन जीवों के सुख का कारण है। परन्तु यह कहना तो ठीक नहीं है, क्योंकि यह बात लोकविरुद्ध है। इत्यादि शंका का निराकरण करने के लिए उपक्रम करते हैं – अथैवपीत्यादि। भगवत् परतन्त्रत्व तथा दासत्व को सुख का कारण होने पर भी पराधीनता तथा दासभाव को दुःख जनक होने से चेतन-व्यक्ति को उसमें प्रवृत्ति किस तरह से होगी अर्थात् लोक इसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता है। मनु ने भी कहा है 'पराधीनत्व सब दुःख दायक और स्वाधीनत्व सब सुखजनक है' ' सेवा कुत्सित वस्तु है' लोक में भी कहा है 'उत्तम खेती मध्यम बान (वाणिज्य)। निर्घृण सेवा भीख निदान।' सेवा करके धन – अभिलषित वस्तु को चाहने वाले मूर्ख सेवकों ने क्या किया देखो– उसने अपने शरीर की जो स्वतंत्रता थी, उसको भी छोड़ दिया' इत्यादि वचनों से पराधीनत्व तथा सेवकत्व का सर्वथा निषेध किया गया है।

इसके उत्तर में कहते हैं – अत्रोच्यते। सभी संसारी भ्रम अर्थात् कर्म के बल से देह को ही आत्मा समझता है। उस देहे में संसारी व्यक्ति को 'अहम्' एतादृश ज्ञान होता है और देह के अनुकूल स्यातन्त्र्यादि विषयक प्रतीति होती है। परन्तु वस्तुतः तो ऐसा नहीं है। जीव स्वरूप तो देहादि से विलक्षण है। ज्ञानाकार तथा भगवान् का शेष है अर्थात् भगवान् के अधीन है। 'आत्मा तो ज्ञानमय है तथा निर्मल है इत्यादि वचन से ज्ञानाकारता की जीव में सिद्धि होती है और विश्व के मालिक अर्थात् समस्त जगत् जिसके अधीन है इत्यादि वचनों से होता है

कि जीव परमात्मा का शेष है। इससे यह ज्ञात होता है कि देहाभिमान की तरह स्वातन्त्र्याभिमान भी शुभाशुभ कर्म जन्य ही है। इसलिए सर्वेश्वर से अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं, उसमें सुखत्व कर्म के अधीन है, अतः इनमें अल्पत्व एवं अस्थिरता है और स्वाभाविक सुखरूपता हो परमेश्वर में ही है। इसलिए वह नित्य- निरतिशय है। श्रुति भी कहती है — ब्रह्म सुख-स्वरूप है। आकाश की तरह अपरिच्छिन्न है। ब्रह्म आनन्द - स्वरूप है' ब्रह्म सत्य, ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप है, अतः ब्रह्म मात्र सुखात्मक है जड़ में जो सुखादिक का प्रतिभास होता है, वह कर्म प्रयोज्य है। कर्म का अवसान होने पर जड़ में सुखाद्यात्मकत्व निवृत्त हो जाता है।

'सर्वं परवशं दुःखम्' यह जो कहा है वह परमेश्वरातिरिक्त विषयक है। 'सेवाश्ववृत्तिः' यह जो कहा है, वह भी असेव्य सेवा परक है। इसीलिए श्री हनुमान जी ने 'दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य' कहा है। यानी अक्लिष्ट कर्मा सर्वेश्वर श्री राम का दास- सेवक हूँ, अन्य का नहीं। समस्त आश्रमों - प्रत्येक आश्रमों में निवास करने वालों से एक परमेश्वर ही सर्वदा उपास्य है' इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि परमात्मा की यथार्थता को जानने वाले सभी आश्रमवासियों से सर्वदा सर्वेश्वर श्रीराम जी ही उपासनीय हैं, अन्य कोई नहीं। भगवान श्री कृष्ण ने भी कहा है कि 'मुझ परमेश्वर को जो अव्याभिचरित भक्ति योग से सेवा करता है" इत्यादि यह जो भक्ति रूप सेवा है, वह ज्ञान रूप ही है, इस बात को ब्रह्मज्ञानी पर ब्रह्म को प्राप्त कर जाता है" इत्यादि स्थल में वेदन पद से कहा गया है।"

इत्याकारक आक्षेप समाधान से यह स्फुट हो जाता है कि दास्य भक्ति की श्रेष्ठता है और यही मुक्ति का सरलतम साधन है, सायुज्य मुक्ति का साधन पंचसंस्कार वर्णन प्रसंग में दास्यता के प्रति हेयभाव वालों के प्रति ज० गु० श्री केवल रामाचार्य जी 'प्रबोध रत्नमाला' में कहते हैं।

"दासः पदं श्रुतावस्ति नातो घृणा विधीयताम्।

श्रुत्यनभिज्ञा पश्य त्वं अरं दासो न मीढुषे॥ १०३॥

प्रकृत श्लोक की व्याख्या 'रत्न-प्रकाशिका' में जगद्गुरु वैदेही वलम्भाचार्य जी लिखते हैं — "वेदादौ दासपदमस्ति अतो दासपदात् घृणा न विधेया, वेदादौ दासपदस्य महीयो महत्त्वमस्ति दासशब्दो भगवतः सद्भक्तानां नामान्ते लगति——— दास पदं महीयसे गौतम ऋषये (ऋग्वेदे ९।८६।९मन्त्र) प्रायोजि तदा का कथान्यस्य। अपि च श्री हनुमान्, स्वस्मै 'दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य' इति प्रयुयोज। हे रावण ! श्री कोसलेन्द्रस्याहं दासोऽस्मि। दासः अर्थात् सेवक : कस्य ? भगवतो नतु संसारिणां नृणां सर्वतो महान् श्री हनुमान् किं संसारिनरस्य दास आसीत् ? नहि नहि प्रभोरनन्तब्रह्माण्डनायकस्य श्रीरामस्य सेवक आसीत्।"

सम्पूर्ण प्रसंग का संकलित सूक्ष्मार्थ यही निकलता है कि मुक्ति के साधन श्रवणादि भक्ति में दास्य भक्ति ही अन्यो का उद्बोधक है। अतः इसी दास्य भावना का अवलम्बन कर मानव इस भव-सागर से पार हो सकता है, अन्यथा नहीं। शास्त्रों का निष्कर्ष है कि दास्यता की चरम परिणति ही शरणागति- प्रपत्ति है, इसके विना सायुज्य गमन कुसुमायमान है।

"सो अनन्य जाके असिमति न टरइ हनुमन्त।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवन्त॥

श्री रामचन्द्राय नमः

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य प्रस्थानत्रयी आनन्दभाष्य

— डा० मुरलीधर पाण्डेय

दर्शन, धर्म एवं सम्प्रदाय परस्पर सापेक्ष तत्त्व हैं। ये तीनों इसलिये सापेक्ष कहे जाते हैं कि सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि धर्म है तथा धर्म की नृष्ठभूमि दर्शन है। दर्शन पहले सिद्धान्त तय करता है। इसी सिद्धान्त की शिला पर धर्म की नींव रखी जाती है और एक सिद्धान्त विशेष या धर्म विशेष के अनुयायी वर्ग की अविच्छिन्न परम्परा को सम्प्रदाय विशेष कहा जाता है। सामान्यतः दर्शन यह बतलाने की चेष्टा करता है कि जीव, जगत् और ईश्वर क्या है और ये तीनों एक ही तत्त्व हैं या अनेक तत्त्व हैं। यदि ये तीनों जीव जगत् तथा ईश्वर एक हैं तो अद्वैतसिद्धान्त स्थिर हुआ और यदि दो हैं तो द्वैतवाद है और यदि ये तीनों अलग-अलग होकर भी एक हैं तो विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त सुस्थिर हुआ। अब इसी अद्वैतवाद द्वैतवाद और विशिष्टा-द्वैत-वाद की भीत्ति पर ज्ञान प्रधान धर्म उपासना प्रधानधर्म तथा ज्ञान कर्मोपासना समुच्चय प्रयानधर्म की कल्पना की जाती है। यदि अद्वैत है तो सब कुछ एक ही बलस्वरूप है। अतः केवल ज्ञान से ही उक्त ब्रह्मस्वरूपावगति हो जाती है। अतः उपासना आदि की गौणता आ जाती है। यदि वस्तुतः दो तत्त्व है या दोनों अलग-अलग होकर विशिष्ट-अद्वैत है तो जीव को ईश्वर की प्राप्ति के लिए उपासना-ज्ञान तथा कर्मकाण्ड की आवश्यकता पड़ती है। इसमें उपासना प्रधान हो जाती है और ज्ञान गौण हो जाता है। इन्हीं दोनों तथ्यों के आधार पर ज्ञानप्रधान विशेष धर्म एवं उपासना प्रधान विशेष धर्म प्रक्रिया की कल्पना होती है, किन्तु व्यवहार जगत् दो या तीन तत्त्वों को मान कर ही चलता है । एतादृश दर्शन एवं धर्म के मानने वालों की अवच्छिन्न परम्परा को सम्प्रदाय कहा जाता है। जैसे ऊपर भी कहा जा चुका है।

ऐसे सम्प्रदाय अपने निगमागममूलक सनातन धर्म में अनेक हैं। जैसे अद्वैत दर्शनानुयायी पंचदेवोपासक को श्रौतस्मार्त सम्प्रदाय वाला कहते हैं। विशिष्टाद्वैत दर्शनानुयायी विशेषतः श्रीलक्ष्मीनारायणोपसक को रामानुजसम्प्रदाय वाला तथा विशेषतः श्री रामोपासक को श्रीरामानन्द सम्प्रदाय वाला कहते हैं। इसी प्रकार माध्व वल्लभ निम्वार्क तथा चैतन्य आदि सम्प्रदाय भी हैं। इन सम्प्रदायों को प्रमाण की कसौटी पर कसने के लिए तत्तत् दर्शन हैं और तत्तद् दर्शनों को सही परखने के लिए वेदमूलकत्व होना अनिवार्य है। वेदमूलकत्व को परखने के लिए प्रस्थानत्रयी पर भाष्य आवश्यक है। प्रस्थानत्रयी में तीन आते हैं — श्री बादरायणविरचित ब्रह्मसूत्र ईशावास्य छान्दोग्य आदि उपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता। इन तीनों की व्याख्या में जो दर्शन खरा निकलता है वही दर्शन श्रौत या वैदिक दर्शन कहा जाता है। अतः इन सम्प्रदायों के आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी पर अपने-अपने भाष्य लिखे हैं। इनके सम्प्रदायानुसारी भाष्यों में ब्रह्मतत्त्व साथ ही पंचदेवतत्त्व, नारायणतत्त्व तथा श्री रामतत्त्व आदि की प्रधानता होती है। इन्हीं प्रधान उपास्य देवों को ध्यान में रखकर इनकी उपासना पद्धति बनायी गयी है।

इस प्रकार इन प्रमुख संप्रदायों के अनुसार श्री बादरायण निर्मित ब्रह्मसूत्रों में ये प्रमुख भाष्य उपलब्ध होरहे हैं –

१. श्री शंकराचार्य ७८८-८२० ई० शारीरिकभाष्य निर्विशेषाद्वैत।

२. श्री भास्कराचार्य १००० ई० भास्करभाष्य भेदाभेद।

३. श्री रामानुजाचार्य ११४० ई० श्री भाष्य विशिष्टाद्वैत। (लक्ष्मीनारायण)

४. श्री मध्वाचार्य १२३८ ई० पूर्णप्रज्ञभाष्य– द्वैत।

५. श्री निम्बार्काचार्य १२५० वेदान्त परिजातभाष्य– द्वैताद्वैत।

६. श्री कण्ठाचार्य १२७० शैवभाष्य - विशिष्टाद्वैत (शक्तिशिव)।

७. श्री रामानन्दाचार्य १३५६-१५३२ – आनन्दभाष्य विशिष्टाद्वैत (श्री सीताराम)।

८. श्री श्रीपति आचार्य १४०० श्रीकरभाष्य – विशिष्टाद्वैत (वीरशैव)।

९. श्री वल्लभाचार्य १४७९- १५४४ अणुभाष्य– शुद्धाद्वैत (बालकृष्ण)।

१०. श्री विज्ञानभिक्षु १६०० विज्ञानामृतभाष्य– अविभागाद्वैत (सांख्ययोगप्रभावित)।

११. श्री बलदेवाचार्य १७२५ गोविन्द भाष्य– अचिन्त्यभेदाभेद (श्रीहरिराधाकृष्ण)

इन आचार्यों के भाष्य में परस्पर सिद्धान्त भेद तो है ही साथ ही ब्रह्मसूत्रग्रन्थ के सूत्रों की तथा अधिकरणों की संख्या मे भी भेद है। श्री शंकराचार्य जी के अनुसार सूत्रसंख्या ५५५ तथा अधिकरण १९९ हैं। श्रीरामानुज मत में सूत्रसंख्या ५४५ तथा अधिकरणसंख्या १६० है। श्रीमाध्वगत में सूत्रसंख्या ५६४ है और अधिकरण संख्या २२३ है। श्री निम्बार्क मत में सूत्रसंख्या ५४९ तथा अधिकरणसंख्या १६१ है। श्रीकृष्ण मत में सूत्र सं० ५४४ तथा अधिकरण संख्या १८२ है। श्रीरामानन्दाचार्य मत में सूत्रसंख्या ५५१ है तथा अधिकरण संख्या १६० है। श्री बल्लभमत में सूत्र संख्या ५५४ तथा अधिकरण संख्या १७१ है। सूत्रसंख्या तथा अधिकरणसंख्या में भेद का कारण यह है कि इन आचार्यों ने स्वसिद्धान्तानुसार कहीं-कहीं दो सूत्रों को एक सूत्र मान लिया है और कहीं एक सूत्र को दो सूत्र मान लिये हैं। इसीसे अधिकरण संख्या में भी भेद हो गया है।

इन आचार्यों ने उक्त प्रस्थानत्रयी के अध्ययन से जिस परमतत्त्व का अपरोक्षानुभव किया उसी को प्रस्थानत्रयी के भाष्य रूप में अवतरित किया। इनमें जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य ने प्रस्थानत्रयी के अध्ययन के अनन्तर ब्रह्मरूप में श्रीरामतत्त्व का अपरोक्षानुभव किया और श्रीरामरूप ब्रह्म को श्री आचार्य जी ने प्रस्थानत्रयी के भाष्य में विकृत किया। इस भाष्य का नाम आनन्द भाष्य रखा। क्योंकि परमतत्त्व श्रीराम आनन्दरूप हैं जैसा कहा है –

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि (श्रीरामतापनीयोप निषद्)

श्री रामही जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं लय करते हैं। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इस श्रुति तथा जन्माद्यस्य यतः (१।१।२) इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार सृष्टि आदि करने वाला ब्रह्म राम ही है। मीमांसा दर्शन कहता है। वेदविहित कर्म ही धर्म है और धर्म ही जगत् को धारण करता है और वह धर्म साक्षात् राम ही हैं। क्योंकि राम का स्वरूप ही धर्म है — "रामो विग्रहवान् धर्मः"। श्रीराम ने धर्म के स्वरूप को यथार्थ बतलाने के लिए और प्रत्यक्ष रूप में दिखलाने के लिए सारे चरित्र किये धर्ममर्यादा की रक्षा करने के ही कारण श्रीराम को मर्यादापुरुषोत्तम कहा जाता है। चौदहवीं शताब्दी का समय भी ऐसा ही था। जब वैदिक धर्म पर सभी ओर से प्रहार हो रहा था तब जगद्गुरु जी ने मर्यादापुरुषोत्तम राम ब्रह्म को प्रस्थानत्रयी भाष्य में अवलोकन किया।

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी का शास्त्र-ज्ञान एवं लोकानुभव बड़ा ही विस्तृत था। वे उच्च कोटि के शास्त्रज्ञ, योगी, संत तथा उच्चकोटि के जननेता थे। उनकी दृष्टि शास्त्ररक्षा एवं लोकरक्षा के हेतु वाल्मीकि रामायण पर पड़ी। वैदिक वांगमय के अनन्तर वाल्मीकि रामायण का ही स्थान प्रथम आता है। इस रामायण में आदि काल के महर्षि वाल्मीकि ने हनुमान् जी के मुखारविन्द से कहलाया है कि रामचन्द्र जी इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को क्षण भर में बना सकते हैं, रख सकते हैं, और मिटा सकते हैं।

"सर्वल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्। पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥" (वा० रा० सु० का० ५१।३९) इसी प्रकार मनु के वचन पर भी उन्होंने ध्यान दिया। भगवान् मनुजी ने कहा है कि गायत्री मंत्र तीनों वेदों का सार है। तीनों वेद से एक-एक चरण दुहकर गायत्री मंत्र का अवतार हुआ।

अथर्ववेद ने कहा कि गायत्री वेद माता है। "स्तुतीमयी वरदा वेदमाता" और यह भी कहते हैं कि वाल्मीकीय रामायण में चौबीस हजार श्लोक हैं। ये चौबीस वर्णों के गायत्री मंत्र के एक-एक अक्षर की व्याख्या है। इस सम्पूर्ण रामायण में श्रीराम जी ही वर्णित हैं। जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जनक, पालक एवं संहारक हैं। महर्षि बादरायण ने इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ में सूचित किया- "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" (ब्र० सू० १।१।१) वह ब्रह्म कैसा है इस जिज्ञासा पर द्वितीय सूत्र में लिखा— "जन्माद्यस्य यतः (ब्र० सू० १।१।२) अर्थात् जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड का जन्मस्थिति एवं लय होता है वही ब्रह्म है। जैसे उपनिषद् ने-यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रत्याभिसंविशन्ति (वै० उप० ३।११) यह परब्रह्म राम का स्वरूप लक्षण हुआ। तटस्थ लक्षण तो प्रसिद्ध है जैसे- रामतापनीयोपनिषद् ने किया है — तटस्थ -रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते (पूर्वरामतापनीयोपनिषद् १।६)

इसी तथ्य को तैत्तिरीयोपनिषद् भी कहती है - सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, आनन्दभाष्य ने इस तत्व को बड़ अच्छे ढंग से (तै० उप० २।२। इस सूत्र के भाष्य में प्रकट किया है। महर्षि व्यास जी महाभारतान्तर्गत श्रीमद्भगवद् गीता में ब्रह्माण्ड के सभी तत्त्वो का वर्णन करते हुए श्री कृष्ण के मुख से कहलाते हैं —— उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्ययईश्वरः। श्रीमद् गी० (१५।१७)।

अर्थात् सभी चराचर से परे एक उत्तम पुरुष है वही परमात्मा है जो तीनों लोक में प्रविष्ट होकर संसार की रक्षा कर रहा है। वह उत्तम पुरुष या पुरुषोत्तम या महापुरुष कौन है ? इसको महर्षि व्यास जी स्वयं श्रीमद्भागवद् में स्पष्ट करते हैं —

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिंचिनुतं शरण्यम्।

भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं,

वन्दे महापुरुष ते चरणारविदंम् ॥

(श्रीमद्भागवत् ११।५।३३)

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं,

धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।

मायामृगं दयितत्येप्सितमन्वधावद्

वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम् ॥

(श्री मद्भागवद् ११।५।३३)

इन दोनों श्लोकों में भगवान् राम की वन्दना की गयी है और उन्हें महापुरुष कहा गया है । व्यास जी ने इन्हें शिवविरंचिनुत तथा प्रणतपाल भवाब्धिपोतं कहा है । शिव जी ब्रह्मा जी से प्रणम्य केवल श्रीराम जी ही हैं। यह तो लोकातीत पक्ष है, पर वहीं राम लोकस्थिति के लिए पिता की आज्ञा से वन जाते हैं और अपनी दयिता सीता के मन को रखने के लिये मायामृग का अनुसरण करते हैं ।

श्री रामानन्दाचार्य जी को तो यही चाहिए था जो लोक एवं परलोक दोनों की गति हो । उन्होंने निगमागम सम्मत श्रीमद्बाल्मीकि- व्यासानुमोदित श्री रामब्रह्म को अपनाया तथा तादृश धर्म को तैयार करने के लिए श्रीराम- विशिष्टाद्वैत दर्शन को मान्यता दी ।

इन दर्शन की मान्यता को सुस्थिर आधार देने के लिए प्रस्थानत्रयी पर भाष्य की रचना की । आनन्द भाष्य में विशिष्टाद्वैत के प्रधानतत्व ब्रह्म जीव और माया का साक्षात् स्वरूप श्रीराम जी श्री सीता जी एवं लक्ष्मण को बार-बार दर्शाया है । जिसे ज० गु० श्री तुलसीदास जी ने इस प्रकार कहा है –

"आगे राम अनुज पुनि पाछे । मुनिवर वेष बने अति काछे ।

उभयबीच श्री सोहइ कैसे । ब्रह्म जीव बीच माया जैसे ।"

मनुष्य जीव दो प्रकार के हैं – सगुणोपासक तथा निर्गुणोंपासक । इसलिए श्री राम के दायें सगुणोपासक जीव के रूप में लक्ष्मण जी तथा निर्गुणोपासक के रूप में श्रीभरत जी का अवतरण किया गया है ।

गीतोक्त इस परमपुरुष की उपासना केवल भक्ति से हो सकती है । गीता ने स्वयं कहा है– "पुरुषः सपरः पार्थभवत्यालभ्यस्त्वनन्यया । यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् (श्रीगीता ८-२२)

एक भक्तिर्विशिष्यते वादी आचार्यजी ने इसी गीतोक्त सिद्धान्त को वैष्णवों के लिए कर्तव्य रूप में इस प्रकार कहा–

"एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो । रामस्य भक्तिं परमां प्रकुर्यात् ॥

महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः । श्री जानकी लक्ष्मणसंयुतस्य वै ॥"

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ४।११)

"सहानुजं दाशरथिं महोत्सवं

स्मरामि रामं सह सीतया सदा।" (श्रीवै० म० भा० ३।५)

श्री आचार्य प्रवरजी ने जिस भक्ति को अपनाया है उसका स्वरूप उन्होंने कहा है कि गिरती हुई अविच्छिन्ना- गति वाली तैलधारा के समान श्री रामजी में अविच्छिन्न- सतत् स्मृति ही भक्ति है। यह भक्ति योगशास्त्रोक्त यम-नियमादि से परिपुष्ट होती है।

सा तैलधारासमनित्यसंस्मृतेः संतानरूपेशिपरानुरक्तिः।

भक्तिर्विवेकदिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकांगी॥

(श्री० म० भा० ४।१३)

इस प्रकार जगदाचार्य जी ने प्रस्थानत्रयी पर आनन्द भाष्य बनाया और रामविशिष्टाद्वैत की स्थापना की तथा इस विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधार पर गृहस्थ धर्म की स्थापना की। जिसमें आराध्य श्रीराम ब्रह्म के चरित्र के अनुसार वर्णाश्रम की व्यवस्था को पुनः सुदृढ़ किया, जो वर्णाश्रभ धर्म उनके काल में वैदेशिक शासकों के प्रभाव से तथा दूसरे पन्थों के प्रभाव से क्षीण हो रहा था। आचार्य जी का लक्ष्य यही है कि परब्रह्म ने वर्णाश्रम व्यवस्था बनायी है। इसलिए आवश्यक था कि आचार्य जी इसके अनुकूल दर्शन स्थापित करें। इसलिए आपने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य बनाकर तदनुकूल विशेष धर्म एवं तदनुकूल सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इसके प्रचार एवं प्रसार हेतु जगदाचार्य जी ने एक विरक्त समाज की स्थापना की जो गृह परिवार से रहित होता है।

न स्त्रियं परिगृह्णीयाद् विरक्तो वैष्णवः क्वचित् (श्री ० म० भा० ५।५)

इन विरक्त वैष्णवों के मनन के लिए स्पष्टतया आनन्द भाष्य का उल्लेख किया तथा आदेश दिया शक्तैरानन्दभाष्यैरथ च सुभतमाचार्य दिव्यप्रबन्धैः (श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर ८।२) इस प्रकार आचार्य चरण जी ने आनन्द भाष्य की रचना करके दर्शन, धर्म सनातन धर्म विशेष की स्थापना के साथ क्षीण होती हुई विरक्ताश्रम परम्परा को पुनरुज्जीवित किया। इसी विरक्त संप्रदायी परम्परा के ज० गु० तुलसीदास जी श्री कृष्णदास पयोहारी श्री रविदास श्रीकबीरदास प्रभृति विरक्तों महात्माओं ने श्री रामाश्रित ग्रन्थों की रचना से मन्दिर-मठ आदि की स्थापना से तथा श्रीरामभक्ति प्रचार से लोक-परलोक उभय की शुभसिद्धि का मार्ग प्रशस्त किया।

★★★

पूर्ववर्ती भक्ति साहित्य और श्री वैष्णवमताब्ज-भास्कर

— डा० नागेन्द्र नाथ उपाध्याय
रीडर, हिन्दी विभाग
का० हि० वि० वि०

पूववर्ती भक्तिनिरूपक साहित्य में हम श्वेता-श्वतर उपनिषद्, नारायणीयोपाख्यान, श्रीमद्भगवद्गीता, नारद-पंचरात्र, अहिर्बुध्न्य संहिता, नारद भक्ति-सूत्र आदि को ले सकते हैं।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में भक्ति का सर्वप्रथम निरूपण मिलता है। श्री सम्प्रदायाचार्य अपने प्रपत्ति-सिद्धान्त का मूल इसी उपनिषद् में देखते हैं। अपने भक्ति-सिद्धान्त के ही कारण यह अन्य उपनिषदों से भिन्न है। प्रपत्ति और भक्ति दोनों सिद्धान्तों का संकेत इसमें मिलता है। यह कोई साम्प्रदायिक उपनिषद् नहीं है। क्योंकि शंकर, रामानुज आदि सभी ने इसे प्रामाणिक मानकर इसे उधृत किया है। ईश्वर के स्वरूप, गुण, शरणागति, गुरु और देव के प्रति भक्ति आदि का इसमें विवेचन है। इसमें विवेचित भक्ति पराभक्ति है, जो महात्माओं में ही प्रकाशित होती है। इसमें भक्ति, ब्रह्मज्ञान, ध्यान, योग, प्रपत्ति या शरणागति के जो स्पष्ट संकेत मिलते हैं तथा कर्मसमर्पण, जो निष्काम कर्मवाद का मूलाधार है, की जो व्याख्या है, वे सभी आगे चलकर श्रीमद्भगवद् गीता, नारद भक्तिसूत्र व रामानुज- रामानन्द के भक्ति-दर्शन तथा कबीरादि मध्य युगीन सन्तों में भी विचार धाराओं और साधन धाराओं के रूप में दिखायी पड़ती है।

महाभारतान्तर्गत नारायणीयोपाख्यान के पूर्व ही श्वेताश्वरतरोपनिषद् की रचना हो चुकी थी। इस उपाख्यान से नारद और भक्ति के सम्बन्ध की महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। इसकी रचना शंकराचार्य के पूर्व हो चुकी थी। इसमें हरि का साक्षात्कार केवल भक्ति से ही सम्भव माना गया है। इसके साधन की विशेषताएँ हैं— आरण्यक आदर्श और विचार, अहिंसा, भक्ति, तप, कर्म-काण्ड की अनावश्यकता। महाभारत के शान्ति पर्व में यह निर्दिष्ट है कि तप, कर्मकाण्ड आदि से असफल होकर ऋषिगण हरिनाम के मानसिक जप से सफलता प्राप्त करते हैं। श्रीमद् भगवद्गीता में निष्काम कर्मयोग, कर्मसमर्पण, भक्ति, सगुण ब्रह्म की कल्पना, भगवत-प्रसाद का महत्त्व, भागवत साधन के लिए सबका समान अधिकार आदि का प्रकाशन है। इसमें आत्मा की अमरता तथा नित्यता, समत्वबुद्धि युक्त निष्काम कर्मयोग, भगवद्शरण से स्त्री, वैश्य, शुद्र, नीचजन्मा, पापी सभी के कल्याण की भावना, सगुण-निर्गुण की उपासना, ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की महत्ता, भक्ति सहित निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग से पराभक्ति की प्राप्ति, भगवान् की अनन्त शक्तिमत्ता, अन्तर्यामित्व आदि भक्ति तत्त्वों का स्पष्ट प्रतिपादन है।

पाँचरात्र मत का अभ्युदय विद्वान् लगभग ईसा पूर्व तीसरी शती में मानते हैं। परवर्ती भागवतमत के विकास की मूलाधार पाँचरात्र संहिताएं थीं। रामानुज ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में इन संहिताओं को उद्धृत किया है। किन्तु यह भी एक तथ्य है कि बादरायण ने ब्रह्मसूत्र में पाँचरात्रों का खण्डन किया है। यामुन ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर पाँचरात्र मत को वैदिक या वेदसम्मत सिद्ध किया है। कुछ पुराण भी पाँचरात्रों का घोर खण्डन करते हैं और कुछ दृढ़तापूर्वक मण्डन और समर्थन। ईश्वर संहिता ने उस एकायन वेद की महत्ता प्रतिपादित की है, जिसे सभी वेदों का मूल मान गया था और जो अहिंसक था, जिसे वासुदेव से अनेक ऋषियों ने ग्रहण किया था। यह सात्विक शास्त्र था, जबकि पाँचरात्र और वैखानस राजस शास्त्र माने गए थे।

पाँचरात्र संहिताओं में अहिर्बुध्न्य का विशेष महत्त्व है, जिसमें परमात्मा की सर्वोच्चता, जीवात्मा का आश्रितत्व, उनके शेष-शेषी सम्बन्ध, प्रपत्ति और उसके सोपान, न्यास और शरणागति, दृढ़ निर्भरता, दीनता, पूर्ण कार्पण्यभाव, भगवद्गुण, योगसाधन, चक्र, नाड़ीप्रकल्पना, वायु, प्राणायाम, समाधि, आसन, अष्टांग योग की विस्तृत व्याख्या मिलती है। नारद पंचरात्र में भी ज्ञान, योग और भक्ति का इसी प्रकार का समन्वय मिलता है। ज्ञान के पाँच प्रकारों के कारण ही इन्हें पाँचरात्र कहते हैं। गुरु की महत्ता, कृष्ण-भक्ति की उत्पत्ति में ज्ञान, योगादि की सार्थकता, सत्संगति, षड्विध भजन, अहिंसा, तीर्थ-स्थान एवं वेदों क्ताचरण की भी निर्वाणकारणता, योग, नाड़ी, चक्र, आदि दास्यभाव, अर्चाविधि, स्मरण, कीर्तनादि कृपा तत्त्व आदि के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है।

नारद के नाम से प्रसिद्ध दूसरी रचना नारद भक्ति सूत्र है, जिसकी रचना प्रसिद्ध शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र के बाद हुई है। इसमें नारद ने भक्ति-स्वरूप, भक्ति-प्राप्ति, निरोध, कार्य, लक्षण, भक्तिश्रेष्ठता, भक्ति-साधन, त्याज्य, प्रेमस्वरूप, भेद, प्रमाण, लोक-वेद, विधि-निषेध, भक्त, वाद, शास्त्र आदि का विचार किया है। इसमें भी कर्मसमर्पण, लोक-वेद की प्रारम्भिक आवश्यकता, अभक्त-त्याग, अखिलाचार समर्पण, निरभिमानता, दास्य-भाव या कान्ता-भाव से नित्य भजनात्मक-प्रेम, ऐकान्तिक-भक्ति, भक्तों के कारण तीर्थत्व, एकादशधा भक्ति आदि का विवेचन है।

नारद ने प्रेम की अनिर्वचनीयता, त्रिगुण-राहित्य, कामनाराहित्य, सूक्ष्मता का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है कि इसके प्राप्त हो जाने पर भक्त केवल इसी को सर्वत्र देखता है। केवल प्रेम की हो बात सुनता है, केवल प्रेम का वर्णन करता है, केवल उसी का चिंतन करता है। यह भक्ति किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती। यह शातिरूपा और परमानन्दरूपा है। भक्ति की सिद्ध होने तक नारद लोक-व्यवहार को हेय नहीं मानते। इसमें अभिमान-दम्भादि का सर्वथा त्याग आवश्यक मानते हैं। एकान्तिन् भक्त को ही प्रमुख मानते हैं और उसकी अनन्यता, कण्ठावरोध, रोमांच, अश्रु आदि को लक्षण मानते हुए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहते हैं।

अष्टादशहरस्यार्थ विवरण के अनुसार भगवान् के पास पहुँचने का प्रमुख साधन आत्मसमर्पण, शरणागति या प्रपत्ति है। वह भगवान् के प्रति सतत् प्रार्थनामयता, विश्वासपूर्णता, समर्णण, शत्रु के प्रति भी करुणापूर्ण सहानुभूति, भगवान् पर पूर्ण निर्भरता, उपायशून्यता की भावना, दास्यभाव, पारतन्त्र्य, गुरु की अनिवार्यता, सदाचार पूर्ण वीरता या नित्यसूरत्व, भगवद् भोक्तृत्व-भाव से सम्पन्न होता है। आलवारों और श्री-सम्प्रदाय के आचार्यों में अनेक विषयों में वैभिन्य था, जिसका स्पष्टीकरण विद्वानों ने किया है।

ऊपर "भास्कर"- पूर्व साहित्य का भक्ति सम्बन्धी जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, उसका एक विशेष प्रयोजन है। राघवानंद रामानुज के ही सम्प्रदाय के थे तथा भक्त-माल के आधार पर रामानन्द राघवानन्द के

शिष्य थे। राघवानन्द के नाम से प्राप्त एक मात्र अव्यवस्थित एवं अधूरी रचना 'सिद्धान्त-पंचमात्रा' है, जिसमें प्रेम और योग के विषय में कुछ विचार अवश्य मिलते हैं, किन्तु वे बहुत स्पष्ट नहीं है। इसमें भक्ति और योग से समन्वित साधना की परम्परा की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि 'सनक, सनन्दन, सनत्कुमार ने योग चलाया तथा सनकादिक गुरुभाइयों ने प्रेम सुनकर डंड-कमण्डल योग चलाया" इस पर कोई निश्चित बात नहीं कहीं जा सकती। केवल इतना कहा जा सकता है कि "पंचमात्रा' में संकेतित साधना से ब्रह्मकुमारों का कुछ संबंध था। इस रचना में योगतत्त्व का सन्निवेश है। सतगुरु की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है।

इस संबंध में दूसरी बात महत्त्वपूर्ण यह है कि इस सम्पूर्ण भक्ति परम्परा में नारद का व्यक्तित्व विशेष है। नारायणीयोपाख्यान, पांचरात्र-साहित्य, नारद-पंचारात्र, नारद भक्तिसूत्र, आदि ग्रन्थों में नारद का भक्तिस्वरूप-निर्वचन से विशेष सम्बन्ध घटित होता है। नारद भक्तिसूत्र में भी सनत्कुमारादि को, एकान्तिन भक्तों को, प्रमुख स्थान दिया गया है। श्री सम्प्रदाय में पांच रात्र-साहित्य के महत्त्व को पहले ही प्रतिपादित कर दिया गया है। तीसरी बात यह है कि इस परम्परा में भक्ति की सर्वोच्चता के होते हुए भी योग और ज्ञान को भक्ति उत्पाद कर और पोषक के रूप में स्वीकार किया गया है। चौथे, कर्म का तिरस्कार न कर निष्काम कर्मयोग और कर्मसमर्पण को प्रमुखता दी गयी है। पाँचवें, लोक-व्यवहार और वैदिक कर्मादि को भी स्थान देते हुए भक्ति सिद्धि तक आवश्यक बताया गया है। छठें, वर्णाश्रमादि की भेद-व्यवस्था को भक्ति-सिद्धि में कोई स्थान नहीं है । भक्ति-प्राप्ति का अधिकार सबके लिए सुरक्षित है। इसीप्रकार की अन्य अनेक विशेषताएँ निरूपित की जा सकती हैं।

'श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर" के भक्ति संबंधी विचारों का विस्तार हम यहाँ न देकर केवल यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि पूर्वोक्त ग्रन्थों की परम्परा के अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को यह ग्रन्थ आयत्त करता हुआ रामोपासना का प्रतिपादन करता है, जिसकी भूमिका हमें श्रीसम्प्रदाय में ही मिलती है। आल्वार भक्तों में कुल शेखर, दाशरथी राम के भक्त थे। रामानुज ने पर ब्रह्म के लिए नारायण शब्द का ही प्रयोग अधिक किया है। व्यूहो का वर्णन करते समय उन्होंने वासुदेव शब्द का प्रयोग किया। राम शब्द उनका अधिक प्रिय शब्द प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार दाशरथी राम की स्वीकृति के कारण सीता की स्वीकृति स्वाभाविक है। इस दृष्टि से रामोपासना की पूर्व परम्परा में कुलशेखर का व्यक्तित्व महिमान्वित है। उनके साहित्य का इस दृष्टि से विशेष अध्ययन होना चाहिए।

कुल शेखर विष्णु की कौस्तुभ-मणि के अवतार माने जाते हैं। आल्वारों की परम्परा में इनका क्रम ७वाँ है। इन्हें कुछ लोग रामानुज का समकालीन मानते हैं और कुछ लोग ९वीं शताब्दी के प्रथम चरण में। उनका प्रधान ग्रन्थ पेरु-माल-तिरु-मोरि है। ये राजा होकर भी रामायण सुनते हुए इतने भावविभोर और आविष्ट हो जाते थे कि अपनी सेना को रावण की लंका पर आक्रमण करने का आदेश दे देते थे। रामानन्द के विचारों, सिद्धान्तों एवं साधनों के लिए कुलशेखर साहित्य अवश्य विचारणीय है।

उपर्युक्त-साहित्य में उपलब्ध विचारों के साथ रामानन्द के 'भास्कर' में प्रस्तुत विचारों की तुलना करने से बहुत-सी समानताएँ मिलतीं है। श्वेता-श्वरतर उपनिषद में वर्णित परा-भक्ति, कर्म-समर्पण या निष्काम कर्मयोग, ध्यानयोग, शरणागाते, गुरुभक्ति सम्बन्धी विचारों को 'भास्कर' में समान रूप से पाया जा सकता है। नारायणीयोपाख्यान के अहिंसा, भक्ति की कर्मकाण्ड, तप आदि से श्रेष्ठता, ऐकान्तिकता की विशेषताएँ भी भास्कर में उपलब्ध हैं, किन्तु कर्म की निस्सारता नहीं बतलाई गयी है और न तप की आवश्यकता का स्पष्ट

संकेत है । भास्कर में कर्म को, शास्त्र विहित कर्मों के सम्पादन को, लोक-संग्रह और लोकरक्षण के लिए आवश्यक बतलाया गया है । गीता का निष्काम कर्मयोग, शरणागति, ऐकान्तिक-धर्म, भक्ति और उपासना का स्त्री-शूद्र, सबको समान अधिकार-प्रदान—इन सभी विचारों को 'भास्कर' में स्वीकार किया गया है । गीता में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को महत्ता दी गयी है, किन्तु भास्कर में ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । कुछ संकेतों के आधार पर किसी प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'भास्कर' में भक्ति कर्म से श्रेष्ठ है ।

शंकराचार्य ने पांचरात्र मत की पूजा-उपासना-पद्धति के जो पाँच अंग (अभिगमन, उपादान, इज्या या पूजा, स्वाध्यायं और योग या ध्यान) बतायें थे, वे प्रायः सभी शब्दान्तर से भास्कर में मिलते हैं । नारद पंचरात्र में हरिपूजा के जो ६ अंग (उपास्य का स्मरण, नाम-गुण का जप और कथन, प्रणति,उनके चरणों में आश्रय ग्रहण, भक्ति सहित उनकी उपासना और पूर्णतया आत्मसमर्पण) बताये गये हैं, वे भी 'भास्कर' में किसी न किसी रूप में अवश्य मिलते हैं । पांचरात्र मत भक्ति और उपासना के क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार सबको समान रूप से प्रदान करता है । 'भास्कर' भी 'प्रपत्ति' साधन में किसी प्रकार भी जातिगत या योनिगत बंधन नहीं स्वीकार करता । अहिर्बुध्न्य संहिता में जीवात्मा को सर्वप्रकारेण परमात्मा का आश्रित माना गया है । इसी प्रकार भास्कर भी मानता है । कहा गया है कि प्रपत्ति से सभी प्रकार के सत्कर्मों के फल प्राप्त होते हैं । भास्कर में भी प्रपत्ति की इसी प्रकार श्रेष्ठता निरुपित है । 'भास्कर' में अहिर्बुध्न्य की तरह ही सुषुम्ना का महत्त्व स्वीकृत है । जिस प्रकार भास्कर में प्रपत्ति को मुक्ति का मुख्योपाय माना गया है, उसी प्रकार अहिर्बुध्न्य में भी । अहिर्बुध्न्य की तरह ही भास्कर में भी भक्ति के लिए यम, निमादि की आवश्यकता स्वीकृत है, यद्यपि दोनों ग्रन्थों में ये गौण उपाय बताये गए हैं ।

'भास्कर' अहिर्बुध्न्य की अपेक्षा नारद-पंचरात्र के अधिक समीप है । कुछ अन्तर भी है । नारद पंचरात्र में गुरु की जितनी महत्ता और महिमा गायी गई है, उतनी 'भास्कर' में नहीं । 'भास्कर' में गुरु को संस्कार करने वाले तथा भगवत्स्वरूप का ज्ञान देने वाले के रूप में मुख्य रूप से स्मरण किया गया है । अवान्तर रूप से यह भी बताया गया है कि उसकी कृपा भगवत्प्राप्ति भी करा सकती है । फिर भी नारद पंचरात्र के गुरु का आसन और उसकी शक्ति 'भास्कर' के गुरु में नहीं है । यहाँ तक कि पांचरात्र आगमों का अनुसरण करने वाले रामानुज के मत में भी नहीं है । तत्त्वतः गुरु को नारद पंचरात्र में हरि से अभिन्न कहा गया है, किन्तु 'भास्कर' में ऐसी कोई युक्ति नहीं मिलती । नारद पंचरात्र में जितने प्रकार की भक्ति बताई गई है, उनमें से अधिकांश 'भास्कर' में प्राप्त हैं । अहिंसा के परमधर्म होने की घोषणा दोनों ने की है । भक्ति शास्त्रीय ग्रन्थों के पाठ-श्रवण को 'भास्कर' और नारद पंचरात्र दोनों स्वीकार करते हैं । पाँच रात्रों का कृपातत्त्व स्पषटतया 'भास्कर' में मिलता है ।

नारद भक्तिसूत्र से 'भास्कर' में अपेक्षाकृत अधिक समानता है । भक्ति को परानुशक्ति-मानना, भक्ति की आनन्दमयता, मोक्षस्वरूपत्व, अनन्यता, समर्पण आदि तत्त्व स्पष्ट रूप से दोनों में मिलते हैं । नारद भक्ति सूत्र के अनेक सूत्रों पर एक साथ सम्बद्ध बिचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्र-रक्षण की आवश्यकता या शास्त्रोक्त कर्मों या कर्त्तव्यों का पालन तब तक ही आवश्यक है, जब तक भक्ति न उत्पन्न हो जाए । पतन की आशंका से तब तक उनका पालन करना आवश्यक बतलाया गया है । कुछ लोगों ने नारद के शास्त्ररक्षण का भिन्न अर्थ किया है । भक्ति के विरोधी कर्मों के प्रति उदासीनता के भाव का उपदेश नारद ने किया है, किन्तु 'भास्कर' ने इस विषय में कुछ नहीं कहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि 'भास्कर' के अनुसार वैदिक कर्मों का सम्पादन आवश्यक है । इस दृष्टि से विचार करने पर 'भास्कर' शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र के विचारों के अधिक

अनुकूल है। सम्पूर्ण शांडिल्य-भक्तिसूत्र और 'भास्कर' को एक साथ पढ़ने पर दोनों के परम्परावादी और मर्यादावादी दृष्टिकोण का पता चलता है। इसे अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है।

नारद तथा 'भास्कर' के कर्म संबंधी मतों की समीक्षा करने से स्पष्ट होता है कि 'भास्कर' नारद की अपेक्षा लौकिक-वैदिक कर्मों के सम्पादन के लिए अधिक चिंतित है। यह भी प्रतीत होता है 'भास्कर' नारद पंचरात्र और भक्ति सूत्र की अपेक्षा सामाजिक मर्यादारक्षण, लोकरक्षण, लोक-संग्रह को अधिक महत्त्व देता है वह भक्ति में सामाजिक पक्ष पर विशेष ध्यान रखने का समर्थक मालूम होता है। नारद भक्तिसूत्र में भक्ति की वैयक्तिक हार्दिक प्रेम-वृत्ति जहाँ अधिक महत्त्वपूर्ण है, वहीं 'भास्कर' के भक्त की भक्ति में सामाजिक मर्यादा और व्यवस्था को पर्याप्त-स्थान दिया गया है। भक्ति-सूत्र में भक्त के गम्भीर हृदय पक्ष का उद्घाटन है, जो किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध नहीं है, जब कि भास्कर में साम्प्रदायिक स्वर (यथा शर, चाप, ऊर्ध्वपुण्ड्र, नाम, मंत्र, माला, व्रत, उपवास, तीर्थ गमन, तीर्थ निवास, रथोंत्सव, रामके विशिष्ट नाम-रूप-गुण-आयुधादि) अधिकस्पष्टहै ।

नारद ने एकादशधा भक्ति का जो वर्णन किया है, उनमें से अधिकांश भेद 'भास्कर' में मिल जाते हैं। भास्कर में मुख्य रूप से सेवक-सेव्य सम्बन्ध विवृत है। नारद की एकादशधा भक्ति में दास्य तथा कान्तासक्ति नाम की भी भक्तियां हैं। 'भास्कर' में जो नवधा भक्ति बतायी गयी है, उसमें से स्मरण, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन आदि स्पष्टतया नारद में मिलती हैं। दोनों ही भक्ति साधन के लिए रूप, कुल, धन, क्रिया आदि का कोई भी बंधन स्वीकार नहीं करते। अहिंसा का आचरण तथा साथ ही सत्य, शौच आदि का आचरण दोनों ही भक्ति के लिए उपकारक मानते हैं।

इस प्रकार इस विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ तक भक्ति, भेद, आचार, प्रपत्ति, पूजा आदि का संबंध है, विभिन्न-दृष्टियों से नारद पंचरात्र, अहिर्बुध्न्य संहिता, नारद भक्तिसूत्र और 'भास्कर' में पर्याप्त समानताएँ हैं। यदि नारदीया भक्ति के स्वरूप की कोई रूपरेखा प्रस्तुत करनी हो, तो नारायणीयोपाख्यान, नारद पंचरात्र और नारद-भक्ति-सूत्रों के विवेचनों को ध्यान में रखा जा सकता है। इनमें से परम्परा विनिर्मुक्त आनन्दमय प्रेम मार्ग का निरुपण नारद भक्ति-सूत्र में मिलता है। अभी तक जो निष्कर्ष विद्वानों ने निकालें हैं, तदनुसार वैष्णव-मताब्जभास्कर आचार्य रामानन्द की प्रामाणिक रचना है और इसका महत्त्व विशेषकर इसलिए हैं कि इन्होंने कदाचित् पहली बार राम-भक्ति का इस प्रकार व्यवस्थित स्वरूप-निरूपण और प्रतिपादन इस ग्रन्थ में किया। यदि इसकी भूमिका पर विचार करना हो तो आल्वार भक्त कुलशेखर की रचनाओं की विस्तृत छानबीन करनी चाहिए।

★★★

भक्ति प्रपत्ति विवेक

भाषान्तर :— मुमुक्षुओं को जिन तीन तत्त्वों का विवेक आवश्यक है । उनमें प्रथम चित् दूसरा अचित् और तीसरा तत्त्व ईश्वर है । चित् का तात्पर्य चेतन जीवात्मा से है । दूसरे अचित् तत्त्व का तात्पर्य त्रिगुणात्मक प्रकृतिसंज्ञक जड़ द्रव्य से है । यह जड़ द्रव्य शरीर, इन्द्रिय और प्राणरूप में परिणत होकर इस चेतन जीव को माया से आवद्ध किये हुये है । ऐसे जीव स्वयं निर्मल, सर्वज्ञ आनन्दस्वरूप तथा साक्षात् सर्वेश्वर है । किन्तु अनादिकाल चक्र से प्रवृत्त कर्मसंचय के वशीभूत होने से शरीर का संबंध प्राप्त कर उसका ज्ञान संकुचित हो जाता है और वह अपने स्वरूप को भूल जाता है । इतना ही नहीं वह जिस शरीर को धारण करता है । कभी अज्ञान से अन्धा होकर काम क्रोध से अभिभूत ही पाप कर्म में प्रवृत्त हो उसके फलस्वरूप उत्तरोत्तर तीव्र दुःखों को प्राप्त करता है । कभी विवेक होने पर पाप से डरता हुआ पुण्य कर्म का आचरण कर सुख भी प्राप्त करता है । किन्तु इस प्रकार के पुण्य से प्राप्त होने वाला सुख नश्वर है और अनेक दुःख से विमिश्रित भी है । जब इस प्रकार का ज्ञान किसी जीव का हो जाता है तब वह संसार से निर्विण्ण एवं विरक्त होने लगता है और जनन मरण रूप इस संसार को त्यागने का विचार करने लगता है । उस समय उसे कोई दूसरा सहारा नहीं रह जाता । ऐसी दशा में शासन ही उसके एकमात्र पथप्रदर्शक हो उसको मार्गदर्शन इस प्रकार कराते हैं — अरे भाई ! सर्वज्ञ सत्यसंकल्प सर्वशक्त सर्वेश्वर भी कोई एक तत्त्व है जो हम लोगों के पुण्य से प्रसन्न हो कर सुख प्रदान करता है और पाप से रुष्ट होकर दुःख भी देता है । हम लोगों के द्वारा किये गये जिस कर्म से उसकी तुष्टि होती है वही पुण्य है और जिस कर्म से उसे चोट पहुँचती है वही पाप-कर्म है । हम लोग मुक्त तभी होंगे जब पुण्य तथा पाप प्रापक इन दोनों प्रकार के कर्मों से हमारी निवृत्ति होगी । शरीर का संबंध भी तभी नष्ट होगा । क्योंकि शरीर का संबंध नष्ट होने से ही हम आवागमन से मुक्त हो सकते हैं । ऐसा होने से केवल दुःख की आत्यान्तिक निवृत्ति ही नहीं बल्कि हम लोग उत्तमोक्तम लोक में भगवद्भक्तों एवं भगवान् के साथ नित्यानन्द का अनुभव करते हुए नित्य निवास भी करेंगे । इस प्रकार के अखण्ड मोक्ष साम्राज्य से पूर्व होने वाली संपूर्ण पुण्य और पाप से जीव की निवृत्ति तभी संभव है जब भगवत्प्रसाद सुलभ हो अब किस प्रकार भगवान् प्रसन्न होंगे इसके दो ही वैकल्पिक उपाय हैं प्रथम भक्ति अथवा दूसरी प्रपत्ति । इसलिये मुमुक्षुओं को भक्ति अथवा प्रपत्ति का आचरण अवश्य करना चाहिए ।

भगवान् का निरन्तर ध्यान करना भक्ति है । सच्चा भगवद्भक्त प्रातःकाल जागने से लेकर कर्त्तव्य या विहित जितने भी नित्य नैमित्तिक कर्म हैं उन्हें शास्त्रीय रीति से करते हुए भगवान् की आराधनापूर्वक उनके निवेदित परिशुद्ध अन्न से शरीर का निर्वाह करे और स्वाध्यायकाल में अथवा अन्य समयों में एकान्त तथा पवित्र स्थान में स्थिर एवं सुखपूर्वक आसन पर बैठकर अपने मन को भगवान् के स्वरूप कर्म तथा गुण का चिन्तन करे । यह क्रिया जब किसी प्रकार के व्यवधान से रहित हो निरन्तर अविच्छिन्न रूप से चालू रहेगी । तब उसे ध्यान कहा जायगा जो भगवत्प्रीतिकारक होगा । तब उसे भक्ति कही जायगी । जिस समय इस प्रकार की

अवस्था प्राप्त कर भगवान् के रूप कर्म और गुण में मन उत्साह युक्त दिखाई पड़े उसने कभी अलग न हो उनमें निरन्तर प्रीति करने लगे तब वही भक्ति प्रीतिरूपापन्नता भक्ति होती है ।

इस प्रकार की उपर्युक्त भक्ति के साथ जब 'योग' शब्द लगा दिया जाता है तब उसे भक्ति योग कहा जाता है । यही भक्ति जब निरन्तर अभ्यास से परिपक्व हो जाती है तब उचित समय आने पर वह मार्ग दर्शन के समान आकार धारण करने लगती है । यद्यपि इस प्रकार का ध्यान रूप अनुसंधान, प्रथम स्मृति रूप में आता है किन्तु अभ्यासातिशय की पटुता से वह साक्षात्कार जैसा दिखाई पड़ने लगता है यही दर्शन समानाकारता है । इस प्रकार की अवस्था में प्राप्त होने वाली भक्ति पराभक्ति कही जाती है । जो मोक्ष की साधन भूत होती है ।

यद्यपि भगवान् में श्रवण कीर्तनादि द्वारा सामान्य प्रीति भी भक्ति कही जाती है किन्तु जहाँ भक्ति को मुक्ति का साधन कहा गया है उन उन स्थानों पर ऊपर कही गई पराभक्ति ही भक्ति पद से ग्राह्य है । 'जहाँ ज्ञानान्मुक्ति' यह पद आया है वहाँ सामान्य रूप से कहा गया ज्ञान शब्द उसी पराभक्ति का विशेष पर्यवसायी हैं ।

भक्ति सुलभ तत्त्व नहीं है, क्योंकि हमारा मन सर्वथा स्वतन्त्र है । यह कभी भी हमारे वश में रहने वाला नहीं । जब हम इसे बलपूर्वक भगवच्चिन्तन में लगाते हैं, तब वह कुछ ही क्षणों के बाद विषयों की ओर भागने लगता है इसलिये भक्त को सर्वप्रथम अपने मन को वश में करने का उपाय करना चाहिये । वह उपाय कर्मयोग के अतिरिक्त दूसरा नहीं है । अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार विहित कर्मों में किसी एक को पकड़कर फलाभि-सन्धि की इच्छा से रहित हो कर्म करते रहने का नाम कर्मयोग है । इस प्रकार के कर्मयोग का अभ्यास करते रहने से हमारा मन निर्मल तथा वश्य होगा । जब मन वश में हो जाय तब शरीर इन्द्रिय प्राण और ज्ञान से व्यतिरिक्त चिन्मय अणुपरिमाण भगवत्परतन्त्र आत्मस्वरूप का ध्यान करना चाहिये । इसी का नाम ज्ञान योग है। इस प्रकार का ज्ञानयोग चिरकाल पर्यन्त अभ्यास करने पर आत्मसाक्षात्कार करा देता है । कर्मयोग भी सम्यगनुष्ठित होने पर मध्य में ज्ञान योग की विना अपेक्षा किये आत्मसाक्षात्कार कराने में समर्थ हो जाता है । इस प्रकार कर्मयोग के द्वारा अथवा ज्ञान योग के द्वारा जब आमतत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है और स्वस्वरूप की विशदता की उपलब्धि होने लगती है तब यह हमारी आत्मा जिसके परतन्त्र है जो निरुपाधिक हमारा स्वामी है, जिसकी किंकरता हमारा उत्तम पुरुषार्थ है उस परमात्मा में हमारे मन की स्वयं प्रवृत्ति होने लगती है । इस प्रकार के भक्तियोग के अनुष्ठान में फिर कोई भ्रम नहीं रह जाता ।

ऐसे तो बहुतों के लिये कर्मयोग भी दुष्कर ही है । विशेष कर इस समय तो वह सबके लिये ही दुष्कर है । अतः कर्मयोग के द्वारा मोक्ष की आशा व्यर्थ है किन्तु अशक्तों के लिए अभीप्ससित कर्मफल की साधनता होने के कारण शास्त्रों के द्वारा कही गई प्रपत्ति जिज्ञासुओं को मोक्ष प्रदान करती ही है । इसलिये कर्मयोग तथा ज्ञानयोग में अशक्त पुरुषों को प्रपत्ति से बढ़कर कोई दूसरा लघु उपाय नहीं है ।

प्रपत्ति का स्वरूप

हे प्रभो ! (मैं सर्वथा अशक्त हूँ) तुम्हीं हमारे उपाय बनो इस प्रकार की जो प्रार्थना है उसी को प्रपत्ति कहते हैं । इसका तात्पर्य इस प्रकार जानना चाहिये 'भगवान् के पास जाकर प्रार्थना करें हे प्रभो ! मैं मुक्ति चाहता हूं किन्तु मोक्ष के साधनभूत शास्त्र विहित कर्मयोग तथा ज्ञान योग से साध्य भक्तियोग करने में सर्वथा असमर्थ हूँ । इसलिये आप ही मेरे लिये भक्ति बनकर मेरी अभिलषित मुक्ति प्रदान कीजिये' इस प्रकार की

प्रार्थना का नाम प्रपत्ति है। आचार्यों ने प्रपत्ति के पाँच अंग इसके अतिरिक्त एक अंगी (अवयवी) इस प्रकार कुल मिलाकर प्रपत्ति के अंगों के स्वरूप को निर्देश किया है। हे प्रभो! अब से लेकर जो तुम्हें अनुकूल होगा उसी का आचरण करूँगा' इस प्रकार का अनुकूल संकल्प प्रथम अंग है। हे प्रभो! जो कर्म तुम्हें अभिभूत नहीं है उसका वर्जन करूँगा। इस प्रकार प्रातिकूल्य वर्जन प्रपत्ति का दूसरा अंग है। तुम्हें छोड़कर मेरे लिये कर्मयोग ज्ञान योग आदि कोई अन्य गति नहीं है इस प्रकार का प्रदर्शित करना प्रपत्ति का तीसरा अंग है। हे प्रभो! तुम्हीं हमारे उपाय बनकर मेरे अभिमत रूप सिद्धि की रक्षा कर सकते हो ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, इस प्रकार का महाविश्वास प्रपत्ति का चौथा अंग है। अतः तुम्हीं हमारे उपायान्तर स्थान में स्थित होकर हमारी अभिलषित सिद्धि रूप की रक्षा करो' इस प्रकार से गोप्तृप्त्व रूप वरण यह प्रपत्ति का पांचवां अंग है। यह मैं, अथवा जो मेरा है वह सब तुम्हारा है इसमें हमारा कुछ भी नहीं है अब हमारे अभिलषितसिद्धि रूप रक्षा के निष्पादन का भार तुम्हारा ही है, इसमें हम कुछ नहीं हैं। इस प्रकार अपने आत्मा की रक्षा का भार तथा रक्षण जन्य फल का भार भगवान् को समर्पित करना यह प्रपत्ति का छठा स्वरूप हुआ। जो अंगी कहा जाता है ऊपर कहे गये प्रपत्ति के पाँच अंग तथा एक अंगी इनको मिलाकर ही भगवद्भक्तों ने 'षड्विधा शरणागतिः' ऐसा कहा है।

'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये" सकृदेव प्रपन्नाय तवा स्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्योददाम्येतद व्रतं मम" सर्वान्धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं प्रज। अहं त्वां सर्वपोपेभ्यो मोक्षयिष्यामि' (गीता १८।६६।

इत्यादि प्रमाणवचनों से प्रपत्ति के द्वारा होने वाले मोक्षोपायों को जानने वाला पुरुष दुष्कर कर्मयोग ज्ञान योग से साध्य चिरकाल से अभ्यस्त भक्ति योग के द्वारा प्राप्त होने वाली अनादिकाल संचित अनन्त पापराशि के विध्वंसपूर्वक निरतिशयानन्द प्राप्तिरूप मुक्ति किस प्रकार कुछ ही क्षणों में अत्यन्त लघुभूत प्रपत्ति के द्वारा प्राप्त कर लेता है ? इस प्रकार का सन्देह यद्यपि हमारे विश्वास को विघटित कर सकता है। इसी कारण तत्त्वज्ञों ने 'उपायः सुलभश्चायं दुष्करश्च मतो मम' ऐसा भी कहा है किन्तु इस प्रकार की शंका को साधक अपने तत्त्व ज्ञान से से दूर कर प्रपत्ति पर दृढ़ विश्वास करे। क्योंकि इस मार्ग में साधक का प्रपत्ति के उन उन अंगों पर दृढ़ विश्वास आवश्यक है।

चाहे भक्ति हो चाहे प्रपत्ति हो वह साक्षात् हमें अभिमत फल प्रदान नहीं करती। क्योंकि दोनों ही अस्थायी एवं अचेतन है। किन्तु भक्ति तथा प्रपत्ति से संतुष्ट हो परमेश्वर ही अभिलषित फल प्रदान करता है। वह परमात्मा जिस प्रकार समर्थ लोगों के द्वारा स्वाधिकारानुसार अनुष्ठित वहुवायास से साध्य भक्ति द्वारा प्रसन्न होता है उसीप्रकार अशक्तों के द्वारा अपने अधिकारानुसार अनुष्ठित प्रपत्ति के द्वारा भी प्रसन्न होता है। क्योंकि वह सर्वज्ञ है अधिकारानुसार वह सभी को उन उन वांच्छित फलों को देने में समर्थ है। वह इतना बड़ा परमकारुणिक है कि अपना किसी प्रकार का स्वार्थ न रखकर स्वतः सबको उपकार के करने के लिये सर्वदा समुद्यत रहता है। वह समदर्शी है। कभी बलवानों का पक्षपात तथा निर्वलों की उपेक्षा नहीं करता। वह पूर्णकाम है हमारे बहुत बड़े आयास से साध्यफलों की उसे अपेक्षा नहीं है। अथवा स्वल्प प्रयास होने के कारण वह किसी से रुष्ट भी नहीं होता। वह सर्वशक्त है सर्वस्वतन्त्र है, क्षमानिधि है। अपारवात्सल्य का समुद्र है। वह हमारे द्वारा दीनतापूर्वक प्रार्थना किये जाने पर कोई उत्तम ऐसा कारण नहीं है कि उसे पूर्ण न करे। इस प्रकार की प्रक्रिया से उत्तम आचार्य के शरण में जाकर उनकी कृपाकटाक्ष से प्रदीप्त अपनी बुद्धि को विशद करने वाला शिष्य जब तत्त्व का विमर्श करने में प्रवृत्त होगा तब कोई कारण नहीं की उसे महाविश्वास उत्पन्न न हो।

यहाँ तक हमने यह प्रतिपादन किया कि भक्ति अथवा प्रपत्ति से प्रसन्न परमेश्वर ही फल देते हैं। भक्ति अथवा प्रपत्ति भगवान् को प्रसन्न करती है। प्रसन्न होने पर भगवान् फल देते हैं। अतः भक्ति और भगवान् दोनों ही फल के साधन हैं। उसमें भक्ति हम लोगों के प्रयत्न से साध्य है इसलिये उसमें साध्यत्व का व्यवहार किया जाता है। भगवान् स्वयं सिद्ध है इसलिए उनमें सिद्धत्व का व्यवहार किया जाता है। यद्यपि मुक्ति रूप फल साधनता में भक्ति और भगवान् दोनों ही उपायरूप से कहे गये हैं किन्तु चेतन होने के कारण तथा साक्षात् फलदातृत्व होने के कारण सिद्धोपाय स्वरूप भगवान् ही प्रधान है और अन्य भक्ति रूप साध्य उपाय अप्रधान्य है, यह बात भली प्रकार से जानी जा सकती है।

जब हम लोग भक्ति अथवा प्रपत्ति का अनुष्ठान करने लगते हैं उस समय 'अहमिदं करोमि' इस प्रकार का अहंकार तथा इससे हमारा अभिमत फल सिद्ध होगा इस प्रकार के साध्योपाय से फलदायित्व रूप अभिमान का प्रसंग उपस्थित होता है। इस प्रकार के अभिमान को दूर करने के लिए साध्योपाय भूत उपायत्व बुद्धि को त्याग कर भगवान् में ही भक्ति तथा प्रपत्ति का अनुष्ठान करना चाहिये। अर्थात् भगवान् ही मुझसे इस प्रकार का कर्म करा रहे हैं। ऐसा सत्संकल्प करते रहना चाहिये जिससे अभिमान न हो ऐसा भी किसी आचार्य का मत है--

भगवान् के द्वारा कराये जाने के कारण ही अपने कर्म से लेकर भक्त्यन्त कार्य करे। अपना सारा उपाय त्याग देवें और उन सभी क्रियमाण उपायों को भगवान् में समर्पित कर देवे।

भक्ति तथा प्रपत्ति मार्ग में जो जीव का कर्त्तव्य है वह वस्तुतः 'परात्तु तच्छुतेः' इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार भगवदायत्त ही है इसलिये भगवान् ही मुख्य उपाय रूप है। अन्य उपाय नहीं के बराबर है।

यहाँ पर उक्त श्लोक में उपायतां परित्यज्य' इस का अर्थ कोई आचार्य शिष्य में दृढ़ विश्वास उत्पन्न करने के लिये भक्ति अथवा प्रपत्ति दोनो ही मुक्ति के उपाय नहीं है वे अतिवाद का आश्रय लेकर ऐसा कहते हैं। उनके अनुयायी शिष्य वर्ग उसी प्रकार यथाश्रुत अनुसरण कर कहते हैं भक्तिस्वरूप के विरुद्ध है प्रपत्ति स्वभाव के विरुद्ध है ऐसा कहने वाले रामानुजीय परम्पंरा में दक्षिण के कलाभिधान के भीतर अवान्तर संप्रदाय विशेष के मतानुयायी हैं।

यद्यपि भक्ति मुक्ति में उपायरूप से कही गई है किन्तु आजकल उसका कोई आचरण करता नहीं दिखाई पड़ता है। प्रपत्ति यद्यपि उपाय नहीं है तथापि उसके आचरण का प्रसंग आज भी हो रहा है। कुछ लोग इसे इष्टापत्ति के रूप में स्वीकार करते हैं किन्तु वे सम्प्रदाय के रहस्य से अनभिज्ञ हैं। वैष्णवजगत् में प्रपन्नता को बढ़ावा देने वाले उसके मूल में एकमात्र स्थित शठकोपमुनि को कौन नहीं जानता। श्रीमद् यामुनाचार्य श्रीमद् भगवद् रामानुजाचार्य प्रपत्ति भक्ति का आचरण करने वाले थे यह बात तो सभी को अच्छी तरह से ज्ञात है ही। इसलिये प्रपत्ति का अनुष्ठान किसी ने नहीं किया यह बात नहीं। इसके अतिरिक्त जो लोग प्रपत्ति को मुक्ति के अनुपायरूप में मानते हैं वे भी प्रपत्ति का कभी उपेक्षित नहीं मानते। यदि भगवान् प्रपत्ति की अपेक्षा किये बिना ही किसी को मुक्ति प्रदान करते हो तो उनमें वैषम्य और नैर्घृण्य दोष की प्रसक्ति हो सकती है। इसलिये मुक्ति में प्रपत्ति की अपेक्षा तो है ही। यह बात दूसरी है कि वह उपायतया न होकर अधिकार संपादकतया हो। जो भगवत्प्रपन्न है वह अवश्य ही भगवान् से प्राप्त होने वाली मुक्ति का अधिकारी है। भगवान् उसे अवश्य ही मुक्ति प्रदान करते है। इसलिये प्रपत्ति को अनुपाय भले ही मान लिया जाय किन्तु उसका अनुष्ठान संभव है यह दोनो ही बात युक्तियुक्त हैं। यह तो लौकिक आचार्यो के द्वारा प्रदर्शित पद्धति है परन्तु इस काल में तो इस

संप्रदाय के अनुसरण करने वाले बहुत लोग भी हम प्रपत्ति का अनुष्ठान नहीं करते' ऐसा कहते हुये तर्क उपस्थित करते हैं जब तक भगवान् रामानुजाचार्य प्रपत्ति में लगे रहे तब तक भगवान् ने उन्हें कभी भी मोक्ष प्रदान प्रतिज्ञात नहीं किया किन्तु साक्षात् अथवा परम्परा या जिन लोगों का सम्बन्ध श्री रामानुज से हुआ उन सभी को मोक्ष प्रदान करने का वरदान उन्हें दिया। इसलिये रामानुज के संबन्ध मात्र में आने वाले हम लोगों उनके अन्तर्भूत हो जाने के कारण प्रपत्ति की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये ऐसा कहते हैं किन्तु इस प्रकार के ऐतिह्य में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं प्राप्त होता।

कुछ लोग ऐसा कहते हुये सुने जाते हैं कि आचार्य सम्बन्ध से ही जब हमारी मुक्ति संभव है तो हमें प्रपत्ति के अनुष्ठान की आवश्यकता ही क्या है ? कर्मयोग ज्ञानयोग भक्ति योग तथा प्रपत्ति इन चार उपायों से परे यह पाँचवाँ आचार्य सम्बन्ध नामक उपाय है। इस विषय में हमें यह बात जान लेनी चाहिये कि प्रपत्ति दो प्रकार की होती है एक स्वनिष्ठा दूसरी आचार्यनिष्ठा। अपनी मुक्ति के लिये अपने आप अनुष्ठीयमान प्रपत्ति स्वनिष्ठा है । स्वकीय पद से परिग्रहीत अपने शिष्यों के मुक्ति के लिये आचार्यों द्वारा अनुष्ठीयमान दूसरी आचार्यनिष्ठा प्रपत्ति है। उसमें आचार्य संबन्ध से मुक्ति का पंचम उपाय मानने वालों का यह अभिप्राय है कि जब शिष्य का सम्बन्ध आचार्य से हुआ तब परमकारुणिक आचार्य शिष्य की मुक्ति के लिये प्रपत्ति का स्वयं अनुष्ठान करता है ऐसा करने से शिष्य की मुक्ति अवश्यम्भावी है, इसलिये इस विषय में आचार्य द्वारा अनुष्ठित प्रपत्ति शिष्य की मुक्ति में हेतु है, केवल शिष्य भाव होने से मुक्ति नहीं होती। इसलिये जो आचार्य शिष्य की मुक्ति के लिये प्रपत्ति का आश्रय नहीं लेता ऐसे आचार्य सम्बन्ध मात्र से शिष्य की मुक्ति संभव नहीं होती। जो मानते हैं कि आचार्य संबन्ध मात्र से हमारी मुक्ति हो जायगी ने भ्रम में हैं।

इस विषय में कोई ऐसा भी कहते हैं कि जब शिष्य का पंचसंस्कार होने लगता है उस समय गुरुमन्त्र का उच्चारण करते हैं पश्चात् शिष्य उसका उच्चारण करता है इसलिए प्रपत्ति सिद्ध हो गई उसे पृथक् मानने की कोई आवश्यकता नहीं उनका यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं जिस प्रकार अष्टाक्षर मन्त्र का प्रथम आचार्य ने उच्चारण किया फिर उसके पश्चात् शिष्य ने उच्चारण किया जिस प्रकार उसका एक मात्र फल मन्त्र प्राप्ति है उसी प्रकार प्रकृत सिद्धान्त में भी मन्त्र प्राप्ति मात्र फल होने से प्रपत्ति के प्रसंग का सर्वथा अभाव ही है।

यहाँ यह बात जान लेनी चाहिये। शिष्य के ताप[१] पुण्ड[२] नाम[३] मन्त्र[४] और यज्ञ[५] रूप पंच संस्कार के समय जब आचार्य भगवदाराधन रूप यज्ञ का उपदेश करने लगते हैं उस समय भगवान् के पास शिष्य को ले जाकर 'लोकविक्रान्तचरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो' इत्यादि वाक्य पढ़ कर ही उसका प्रपत्ति संस्कार कराते हैं, इससे यह बात सिद्ध हो गई कि शिष्य के पंचसंस्कार काल में आचार्य उसकी मुक्ति के लिये प्रपत्ति का अनुष्ठान कर देते हैं। आचार्य संबन्ध से मुक्ति का उपाय बताने वालों का यह भी एक अभिप्राय हो सकता है, इसलिये इस आचार्य सम्बन्ध में भी प्रपत्ति का अनुष्ठान होता ही है। इस प्रकार विवेचना पूर्वकप्रपत्ति के विषय को निरुपण करने पर भी जो लोग इसमें श्रद्धा नहीं करते हैं वे प्रपत्ति के सिद्धान्त को अपने संप्रदाय से बहिर्भूत मानकर न केवल अपना किन्तु लोक का भी बहुत बड़ा अहित करते हैं।

उत्तरकलानिधानसंप्रदाय के मानने वाले श्रीमद् वेदान्तदेशिक के द्वारा व्यवस्थापित सर्वसंशयच्छेदिनी व्यवस्था का अनुसरण करते हुये अंगपंचक से सम्बन्ध रखने वाली प्रपत्ति को आचार्यनिष्ठ अनुष्ठान में विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। वे प्रपत्ति को उपाय न मानने वाले पूर्वाचार्यों का सिद्धोपायप्राधान्यप्रतिपादन में ही

तात्पर्य है ऐसा प्रदर्शित करते हुये शास्त्र विहित उपाय के अनुष्ठान में स्वरूप विरोध अथवा स्वभाव विरोध का प्रसंग ही नहीं आने देते किं बहुना वे 'प्रपन्नादन्येषां न दिशति मुकुन्दो निजपदम्' इस प्रकार की शास्त्र सिद्ध स्थिति का अनुसरण करते हुये बहुत से ग्रन्थों में संभावित होने वाली सभी शंकाओं का समाधान कर प्रपत्तितत्त्व का विशद निरुपण बहुत पहले कर चुके हैं।

★★★

सम्प्रदाय भेद और भारतीय समाज

—डा० श्यामसुंदर शुक्ल

हिन्दू धर्म की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि यह कोई ऐसा धर्म (रिलीजन) नहीं है जो अपने अनुयायियों के मात्र मंदिर, मस्जिद और चर्च से ही बाँधता हो बल्कि यह एक संश्लिष्ट और अनुभवों से संपुष्ट जीवन पद्धति है। यह व्यक्ति के प्रत्येक आचार-विचार में रचा-पचा और प्रतिबिंबित होने वाली जीवन शैली है। इसकी जीवनी-शक्ति और पाचन-क्षमता अद्भुत है। इसीलिए यह सनातन है, अक्षुण्ण है। इसमें विशिष्ट व्यक्तिगत विचारों और सिद्धान्तों को सम्मान देने की परम्परा है। अतः साधना सिद्ध और विद्या-विनय-गुण संपन्न महापुरुषों के तर्कसंगत, लोकोपयोगी तथा मार्गदर्शक सिद्धान्तों का सम्मान करने वाले, उन्हें अपनाने वाले समुदाय विशेष को विशिष्ट सम्प्रदाय, पंथ या मार्ग मानकर समाज ने उन्हें अपनी मान्यता के अनुसार आचरण करने, पूजा-उपासना करने या उपदेश देने की छूट सदा से प्रदान की है। तात्पर्य यह है कि इस समाज ने किसी को भी अपना संप्रदाय खड़ा करने से नहीं रोका, चाहे वह भले ही वृहत्तर समाज के लिए हितकारक न हो। फलतः सभय-समय पर विविध सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव, विकास और उनमें शाखाओं-प्रशाखाओं का प्रस्फुटन होता रहा। सांप्रदायिक या पंथिक अनेकता के होते हुए भी हिन्दू-समाज की आंतरिक अन्तुलन और अस्तित्व सुरक्षित रहा ।

जब हम धर्म, सम्प्रदाय और पंथ के उदय-विकास, संकुचन और विस्तारण की बात करते हैं तो हमें इनके वास्तविक स्वरूप और परस्पर के भेदक लक्षणों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

सम्प्रदाय — यह समासान्त शब्द ३ शब्दों के योग से बना है — (१) सम् (अव्यय) (२) प्र (उपसर्ग) (३) दाय (दा धातु का रूपान्तर) 'सम्' का अर्थ है — सम्यक् प्रकार से ; 'प्र' का अर्थ है, प्रकर्ष रूप से और 'दाय' का अर्थ है — जो दिया जाय। अतः इस पूरे शब्द का अर्थ हुआ — वह वस्तु, ज्ञान या सिद्धान्त, जो सम्यक् प्रकार से और प्रकर्ष रूप से दिया जाय। इसके व्याकरणिक या संघटनात्मक अर्थ के अतिरिक्त इसका जो लोक-प्रचलित अर्थ है, वह इस प्रकार है — वह भगवत्संबंधी सिद्धान्त या उपदेश, जो स्वयं भगवान् या किसी दैवी विभूति द्वारा उपदिष्ट होकर गुरुपरम्परा के द्वारा अथवा किसी प्रचारक आचार्य के द्वारा समाज विशेष में विख्यात या प्रचारित हुआ हो।

अतः किसी संप्रदाय के प्रवर्त्तन के दो मुख्य आधार होते हैं — (१) प्रवर्त्तक आचार्य और (२) प्रचारक आचार्य। भारतीय परंपरा में प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य के रूप में दैवी विभूतियों को ही मान्यता प्रदान की गई है। अधिकांश वैष्णव मतों में प्रवर्त्तक आचार्य का पद स्वयं श्री नारायण, श्री कृष्ण, महर्षि व्यास या शुकदेव मुनि को ही दिया गया है। यही बात शैव और शाक्त संप्रदायों के लिए भी लागू है।

धर्म — यह एक प्रकार से व्यापक नियमों के संकाय का सूचक शब्द है। किसी व्यक्ति या समाज विशेष की नैसर्गिक वृत्ति से लेकर उसके लिए विहित समस्त आचारों-विचारों का यह बोधक है। ईश्वर, परलोक, पुनर्जन्म, कर्म और कर्मभोग आदि के सिद्धान्त भी उसमें निहित होते हैं। एक धर्म में अनेक संप्रदाय और एक संप्रदाय में अनेक पंथ होते हैं। अतः धर्म संप्रदाय से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक अर्थ में गृहीत होता है। जैसे, हिन्दू धर्म एक धर्म है, परन्तु शैव, शाक्त, वैष्णव और जैन-बौद्ध अदि उसके अन्तर्गत विशिष्टधर्म है, परन्तु शैव, शाक्त, वैष्णव और जैन-बौद्ध अदि उसके अन्तर्गत विशिष्ट धर्म न होकर संप्रदाय ही माने गये हैं। फिर उनमें अनेक उपसंप्रदाय और पंथों का सन्निवेश है।

पंथ — इसका अर्थ मुख्यतया 'मार्ग' के अर्थ का बोधक है। पंथ मुख्यतः संप्रदाय - विशेष से ही उद्‌भूत होते हैं। प्रायः संप्रदायों के कालान्तर में दोषपूर्ण या समयानुकूल अप्रासंगिक हो जाने पर उनके कुछ प्रगतिशील अनुयायी संशोधन की दृष्टि से एक नया या विशिष्ट गुट बना लेते हैं, जो पंथ हो जाता है, वैसे कबीर पंथ, दादू पंथ, रैदासी पंथ आदि। प्रायः एक संप्रदाय के अन्तर्गत अनेक पंथ विकसित हो जाते हैं। यदि हिन्दी साहित्य के मध्ययुग पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत सैकड़ों छोटे-बड़े पंथ प्रादुर्भूत हुए। इन पंथों के प्रादुर्भावकर्त्ता संतों, महात्माओं और महापुरुषों ने संप्रदाय के मुख्य ढाँचे में ही थोड़ा संशोधन करके या किसी विशेष सिद्धान्त या आचार-विचार को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देकर अपने नाम पर एक अलग पंथ चला दिया। कई बार ऐसा भी हुआ है कि दूसरी या तीसरी पीढ़ी के किसी संत-महंत ने अपनी विशिष्ट परम्परा के किसी गुरु या आचार्य के नाम पर पंथ चला दिया। कबीर पंथ, सिक्ख पंथ या दादू पंथ स्वयं क्रमशः कबीर साहब, गुरुनानक देव और दादू दयाल जी द्वारा नहीं चलाये गये थे वरन् उनके शिष्यों ने तत्तद् पंथ चला दिये थे ।

इसी पृष्ठिभूमि में यहाँ हिन्दू समाज की साम्प्रदायिक स्थिति का विकासात्मक पर्यवेक्षण किया जा रहा है। इस समाज के तीन मुख्य सम्प्रदायों — शैव, शाक्त और वैष्णव तथा दो परवर्ती या आनुषंगिक सम्प्रदायों और पंथों पर एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास इस लेख में किया गया है। हिन्दू समाज में इतने संप्रदायों का प्रादुर्भाव समय-समय पर हुआ कि सबका परिचय देना एक लेख की सीमा के परे की बात है। हाँ, इनमें से कुछेक का नामोल्लेख मात्र करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री करने के बाध्यता है। भारत की संस्कृति निस्संदेह ५००० वर्ष प्राचीन है। कुछ अन्य प्रामाणिक आधारों के साक्ष्यानुसार यह सीमा और भी पीछे तक जा सकती है। भारत का सबसे प्राचीन साधना-संप्रदाय शैव मत है, और सर्वाधिक नवीन है बौद्ध मत। वैष्णव संप्रदाय इन दोनों से शक्तिशाली रहा है, पर यह शैव मत के बाद का और बौद्ध मत के पर्याप्त पूर्व का है। आज भी हिन्दुओं के जितने संप्रदाय या पंथ - उपपंथ हैं, वे इन्हीं तीनों की शाखाएं - प्रशाखाएं हैं।

(क) शैव मत-साधना और विस्तार : हड़प्पा और मुहिंजोदरो आदि की खुदाइयों तथा अन्य पुरातत्व संबंधी प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि शैवमत का प्रचलन ऋग्वेद के रचना-काल से भी पहले हो चुका था। यति, गारागीर, पाशुपत, कापालिक आदि उपसंप्रदाय आर्य सभ्यता के आगमन से पूर्व ही व्रात्य सभ्यता में अपनी जड़ें जमा चुके थे। व्रात्य जातियाँ शिव, कार्तिकेय और अम्मा की त्रिमूर्ति (डिवाइन टिरेड) की उपासना करती थीं। वस्तुतः शिव के ही ये तीनों रूप थे।[१] यहाँ तक कि मूर्तिपूजा के

---

[१] Heras - Religion of the Mohenjo-Daro People accarding to the inscription (Jounal of Bombay

साथ-साथ भिन्न-भिन्न संप्रदाय अपने निश्चित टीका, तिलक आदि के लिये भी सुसंबद्ध विधान बना चुके थे। श्री डी० ए० पाइ के शब्दों में "शैव मतानुयायी दोनों भुजाओं पर शिव-लिंग का चिन्हं अंकित करते थे, रुद्र सम्प्रदाय वाले मस्तक पर त्रिभुज का चिन्ह बनाते थे ; 'उग्र' लोग डमरू का चिन्ह रखते थे, जंगम लोग पत्थर का शिवलिंग लिये रहते थे और मस्तक पर त्रिशूल का चिन्ह धारण करते थे, पाशुपत शिवलिंग का चिन्ह मस्तक, छाती और दोनों भुजाओं पर अंकित किये रहते थे, 'मल्लारों' और 'कालमुखों' ने भी अपने लिए अलग चिन्ह निश्चित कर रखे थे।"[१] पंचविंश ब्राह्मण में 'अर्हतों' और 'योधों' को भी व्रात्यों का एक उप-संप्रदाय बताया गया है।[२] शैवमत की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए अब तो विद्वानों को प्रचुर प्रमाण प्राप्त हो गए हैं।

शैवमत का विस्तार — महाभारत के शांतिपर्व में ५ दार्शनिक मतों का उल्लेख मिलता है। (१) सांख्य (२) योग (३) पांचरात्र (४) वेदीय और (५) पाशुपत। पाशुपत मत में भी दो उपमार्ग या लकुलीश मत।[३]

(१) पाशुपत मत — इसमें रुद्र ही आराध्य देव हैं। इस मत की मान्यता है कि रुद्र एक था, है और रहेगा। वही एकमात्र चिरंतन सत्य है। अन्य सभी कुछ शून्य है। वह सभी स्थावर जंगमादि में विराजमान है। उसको जानने के लिये नियंत्रित्त आहार-विहर और श्रवण-मननादि के साथ अद्वैत भक्ति आवश्यक है।[४]

आचार — वे लोग शरीर में राख मलते थे, क्योंकि यह काय्, वाक् और चित्त की समरसता का प्रतीक है।

(२) लकुलीश पाशुपत मत — ऐसा कहा जाता है कि लगुड़ (गदा) धारण करने वाले कोई महात्मा इस मत्त के प्रवर्तक थे। प्रथम शती तक यह मत दक्षिण से गुजरात में आ गया था।[५] यह आद्य पाशुपत मत का कोई नवीन उपसंप्रदाय था।

सिद्धान्त — श्री माधवाचार्य जी ने 'सर्व दर्शन संग्रह' में इसके दार्शनिक विचारों और आचारों की आलोचना करते हुए जो संकेत्त दिये हैं उसके आधार पर हमें पता चलता है कि परम शिव भगवान् लकुलीश ही विश्व के कर्ता, धारणकर्ता, शासक और एकमात्र सत्य है'। योग द्वारा आत्मा और परमात्मा का मिलन संभव है। साधक के लिये दिन में तीन बार स्नान करके शरीर पर राख या धूल का मलना तथा यज्ञादि कर्म के साथ जप, ध्यान, धारणादि का करना आवश्यक बताया गया है। पंच विषयों और आसक्तियों से मुक्ति पाना भी अत्यन्त आवश्यक है।[६] इस मत का विस्तार कितना हुआ यह तो कहना कठिन है, पर आगे चलकर राजस्थान इस मत का प्रधान केन्द्र बना। अब भी वहाँ के मुख्य द्वारों पर दो बाहों वाली शंकर की मूर्तियां मिलती हैं। इनमें शिव के एक हाथ में लगुड़ और दूसरे में नारियल होता है। कानों में मुद्रा, बाल चिपके हुए और पद्मासन की मुद्रां

University, V. V. P. 15)

[१] Religious sect in India among the Hindus - p. 69. by D.A. pat.

[२] पंचविंश ब्राह्मण — १७/५३/२

[३] महाभारत (बंबई एडीशन) शांतिपर्व, पृ० ३४९, श्लोक संख्या-६४ और ६७।

[४] ऋग्वेद में रुद्र का वर्णन बहुत ही संक्षिप्त है, लेकिन अथर्ववेद और यजुर्वेद में उसका महत्त्व अवश्य प्रतिपादित हुआ है। यजुर्वेद में 'रुद्राध्याय' का एक स्वतंत्र अध्याय होना ही सिद्ध करता है कि रुद्र का महत्त्व आर्यों द्वारा भी धीरे-धीरे स्वीकृत होता जा रहा था। 'सहस्राक्षः,' 'शितिकंठ', 'नीलग्रीवः,' 'व्युप्तकेशः' आदि विशेषण भी यजुर्वेद में प्रयुक्त है' और बड़े ही क्रूर हैं। वे अग्नि-शिखा के प्रतीक हैं। अतः उनके ऊर्ध्व लिंग की कल्पना अग्नि-शिखा ऊपर उठने का प्रतीक हो सकती है।

[५] Journal of the Royal Asiatic socity (Bombay Branch) on Ekalingfi stone, xx.p.151.

[६] सर्वदर्शन संग्रह- पृ० ६०—६५,

मूर्तियों की विशेष बातें हैं।

(३) कापालिक – 'मैत्रेयी उपनिषद्' में कपालिन् (शिव) के उपासकों को 'कषाय कुंडलिनः', कुतर्की, ऐन्द्रजालिक तथा तस्कर कहा गया है ।[१] कथा सरित्सागर में भी कापालिकों का उल्लेख है । मालव और आभीर देश में केन्द्रित होकर यह मत पूरे देश में फैल गया था ।

सिद्धान्त – मोक्ष के विषय में उनके विचार चार्वाकों जैसे ही थे । वे आनन्द विहीन आत्यंतिक दुःख-विनाश को मुक्ति का स्वरूप स्वीकार नहीं करते थे । उनके विचार से मुक्ति-प्राप्त साधक शिव के समान होकर पार्वती द्वारा प्राप्त समस्त सुखों का उपभोग करता है । उनका लक्ष्य काम साधना की सिद्धि ही है । भैरव इनके आराध्य देव हैं ।[२]

आचार – वे खून से तर मानव खोपड़ी (कपाल) लिये रहते थे । गले की माला हड्डियों की होती थी । मनुष्य के बालों द्वारा तैयार एक धागा गले में होती थी ।[३] वे अन्य सम्प्रदायों की निन्दा करते थे । मदिरा पान और मैथुन का भी उनमें प्रचार था । 'ॐ नमः शिवाय' का जप करते थे ।[४] श्री विभूति के नाटक 'मालती माधव' में अघोरघंट के भयानक कृत्यों के उल्लेख है ।[५] . सिद्धियां प्राप्त करने के लिये नरबलि की प्रथा इनमें थी । इनका खान-पान सामान्य दृष्टि से बड़ा ही घृणित माना जाता था ।

(४) कालमुख – शैव संप्रदाय में कालमुखों का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है । ईसा की नवीं शती से १४वीं शती तक इस संप्रदाय का विकास सतत् होता रहा । दक्षिण भारत में इनका बड़ा आदर था । ये लोग मस्तक के ऊपर काला चिन्ह धारण करते थे, अतः कालमुख कहलाये । शैव मन्दिरों से संबद्ध मठों में इन लोगों ने शिक्षा की बड़ी ही सुन्दर व्यवस्था की थी । कई तो राजगुरु भी बन गए थे । उनमें से सर्वेश्वर शक्ति (१२५५ई), रुद्राशक्ति (१२४०ई) वामशक्ति, क्रियाशक्ति, हरिहर और देवराज आदि प्रसिद्ध हैं । चालुक्य राजाओं ने इस सम्प्रदाय के विकास में अद्वितीय सहायता पहुंचाई थी । दक्षिग भारत का बेलगांव शैव शिक्षा का केन्द्र था, जहां अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों का प्रणयन किया गया । शिक्षा संस्थानों में शिक्षा के अतिरिक्त भूखों, अंधों, अपाहिजों, गायकों; वादकों, साधुओं, क्षपणकों, हंसों, परमहंसों आदि को भोजन-वस्त्र भी दिया जाता था ।[६]

आचार-विचार – ऐसा कहा जाता है कि ये लोग खप्पर में जल पीते थे, श्मशान की राख मलते थे, बड़ा सा दंड लिये रहते थे, बलि देते और मदिरा पीते थे, बालों में रुद्राक्ष की चूड़ियां धारण करते थे, जटा रखते थे, और गुरु-दीक्षा लेकर अपने को ब्रह्मण की कोटि में समझते थे ।

(५) नाथ सम्प्रदाय – हिन्दी का संत-साहित्य नाथ सम्प्रदाय का जितना ऋणी है, उतना अन्य किसी सम्प्रदाय का नहीं । 'कबीर, दादू आदि संत कहीं योगियों की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं, और अपनी बहुत सी

---

[१] मैत्रेयी उपनिषद् - (कलकत्ता - १९१९ई०) पृ० ७/८,

[२] D. S. Shastri - the lokayat and Kapalikas, 9. H. XII, P. 131.

[३] वृहत् संहिता, ९७/१३/१४,२०,

[४] महेन्द्र वर्मन (जैन), फिर शैव) मत्तविलासप्रहसन ।

[५] मालती माधव (नाटक) अंक - ५,

[६] E. P. Rice-Mysore Garett\ No. 43-on Vratya system of Religion\ P.245\

मान्यताओं को उसी टकसाल से निकालते हैं, जिससे योगियों ने निकालकर अपने बाजार में चलाया था।[१] डॉ० पीताम्बर बड़थ्वाल जी के भी विचार इस दृष्टि से महत्त्व के हैं। उनके कथनानुसार 'निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है। भक्ति धारा का जल पहले योग के ही धार से बहा था।[२]

नाथ सम्प्रदाय हिन्दुओं और बौद्धों का एक तांत्रिक सम्प्रदाय माना जाता है। आदिनाथ शंकर इसके प्रर्वतक बताए जाते हैं। गोरक्षनाथ तो केवल संगठनकर्त्ता मात्र थे। इस संप्रदाय के अनुयायी योगी, गोरखनाथी या कनफटा कहे जाते हैं। ऋषिकेश, गोरखपुर, देवीपत्तन (तुलसीपुर), गोरखटीला (काशी), गोरखक्षेत्र (पेशावर), श्रीनगर (गढ़वाल) पशुपतिनाथ और शंभुनाथ (नेपाल) तथा राजपूताने और बंगाल के अनेक स्थलों पर इनके मंदिर तथा केन्द्र अब भी विराजमान हैं। इनके आचार-विचार के विषय में ब्रिग्स की सूचना के अनुसार- गुरु से दीक्षा लेने बाद शिष्य का कान तेज चाकू से चीर दिया जाता था, और उसमें एक मुद्रा जो कभी-कभी २ औंस तक के वजन की होती थी, पहना दी जाती है। यह मुद्रा मिट्टी सोने या सींग की बनी होती है। ये मस्तक पर त्रिपुंड का चिन्ह धारण किए हुए, हाथ में एक खप्पर, धूपदानी, दंड, त्रिशूल या त्रिदंड लिए हुए, कंधे पर छोटी सी झोली लटकाए हुए, जटाजूटधारी, इधर-उधर घूमते दिखाई पड़ते थे, जादू टोने का चमत्कार दिखाते थे, हाथ देखकर भविष्य बताते थे, झाड़-फूँक में निपुण होते थे और अपने को 'वैद्य' भी घोषित करते थे और कोई-कोई वृक्षपूजक भी थे। कुत्ते, बिच्छू, और भालू के बच्चे पकड़ना इनके शौक का विषय था। वे नौ नाथों और ८४ सिद्धों की पूजा करते थे। इनके परम पूज्य देव भैरव थे। अब भी वे कई लाख की संख्या में निवास कर रहे हैं।'[३]

' मत्स्येन्द्र, गोरख, जालंधर, चर्पट, मंगल, चौरंगी, गोपीनाथ, प्राणनाथ और चंबनाथ– ये ही इनके नौ नाथ माने जाते हैं। इन नामों के क्रम कई रूपों में मिलते हैं। कहीं-कहीं इनको पारिभाषिक नामों द्वारा भी संबोधित किया गया है।[४]

(६) रसेश्वर संप्रदाय – स्वामी माधवाचार्य ने इसका उल्लेख स्पष्ट रूप से किया है। इस संप्रदाय में पारद का बड़ा महत्व है। पारद शिव-शक्ति के सर्जन-तत्व का प्रतीक है। पारद में शंकर का अंश और गन्धक में पार्वती का सर्जनात्मक अंश विराजमान माना जाता है। इन दोनों का मिलन आरोग्यदायक और दारिद्र्यनाशक माना गया है। इन दोनों से अनेक प्रकार की औषधियां बनती हैं, उनके सेवन से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। कुछ लोगों के विचार से यह संप्रदाय नाथ संप्रदाय का ही एक उपपंथ है।

(७) अघोरी संप्रदाय – यह वाममार्गी शैव तथा शाक्त उपासकों का संप्रदाय है। अघोरेश्वर (शंकर) और अघोरी माता (पार्वती) के ये लोग उपासक होते हैं। ऐसा कहा जाता कि ये मुर्दे, मल-मूत्र आदि भी खा जाते हैं। नशीली वस्तुओं के सेवन के अतिरिक्त बिच्छू, छिपकली आदि भी पकड़ लेते हैं। गिरनार और आबू

---

१. श्री सिद्धिनाथ तिवारी, निर्गुण काव्य दर्शन - पृष्ठ६४,

२. योग प्रवाह - पृ० ७७

३. Briggs-Gorakh Nath and Kanphata yogies (Calcutta 1938) p.23

४. तांत्रिक प्रभाव के फलस्वरूप नाथ संप्रदाय में भी आगे चलकर गुह्य साधना स्वीकृत हो गई। इसके फलस्वरूप गुरुपूजा, मठ-मंदिर निर्माण और सामान्य सी विशेषताओं के साथ अलग-अलग पंथों की स्थापना की होड़ लग गई। परिणामतः लक्ष्मण नाथी, मस्तनाथी, कानिपातंथी, कालवेलिय, बामारग, सँपोलिया, भाईनाथी, रतननाथी, प्रेमनाथी, पारसनाथी, कपिलानी, गंगनाथी, छोटी दरगाह और बड़ी दरगाह आदि इसके अनेक उपपंथ हो गये।

इनके प्रधान केन्द्र हैं। इन्हें मंत्रसिद्ध मानते हैं।

इसी प्रकार 'सिद्धान्ती शैव', 'ऊर्ध्वबाहु', 'शर श्री', 'ऊर्ध्वमुखी', 'जलधर तापसी', 'जलाश्रयी', 'फलाहारी', 'दूधाधारी', 'अलूण', 'कार्णेय', 'नवरी', 'गुडर', 'सुरवर', 'उखर', 'करलिंगी', और 'नागा', आदि कई अन्य पंथों का भी अस्तित्व मिलता है, जिनका योगदान संस्कृति के विकास में विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

शैव दर्शन का विकास – इतना तो स्पष्ट है कि व्रात्य सभ्यता एकेश्वरवाद के अधिक निकट थी, जब कि ऋग्वेद की सभ्यता बहुदेववादी (Monotheist) हो गई थी। ऋग्वेद में इंद्र, वरुण, सूर्य, अग्नि जिस किसी देव का वर्णन आरंभ किया गया है, उसे ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करनें का प्रयत्न किया गया है, यद्यपि अन्त में अवश्य इन सबका परिहार किसी एक श्रेष्ठतम सत्ता में करने का प्रयत्न दिखाई देता है।[१] उपनिषद काल में रुद्र के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की प्रतिष्ठा दिखाई देती है।

आगे चलकर शैव दर्शन दो भागों में विभाजित हो गया – (१) वेदांतिक और (२) आगमिक। अद्वैत दर्शनावलंबियों के लिये 'मांडूक्य', 'मैत्रेयी' और 'अथर्वशिर' आदि आदर्श उपनिषद् ग्रंथ हैं। आगमिक शैव संप्रदाय बाद में ४ अलग-अलग संप्रदायों में विभाजित होकर विकसित हुआ। आगम काल में जिस चार दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख डा० फर्कुहर ने किया है, वे निम्नलिखित है – (१) संस्कृत शैव सिद्धान्तवाद, (संस्कृत स्कूल), (२) तमिल शैव सिद्धान्त, (३) कश्मीरी शैव सिद्धान्त और (४) वीर शैव मत।[२] इनमें से वीर शैवमत ही भक्ति के विकास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। जबकि कश्मीरी शैवसिद्धान्त का दर्शन विशेष व्यावहारिक तथा सर्वांगपूर्ण है।

(ख) शक्ति की उपासना का विकास – प्रागैतिहासिक अवशेषों के आधार पर विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि जिस प्रकार सुमेर देश में अण, एनलिल और अम्मा का त्रिदेवात्मक रूप पूजित था, उसी प्रकार भारत की प्रागैतिहासिक संस्कृति में भी शिव, मुरगन (मारूगण) और अम्मा की त्रिमीर्ति की उपासना प्रचलित थी । वैदिक साहित्य में सरस्वती, भारती, उषा, पृथ्वी, अदिति, इला आदि देवियों का उल्लेख है, पर अनार्य शैवों की 'अम्मा' से इन देवियों का स्वरूप भिन्न है। देवी (अम्मा) के इन उपासकों (एकव्रात्यों) को अथर्ववेद में 'पुंश्चली' कहा गया है। आरण्यकों के काल में ही यह 'अम्मा' आर्यों की अन्य देवियों की प्रगति के साथ बढ़ते-बढ़ते दुर्गा, कात्यायनीं, कराली, वरदा, अम्बा, छन्दों की माँ, वेदमाता और सरस्वती आदि कई रूपों में स्मरण की जाने लगी। महाभारत में तो अर्जुन, अश्वत्थामा तथा अन्य वीरों को दुर्गा, काली या अन्य देवियों की उपासना करते हुए भी बताया गया है।

मार्कण्डेय पुराण, चंडीशतक (वाणभट्ट), मालती माधव (भवभूति), सौन्दर्यलहरी (शंकराचार्य) आदि संस्कृत के परवर्ती ग्रंथों में शाक्तमत की प्रचण्डता का पूरा संकेत दृष्टिगोचर होता है। भारतीय धर्मसाधना के द्वितीय उत्थान काल तक इन देवियों का पूर्ण रूप से विकास हो गया था। यहाँ तक कि 'ग्रामदेवता' के रूप में उनकी स्थिति गाँव-गाँव में मान ली गई और उनकी पूजा का विस्तृत विधान भी प्रस्तुत कर दिया गया। लोहे और पीतल तक में भी दुर्गा और काली की उपस्थिति मानी गई।

---

१. एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। – ऋ० १.१६४.४६,

२. श्वेताश्वतरोपनिषद – अध्याय-४,

शाक्त संप्रदाय—परवर्ती शक्त संप्रदाय दो रूपों में मिलता है– (१) शास्त्रानुमोदित शक्ति की उपासना का मार्ग, जिसे दक्षिणाचारी उपासना पद्धति कहते हैं और (२) तांत्रिक रूप से शक्ति की उपासना करने का मार्ग, जिसे वाममार्गी उपासना पद्धति कहते हैं। प्रथम प्रकार की पद्धति के प्रधान आचार्य श्रीमत् शंकराचार्य जी माने जाते हैं।[१]

सिद्धान्त—शाक्तमत में जीवन तीन प्रकार के माने जाते हैं– (१) पशु (तामसी वृत्ति के लोग), (२) वीर (राजसी प्रवृत्तिवाले) और (३) दिव्य (जिनमें सत्व गुण का प्राधान्य हो) पशुत्व से दिव्यत्व प्राप्त करना ही शक्ति के साधक का चरम लक्ष्य होता है।

जहाँ तक उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रश्न है, दोनों मार्गों के अनुयायी इसे मानते हैं पर आचार संबंधी नियम एक दूसरे से भिन्न हैं। दक्षिणाचारियों में शास्त्र-सम्मत आचार मान्य हैं, पर वाममार्गी साधन में इसके विरुद्ध अन्य आचार प्रक्रिया स्वीकृत है। इनकी साधना गुह्य है, जिसमें सभी बहिर्गामी इंद्रिय प्रवृत्तियों को अन्तर्गामी बनाने के लिये और मनोमारण के लिये नाना प्रकार के कायक्लेशदायक उपायों का विधान किया गया है। अघोरियों और कौलों की साधना बड़ी ही वीभत्स और कठोर मानी जाती है।

कौल मार्ग — शक्ति (कुल) को अपनी साधना का मूल मानकर चलने के कारण यह मार्ग कौल मार्ग कहलाया। योगसाधना द्वारा मूलाधार से कुंडलिनी को उद्बोधित करके सहस्रारचक्र में स्थिर शिव के साथ संयोग से जो अमृत रस, महासुख या महारस प्राप्त होता, है वह साधक को सिद्ध (अष्टसिद्धियों युक्त) बना देता है, और अमरत्व तथा अजरत्व प्रदान करता है।

कैलमार्ग के आद्य प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ माने जाते हैं। वज्रयान की भाँति यह भी गुह्य साधना है, अतः गुरु द्वारा सविधि दीक्षित साधक को ही इसका रहस्य बताया जा सकता है। इस मार्ग में जप-तप, यज्ञ-याग की अधिक प्रतिष्ठा नहीं है। जाति-पाँति का भेदभाव इन लोगों को मान्य नहीं है। संभवतः शाक्त मत भी ब्रह्मण धर्म के विरोधस्वरूप उठ खड़ा हुआ। था। बाद में इसमें विकृत बैद्ध साधना के अधिकांश तत्व प्रविष्ट हो गए होंगे। जहाँ शैव कापालिक मत 'कपाली' शंकर को प्रधानता प्रदान करता है, वहाँ कौल मत कुल (शक्ति) का उपासक है। परवर्ती संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य में इन कौलों के करतूतों की यत्रतत्र चर्चा मिलती है।

१०वीं शती वि० से लेकर १४वीं शती तक तंत्रानुमोदित गुह्य साधना का भारत में खूब प्रचार रहा। इसने तत्कालीन सभी संप्रदायों को प्रभावित किया और सभी प्रमुख धार्मिक संप्रदायों में कुछ ऐसी शाखाएँ अवश्य निकल पड़ीं जो नामभेद से भिन्न, पर साधना रूप में एक संमान दिखाई देती हैं। किसी ने शक्ति को प्रज्ञापारमिता, तारा, सुन्दरी आदि कहा, किसी ने त्रिपुरा, भैरवी, चंडिका, गुर्गा, कपालिनी, महर्षिमर्दिनी आदि नामों से संबोधित किया और किसी ने महाशक्ति या महालक्ष्मी कहकर याद किय। बौद्धों का व्रजयान और सहजयान, शैवों का कापालिक मत, शाक्तों का एक बड़ा समूह और वैष्णवों का सहजिया मत इसके प्रमाण हैं।

(ग) वैष्णव साधना और उसका सम्प्रदायगत विकास — वैदिक युग अनार्य और आर्य, शिव और विष्णु

---

[१] Payne– The Shaktas. P. 24.

के समझौते का युग था। इनमें से एक अपनी संस्कृति की रक्षा में व्यस्त था, दूसरा उसे मिटाकर अपनी संस्कृति के विस्तार में रत था। विष्णु आर्यों को बड़े ही शक्तिशाली अधिदेव थे। वे सूर्य के पर्यायवाची थे। उन्हें अपनी रश्मियों से समस्त जगत् को व्याप्त कर लेने वाला (यस्य परमं मदं अवभाति भूरि), तीव्र गतिवाला (ऊरुगायः) तथा सदैव दिव्य प्रकाश से प्रकाशित रहने वाला (यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः) बताया गया है। इसी प्रकार अन्य जितने भी विशेषण विष्णु संबंधी मंत्रों में मिलते हैं, वे निस्संदेह सूर्यवाची प्रतीत होते हैं।

ब्राह्मण काल में यह सूर्यवाची विष्णु शब्द यज्ञ वाची हो गया। उन्हें सोम के प्रतिनिधि रूम में भी मान्यता मिली। चूँकि सोम पोषक गुण समन्वित है अतः विष्णु भी पोषक या रक्षक देव के रूप में स्वीकृत हुए। विष्णु के अवतारों की कल्पना भी इसी युग में की गई। वैष्णव भक्ति का उत्स ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। परन्तु इसका व्यवस्थित विकास सात्वतों से लेकर गुप्तों के शासनकाल तक होता रहा। इन दोनों शासन कालों में लगभग १० शताब्दियों का अन्तराल है। ईसा से लगभग ३०० वर्ष पूर्व तक पांचरात्रमत का प्रादुर्भाव हो चुका था जो आगे चलकर भागवत या सात्वत मत के रूप में विकसित हुआ। अतः ईसवी सन् से पूर्व लगभग १ सहस्र वर्षों की वैष्णव उपासना को इसका प्रथम उत्थान युग मानना अनुपयुक्त न होगा।

पांचरात्र मत – इसमें परब्रह्म सगुण और निर्गुण – दोनों रूपों में स्वीकृत है। इस सम्प्रदाय में परमतत्त्व, मुक्ति, योग, भोग और संसार – इन पाँच विषयों का निरूपण मिलता है, इसीलिए इसे पांचरात्र मत कहा गया है। इसमें साधनों के भी ५ व्यापार बताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं – (१) अभिगमन (देवालय में जाना), (२) उपादान (पूजा की सामग्री), (३) स्वाध्याय (अध्ययन, मनन और नामजप आदि), (४) इज्या (पूजा) और (५) योग। वैदिक यज्ञों की मान्यता होते हुए भी इस मत में जीवहिंसा घृणित एवं वर्ज्य मानी गई है।

वैष्णव धर्म का यह नवीन संघटन वेद के देवता विष्णु, दर्शन के देवता नारायण और आभीरों के देवता गोपाल के समन्वय से ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में हुआ था। गुप्त वंश के शासन काल में भागवत धर्म ने ही वैष्णव धर्म का रूप धारण किया। इसी समय विष्णु के १० अवतारों को भी मान्यता प्रदान की गई। फिर भी राम और कृष्ण को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ।

वैष्णव संप्रदाय का द्वितीय उत्थान

आडवार – आलवारों और नायनारों ने दक्षिण भारत में जो प्रेम की धारा प्रवाहित की, वह अपनी सीमा में न समाकर बाहर छलक चली और उत्तर भारत की अपेक्षाकृत सूखी साधना की क्यारी भी उसके जलदान से हरी-भरी होने लगी। आलवारों को वैष्णव परम्परा में ४५० ई०पू० से २५० ई० पू० तक के बीच का माना जाता है, परन्तु पाश्चात्य विद्वान् इनका काल ११वीं शती के बाद तक ले जाते हैं।[१] डॉ० कृष्ण स्वामी आयंगर इन कवियों को छठी शताब्दी के बाद का मानने के पक्ष में हैं।[२] ये आलवार अर्द्धशिक्षित किन्तु शुद्धहदय और निष्कपट भक्त जान पड़ते हैं। इनमें पोयगै आलंवार (सरोयोगी), भूतत्तालवार, मधुरकवि, कुलशेखर, विष्णु चित्त, गोदा (अण्डाल) विप्रनारायण (भक्तपद रेणु), मुनिवाहन और तिरुमंगेयालवार आदि विशेष

---

[१] Dr. S. K. De-Vaishnava faith and movement,page 21.

[२] J.M. hooper-Hymns of the Alvars, p.9-11.

उल्लेखनीय हैं।[1] डॉ० आयंगर ने इनमें से कुछ के नाम एक श्लोक उद्भुत करते हुए गिनाए हैं –

भूतं सरश्य महदाहृदयभट्टनाथ, श्री भक्तिसार कुलशेखर योगिवाहन।
भक्तांघ्रिरेणु परकालमतीन्दुमित्रान्, श्री मत्परांकुश मुनि प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥[2]

'प्रबन्धम्' (तमिलवेद) के अतिरिक्त अन्य बहुत सी इनकी रचनाएं वैष्णव भक्ति-प्रवाह विस्तार में सहायक हुई हैं। इन आलवारों ने आचार्यों के लिए अत्यन्त उर्वर भूमि तैयार कर दी थी।

श्री सम्प्रदाय – श्री रामानुज का वैष्णव भक्ति आन्दोलन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने श्री शंकराचार्य के अद्वैतदर्शन की ही जोरदार आलोचना नहीं की, बल्कि उनके स्मार्त धर्म की भी खूब खिल्ली उड़ाई। उन्होंने बताया कि जीव और जगत् ब्रह्म के स्वगत अंग हैं, अतः उनकी सत्ता का निषेध उचित नहीं है। ज्ञान, आनन्द, दया आदि गुणों से युक्त होने के कारण ब्रह्म निर्गुण नहीं हो सकता। माया ब्रह्म की शक्ति है, अतः वह सत्य नहीं हो सकती। जगत् भी मिथ्या नहीं है। ब्रह्म और जीव का वही संबंध है, जो अग्नि और उसके स्फुलिंगों में होता है। ब्रह्म में तुच्छ जीव एकाकार नहीं हो सकता, अतः उनमें द्वयता अनिवार्य है। जीवन्मुक्ति संभव नहीं है, विदेह मक्ति ही वरेण्य है। सेवक-सेव्य भाव से ही मुक्ति मिल सकती है, 'अहं ब्रह्मास्मि' से तो साधक में अहंकार का प्रवेश हो जाता है।[3]

आचार्य रामानुज ने भक्ति के क्षेत्र में वर्णभेद की श्रृंखला ढीली कर दी, जिससे भक्ति का मार्ग सबके लिये उन्मुक्त हो गया। उन्हीं की शिष्य परम्परा में हुए स्वामी रामानन्द के माध्यम से यह उदार चिन्तन-धारा हिन्दी की संत परंपरा तक आयी अतः संत साहित्य के अध्ययन में श्री सम्प्रदाय का बहुत बड़ा महत्व है। इस संप्रदाय का सगुण भक्ति धारा के साहित्य और चिन्तन पर भी अमिट छाप है।

माध्व मत (सनक संप्रदाय) – श्री संप्रदाय के १०० वर्ष बाद माध्व मत का प्रादुर्भाव हुआ। स्वामी माध्वाचार्य (पूर्णप्रज्ञ, आनन्ददतीर्थ आदि अन्य नामधारी) द्वारा प्रवर्तित यह मत आध्यात्मिक पक्ष में द्वैतवादी तथा आचार पक्ष में भक्तिवादी है। इस मत के दर्शन को 'भेदवाद' कहते हैं। कर्नाटक में यह तीव्रगति से बढ़ा और उत्तर भारत में भी इसका त्वरित एवं व्यापक प्रसार हुआ।

श्री माधवाचार्य की शिष्य परंपरा ही में चैतन्य महाप्रभु का भी उदय हुआ था, जिनके नाम पर स्वतंत्र रूप से **चैतन्य संप्रदाय का** प्रवर्तन हुआ। मध्व के प्रमुख शिष्य पद्मनाभ थे, फिर क्रमशः नरहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिन्धु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेन्द्र, जयधर्म, पुरुषोत्तम, ब्राह्मण्य, व्यासतीर्थ, लक्ष्मीपति, माधवेन्द्र पुरी, ईश्वर भारती और चैतन्य आदि हुए। इस संप्रदाय के दीक्षागुरु ब्रह्मण या संन्यासी ही होते हैं। इनकी बाह्य साधना बहुत कुछ शैव नायनारों से मिलती-जुलती है। वृन्दावनीय साधना और साहित्य पर इस मत का अक्षुण्ण प्रभाव है।

---

[1] १. वैष्णव धर्म-परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ८१, पाद टिप्पणी।

[2] २. Early history of Vaishnavism - p. 19\

[3] ३. पं० बलदेव उपाध्याय – भागवत संप्रदाय, पृ० २१२–१६.

विष्णुस्वामी संप्रदाय — यह एक महत्वपूर्ण वैष्णव संप्रदाय था जो दशवीं शताब्दी में ही विष्णुस्वामी द्वारा प्रवर्तित हो चुका था। पं० परशुराम चतुर्वेदी के विचार से — 'विष्णुस्वामी के इष्टदेव नृसिंह भगवान् जान पडते हैं, कुछ लोग नृसिंह और गोपाल को उनका इष्टदेव बताते हैं— श्री विष्णुस्वामी द्वैतवादी ही सिद्ध होते हैं।'[१] इस मत और इसके प्रवर्तक के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है। लोगों ने अनुमानों के द्वारा अपने-अपने ढंग से निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है।

निंबार्क संप्रदाय — इसे 'हंस सप्रदाय', 'सनकादि संप्रदाय' या 'देवर्षि संप्रदाय' के नाम से भी पुकारा जाता है। इसके प्रवर्तक स्वामी निंबार्काचार्य जन्म सन् १९१४ ई० के लगभग तैलंग ब्राह्मण कुल में बेलारी (दक्षिण भारत) के निंबापुर ग्राम में हुआ था। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर 'वेदान्त पारिजात सौरभ' नामक भाष्य लिखकर अपने मत का पोषण किया है। उनके मत के सिद्धान्तों को समझने के लिए निंबार्क स्वामी का 'दशश्लोकी' अपेक्षकृत अधिक महत्वपूर्ण है। श्रीनिवास, औदुम्बर, गौरमुख तथा लक्ष्मण भट्ट आदि क्रमशः इनकी शिष्य परंपरा में आते हैं। इसी परंपरा में आने वाले केशव काश्मीरी के शिष्य श्रीभट्ट ने सर्वप्रथम हिन्दी में रचना आरंभ की थी।

इस संप्रदाय में शान्त, दास्य, वात्सल्य, सत्य और माधुर्य इन सभी प्रकार के भक्तिमार्गों का विधान है, पर माधुर्य भक्ति को ही 'उत्तमा भक्ति' माना गया है। श्रीभट्ट जी के शिष्य हरिव्यास जी ने 'रसिक' संप्रदाय की नींव डाली थी। राधा को प्रधानता देनेवाले 'राधवल्लभी' और 'हरिदासी' मत भी निंबार्क संप्रदाय से ही विकसित हुए हैं। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित 'हरिदासी' मत का ही एक नाम 'सखी संप्रदाय' है। निंबार्क सम्प्रदाय में परशुराम देवाचार्य का भी स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने कबीर आदि की भाँति निर्गुण ब्रह्म की उपासना का भी विधान किया था और मधुर साधना सम्प्रदाय में जाति-पाँति, वर्ग तथा लिंगभेद के नियमों को शिथिल करने का यथासंभव प्रयत्न किया था। निंबार्क संप्रदाय से प्रभावित इन सभी उप-संप्रदायों ने हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य को अनेक कवि-रत्न प्रदान किए।

वैष्णव भक्ति का तृतीय उत्थान

(१) रामावत संप्रदाय — स्वामी रामानंद जी सं० १३५७ वि० में प्रयाग के एक कान्यकुब्ज परिवार में पैदा हुए थे।[२] उन्होंने काशी में अपनी साधना का केन्द्र बनाया था। ब्रह्मसूत्रों पर रचित उनका 'आनन्द भाष्य' सर्वमान्य ग्रंथ है। उन्होंने ब्रह्म को राम नाम से अभिहित किया है और राम के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को माना है। इन संप्रदाय की विशेषता यह है कि विशिष्टाद्वैत संप्रदाय की परंपरा में होकर भी इसमें श्री संप्रदाय की मान्यताओं से कई भिन्न प्रकार की विचारधाराएं प्राप्त होती हैं। इसमें जाति-पाँति, वर्ण, लिंग आदि के भेद शिथिल हैं। आचार-परंपरा भी सीमित है। सच पूछा जाय तो स्वामी रामानंद से धर्म को युगानुकूल, सर्वगत और व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। उन्होंने अपने मत को लोकभाषा के माध्यम से प्रस्तुत कर उसे लोकग्राही बनाने का जो प्रयत्न किया, वह बड़ा ही साहसपूर्ण कार्य कहा जा सकता है, क्योंकि इसके लिए उन्हें तत्कालीन पंडितों के कठोर कोप का भाजन बनना पडा था।

श्री रामानंद जी, आचार्य रामनुज की १४वीं शिष्यपरंपरा में आते हैं, परन्तु अपने गुरु स्वामी राघवानंद की

---

[१] वैष्णव धर्म — परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ९५,

[२] भंडारकर-वैष्णविज्म शैविज्म एन्ड अदर माइनर रेलिजस सेक्ट्स, पृ. ८७

स्वतंत्र विचारधारा का इन पर इतना अधिक प्रभाव है कि श्री संप्रदाय की परंपरा में इनका मत एक क्रांतिकारी परिवर्तन कहा जा सकता है। रामावत संप्रदाय की मान्यता है कि राम एक हैं जो जगत् के सर्जक, पालक और संहारकर्ता हैं। वे अशेष गुणों की खानि हैं। गुरु की सहायता से, कर्मफल का न्याय करके, भक्ति के ७ नियमों (विवेक, चित्तशुद्धि, स्मरण, जपादि का अभ्यास, यज्ञादि-पूजाकर्म, सत्य, आर्जव, दया-दानादि का पालन, अनवसाद और सांसारिकता का त्याग) का पालन करते हुए साधक को राम के परम धाम की प्राप्ति हो सकती है।

स्वामी रामानंद के महत्त्व के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन सर्वथा उचित है — 'स्वामी रामानंद संस्कृत के पंडित, उच्च ब्रह्मण कुलोत्पन्न और एक प्रभावशाली सम्प्रदाय के भावी गुरु थे। उन्होंने देशी भाषा में कविता रची और ब्रह्मण से चांडाल तक को राम-नाम का उपदेश दिया। उनके हाथ से छूकर लोहा सोना हो गया।[१] साथ ही यहाँ एक भी उल्लेखनीय है कि १५वीं से लेकर १९वीं शती के मध्य निर्गुण और सगुण भक्ति साधना से संबद्ध सैकड़ों संप्रदाय या पंथ अस्तित्व में आये परन्तु वे सभी किसी न किसी रूप में स्वामी रामानन्द जी के ऋणी हैं।

(२) चैतन्य मत — इस मत का दर्शन 'अचिन्त्यभेदाभेद' कहलाता है। चैतन्य मत की मान्यता है कि वृन्दावन में भगवान् गोपाल की उपासना करनी चाहिए। प्रभु की गोपी-कल्पित भक्ति ही अधिक श्रेयष्कर है। प्रेम ही व्यक्ति का महान् पुरुषार्थ है। श्रीमद्भागवत उपासना के लिये आदर्श कृति है।[२]

(३) पुष्टिमार्ग — श्री वल्लभाचार्य (जो इस मत के प्रवर्तक थे) आंध्र देश के 'काकरवाड़' नामक स्थान में सन् १४८० ई० में तैलंग ब्रह्मण कुल में पैदा हुए थे। उनका पितृकुल वैष्णव भक्त था ही, काशी में जहाँ उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई, वहाँ भी उन्हें भक्ति का ही वातावरण मिला। वृन्दावन इस समय वैष्णवी भक्ति, विशेषतया कृष्ण–भक्ति का केन्द्र था। श्री माधवाचार्य की कृष्णोपासना और श्री विष्णु स्वामी की गोपालोपासना, बालकृष्णोपासना का नवीन मार्ग पाकर और भी बलवती हुई।

ब्रह्मसूत्र के 'अणुभाष्य' में वल्लभाचार्य ने जिस दार्शनिक मत का पोषण किया उसे "शुद्धाद्वैत-वाद" कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रभु की कृपा ही पुष्टि है और इसे प्राप्त करना ही साधक का परम पुरुषार्थ है। 'पुष्टि' की प्राप्ति पर अधिक आग्रह होने के करण ही यह मत पुष्टि मार्ग कहलाया। यह मार्ग अन्य वैष्णव मार्गों की अपेक्षा अधिक प्रवृत्तिमार्गी है। गृहस्थों के लिए इस मार्ग ने उपासना का द्वार अपेक्षाकृत अधिक उदारतापूर्वक उन्मुक्त कर दिया था। भागवत तथा अन्य भक्तिपोषित पुराणों के आधार पर पूजा-पद्धति का विस्तृत विधान इसमें किया गया है। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का लगभग एक चतुर्थांश वल्लभ मत से प्रभावित है। सूरदास, नंददास, कुंभनदास आदि अष्टछाप के कवियों से लेकर स्वामी हरिदास, नागरीदास, मीरा आदि सैकड़ों भक्त-कवियों ने इस मत से प्रेरणा ग्रहण की थी।

(४) स्वामीनारायण संप्रदाय — जहाँ 'राधावल्लभी संप्रदाय', 'हरिव्यापी', 'गोकुलेश', 'सखी', 'भावक', 'मार्गी' और 'हरिदासी' आदि वैष्णव संप्रदाय गुह्यता की ओर बढ़े, वहां गुजरात का 'स्वामी नारायण संप्रदाय'

---

[१] हिन्दी साहित्य की भूमिका — पृ. ४७–४८।

[२] पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय-भगवत संप्रदाय, पृ० ५१९ पर उद्धृत एक श्लोक का भावर्थ।

जिसे 'उद्धवि संप्रदाय' भी कहते हैं और जो पुष्टिमार्ग की ही एक शाखा है, उसमें आडंबर कम और पूजाविधान शिथिल है। इसीलिए यह संप्रदाय गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान के संत कवियों को अपनी ओर खींच सका और उन्हें प्रभावित भी किया।

(५) महापुरुषिया संप्रदाय — चैतन्य मत के प्रवर्तन से पहले ही आसाम में इसका प्रचार हो चुका था। इसके प्रवर्तक श्री शंकरदेव (जन्म सं०—१५०६) बताए जाते हैं। इस मत का आधार विशिष्टाद्वैतवाद ही है। इसमें ब्रह्मचर्य और योग का विशेष महत्व है और उद्धव जी आदर्श भक्त माने गए हैं। इस मत के उपदेश बहुत कुछ कबीर आदि के जैसे ही है, जिनमें जाति-पाँति और पूजा-पाठ के प्रवचनों की निन्दा की गई है।[१] इस मत से प्रभावित **'दामोदरीय'** और **'हरिदेवीय'** संप्रदाय बाद में चैतन्य मत के प्रभाव में आ गए।

इसी प्रकार बंगाल के अन्य मत भी चैतन्य मत के विचारों से प्रभावित हुए जिनमें **'सहजिया, किशोरभाजा, बाउल, दरवेश, जगन्मोहिनी, गौरांग सेवक** और **स्पष्टदायक** आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।[२]

(६) पंचसखा मत — उत्कल में वि० की १६वीं शती पूर्वार्द्ध में बलरामदास, अनंतदास, यशोवंतदास, जगन्नाथदास और अच्युतानंददास नाम के पाँच भक्त-कवि हुए। यद्यपि पाँचों भिन्न-भिन्न जाति के थे और भिन्न-भिन्न स्थान में पैदा हुए थे, तथापि उनकी 'वाणी' के तत्व एक समान थे। ये सभी प्रेमाभक्ति के पोषक थे। चैतन्य महाप्रभु की पुरी यात्रा का प्रभाव उन पर पड़ा हो, तो संभव नहीं है। इस मत में जाति-पाँति के भेदों और बाह्याचारों को कोई स्थान नहीं है। इनकी मान्यताएं सगुण-निर्गुण दोनों से समन्वित हैं और १७वीं शती के संत दरिया आदि सन्तों की मान्यताओं में प्रतिबिंबित हो रही हैं। संक्षेप में यदि कहें कि परवर्ती बौद्ध मत से प्रभावित उत्कल का पंचसखा वैष्णव मत परवर्ती संत मत की पूर्वी शाखा ही है, तो अत्युक्ति नहीं होगी। कबीर के शिष्य धर्मदास ने कबीर मत की गद्दी यहाँ भी स्थापित की थी, इसमें किसी को सन्देह नहीं है।

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि उपरोक्त सभी वैष्णव मतों में राधा का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। राधातत्त्व की प्रधानता स्वीकार करने वाले सभी संप्रदाय प्रायः तांत्रिक साधना से प्रभावित हैं। 'नारायण पांचरात्र' और रूपगोस्वामी की 'उज्ज्वलनीलमणि' में इस बात को स्वीकार किया गया है। राधा की तंत्रों में प्रतिष्ठा है और वे कृष्ण की आह्लादिनी महाशक्ति है।[३] जहाँ तक राधा तत्त्व का विशुद्ध शक्ति के रूप में ग्रहण हुआ और शास्त्रीय परंपरा से संबंध बना रहा, वहाँ यक संप्रदाय की विशुद्धता भी बनी रही, पर तांत्रिक बौद्ध साधना के प्रभाव में जैसे शैव और शाक्त मत विकृत हुए वैसे ही उनके साथ-साथ वैष्णव मत भी हुआ, सहजिया वैष्णव मत इसका प्रमाण है।

(७) सहजिया वैष्णव मत — वौद्ध धर्म के महायान मत का ही वज्रयान और सहजयान के रूप में विकास हुआ। वैष्णव मत के प्रभाव में आकर इसी सहजयान ने अपनी समस्त मान्यताओं के साथ वैष्णव मत में प्रवेश किया। डॉ० प्रभात मुखर्जी के विचार से-'बौद्ध संप्रदाय की सहज साधना यद्यपि नाथ संप्रदाय से प्रभावित होकर

---

१. हरिमोहन दास - शंकरदेव - ए स्टडी, पृ० ७०—८०,
२. वैष्णव धर्म — परशुराम चतुर्वेदी, वृ० १०५,
३. डॉ० सुशील कुमार दे — वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट, पृ० २०—२२,

शैव मत की ओर बढ़ी, तथापि उसमें वैष्णव साधना के तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक थे।[1] ऊपर उड़ीसा के जिस पंचसखा मत का उल्लेख किया गया है वह इसी मत का शुद्ध संस्करण प्रतीत होता है।

यह विशुद्ध तांत्रिक भक्तिमार्ग है, जिसमें गोपीभाव की प्रेमाभक्ति मान्य है। प्रेम की पूर्णता, विरह की संपन्नता और काम की विशुद्धता पर इन लोगों ने अधिक जोर दिया है। बंगाल के बाउल मत, साईं मत, दरवेश मत और आसाम के कर्त्ता भजा मत इससे प्रभावित हैं।

(८) महानुभाव पंथ— गुजरात का अच्युत पंथ ही महाराष्ट्र का मानभाव पंथ या महानुभाव पंथ है। यह एक रहस्यवादी कृष्णोपासक पंथ है, जिसके प्रवर्तक भरूच (गुजरात) के राजा हरपाल देव (चक्रधर, १२-१३ वीं शती) थे। यह पंथ नाथ पंथ से अधिक प्रभावित दिखाई देता है। यद्यपि इसके अनुयायी कृष्णोपासक हैं और उनकी भक्ति मधुर भाव की भक्ति जैसी प्रतीत होती है पर अन्य दृष्टियों से वे नाथपंथी परंपरा में ही आते जान पड़ते हैं। दत्तात्रेय और कृष्ण समान रूप से इन्हें मान्य हैं। मराठी प्राचीन साहित्य को इस पंथ की देन महत्वपूर्ण है।

इस पंथ की आचार्य परंपरा में दामोदर पंडित (१३वीं शती वि०) का स्थान विशेष उल्लेखनीय है। महानुभाव पंथ में दीक्षित होने के पूर्व वे नाथ मतावलंबी थे।

(९) बारकरी संप्रदाय— किसी पुंडरीक नामक नाथसिद्ध (१३वीं शती वि० उत्तरार्द्ध) ने बारकरी पंथ का प्रवर्तन किया था। यह नाथ पंथ से प्रभावित निर्गुणोपासक भक्ति संप्रदाय है। इस पंथ का दर्शन अद्वैताद्वैत से मिलता-जुलता दिखाई देता है। ज्ञानदेव, नामदेव, एकानाथ तथा तुकाराम जैसे सिद्ध महापुरुष इस पंथ में हो चुके हैं।

(१०) मध्यकालीन निर्गुण साधना संप्रदाय— पंथ प्रवर्त्तन की गति १५वीं शती से १९वीं शती के बीच सहसा विस्फोटक रूप धारण कर लेती है और पंथों की एक बाढ़ सी आती दिखाई देती है। यद्यपि इस प्रवृत्ति को गोसाईं तुलसीदास ने अपनी कतिपय उक्तियों द्वारा अंटकाने और प्रबुद्ध जनों द्वारा अग्राह्य बनाने का प्रयास अवश्य किया परन्तु इससे उन्हें सफलता नहीं, मिली। 'दंभिन्ह निज मत कल्प करि प्रगट किये बहुपंथ' या 'जिमि कुपंथ मन चलत खगोसा' आदि कहकर प्रवर्तित हो रहे विविध समसामयिक पंथों को गो० तुलसीदास ने बृहत्तर समाज के लिए अग्राह्य बताया परन्तु "साखी सबदी दोहरा कति किहिनी उपखान, भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहिं बेद पुरान" वाले मतों की विकास यात्रा अनिरुद्ध गति से आगे बढ़ती रही।

हिन्दी साहित्य के मध्ययुगीन इन साधना पंथों में ऐसे जो अनेक पंथ या मत जुड़ गये उनमें से कुछेक के नाम इस प्रकार गिनाए जा सकते हैं—

अकाली, अनन्त, अलखधारी, आया, आवा, उदासी, उदासीन, औघड़, कबीर पंथ (द्वादश उपपंथों सहित), खालसा, गरीबदासी, चरणदासी (शुक संप्रदाय) दरिया, दादूपंथ, धरनीश्वरी, धामी (प्राणनाथी या महाराजी पंथ) नांगी, नामधारी, निरंजनी, निर्मली, पलटूपंथ, पानप पंथ, पीपा पंथ, बारकरी, बाबालाली, बाबरी, बिश्नुई,

---

[1] Madeaval Vaishnavism in Orisa (Calcutta 1940) by Prabhat Mukharji- P. 107-108.

मलूकदासी, रविदासी (रैदासी) रवि भाण संप्रदाय, राथास्वामी मत, रामकबीरपंथ, रामसनेही, लालपंथ, शिवनारायणी, सतनामी, सरभंग संप्रदाय, साईंमत, साथ, साहिबपंथ, सिक्ख, सीतारामीय, सुथराशाही, सेन और सेवापंथी आदि।

(घ) बौद्ध थर्म– मध्यकालीन निर्गुण भक्ति आन्दोलन के लिये पृष्ठभूमि तैयार करने में वैष्णव और नाथ संप्रदाय का जितना महत्त्व है, उतना ही बौद्ध थर्म के सहजयान संप्रदाय का भी है। विद्वानों का मत है कि सिद्ध सरहपाद, लुईपाद, कंबलीपाद और कृष्णपाद आदि ने नाथ संप्रदाय की आथारशिला तैयार की थी जो संत मत का प्रेरणा-स्रोत माना जाता है।

नश्वर और क्षणिक जीवन तथा जगत् में आकर संस्कारों के प्रवाह से मुक्त होने के लिये बुद्ध भगवान् की शिक्षा शदियों तक भारत में अत्यन्त उपयोगी रसायन सिद्ध हुई थी। दुःखों के आत्यन्तिक विनाश के लिए इस थर्म की देन बड़ी ही महत्वपूर्ण है।

आचरण की विशुद्धता और दार्शनिक गहराई के कारण यह मत एशिया और यूरोप में दूर-दूर तक फैल सका । यूनान, मिश्र, असीरिया, तुर्की, मध्य एशिया, ईरान, चीन, जापान, इंडोचाइना, वर्मा और लंका आदि देशों में इसका खूब प्रचार हुआ। राजाओं और व्यापारियों के कारण इसका प्रसार अत्यन्त द्रुतगति से हुआ।

संप्रदायवादी प्रवृत्तियों का उदय– भगवान् बुद्ध के निर्वाण के २०० वर्ष बाद ही 'स्थविरवाद' (थेरवाद या हीनयान) 'सर्वास्तिवाद' (महायान) से अलग हो गया। महायान मत में गृहस्थों का बाहुल्य था, जबकि हीनयान स्थविरों का मत था। महायान मत ने ब्राह्मण थर्म से पीड़ित बहुत सी निम्नवर्गीय वर्णसंकर जातियों के लिये द्वार खोल दिया। संघ के नियम शिथिल हो गए और बहुत सी बातें ऐसी हो गईं, जिससे इसका प्रचार तीव्र गति से बहुत दूर-दूर तक हो गया।

१५० ई० के आसपास महायान की भी कई प्रशाखाएँ हो गईं। नागार्जुन द्वारा प्रवर्तित माध्यमिक या शून्यवादी मार्ग इनमें अथिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ। सांख्ययोगदर्शन से प्रभावित असंग का योगाचार मार्ग ईसा की चौथी शती में बड़े थूमथाम से आगे बढ़ा। महायान की इन दोनों शाखाओं ने ५ वीं शती में मंत्रयान नामक एक तीसरे संप्रदाय को जन्म दिया, जो भारत के बाहर तेजी से फैला। पहले तो महायान संप्रदाय वैदिक सम्प्रदाय के साथ-साथ हीनयानी सिद्धान्तों की भी आलोचना करता रहा, पर जब महायान के भी कई उपसंप्रदाय हो गए तब वे आपस में ही तर्कवितर्क करते हुए टकराने लगे। हाँ, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि हीनयान की अपेक्षा महायान का समाज के प्रत्येक स्तर पर समान और व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा।

व्रजयाग– ८वीं शती वि० के आरंभ से मंत्रयान का एक नया विकास प्रारंभ हुआ, जिसे 'व्रजयान' कहा जाता है। व्रज का अर्थ दृढ़, अच्छेद्य, अभेद्य आदि होते हैं, परन्तु परवर्ती बौद्ध थर्म में इसका अर्थ 'शून्य' समझा गया है। व्रज इन्द्र का शस्त्र तो है ही, इसका एक अर्थ मणि भी होता है। व्रज युगनद्ध की एक मुद्रा भी है।[१] संभंवतः अमोघवज्र के युगनद्ध रूप की कल्पना के मूल में यही बात है।

---

१. वज्रोली– यह योगसाथना की एक मुद्रा है, जिसके लिये एक नारी की भी आवश्यकता होती है। इन साथना की विथि बताते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है–

बाद में इसके भी कई उपसंप्रदाय हो गए, जिनमें 'क्रियातंत्र यान, चर्यातंत्र यान, महायोगतंत्र यान, योगतंत्र यान और अनुत्तरतंत्र यान' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस समय तक महायान संप्रदाय भी अनेक उपसंप्रदायों में विभाजित हो गया था, जिनके नाम– गोकुलिक, एकव्यवहारिक, चेतिवाद, पंगत्तिवाद (प्रज्ञप्तिवाद), बहुसूत्तक, महासंधिक, लोकोत्तरवाद, बहुश्रुतीय, कुक्कुलिक, पूर्वशैल, अपरशैल, धम्मगुत्तिक, वज्जिपुत्रक, धम्मुत्तरिक, छन्दागारिक, सम्मतीय, संकंतिक, सूत्रवादिन, राजगिरिय, बजरिय, भद्रयानिक, ताम्रशाटिय, विभज्यादिय, आवन्तक, वत्सपुत्रिय, जैतवनीय और महाविहारवासिन् आदि थे।

सहजयान– वज्रयान का ही एक नाम सहजयान भी मिलता है। डॉ० भारती ने इसे वज्रयान की कोई स्वतंत्र शाखा मानते से इनकार किया है। उनके कथनानुसार वज्रयान की एक ऐसी शाखा जिसमें सहज साधना पर अधिक बल दिया जाता था, सहजयान है। वज्रयान के सिद्ध सहजयान में भी गिनाए जाते हैं। संभवतः वज्रयान का ही आगे चलकर सहजयान नाम पड़ गया। बौद्ध-सिद्धों की मान्यता के अनुसार बिना किसी कायक्लेश या कठिन नियम-पालन के ही जो साधना सिद्धि (निर्वाण) प्राप्त करा सके, वही सहज साधना है और जो संप्रदाय इस सहज साधना का प्रतिपादन करता है, वह सहजयान है।

वज्रयान का ही एक परवर्ती नाम कालचक्रयान भी मिलता है। इसका प्रचार तिब्बत की ओर अधिक था। यह एक योगी संप्रदाय है और संभवतः वज्रयान की ही एक विशिष्ट शाखा है।

जहाँ तक जैन धर्म के साम्प्रदायिक विकास का प्रश्न है, इसमें सम्प्रदाय या पंथ-निर्माण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं दिया गया। यह पूर्णतः आचारवादी बना रहा। इसमें इन्द्रियनिग्रह तथा मनोनिग्रह के लिए कायक्लेशदायक कठोर तप का विधान होने के कारण इसमें पाखंडों का प्रसार बहुत ही कम हुआ। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के अधिकाधिक आग्रह के कारण यह संप्रदाय अपनी शुद्धता को बनाये रखने के प्रयास में ही रत रहा। जब तक इसे राज्याश्रय मिला, यह फलता-फूलता रहा परन्तु उससे वंचित होने पर अपने अस्तित्व की रक्षा में ही संघर्षरत रहना पड़ा। इस संप्रदाय ने अपने प्रभाव क्षेत्र में जन-सेवा के अनेक अच्छे तथा उल्लेखनीय कार्य किये। वैष्णव और नाथ संप्रदायों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए इस मत में भी अनेक सामयिक परिवर्तन स्वीकार किये गये। अपने इन्हीं सहिष्णु और लोकोपकारक प्रवृत्ति के कारण यह आज भी राजस्थान, गुजरात, मालवा और दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में सक्रिय और प्राणवान् है।

★★★

मेहनेन शनै सम्यगूर्ध्वाकुंचनमभ्यसेत्।
पुरुषोप्यथवा नारी वज्रोली सिद्धिमाप्नुयात्।
तथा
नारीभगे पतद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं न निजं विन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत्।

हठयोग– प्रदीपिका ३/८५,८७

श्रीरामचरण पादुका

अनादि सृष्टि क्रम में अनेक राजाओं तथा उनकी शासन व्यवस्थाओं का वर्णन प्राप्त होते हैं। परन्तु रामराज्य का वर्णन उनके मध्य में अनुपम है। जिस राज्य का प्रत्येक प्राणी समस्त पीड़ाओं से रहित था आध्यात्मिक- आधिभौतिक-आधिदैविक ये तीनों ही ताप किसी का स्पर्श तक भी नहीं करते थे। परस्पर शाश्वत् विरोधियों ने अपने वैरभाव को सहजता से भूला दिया था। सभी मनुष्यों में परस्पर प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही थी। अल्पमृत्यु, दरिद्रता, दीनता, मूर्खता, दम्भ, कपट आदि सर्वथा लुप्त हो गए थे। अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि का प्रकोप नहीं था। रामराज्य का प्रत्येक प्राणी जीवन मुक्ति के आनंद सागर में गोता लगा रहा था। भगवान् शंकर तो अपने मुक्ति-क्षेत्र काशी में मरने के बाद मुक्ति प्रदान करते हैं लेकिन उस राज्य में जीवित अवस्था में भी मुक्त थे। शास्त्रों में वर्णित परमानन्द प्राप्ति के साधनों के अनुष्ठान के विना ही सभी परमानन्द का अनुभव कर रहे थे। कर्म-ज्ञान-ध्यान समाधि अपनी अनुपादेयता पर परम खिन्न थे। समस्त बाधाओं से रहित तथा परमानन्द को प्राप्त रामराज्य के मनुष्य वेद प्रतिपादित स्वधर्म में संलग्न थे।

रावणादि महाराक्षसों का विनाश कर चौदह वर्ष के बाद श्री राम सीता जी लक्ष्मण जी एवं अपने मित्रों के साथ अयोध्या लौटे। वैदिक रीति से उन्हें सिंहासनारूढ़ किया गया। इसके बाद के काम व शासन व्यवस्था को ही रामराज्य के रूप में समझा जाता है। जो प्रत्येक दृष्टि से संसार के इतिहास में वेजोड़ तथा अनुकरणीय है। जिन मूलभूत तत्वों के आधार पर रामराज्य का अनुपम भव्य एवं दिव्य महल खड़ा हुआ था उसका अन्वेषण करने पर पता चलता है कि वह श्री राम चरण पादुका राज्य था। भरत जी के अनेक प्रयासों के बाद भी जब श्रीराम वनवास को छोड़कर अवध आने के लिए तैयार नहीं हुए तब गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से उन्होंने अपने प्रतिनिधियों के रूप में अपने चरण पादुका को दिया। जिसे पूर्ण सम्मान के साथ अवध लाकर तथा गुरु वशिष्ठादि समस्त ब्राह्मणों, माताओं एवं सुमन्त्रादि राजकर्मियों की सहमति के आधार पर नन्दिग्राम में सिंहासन के ऊपर श्री रामचरण पादुका को विधिवत् प्रतिष्ठित किया गया तथा भरत जी वहीं पूर्ण तपस्वी जीवन बिताते हुए- श्री राम के दिव्यगुणों का कीर्तन स्मरण एवं चरण पादुका की सेवा करते हुए- चौदह वर्ष बिताये। श्री राम के वनवास का काल भी अवध के लिए "श्री राम चरण पादुका" काल है। जो अपने आप में अद्वितीय है। कागभुशुण्डि रामायण में इसे "पादुका राज्य" के रूप में वर्णन किया गया है। पादुका राज्य में रामराज्य के सभी लोकोत्तर मूल्यों का बीजारोपण ही नहीं अपितु वे क्रमशः अंकुरित-पल्लवित-पुष्पित भाव को प्राप्त होते हुए फलित हो चुके थे। राम राज्य के सभी अनुपम उपलब्धियों की सुस्पष्ट एवं मनोहारी झांकी पादुकाराज्य दक्षिण खण्ड में समुपस्थित हो चुकी थी जिसका वर्णन कागभुशुण्डि रामायण के दक्षिण खण्ड के सैंतालीसवें (४७) अध्याय में किया गया है उसको पढ़ने से किसी भी पाठक का भ्रमित हो जाना स्वभाविक है कि यह रामराज्य का ही वर्णन है। राम जी के वन से लौटने के बाद भी भरत जी ने अवध की विकसित ऐश्वर्य को श्री राघव के चरणों में समर्पित किया तो तब सभी लोग परम आश्चर्यचकित हो गये। इन तथ्यों का महर्षि वाल्मीकि ने अत्यन्त सुन्दर रीति से वर्णन

किया है । बाह्य ऐश्वर्य ही नहीं अपितु सभी प्राणियों का आन्तरिक ऐश्वर्य भी निरतिशयत्व को प्राप्त कर चुका था । उससे सुस्पष्ट होता है कि रामराज्य की समस्त अनुपम तथा परममंगलमयी उपलब्धियों के सम्पादन में पादुका राज्य की एक मात्र भूमिका थी ।

राष्ट्र समाज-परिवार व व्यक्ति के जीवन में यदि रामराज्य की स्थापना करनी हो तो उसके परमसाधनभूत पादुका राज्य की स्थापना सबसे पहले करनी चाहिए । पादुका राज्य की जो प्राणभूत धारणाएँ हैं उनपर ध्यान दिलाना आवश्यक है । पादुका उस राजा का प्रतिनिधि-भूत थी जिसे संसार का कोई भी ऐश्वर्य लुभाकर धर्म से विरत नहीं कर सकता था । जिसे अपनी प्रजा प्राणों के समान प्रिय थी । जिसकी प्रत्येक क्रिया सव्य में प्रतिष्ठित थी । जो परम सुकुमारता के साथ परमतपस्वी का जीवन ज़ी सकता था । जो अनुपम शीलवान् था । वैदिक सनातन धर्म का जो विग्रहवान् स्वरूप था । शास्त्रों में लिखा है कि देव बनकर देवता की पूजा करनी चाहिए । श्री भरत जी ने अपनी उपास्य चरणपादुका के स्वरूप के अनुसार ही पहले अपना जीन बनाया । इसके बाद पादुकाओं का विधिवत् पूजन करते हुए उनकी आज्ञा के अनुसार राज्य का संचालन किया । पादुका पूजक भरत की दशा का वर्णन पढ़कर हृदय गद्गद हो जाता है । रामचरित्र के सभी प्रकाशकों ने इस मनोहारी रीति से चर्चित किया है :— गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में इस दशा का परिचय सूत्र रूप में प्राप्त करें —

जटा जूट सिर पर धारी । महि खनि कुस साथरी संचारी ॥

असन वसन वासन व्रत नेम । करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥

फलक गात हिय सिय रघुबीरु । ज़ीह नाम जप लोचन नीरु ॥

लखन राम सिय कानन बसहीं । भरत भवन बसि तपतन कराहीं ॥

द्वौ दिशि समुझि कहत सब लोगू । सब विधि भरत सराहन जोगू ॥

सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दशा मुनिराज लजाहीं ॥

इस अवस्था को प्राप्तकर भरत जी पादुका सम्राट् की सेवा करते हुए राजराज्य की स्थापना करते हैं । जबतक हम अपने जीवन को इस अवस्था से नहीं जोड़ेंगे तथा समस्त ऐश्वर्य के स्वामी श्री राम जी के प्रतिनिधि-भूत उनकी पादुका का पूर्ण भाव से पूजन नहीं करेंगे तब तक संसार-राष्ट्र-समाज-परिवार व व्यक्ति किसी भी जीवन में रामराज्य का स्वरूप साकार नहीं सकता है । राम राज्य प्राप्ति के समस्त तत्वों को यदि एक सूत्र में सग्रथितपुर कहना हो तो यही कहा जा सकता श्री रामचरणों में परम अनुराग को प्राप्त कर दास भाव से शास्त्ररीति से व्यावहारिक क्रमों का सम्पांदन ही वह एक सूत्र है । अभी तो लोग नास्तिक वनकर ही राम राज्य की स्थापना में व्यग्र है । भरत जी जिस रीति से कागभुशुण्डि रामायण में प्राप्त है । साधकों के कल्याण को ध्यान में रखकर पूजनविधि अंगन्यास-मंत्र -कवच एवं स्तोत्र कागभुशुण्डि रामायण से यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं । इस विधि को अनुसरण करते हुए ही श्री रामचरण पादुका पूजन श्रीमठपीठासीन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य भी करते हैं तथा उत्तरोत्तर पीठासीन होने वाले आचार्य भी करेंगे ।

श्री रामचरणपादुका मंत्र जप से पूर्व साधक को निम्नलिखित विनियोग, अंगन्यास, करन्यास और ध्यान

करना चाहिए। उसकी विधि निम्न प्रकार है।

विनियोग— हाथ में चन्दन, पुण्य, तुलसीदल मिश्रित जल लेकर अस्य श्री पादुका मंत्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्री पादुकाख्य परमात्मा देवता, हंसः बीजम् सोऽहं शक्तिः, ऐं कीलकम्, चतुर्विध पुरुषार्थीसिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

अंगन्यास :— हृदयादि अंगों का स्पर्श करते हुए इन मंत्रों को पढ़ें:— ह्सौ हृदयादि नमः। ह्सीं शिरसे स्वाहा। ह्सू शिखायै वषट्। ह्सौ कवचाय हुम्। ह्सौ नेत्र त्रयाय वौसट्। ह्सः अस्त्राय फट्। इति।

करन्यासः— हसो अंगुष्ठाभ्यां नमः। हसीं तर्जनीभ्यां नमः। हसूं मध्यमाभ्यां नमः। हसैं अनाभिकाभ्यां नमः। हसौ कनिष्ठिकाभ्यां नमः। हसं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

ध्यानम्:— पुष्पसहित अंजलि बांधकर निम्नमंत्र पढ़ते हुए ध्यान करें:—

मुक्ताविद्रुमहेमहीरघटित श्री पीठराजोत्तमे,

दीव्यन्त्यै विलसन्निसर्गपरमानन्दप्रकाशाद्भुते।

विस्फूर्जत्तरुणार्ककोटिकिरणव्याकीर्णशुद्धाम्बरे

सच्चिद्रूपधने घनाधतिभिरस्तोभैकनाशोद्भटो

भक्तानां शिरसि प्रकाशपटली फुल्लत्सहस्रच्छदे

पंद्मेऽखण्डलचन्द्रमण्डलगत श्री हंसपीठोत्तमे।

तिष्ठन्त्यौ निजपूर्णधामनि सदा कल्याण दिव्यास्पदे

मायामोहमदान्धकारशमने सेव्ये विभो पादुके ॥२॥

इसके पश्चात् "रां रामचन्द्र सहजानन्दिनी रामचन्द्र सहजानन्दिनी श्री पादुकां पूजयामि नमः" इस मंत्र का कम से कम एक सौ आठ बार (अष्टोत्तरशत) जप करे तथा निम्नलिखित विधि से चरणपादुका का षोडशोपचार पूजन करे।

श्रीमते रामचन्द्रपरब्रह्मणे नमः

संक्षिप्त श्री रामचन्द्र चरणपादुका पूजनविधिः

आसन, दिग्बन्धन, आचमन, प्राणायाम, स्वस्तिवाचन एवं संकल्प के पश्चात् दोनों हाथों को सम्पुटित कर यह ध्यान मंत्र पढ़ें— न जाग्रन्न सुप्तिर्न वा सा सुषुप्तिस्तुरीयं पदं तत्र ये संस्थिते वै।

चिदानन्द सन्मात्र नित्यस्वरूपे भजेऽहं सदा स्वामिनः पादुके ते।

ॐ श्री रामचरणपादुकाभ्यां नमः ध्यायामि ।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात । स भूमि ग्वं सर्वतस्पृत्वा त्यतिस्ठद्दशांगुलम् । ॐ श्री रामचन्द्र चरणपादुकाभ्यान्नमः, आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि । इति मन्त्रेण आवाहनार्थें पुष्पं समर्पयेत् ।

प्रतिष्ठा— ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्ट्टं यज्ञ समिमं दधातु । विश्वेदेवासऽ इह मादयन्तामों इ प्रतिष्ठ ।

आसनम्— पुरुषऽएवेद ग्वं सर्वं य्यद्भूतं य्यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्ये शानो । यदन्नेनातिरोहति ॥

ॐ श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यां नमः आसनार्थें पुष्पं समर्पयामि ।

पाद्यम् — एतावानस्य महिमातो ज्ज्यायांश्च पुरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥

श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यां नमः पाद्यं समर्पयामि ।

अर्घ्यं— ॐ त्रिपादूर्ध्वंऽ उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।

ततो व्विष्वङ्ग व्यक्रामत्साशनानशनैऽभिः ॥

ॐ श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यां नमः अर्घ्यं समर्पयामि ।

आचमनम्— ॐ शन्नो देविरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शं य्योरभि स्रवन्तु नः । ततो विराडजायत व्विराडोऽधिपुरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमयो पुरः ॥

श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यां नमः आचमनीयं समर्पयामि ॥

जलस्नानम्— ॐ आपो हिष्ठामयो भुवस्तानऊर्ज्जें दधातन ।

महेरणाय चक्षसे । यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते हनः ॥

उशतीरिव मातरः तस्या अरंमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपो जनयथा च नः ।

ॐ तस्याद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम् ।

पशुँस्ताँश्चक्रे व्वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

जल स्नानं समर्पयामि श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यां नमः ।

दुग्ध स्नानम्— ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयोदिव्यन्तरिक्षे

पयोधाः पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥

दुग्धस्नानं समर्पयामि श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यां नमः ॥

दधिस्नानम्— ॐ दधिक्राण्णोऽ अकारिषजिंष्णोरश्वरस्य वाजिनः ।

सुरभिनो मुखाकरत्प्रण आयू षितारिषत् ॥

ॐ श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः दधिस्नानम् समर्पयामि ।

घृतस्नानम्— ॐ घृतम्मिमिश्रे घृतमस्य योनिर्घृतेश्रितोघृतम्बरस्य धाम ।

अनष्वधमावहमादयस्व स्वाहाकृतं वृषभवक्षिहव्यम् ॥

घृतस्नानं समर्पयामि श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः ।

मधुस्नानम्— ॐमधुव्वाताऽऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता ।

मधुमान्नो वनस्पतिर्म्मधुमां २ अस्तु सूर्यः माध्वीर्ग्गावो भवन्तु नः ।

ॐ श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः मधुस्नानं समर्पयामि ॥

शर्करास्नान्— ॐ अपां रस मुद्वयसे सूर्यसन्त समाहितम् ।

अपां रसस्य यो रसस्तं व्वो गृह्णाम्युत्तममुपयाग गृहीतोसीन्द्राय ।

त्वा जुष्टं गृह्णम्येष ते योगिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यां नमः शर्करा स्नानं समर्पयामि ।

पंचामृतस्नानम्— ॐ पंचनद्यः सरस्वंतीमपियन्ति सस्रोतराः ।

सरस्वती तु पंचधा सो देशो भवत्सरित् ॥

ॐ पंचामृतस्नानं समर्पयामि श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः ॥

शुद्धोदकस्नानम्— ॐ शुद्धबालः सर्वशुद्धबालो मणिबालस्त आश्विनाः ।

श्येतः श्वेताक्षर्यो रूणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णायामा अवलिप्ता रौद्रा नमो रूपः पार्ज्जन्यः ।

श्री रामन्न्द्रचरणपादुकाभ्यां नमः शुद्धोदकस्नानीयम् समर्पयामि ।

वस्त्रम्— ॐ तस्याद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच्चः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्तस्ज्जाद्यजुस्तस्मादजायत ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः वस्त्रम् समर्पयामि ।

यज्ञोपवीतम्— ॐ तस्मादश्वाऽअजायंत ये के चोभयादंतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्माज्जाताऽ अजावयः ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यां नमः वस्त्रम् समर्पयामि ॥

चन्दनम्— ॐ त्वांगन्धर्वा अखस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः

त्वामोषध सोमो राजा विद्द्वान्नयक्षमादमुच्यत् ॥

तं यज्ञं बर्हिसि प्रौक्षन्नपुरुषन्जातमग्रतः

तेन देवाऽअयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यान्नमः चन्दनम् समर्पयामि ॥

श्री तुलसी— ॐ विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यसे । इन्द्रस्य युज्यस्य सखा ।

श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यान्नमः श्री तुलसीदलं समर्पयामि ।

पुष्पम्— ॐ यत्पुरुषभ्व्वयदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्यासीत्किं बाहु किमुरु पादाऽ उच्च्येते ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः पुष्पं समर्पयामि ॥

पुष्पमाला— ॐ ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।

अश्वाऽइव सजित्वरी वींरुधः पारयिष्णवः ॥

ॐ श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः पुष्पमालां समर्पयामि ।

धूपम्— ॐ धूरसि धूर्व्व धूर्वन्त्तं धूर्पतं य्योस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।

देवानामसि वह्निनतम सस्नितमम्पप्रितमन्जुष्टमन्देव हुतभम् ॥

श्री रामचन्द्र चरण पादुकाभ्यान्नमः धूपम् आघ्रापयामि ॥

दीपम्— ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः दीपम् दर्शयामि ।

ततः हस्तप्रक्षालनं जलेन ।

नैवेद्यं– नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ग्वंशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः २ श्रोत्रात्तथा लोकां २ अकल्पयन् ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः नैवेद्यं निवेदयामि ॥

फलम् – ॐ याः फलिनीठर्याऽ अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।

बृहस्पति प्रसूतास्तानो मुन्चत्व हसः ।

ॐ श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः फलम् समर्पयामि ।

ताम्बूलम्– ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

पूगीफलं च– वसन्तोऽस्या सीदाज्यंङ् ग्रीष्मऽइध्म शरद्धविः ।

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः ताम्बूलम् समर्पयामि ।

दक्षिणा– ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्

स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमांकस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः दक्षिणा द्रव्यं समर्पयामि ॥

कर्पूरार्तिक्यं– ॐ इदं हविः प्रजननम्मेऽ अस्तु दंशवीण सर्वगणं ॐ स्वस्तये ।

आत्मसनि प्रजासनि पशुसनिलोकसन्नयमयसनि ।

अग्निः प्रजाम्ब हुलम्मे करोत्वन्नं पयोरेतोऽअस्मासु धन्त ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः कर्पूरार्तिक्यं समर्पयामि ॥

आर्त्ति– ॐ आरात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।

दिवः सदा सि बृहतीव्वितिष्ठसऽ आत्वेषं वर्त्तते तमः ॥

आरार्तिक्यं समर्पयामि श्री रामचन्द्रपादुकाभ्यान्नमः ॥

पुष्पांजलि— ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्

तेह नाकं महिमानः सचन्तयत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।

पुष्पांजलिः समर्पयामि श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यान्नमः ।

प्रदक्षिणा— ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञन्तन्वाना ऽ अबध्नन्न्पुरुषम्पशुम् ॥

श्री रामचन्द्रचरणपादुकाभ्यां नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

तदनन्तरं अद्भ्यः इत्यादि मंत्रैः श्री रामचन्द्रचरणपादुकां स्तूयात् ।

तदनन्तरं हस्ते पुष्पादिकं गृहीत्वा पुनः प्रार्थयेत् ।

ॐ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं परात्पर यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु में ॥

ॐ आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजा विधिं न जानामि त्वां गतिः परमेश्वर ।

ॐ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञक्रियादिषु न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॐ अच्युताय नमः ३ ॥

* * *

॥ श्रीरामचरणपादुका कवच ॥

ब्रह्मोवाच

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्यामि ते वीर, पादुका कवचं शुभम्। पठनीयं सदा यद्धि मन्त्रसिद्धिमभीप्स्यता ॥१॥

ब्रह्मणा धारितं पूर्वं नारायणमुखाम्बुजात्। तद्भूयो ब्रह्मणा प्रोक्तं करुणा-कलितेन मे ॥२॥

तदहं ते प्रवक्ष्यामि भक्ताय सुमहात्मने। रहस्यं सर्ववेदानां सारभूतं समुद्धृतम् ॥३॥

पादुकाकवचस्यास्य नारायण ऋषिः स्वयम्। छन्दो विराडिति प्रोक्तं पादुका परदेवता ॥४॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग उदाहृतः। पठनीयं त्रिसन्ध्यं तत्प्रयत्नेन समाहितः ॥ ५ ॥

प्रणवो में शिरः पातु वाग्भवं पातु मेऽलिकम्। माया बीजं मुखं पातु चक्षुषी कमलावतु ॥ ६ ॥

हकारो नासिकां पातु सकारः श्रवसी च मे। षकारो गण्डयुग्मं मे शेषं पात्वधरं मम ॥ ७ ॥

उत्तरोष्ठं सदा पातु कूटात्मा मन्त्रविग्रहः। द्वितीयकूटमन्त्रो मे ग्रीवां रक्षतु सर्वदा ॥८ ॥

तृतीयः ककुदं पातु चतुर्थोऽसयुगं सदा। राममन्त्रः उरः पातु अज्ञानेन्धनदीपनः ॥ ९ ॥

रामचन्द्रः स्वयं पातु दक्षिणं मे भुजं सदा। मम वामभुजं पातु सहजानन्दिनी स्वयम् ॥ १० ॥

युग्मं मे हृदयं पातु श्रीरामसहजात्मकम्। श्रीरामपादुका पातु बुद्धिं मे सत्वसम्भवाम् ॥ ११ ॥

तत्पूजनक्रिया पातु सदा कर्मेन्द्रियाणि में। नमस्या च सदा पातु ज्ञानेन्द्रियकदम्बकम् ॥ १२ ॥

उदरं मे सदा पातु मन्त्रतेजो महाद्भुतम्। नाभिं मे सर्वदा पातु मन्त्रचैतन्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥

मन्त्रप्रतिष्ठा सततं पातु मे चरणद्वयम्। मन्त्रशक्तिर्गुदं पातु मन्त्रबीजमुपस्थकम् ॥ १४ ॥

मन्त्राक्षराणि मे पातु अंगप्रत्यंगविग्रहम्। मन्त्रस्वराः सदा पान्तु शक्तिं मे सर्वकर्मसु ॥ १५ ॥

मन्त्रव्यंजनसंदोहः सर्वदाऽवतु मे मनः। विन्दुः पातु सदा लक्ष्मीं विसर्गो विपदं द्यतु ॥ १६ ॥

मन्त्रादिः शिरसारभ्य ग्रीवां रक्षतु सर्वदा । कण्ठादारभ्य नाभ्यन्तं मन्त्रमध्यं ममावतु ॥ १७ ॥

मन्त्रावसानमनिशमधोंगममेऽभिरक्षतु । अशेषमन्त्ररूपं मे श्रीरामः सकलं वपुः ॥ १८ ॥

महदादिश्च भगवान् परतत्वं ममावतु । स्थूलदेहं सदा पातु विराड् ब्रह्माण्डरूपधृक् ॥ १९ ॥

भगवान् सर्वभूतस्थः सूक्ष्मदेहं ममाऽवतु । परं शरीरं मे पातु परमात्मा सनातनः ॥ २० ॥

सख्याः पुलिने रम्ये रत्नधाम्नि सुसंस्थितम् । अक्षराख्यं परं ब्रह्म सर्ववेदोपसेवितम् ॥ २१ ॥

श्रीरामपादुकारूपं सर्वशक्तिसमन्वितम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यगुणावस्था विवर्जितम् ॥ २२ ॥

तुरीयं तुर्यपदगं यदेकं सर्वतः समम् । तन्मां पातु विशेषेण सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ २३ ॥

योगिनां च शिरोदेशे सहस्रदलपंकजे । चिच्चन्द्रमण्डलान्तःस्थ- हंसपीठोपरिस्थितम् ॥ २४ ॥

पराशक्तिसुसम्पर्क- सामरस्य रसोद्भवैः । अमृतश्चित्सुखवहैरभिसिक्तं निरन्तरम् ॥२५ ॥

समस्तमोक्षपदवी साम्राज्यपदनायकम् । अज्ञानतिमिरस्तोमहरणोद्धुरशक्तिभृत् ॥२६ ॥

सर्वज्ञानक्रियाशक्तिबीजभूतं परात्परम् । सर्वमन्त्रसमाराध्यं सर्वागमनमस्कृतम् ॥ २७ ॥

सर्वदैवतसंदोह साम्राज्यसुखभाजनम् । वन्दे श्रीपादुकायुग्मं रामस्य परमात्मनः ॥ २८ ॥

श्रद्धां देहि धियं देहि भक्तिं देहि परात्मिकाम् । अनुग्रहं कुरु सदा पादुके परदेवते ॥ २९ ॥

दत्तां बुद्धिं विशुद्धां गिरमतुलरां वेद-वेदांगरूपाम् श्रेष्ठां लोके प्रतिष्ठां मदगजगमनोद्भूतघण्टानिनादम् ।

ऐश्वर्यं विश्ववर्यं सुखमधिकतरं कामलोलैर्मृगाक्षी संदोहैः पूर्यमाणो धनवति सदने त्वत्प्रसादाल्लभन्ते ॥ ३० ॥

एवं संस्तूय सततं भज श्रीपादुकायुग्मम् । भविष्यस्य चिराद्वीर परानुग्रहभाजनम् ॥ ३१ ॥

कवचं च पठाजस्रं पादुकामन्त्रतत्वयुक् । लप्स्यसे परमानन्दं पूर्णं भरत तत्क्षणात् ॥ ३२ ॥

सौभाग्यं विपुलं भोग्यमारोग्यं सर्वसम्पदः । प्राप्नुवन्ति जपादस्य जयं च जगति ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

इदं रहस्यं रघुनन्दनस्य श्रीपादुकासत्कवचं पठन्नरः ।

अवाप्य धर्मार्थसुकाममुक्तीर्भोगोदयौ क्रीडति भक्तिसिद्धः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डिसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये कवचमन्त्रकीर्तनं नाम षटपंचाशत्तमोध्यायः ।

* * *

श्रीरामचरणपादुका स्तोत्र

भरत उवाच—

नमो ब्रह्म सर्वादिदेवेन्द्रवन्द्ये परे व्योम्निनित्यं स्वधाम्नि प्रतिष्ठे ।
सदासिन्धुजांसुन्दरिसंविमृग्ये श्रियासंयुते श्रीप्रभोः पादुकेवाम् ॥ १ ॥
सहस्रार्कशीतांशुविद्योतिरूपे महामोहतामिस्रविच्छेदशक्ते ।
दुरन्ते भवाम्भोनिधौ दिव्यनौके प्रभोः पादुके वां सदासन्नतोऽहम् ॥ २ ॥
पदंश्रेयसां दत्तनिःश्रेयसं यद् विपन्काननोच्छित्तिकर्मा कुठारम् ।
महासिद्धिमद्भूरिभाग्योदयाढ्यं विभातीशितुः पादुकायुग्ममेतत् ॥ ३ ॥
सदानन्दपीयूषधाराघनाली जगत्पायसंतापनिर्यापणाय ।
त्रिवेदी शिरःसद्म सर्वस्वभूतं प्रभोः पादुकायुग्ममुद्भातु चित्ते ॥ ४ ॥
सदा संपदामेकमुच्चैर्निकेतं महाघोरसंसारपायोधि-सेतुः ।
सुदुर्ज्ञेयतत्त्वप्रबोधैकहेतुश्चिरं शोभतां पादुकायुग्ममेतत् ॥ ५ ॥
अशेषप्रमाण प्रमेयार्थरूपे शिवब्रह्मकोटीररत्नांशुमिश्रे ।
सदानन्दसंपत्तिसंदोहदाने प्रभोः पादुके प्राप्य भक्त्या भजेऽहम् ॥ ६ ॥
परंचिन्नभश्चारुचिच्चन्द्रकान्त्या सदोदीतयाजातनित्यप्रकाशम् ।
तदातिष्ठतो यो स्थिते स्वे महिम्नि प्रभोर्ब्रह्मरूपे भजे पादुके त्वे ॥ ७ ॥
न यद्भासयत्यर्कबिम्बप्रकाशो न चन्द्रो न बह्निर्नवा विद्युतोऽपि ।
इदं भाति सर्वं यदेवानुभाच्च प्रभोः पादुकायुग्ममस्याश्रितस्त्तम् ॥ ८ ॥
न जाग्रन्न सुप्तिर्नवासासुषुप्तिस्तुरीयं पदं तत्र ये संस्थिते वै ।
चिदानन्दसन्मात्रनित्यस्वरूपे भजेऽहं सदा स्वामिनः पादुके ते ॥ ९ ॥
जगत्यर्चने ध्यानपूजानतीनां पदेकं पदं सर्वकल्याणधाम ।
सकामैरकामैस्तथासर्वकामैस्तदाराधितं पादुकायुग्ममीडे ॥ १० ॥
अमूर्तं तथा मूर्तिमद्वस्तुकिन्चिद्गुणैः संगतं निर्गुणं वा यदेव ।

यदेकं तथानेकमात्मप्रकाशं परं ब्रह्म तत् पादुकायुग्ममीडे ॥ ११ ॥
अशेषावतारावतारिस्वरूपं समस्तागमाम्नाय मार्गैकशेषम् ।
सुसिद्धान्तिनामन्विताशेषवाक्यं भजे पादुकायुग्ममेकं समस्य ॥ १२ ॥
यतो वर्णिताशेषतत्वप्रभूतिस्तथाशेषतत्वानि यत्राप्ययन्ति ।
परं तत्वमेकं परब्रह्मरूपं भजे पादुकायुग्मसीतापतेस्तत् ॥ १३ ॥
पशुग्रामपुत्रांगनादीनि नित्यं नृणां यत्प्रसादात्फलान्यैहिकानि ।
भवन्ति प्रभूतानि चामुष्मिकानि स्मरेत्को न ते पादुके राघवस्य ॥ १४ ॥
नमः कोटि कल्याणकल्पद्रुमाभ्यां परानन्दसंदोहचिन्तामणिभ्याम् ।
अपि स्वैरमात्मप्रबोधप्रदाभ्यां सीताभर्तुरंघ्रिद्वयि पादुकाभ्याम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच—

इत्यभिष्टूय भरतो रामराजस्य पादुके ।
पुष्पांजलिं ददावुच्चैः पूजान्ते प्रतिवासरम् ॥ १६ ॥
अन्योऽपि मनुजो यस्तु भक्त्या सम्पूज्य पादुके ।
निवेदयति पूजान्ते मन्त्रपुष्पांजलिं सदा ॥ १७ ॥
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यान्मन्त्रसिद्धिरनुत्तमा ।
श्रीरामपादुकायुग्मप्रसादः स्यादनन्तरम् ॥ १८ ॥
इति ते पादुकाराज्यं रामस्य त्रिजगत्प्रभोः ।
वर्णितं यन्मया तुभ्यं श्रृणुयात्तत्प्रयत्नतः ॥ १९ ॥
स सर्वकामानाप्नोति भक्तिं चास्य सुदुर्लभाम् ।
अन्त्ये श्रीरामचरणं लभते नाऽत्र संशयः ॥ २० ॥
कामदा नृणां बुद्धिदा भूरिभुक्तिदा ।
मुक्तिदा सर्वकल्याणदायिनी रामपादुका ॥ २१ ॥
विरहोद्वेगनिर्मुक्तिर्भरतस्य यथाभवत् ।
तथा भक्तिमतां नृणां पादुकायाः प्रसादतः ॥ २२ ॥
व्याप्नोति नैव विरहो दुःसहोऽपि सीतापतेः ।
अमन्दानन्द-संदोह-सुधा-शीतलिते हृदि ॥ २३ ॥
करुणा रघुनाथस्य भक्तेषु परिवर्ति या ।
सैव विश्वासभूरेका नृणां मोहतमोजुषाम् ॥ २४ ॥

अनन्यकरुणाशाली प्रभुरेको रघूद्वहः।
तवास्मीति ब्रुवन्मर्त्यो वशी कुर्यात्क्षणेन यम्॥ २५॥
सकृदास्वादितं येन रामेति रसनामृतम्।
तं न मायामयी घोरा भुजंगी दशति क्वचित्॥ २६॥
वीक्षिता रघुनाथेन ये ये करुणया दृशा।
ते कालपाशनिर्मुक्ताः शेरते सुखसद्मनि॥ २७॥
रघुवीरात्परो लोके न कश्चित्पुरुषो भवेत्.।
मोचयेत्कामपाशाद् यो भावकान् सकृदात्मनः॥ २८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दक्षिणखण्डे पादुकाराज्ये समापनं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः॥

* * *

श्री यतिराजस्तवराजः

श्रीमदानन्दसत्कन्द रामानन्दयतीश्वरम्।
श्रीश्रीधर्ममहाचार्यं सदाचार्यं नुमः सदा ॥ १ ॥
रविदासमुद्धर्ता से नोद्धर्ता महाप्रभुः ।
श्री कबीरोपकर्ता च पश्येदस्मासु सद्दृशा ॥ २ ॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणग्राही गुणग्राही विशेषतः ।
सर्वदा सत्यसंग्राही कुर्यान्नो मंगलं सदा ॥ ३ ॥
ब्राह्मणे क्षत्रिये वैश्ये शूद्रे म्लेच्छे स्त्रियां तथा ।
समं सर्वत्र पश्यन्तं यतीन्द्रं तं नुमः प्रभुम् ॥ ४ ॥
भास्करादि प्रणेता च ब्रह्मसूत्रस्य भाष्यकृत् ।
वेदान्ताब्ध्यगाही श्रीरामानन्दो यतिर्जयेत् ॥ ५ ॥
महावसादाति विषादिता विभो ! जगत्सहायाद्रहिता जनास्तव ।
मदादिदोषक्वथिताः कृपालवात्त्वयैव रक्ष्यास्त्वरया कृपानिधे ॥ ६ ॥
यदि त्वमप्यद्य समीहसे प्रभो ! तवैव दासान् परिहातुमंजसा ।
वयं क्व गच्छाम विपत्पराजितास्त्वयैव वक्तव्यमिदं यतीश्वर ॥ ७ ॥
तवैव भूत्वापि तवाभिधां प्रभो कदापि नूनं न नयामहे स्मृतिम् ।
इमं निपातं विनिपातयाशु नः प्रणत्य यांचां तव कुर्महे पुरः ॥ ८ ॥
तवैव नाम्ना वयमद्य पूजिता तवैव नाम्ना सुखिता वयं सदा ।
तवैव नाम्ना विभवाः समर्जितास्तवैव नाम्ना प्रभवो वयं प्रभो ॥ ९ ॥
तथापि पातित्यनिवारकं प्रभो ! तदेव नामामृतमद्भुतं महत् ।
रसाय यन्नो रसनेन्द्रियस्य न तो विना न पापादपरं हि कारणम् ॥ १० ॥
गृहे त्वदीये बहुधा धनं भृतं ध्वजाःपताका अपि संभृताः प्रभो ।
परं न तेषां तव पूजने वयं क्षमा भवामो विनियोजने क्वचित् ॥ ११ ॥

भुशुण्डिरामायणे रामचरणपादुका पूजा-प्रसंगः
(व्याख्यानम्)

— श्री गणेश्वरशास्त्रि द्राविड़

अथ भुशुण्डिरामायणस्य दक्षिणखण्डे ५५ तमेऽध्याये स्थितानां मन्त्रपराणां केषान्चिच्छ्लोकानां व्याख्यानं यथामति क्रियते । तत्र "प्रणवो वाग्भवं माया कमला व्योम चन्द्रमाः । चण्डीशश्च शिखीशश्च वह्नि झिण्डीश विंदुभाक् ॥ अयमेकः सुमन्त्रज्ञैः कूटमन्त्र उदाहृतः" इति पूर्वमुक्तम् । तत्र प्रणवः - ओंकारः । वाग्भवं ऐं बीजम् । मायाबीजपदेन ह्रीं कारो विवक्षितः । तस्यैव प्रसिद्धत्वात् । कमला श्रीं बीजम् । एतदुत्तरं 'व्योम" इत्यारभ्य "भाग्" इत्यन्तमेकमेव बीजमिह प्रतिपाद्यमिति तन्त्रज्ञाः । तत्र व्योमपदेन हकारो ग्राह्यः, "चक्षुषी कमला-ऽवतु" इत्युत्तरं "हकारो नासिकां पातु इत्यंग्रिमाध्यायस्थकव चैकवाक्यत्वात् । चन्द्रमाः सकारः "सकारः श्रवसी च मे" इति कवचवाक्यैकवाक्यत्वात् । चण्डीशः खकारः, "क्रुधार्द्धिगदि चण्डीशाः" इत्यादि मातृका कोशात् । "षकारो गण्डयुग्मं मे" इति मूर्ध्यन्यषकारघटितो मुद्रितकवचपाठस्त्वशुद्धेः । चण्डीशपदेनेह व्यंजनद्वितीयस्यैवोपलम्भात् । तस्मात् कवचे "खकारो गण्डयुग्मं मे" इति मूर्द्धन्य षकाररहितेन व्यंजनद्वितीय घटितेन पाठेन शुद्धेन भाव्यम् ।

शिखीशः - फकारः, "शिखी वह्नितारैश्च विन्दुनादकलान्वितैः कार्तवीर्यार्जुनस्येदं वीजं प्रोक्तं महेश्वरि ॥ फ्रों ॥" इति बीज कोशे शिखीश पदेन तस्यैव ग्रहणात् । वह्निः - रेफः, रेफोग्निः' इति मांतृकाभिधानात्त् । झिण्डीशः - एकारः वर्णन्बीजकोशे तथैवोपलम्भात् । बिन्दुभागित्यस्य बिन्दुयुक्तः इत्यर्थः । तथा च "व्योम चन्द्रमाः चण्डीशश्च शिखीशश्च वह्निझिण्डीशबिन्दुभाग्" इत्यस्य "हस्ख्फ्रें (ह् स् ख् फ्रें" इत्यर्थः । दनुसारम् "ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हस्ख्फ्रें" इति प्रथमो मन्त्रः फलितः । "अयमेकः सुमन्त्रज्ञैः कूटमन्त्र उदाहृतः" इति तु स्पष्टम् । अथ द्वितीयो मन्त्र उच्यते "व्योम शीतांशु वर्गान्त्य महाकालीश भू सुधा । वह्निः समीरणोऽर्घीश बिन्दुयुक्तो द्वितीयकः । कूटमन्त्रः समाख्यातः सकलागमवेदिभिः ॥" इति । तत्र "व्योम" इत्यारभ्य "युक्त" इत्यन्तमेकमेव बीजं प्रतिपाद्यमिति तन्त्रज्ञाः । तत्र व्योम-हकारः, तस्यैव प्रसिद्धत्वांत् । शीतांशुः सकारः, पूर्वमन्त्रे तस्यैव ग्रहणात्, बाधकाभावाच्च । वर्गान्त्यः क्षकारः अन्तिमाक्षरः" इति मातृकाकोशात् "षवर्गेऽन्त्यः" इत्यादि मातृकाभिधानात् चेह विशेषणाभावे वर्गान्त्य पदेनान्त्यवर्गान्सग्रहणस्यैव युक्तत्वात् । महाकालीशः -मकारः, "वैकुण्ठश्च महाकालः" इत्यादि मातृका-कोशात् पूर्वं चण्डीशादिपदेष्वीशपदसहितस्यैव ग्रहणात्, महाकालीशस्य कोषे स्वतन्त्रतयाऽनुपलंम्भे महाकालग्रहणस्यैवोचितत्वाच्च । भूः-लकारः, तत्पदेन तस्य प्रसिद्धत्वात् । सुधा-वकारः, "अमृतं शुचिः" इति मातृकाभिधानात्, तस्यैव प्रसिद्धत्वात्, शीतांशुपदेन पूर्वं सकारस्य गतत्वाच्च । वह्निः-रेफः । समीरणः- यकारः, "क्षुधा बाला च वायुः" इति मातृका कोशात्, वायु बीजपदेन तस्यैव प्रसिद्धत्वात् च । अर्घीशः ऊकारः (दीर्घः), "अर्घीशो दीपिका" इत्यादि मातृकाकोशात् । "अर्घीश्वरो मधुसूदनः" इत्यांदि

मातृकाभिधानाच्च । तेन बिन्दुना च युक्त इत्यर्थः । तथा च "हस्क्षम्ल्व्यूं (ह् स् क्ष् म् ल् व् र् यूँ)" इति बीजाक्षररूपो द्वितीयो मन्त्रः पर्यवसितः । अत्रेदं बोध्यम्- "समीरणो धीश बिन्दुयुक्तः" इति "समीरणो-र्धीश बिन्दुयुक्तः" इति तवर्ग चतुर्थाक्षरघटितमुपलब्धं पाठद्वयं प्रमादिकम् । शुद्धपाठस्तु रेफसहित कवर्ग चतुर्थाक्षरघटितः "समीरणोऽर्घीशबिन्दुयुक्तः" इत्येव ।

अन्यथा "द्वितीयः पुनरूकारस्थान ईकारयुग्भवेत्" इत्यग्रेतन वाक्यस्यासंगत्यापत्तेः । "अर्घीशेति" चतुर्थव्यंजनघटितपाठाभावे द्वितीयमन्त्रे ऊकारस्याप्रसक्तेः । इति । अथोक्तयोर्मन्त्रयोर्मध्ये प्रथममन्त्रे "व्योमचन्द्रयोः स्थाने "चन्द्रव्योम्नो" योंजने तृतीयो मन्त्रो निष्पद्यत इत्याह "प्रथमः पुनराकाशश्चन्द्रव्यत्यासतो भवेत्" इति । अत्र चन्द्रव्यत्यासतः आकाशो यदि भवति तर्हि प्रथमो मन्त्रः पुनरेको मन्त्रः (तृतीयो मन्त्रः) भवेदिति योजना । तृतीयमन्त्रस्य स्वरूपं तु "ॐ ऐं ह्री श्रीं स्हख्फ्रें (स् ह् ख् फ्रें)" इति । एवं द्वितीय मन्त्रे पूर्वोक्ते पूमित्यत्र ऊकारस्थाने ईकारयोजने चतुर्थो मन्त्रो निष्पद्यत इत्याह "द्वितीयः पुनरुकारस्थान ईकार युग्भवेत्" इति । अत्र "द्वितीयो मन्त्रः ऊकारस्थाने ईकार युग् यदि भवति तर्हि पुनः एकोमन्त्रः (चतुर्थो मन्त्रः) भवेत्" इति योजना । अस्य (चतुर्थस्य) मन्त्रस्य स्वरूपं तु "हस्क्ष्म्ल्व्य्रीं (ह् स् क्ष् म् ल् व् र् यीं) इति । इमावेव (तृतीय चतुर्थावेव) मन्त्रावग्रिमाध्याये कवचे "तृतीयः ककुदं पातु चतुर्थोऽसयुगं सदा" इत्यत्र ग्रहीताविति बोध्यम् । अथैक त्रिंशद्वर्णं पादुकामन्त्रमाह– "रां रामचन्द्रसहजानन्दिनी युग्मपूर्वकम् । श्री पादुकां पूजयामि नम इत्यन्ततो वदेत् । एकत्रिंशद्वर्ण एष पादुकामन्त्र ईरतः ॥" इति । तत्र रां रामचन्द्र सहजानन्दिनी" इत्येतदन्तमेका दश वर्णा जाताः । तदुत्तरं युग्मपदश्रवणात् "रामचन्द्रसहजानन्दिनी" इति पुनः पठनीयम् उभयोर्मेलने एक विंशति वर्णाः सम्पद्यन्ते । तदुत्तरं "श्री पादुकां पूजयामि नमः" इत्यस्य योजने "रां रामचन्द्रसहजानन्दिनी रामचन्द्र सहजानन्दिनी श्री पादुकां पूजयामि नमः" इत्येक त्रिंशद्वर्णघटितः पादुका मन्त्रो निष्पन्नः । अग्रिमाध्याये कवचे "युग्मं मे हृदयं पातु श्री रामसहजात्मकम्" इति यदुक्तं तत्तु छन्दोनुरोधेन संक्षिप्योक्तम् । तस्यार्थस्तु "श्री रामचन्द्रसहजानन्दिनी" इत्येव । अन्यथा इह श्रुत युग्मपदस्वारसिकार्थविलोपप्रसंगात् । अन्यथा रीत्या इह श्रुताद् वाक्यादेव त्रिंशद्वर्ण घटित मन्त्रस्य उपपादयितुमशक्यत्वाच्च । कवचेऽग्रे यदुक्तं "रामश्री पादुका पातु" इत्यादि तत्सर्वम् एतन्मन्त्रांशस्यैव विवरणभूतम् । नातः पूर्वापरविरोधः । "रामः श्री पादुका इति विसर्गयुक्तः पाठस्तु प्रामादिक एव । इष्टार्थाः निष्पत्तेः । अथास्य मन्त्रस्यार्थ उच्यते– "श्री पादुकेत्यनेन रामपादुके विवक्षिते । "वन्दे श्री पादुकायुग्मं रामस्य परमात्मनः" इत्यग्रिमाध्यायस्थवाक्यार्थानुरोधात् । अग्रे ध्यानश्लोके द्विवचनान्तप्रयोगात् पूर्वसन्दर्भात् "श्री रामपादुकायुग्ममन्त्रतत्त्वमनुत्तमम्" इत्येतदध्यायान्तिमवाक्याच्च । इहैकवचनान्तप्रयोगो जात्येकवचनाभिप्रायकः । ते पादुके रामचन्द्रस्य कृते सहजतः- स्वभावत एव कण्डकादित्राणत आनन्द दायिन्यौ" इति पादुका पद सन्निहित "रामचन्द्रः सहजानन्दिनी" पदस्यार्थः पूर्वं पठित तत्पदार्थस्तु "भरतानन्ददायिन्यौ" इति । ते पूजयामि नम इति पर्यवसितम् । अस्य रहस्यार्थस्तु ध्यान श्लोकानुसारी बोध्यः । बीजार्थस्तु गुरुमुखादवमन्तव्यः । अथास्य पादुकामन्त्रस्यर्ष्यादि वक्तुं प्रक्रमते "नारायण ऋषिश्चास्य च्छन्दोऽनुष्टुबिति स्मृतः । श्री पादुकाख्या नियतं परमात्माऽस्य देवता हंसो बीजं तथा सोऽहं शक्तिरित्युच्यते बुधैः । वाग्भवं कीलकं प्रोक्तं मन्त्रागमविशारदैः । चतुर्वर्गे च मन्त्रस्य विनियोगः प्रकीर्तितः । षद्दीर्घस्वरसंयुक्तैः-हंसवर्णैः षडंगकम् । एवं विधाय कर्तव्यं पादुकाध्यानमुत्तमम्" इति । अस्यार्थः- अस्य श्रीपादुकामन्त्रस्य नारायण ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्री पादुकाख्य परमात्मा देवता । हंसः बीजम् । सोऽहं शक्तिः ऐं कीलकम् । चतुर्विध पुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । ह्सो हृदयाय नमः । ह्रसीं शिरसे स्वाहा । ह्रसूं शिखायै वषट् । हृसैं कवचाय हुम् । ह्सौ नेत्रयाय वौषट् ह्सः अस्त्राय फट् । इति । एवमेव करन्यासोऽपि विधेय इत्यर्थं सिद्धम् । अथ ध्यानमाह "मुक्ताविद्रुम हेमहीर घटित श्रीपीठ

राजोत्तमे, दीव्यन्त्यौ विलसन्निसर्गं परमानन्दप्रकाशाद्भुते । विस्फूर्जत् तरुणार्ककोटिकिरणव्याकीर्णशुद्धाम्बरे सच्चिद्रूपधने घनाघतिमिरस्तोमैकनाशोद्भटे ॥ भक्तानां शिरसि प्रकाशपटली फुल्लत्सहस्रच्छदे, पद्नेऽखण्डलचन्द्र मण्डलगत श्रीहंस पीठोत्तमे । तिष्ठन्त्यौ निजपूर्ण धामनि सदा कल्याण दिव्यास्पदे मायामोहमदान्धकारशमने सेव्ये विभोपादुके ॥" इति । एतदुत्तरम् । "एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यष्टोत्तरसहस्रकम् । गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं पूजयेत् भावकल्पितैः तत्रैव स्वस्य शिरसि सहस्रच्छदमन्दिरे । भावयेत्सन्ततं दिव्यं भक्तिभावपरायणः ॥ पुरश्चर्यां तथा कुर्यान्मन्त्रराजस्य साधकः । पुण्यतीर्थे सुविमले मेध्याशी मितभाषणः दशलक्षं जपित्वा तु दशांशं हवनं चरेत् । नीलोत्पलैस्त्रिमधुरोन्मिश्रैर्मन्त्रस्य सिद्धये । तर्पणं मार्जनं चैव ब्रह्मभोजनमेव च । यत्किंचित् विधिवत्कुर्यात् तत्र तत्र निवेदयेत् । [१] श्री रामस्य पादुका युग्मे रामार्पण धिया बुधः । निवेदितं श्रीरामस्य सर्वकर्मीमितं भवेत् ।" इत्याद्युक्तं, तत्र । तत्सर्वं विस्तरभयान्न व्याख्यायते । महतामनुरोधेन मन्त्रोध्दारार्थं व्याख्यानमिदं कृतम् । अत्र दोषश्चेद् विद्वद्भिः सनिरसनीयः । अन्यद्विवरणं तु भुसुण्डिरामायणे कृतमेव । अनुपलब्धमातृकाणां कृते ध्यान श्लोकाद्यपि संगहीतमिहेति शिवम् । इदं व्याख्यानं वाराणसीवास्तव्येन श्री गणेश्वर शास्त्री द्राविडेन २०४४ तमं वैक्रमाब्दीयाश्विन् शुक्ल त्र्योदश्यामिन्दुवासरे पूर्णां कृत्वा श्री रामचन्द्रचरणाब्जयोः समर्पितम् । प्रीयतामनेन भगवान् श्री रामचन्द्रः ॥ इति शम् ॥

★★★

---

[१] अत्र यथोपलब्धः पाठः स्थापितः

स्वामी श्रीगालवानन्दाचार्य जी महाराज

— पं रामचन्द्र मिश्र

भगवत्कृपा से अभिषिक्त अन्तःकरण वाले महानुभावों का जन्म भगवदीय जनों के कल्याण के लिए ही हुआ करता है। ऐसे ही कृपापात्रों में संन्त शिरोमणि "स्वामी श्रीगालवाचार्य जी महाराज थे। युगयुगान्तरों में उनका चरित्र मानव कल्याण के लिए उत्प्रेरक है। उनके विषय में कहा जाता है कि —

ज्यौं द्वापर त्यौं कलिहुँ पुनि, कीन्हों भक्ति प्रचार भल।
(श्री) रामानन्दाचार्य, चरण सेवन चित लायौ।
योग भक्ति हरि भक्ति, पाई कश्मीर सिधायौ॥
विष्णुरात नृप सदसि, यथा भागवत सुनायौ।
तथा नृपति काश्मीर हृदय हरि भक्ति दृढ़ायौ॥
गालव व्यास कुमार मुनि, विजय कीन्ह सब पुहुमि थल।
ज्यौं द्वापर त्यौं कलिहुँ पुनि, कीन्हों भक्ति प्रचार भल॥
सबै सत्रू जेजिया पन्च उदसहा छन्द।
वैयासिग सुग, मुणि महा, जपतु गालवानन्द॥

जिसने सम्पूर्ण शत्रुओं को जीत लिया और जिसने काम, क्रोध, अहंकार, ममता, लोभ, मन और जागतीय द्वन्द्वों पर अधिकार प्राप्त कर लिया। ऐसे व्यास-पुत्र शुकदेव के अवतार श्री गालवानन्द जी महाराज की जय हो ।

महाराज गालवानन्दाचार्य जी का जन्म पर्वतीय क्षेत्र में सिन्धु नदी के परमपावन तट पर स्थित "पवाया" (पद्मावती) ग्राम में हुआ था। इनके पिता विप्रप्रवर श्री साम्बर मूर्ति शर्मा तथा माता पतिव्रता भामादेवी थी। वे सात्विकी प्रकृति के अच्छे विद्वान्, कर्मकाण्ड को जानने वाले ज्योतिष तथा तन्त्रशास्त्र में प्रवीण थे। उनका हृदय सन्तोष में बसा था और मन कामना रहित था। परन्तु उनकी पत्नी सन्तान के लिए चिन्तित रहा करती थी। सलज्ज महिला होने के कारण अपने मनोरथ को पति से भी प्रकट करने में संकोच करती थी। एक दिन अपने एक सहचरी के द्वारा पण्डित जी को सन्तानार्थ अनुष्ठान करने के लिए तैयार कर लिया। अनुष्ठान हुआ

और सन्तान बाधा दूर हुई। चैत्र शुक्ल एकादशी सोमवार के दिन ब्रह्ममुहूर्त में पतिव्रता भामादेवी के उदर से एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसके शिर पर स्वच्छ श्याम बड़े-बड़े केश कलाप, जूड़े हुए और अंगों में वैष्ण वोचित द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्र शोभित हो रहे थे। आश्चर्य की बात यह थी कि दाई को नाल छेदन नहीं करना पड़ा वह गर्भ में ही विश्लेषित था। ग्रामीण स्त्रियों में कई दिनों तक इस बात की चर्चा चलती रही। पण्डित जी भी इस विचित्र शिशु की उत्पत्ति का वृत्तान्त जानकर चकित हुए। स्वयं के अनुष्ठान से उत्पन्न महात्माओं के लक्षण से लांछित पुत्र-रत्न से पण्डित जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। ग्रामीण स्त्रियां भी शिशु को बाबाजी कहकर बहुत लाड़-प्यार करती थी। छठी, बरही, पौर्णमासी, अन्नप्राशनी आदि समयिक उत्सव भी सविधि सानन्द समाप्त हुए पण्डित जी ने पुत्र का नाम "गोविन्दव्रत" रखा, परन्तु गाँव वाले दुलार से कोई योगी बाबा, कोई साधु बाबा और कोई बाबा जी ही कहते थे। सदा प्रसन्न वदन, हँसता मुखमण्डल सौम्यकेशकलाप एवं ललाट पर 'स्थित' ऊर्ध्वपुण्ड्र देखकर गाँव के नर-नारी अत्यन्त आनन्दित होते थे। जब शिशु कुछ बड़ा हुआ तो उसके मुण्डन-संस्कार की चर्चा उठी। गर्भ में जमें हुए प्राकृतिक बाल काटना आवश्यक है यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है और इसलिए चूड़ाकरण संस्कार किया जाता है। कोई शिशु ऐसा पैदा हो जिसके केश मुनियों जैसे हो, उसे भी काट देना चाहिए यह बात स्पष्ट रूप से किसी भी धर्म-शास्त्र में नहीं लिखी हो इस प्रान्त के बड़े-बड़े पंडितों की सभा ने विचार कर निर्णय किया बाल चाहे जैसे भी हो कटवा देना चाहिए तभी मुण्डन-संस्कार-संपन्न होगा । परन्तु यह बात ग्रामवासियों को स्वीकार नहीं था। वे चाहते थे मुण्डन के बदले टुण्डन संस्कार हो और शास्त्र मर्यादा पालनार्थ दो-चार बाल चुनवाकर कटवा दिये जायें। इसके लिए गाँव वालों की बड़ी पंचायत बैठी, इस पंचायत के प्रधान बालक के पिता ही थे। वे बोले अन्य किसी को पंच बनाया जाय क्योंकि बात हमारी है अतः मैं स्वयं निर्णय कैसे करूँगा।

लोगों ने पण्डित जी के इस निर्णय को मान लिया और गाँव के ही एक वृद्ध पण्डित को पंच बनाया गया। उन्होंने भगवन्नाम लेकर निर्णय किया कि मुण्डन इस समय टाल दिया जाय, उपनयन संस्कार के अवसर पर ही इस संस्कार को भी पूर्ण कर दिया जायेगा। यह निर्णय सर्वमान्य हुआ।

एक दिन उस गाँव के पोखरे पर एक सिद्ध महात्मा आकर ठहरे। उसी पर महासतियों का देवकूर था, जहाँ बड़े-बड़े पीपल के वृक्ष सघन एवं सुखद छाया किये हुए थे। गाँववाले महात्मा जी के आगमन को सुनकर उनकी सेवा के लिए उपस्थित हुए किन्तु महात्मा ने साफ शब्दों में कह दिया कि मैं कुछ दिनों से जल पीकर ही दिन यापन करता हूं और वह जल पोखरे में भरा ही है। बाबा जी की त्यागवृत्ति का गाँव वालों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके लिए यह अनोखी बात थी। लोग काम-काज करके आते और घण्टों वहाँ बैठे रहते। बाबा बहुत ही मितभाषी थे। लोग उनके भव्य दर्शन से ही अपने को कृतकृत्य समझते थे। बालक "साधु बाबा" भी बाँस की पतली टहनी लिए वहीं आ पहुंचा और टहनी फेंककर बाबा जी के चरणों पर लोट गया, उठाने से ही उठा उसके नेत्र सजल हो गये। आगन्तुक महात्मा और उपस्थित लोग आश्चर्य में पड़ गये। बाबा जी ने लोगों से पूछा – यह किसका पुत्र है ? बड़ा ही विनम्र, साधु और अनुरागी है। लोगों ने कहा – यह हमारे गाँव के पुरोहित जी का पुत्र है। सुन्दर केश-कलाप और ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किये ही माँ के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। गाँव वालों का इसके ऊपर स्वाभाविक स्नेह है। यह सभी स्त्रियों को अम्बा कहता है और सब स्त्रियाँ इसे अपना पुत्र समझती हैं। साधु बाबा ने कहा – विनम्र आत्मा में बहुत कम काल्पनिक होती है। उनका दैनिक क्रिया-कलाप देवताओं के भी विषय बन जाते हैं।

धीरे-धीरे बालक आठ वर्ष का हो गया। यज्ञोपवीत का समय आ गया, सब तैयारी हुई तिथि मुहूर्त निश्चय हुआ, गाँव भर में आनन्द छा गया, परन्तु मुण्डन वाला जटिल प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। इसी बीच जलाहारी बाबा वहाँ पहुँचे और पोखरे पर पीपल के नीचे पुनः उन्होंने आसन जमाया। ग्रामवासी श्रद्धावनत होते हुए अपनी सारी समस्या बाबा के समक्ष उपस्थित किये, परन्तु बाबा सुन लेते थे बोलते नहीं। एक दिन ध्यानमग्न बाबा के समक्ष गाँव वालों के साथ पण्डित जी आ पहुँचे, सबों ने दण्डवत् किया। पण्डित जी ने विनम्र भाव से यज्ञ-मण्डप में पधारने की प्रार्थना की। बाबा जी ने मन्द मुस्कान सहित निमन्त्रण स्वीकार किया। सब के साथ ही साथ बाबा जी भी यज्ञ-मण्डप में पधारे पण्डित जी यज्ञ कार्य में प्रवृत्त हुए। आवश्यक पूजन विधि-विधान के बाद बाबा जी ने पण्डित जी से कहा — शास्त्रानुकूल मुण्डन भी कराइये, लोगों के कहने पर टुण्डन मात्र से ही सन्तोष न करें। इस अनुमति से पण्डित जी प्रसन्न हुए, परन्तु लोग उदास पड़ गये। लोग कर ही क्या सकते थे। शिखा को छोड़कर सब केश मूंड़ दिये गये। क्षौर कर्म के बाद जब बालक को स्नान कराया गया, तब सबको आश्चर्य में डालते हुए लम्बे बाल फिर निकल आये, पहले जैसे ही मुख की शोभा हो गयी। मण्डप में आनन्द छा गया जय-जयकार की ध्वनि गूँज उठी। बाबा के द्वारा ही ऐसी घटना घटी ऐसे समझते हुए सभी की दृष्टि जब तक बाबा पर पड़ी, तब तक बाबा अन्तर्धान हो गये थे। अनन्तर यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, गायत्री मंत्र की दीक्षा दी गयी वेदारम्भ हुआ। परन्तु पण्डित जी के मन में खेद रह गया कि बालक को बाबा के चरणों में न लगा सका और न अतिथि सत्कार ही कर सका। इस संस्कार का बालक पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। वह एक स्थान पर बैठकर गायत्री जप में ही अपना समय बिताने लगा। पिता ने वेद-वेदांग पढ़ाने की बड़ी चेष्टा की परन्तु बालक ने मौन साधकर उस शिक्षा को अस्वीकृत कर दिया। धारा-प्रवाह गायत्री जप से उसका आसन पृथ्वी से ऊपर उठने लगा और इस दृश्य को देखने के लिए लोगों की भीड़ लग गयी। उस बालक के अन्दर अपूर्व तेज का आधान हुआ, उसका मुखमण्डल चन्द्रमा की तरह प्रकाशित तथा मन-मोहक हो गया। पण्डित जी बार-बार इस बालक को देखते और अपने भाग्य को सराहते।

एक दिन पण्डित जी के मन में काशी जाने की लालसा उत्पन्न हुयी। वे अपने परिवार के साथ-साथ गाँव के बहुत से लोगों को लेकर काशी-यात्रा पर चल दिये। पण्डित जी जहाँ-जहाँ अपने परिजनों के साथ रुकते वहाँ-वहाँ उस तेजस्वी बालक को देखने के लिए भीड़ लग जाती। दीपावली के दिन पण्डित जी काशी पहुंचे, राजघाट विस्तृत भाग में अपना डेरा डाला। बालक ही सबसे आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था, उसके ही भव्य दर्शन से सबको तुष्टि-पुष्टि एवं सुख सन्तोष प्राप्त होता था। कुमार ने गंगा तट पर ही अपने लिए एक छोटी सी कुटिया बनवाई और वह उसी में जप-तप करने लगा। उसकी ऐश्वर्य की ख्याति धीरे-धीरे नगर में फैलने लगी। काशीवासी उसके दर्शनार्थ आने लगे। दर्शनार्थ आये लोगों के द्वारा इतनी पूजा चढ़ने लगी कि न केवल पण्डित परिवार ही वरंच उनके साथ आये हुए सम्पूर्ण यात्री-समाज का निर्वाह उसी से होने लगा। एक दिन दूर के कुछ दर्शनाभिलाषी वहाँ आये और उसमें से एक पण्डित संस्कृत में कुछ तत्त्व की बातें पूछने लगा। तेजस्वी कुमार के मुख से ऐसी सरस्वती की धारा बही कि वह पण्डित उसी में डूबने उतराने लगा। पण्डित कुमार के ऐश्वर्यशाली प्रतिभा से प्रभावित हुआ और इनके सामने नतमस्तक होता हुआ अपने साथियों के साथ वहाँ से विदा हो गया। बालक के पिता आश्चर्यचकित होते हुए इन विद्याओं को कब और कैसे प्राप्त किया जानने की इच्छा प्रगट की। तब बालक ने कहा — पूज्यवर पिता जी सब तो आपकी चरणों का प्रसाद है। प्रणव एकाक्षर ब्रह्म है गायत्री उसकी त्रिगुणात्मिका शक्ति है उसका दूसरा नाम सावित्री है। वह सम्पूर्ण विद्याओं की जननी है तथा अनिर्वचनीय शक्ति है और उसी की आराधना से मुझे सम्पूर्ण विद्यायें प्राप्त हुयी हैं। एक दिन काशी वास

करते हुए इनके पिता का तिरोधान हो गया, जमात में हाहाकार मच गयी, बाद में उनकी माता भामादेवी ने भी अपने पति का अनुगमन किया। कुमार गंगा तट पर ही माता-पिता का अन्त्येष्टि क्रिया की। सनातन विधि से सम्पूर्ण कर्म किये गये। ब्राह्मण भोजनानन्तर विप्रकुमार ने अपने सभी परिजनों को आदर-पूर्वक विदा किया और स्वयं गंगा तट पर ही भगवद्भजन में लग गये।

एक दिन जन्म से ही महात्मा के मन में यह विचार आया क्यों न गंगा जी के किनारे-किनारे सभी घाटों का दर्शन कर नया अनुभव प्राप्त करें दूसरे दिन स्नानादि से होकर गायत्री मंत्र का अनुसन्धान करते हुए राजघाट से चले, प्रहलाद घाट पर आ विरमे और गंगा के स्वच्छ निर्मल धारा को देखने में लीन हो गये। उसी समय एक सुन्दरी हाथ में पक्वानों से सजी हुयी थाल को उनके सामने रखते हुए भोग लगाने का निवेदन किया। वे जल पर से दृष्टि को न हटाते हुए बोले माता जी इसे ले जाइये मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। वह सुन्दरी थाल को गंगा जी में फेंककर अदृश्य हो गयी। पुनः कुछ देर बाद उसी सुन्दरी को अपने सिर पर थाल रखे हुए जल के भीतर देखा। वे आश्चर्य में पड़ गये वे सोचने लगे। गंगा जी थीं क्या ? इस प्रकार सोचते हुए गाय घाट पर पहुँच गये। फिर देखते हैं कि सुन्दर नाव पर पुनः वही सुन्दरी आकर घाट पर ठहरी और शरबत से भरा कमण्डल बाबा के सामने रखते हुये उसे पीने के लिए निवेदन किया। बाबा जी इस बार उसके निवेदन को टाल न सके। उसे उन्होंने पी लिया। वहाँ से वह ब्रह्मचारी वाला पंचगंगा घाट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक सुन्दरी को लट छिटकाये स्नान करते देखा। ब्रह्मचारी को देखकर सुन्दरी बोली — बाबा जी आप भी पंचगंगा में एक डुबकी लगा लीजिए। बाबा जी सुन्दरी की बातों में आ गये और गंगा में छलांग लगा दिया। गोता मारते ही वह उन्हें इच्छा-भवन में ले पहुँची। पूर्व जन्म का स्मरण दिलाते हुए बोली — मैं रम्भा हूँ जिसका आपने तिरस्कार किया था। सुन्दरी की बातें सुनकर बाबा जी आश्चर्य में पड़ गये और आँखें बन्द किये हुये चिन्ता करने लगे। रम्भा उन्हें अपने मायिक संसार में ले उतरी। ब्रह्मचारी बाबा के लाख विनय-प्रार्थना के बावजूद भी रम्भा के विहंगम नृत्य में उन्हें शामिल होना पड़ा। इन्हें नाचना तो आता नहीं था, बार-बार गिर पड़ते थे। रम्भा ने उनके ऊपर दया करके उन्हें ऊँचे आसन पर बैठा दिया। ब्रह्मचारी बाबा मोहक और मादक नृत्य को देखकर व्यामोह में पड़ गये। ऐसी अवस्था में ऊर्ध्वदिशा से वे ही महात्मा जलाहारी बाबा वहाँ आ पहुँचे। वहाँ पहुँचते उन्होंने शंख फूँक दिया, तब मायिक रचना, गान्धर्व लोक, आमोद-प्रमोद, नृत्य-गान और प्रमदाओं के समूह अदृश्य हो गये। विहगंगा रम्भा रूप में प्रगट हुयी और हाथ जोड़ कर बोली-भगवान् ब्रह्मचारी जी को परीक्षासागर से मुक्त करती यह कह देना आवश्यक समझती हूँ कि ये जन्म-जात योगी,निर्विकार, अनासक्त और सदा योगयुक्त रहे और रहेंगे।

बाबा जी ने योगी का हाथ पकड़कर घाट पर लाकर खड़ा कर दिया। "ऊपर मठ में आओ" कहते हुये सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते आँख से ओझल हो गये। पण्डित कुमार को मठ पर जाते ही शान्ति मिली, खोई हुई शक्तियाँ फिर प्राप्त हो गईं। मठ में स्थित स्वामी अनन्ताचार्य जी ने लक्षणों से पहिचान कर आदर के साथ अपने निकट बैठाया। कुछ ही समय बाद पर्दा हटा भगवान् श्रीपरमाचार्य जी के दर्शन हुये। सबने साष्टांग, दर्शन किये। कुमार महात्मा के अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगे। बालक का स्वरूप देखकर सन्त का हृदय करुणा से भर गया। स्वामी जी ने अपने निकट बुलाकर पूछा — अब क्या इच्छा है। पण्डित-पुत्र ने दीक्षा के लिए प्रार्थना की। आचार्यपाद ने पंचसंस्कार पूर्वक श्रीराम मन्त्रोपदेश की दीक्षा दी। गद्गद् कण्ठ से बाल सन्त

ने कहा – गुरुदेव ! श्रीचरणों की अहैतुकी कृपा और ब्रह्मी दीक्षा के लिए गुरु-दक्षिणा सौ जन्मों तक भी नहीं दे सकता हूँ। कोई छोटी-मोटी सेवा बताइए जिसे गुरु-दक्षिणा के रूप में श्रीचरणों में निवेदन कर सकूँ।

स्वामी जी ने कहा – गालव ऋषि ने जिस प्रकार गुरु-दक्षिणा के लिए हठ किया था, उसी तरह हठ करके क्या तुम भी संकट सहना चाहते हो। अतएव मैं तुम्हारा नाम "गालवानन्द" रखता हूँ। गुरु-दक्षिणा में आज्ञा देता हूँ कि तुम काश्मीर देश को चले जाओ। वहाँ प्रचुर मात्रा में धर्मग्लानि उपस्थित है। तुम बड़े धैर्य से वहाँ धर्म का प्रचार करो। आचार्य के उपदेश और आज्ञा को शिरोधार्य करके प्रसन्न मन से गालवानन्द जी ने कश्मीर के लिए प्रस्थान किये। वे मार्ग को तय करते हुए सर्वप्रथम हरिद्वार पहुँचे। वहाँ कुटीचर स्वामी सिद्धाश्रम में उनका बहुत सत्कार किया, वे बड़े विद्वान् और तपोनिष्ठ सन्त थे। पथ-प्रदर्शनार्थ उन्होंने अपना एक शिष्य साथ कर दिया उसने सुगम मार्ग से गालवानन्द जी को श्रीनगर तक पहुँचा दिया। उस समय काश्मीर के राज्यशासन पर सिकन्दर नाम का राजा आसीन था। शिवदेव नामक हिन्दू उसका प्रधानमंत्री था। वह सिकन्दर को अत्याचार के लिए प्रेरित किया करता था। उस मंत्री ने यह प्रचार किया था कि काश्मीर में मुसलमानों के अतिरिक्त कोई न रहे। कोई चन्दन न लगाये, कोई जनेऊ न पहने, मन्दिर नष्ट कर दिये गये। बहुत से ब्राह्मणों ने धर्मत्याग के नाम पर आत्महत्या कर लिये। कुछ काश्मीर छोड़कर भाग गये, कुछ ने ईस्लाम को स्वीकार करके प्राण रक्षा किये।

श्री गालवानन्द जी को ये सब बातें मालूम हुई वे चुपचाप वहाँ से चल दिये और विकट मार्गों को पार करते हुए मार्तण्ड पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर विचार करने लगे हिन्दू जनता की रक्षा कैसे हो, मन्दिर-मठ,तीर्थ स्थान, चिन्ह चक्र की रक्षा कैसे हो। चिन्ता में मग्न उन्होंने गुरु महाराज का स्मरण किया। आचार्य भगवान् ने दर्शन देकर कहा कि राजा की पटरानी गर्भवती होने वाली है। अभी जीवात्मा का प्रवेश उसमें नहीं हुआ है। आज तुम्हें एक योग्य व्यक्ति मिलेगा उसे तुम उस गर्भ में प्रवेश करा देना। बड़ा होकर वह राज्य शासन पर बैठेगा और अनाचार बन्द कर देगा। उसे जन्मान्तर का ज्ञान बना रहे इसका उपाय करते रहना। सद्गुरु का उपदेश सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुये और उस व्यक्ति का प्रतीक्षा करने लगे। वह राजर्षि था। उसने बड़े आदर से गालवानन्दाचार्य जी को प्रणाम करके अपना परिचय दिया। मै महाराज परीक्षित के पुत्र जन्मेजय के भाई हिरण्यदेव का पुत्र "रामदेव" हूँ। मैंने बहुत दिनों तक काश्मीर पर राज्य किया। अन्त में इच्छानुसार मृत्यु की सिद्धि प्राप्त कर अन्तरिक्ष में यहीं रहता हूँ। आज साक्षात् नारायण स्वरूप श्रीस्वामी रामानन्दाचार्य ने दर्शन देकर आपके पास भेजा है। आपकी जो आज्ञा होगी वही करूँगा। संन्यासी की बात सुनकर गालवानन्दाचार्य आश्चर्य चकित हुये। उन्होंने कहा,आचार्य ने अनुकम्पा कर आपको यहाँ भेजा है वह केवल मुझे सनाथ करने के लिए ही है। सन्त दर्शन से आनन्ददायी इस संसार में कुछ भी नहीं है। आपको क्या आज्ञा करूँ, आप सब कुछ जानते ही हैं। धर्मग्लानि यहाँ उपस्थित है। इसे समाप्त करना ही हम लोगों का कर्त्तव्य है। अतः इसके निवारणार्थ उपाय करना है। संन्यासी ने कहा – मैं इसके लिए तैयार हूँ। श्री गालवानन्दाचार्य ने कहा – सर्वप्रथम राजकीय सरस्वती भण्डार की सब पुस्तकें क्षेमेन्द्र, महेन्द्र आदि महापण्डितों के घर की सब पुस्तकें आप अनन्तनाग, पाटन आदि के गुफाओं में पहुँचकर सुरक्षित कर दें। दैवयोग से दुष्टों का ध्यान अभी इधर नहीं आया है। फिर बाद में अन्य उपाय सोचा जायेगा। संन्यासी प्रसन्न मन से इस कार्यों को सम्पादित कर पुनः स्वामी जी के समक्ष उपस्थित हुए। तब श्रीस्वामी जी ने गुरुतर दूसके कार्य का निर्देश किया – रानी के गर्भ से जन्म-धारण करके समयानुसार राजसिंहासन पर बैठ करके अत्याचार और उपद्रव को एक दम बन्द कर देना

है । संन्यासी इस कार्य के लिए भी तैयार हो गया। संन्यासी का ज्ञान दृढ़ करने के लिए पुनः भगवान् श्री रामानन्दाचार्य जी का दर्शन हुआ। जैसे सूर्योदय से सम्पूर्ण तम का नाश हो जाता है वैसे ही आत्मज्ञान से उस संन्यासी का सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट हो गया। उसी दिन परमहँस "रामदेव जी" ने रानी के गर्भ में प्रवेश किया, उसके योग शरीर की रक्षा गालवानन्द जी करते रहे।

रानी के गर्भ से युवराज का जन्म हुआ,युवावस्था होने पर सिकन्दर के बाद इस युवराज का राज-सिंहासन पर अभिसिण्चन हुआ। सिंहासनारूढ़ होकर उसने सिकन्दर और शिवदेव की नीति बदल दी। जैनुल आवदीन ने निर्वासित ब्रह्मणों को बुलाकर पुनः बसाया। राज्यभर में सुख और शान्ति का विस्तार हो गया। एक बार उसने काश्मीर तथा अन्यत्र के विद्वानों को अपने यहाँ आमंत्रित किया। यह दरबार एक पखवाड़े तक चला। राजा स्वयं तत्वज्ञानी था। वह विद्वानों के प्रवचनों को सुनता और उचित सत्कार करता था। एक दिन परमहंस गालवानन्दाचार्य जी पहुँचे और उसकी ओर ताका,आँख से आँख मिल गई। उसके पूर्व की संस्मृति जागृत हो गई वह परमहंस जी के चरणों में गिर गया। आचार्य गालवानन्द ने उसे गिरने से बचाया और छाती से लगाकर अपने पास बैठाया। अनन्तर आचार्य का हाथ पकड़कर राजा उठा और एकान्त में बहुत देर तक बातें होती रहीं। उस गुप्त वार्ता को कोई न जान सका। आचार्य विदा होकर मार्तण्ड को चले गये। उनके जाने के कुछ दिनों के बाद जैनुल आवदीन ने अपने पुत्र को गद्दी पर बैठा कर स्वयं फकीरी ले ली। वे सीधे मार्तण्ड की ओर रवाना हुए और वहाँ पहुँच कर ही विश्राम लिया। आचार्य गालवानन्दाचार्य जी ने दरवेश फकीर वेष में शाह जैनुल आवदीन का स्वागत किया। उसी समय मैना और सुग्गा की जोड़ी आकाश से उतरी। तोता आचार्य के हाथ पर बैठा और मैना शाह के कन्धे पर बैठी दोनों एक स्वर से अलापा – "ओमामीन" तब गालवानन्दाचार्य जी ने तोते को पढ़ाया –

पढ़-पढ़ तोता रामै रामं। दुइ अक्षर पर कर विश्राम।

दुइ से एक एक से अनहद। पाँच छैद्रय तत्त्व विशारद।

सूनी जिभिया कौने काम। पढ़-पढ़ तोता रामहि राम।

शाह जी ने मैना को पढ़ाया –

मैं का भेद समझ तू मैना। मैं से फड़फड़ात है डैना।

झूठा मैं ना सांचा मैं ना। "मैं" गुनि गुनि के तू गुम होना।

उड़न बाज उड़ि जावै अैना। मैं का भेद समझ तू मैना।

इस प्रकार दोनों ब्रह्मर्षि और राजर्षि एक ही साथ अन्तरिक्ष में लीन हो गये। जल-प्रवाह के समान जीवन क्षणभंगुर है। धन वैभव स्मृति पथ के चित्र हैं। ऐसी परिस्थिति में बुद्धिमत्ता इसी में है,भगवच्चरण में तन्मय हो जाये। भागवत् को भगवान् का अनुकरण और अनुसरण करना चाहिए। उत्सर्गपूर्वक जन्म लेकर धर्मग्लानि को दूर करना। यही युगादि का धर्म है। इति।

★ ★ ★

वैष्णव भक्ति की सैद्धान्तिक भूमिका

— डा० भोला शंकर व्यास

भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति के विकास में भागवत धर्म तथा वैष्णव भक्ति से सम्बद्ध वैचारिक क्रान्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय चिन्तकों ने मानव जीवन का लक्ष्य पुरुषार्थ-चतुष्टय माना है, जो मानव के ऐहिक तथा आमुष्मिक कल्याण से संबद्ध है। आमुष्मिक श्रेय की उपलब्धि के लिए भारतीय शास्त्र, आगम, निगम, पुराण तथा दर्शन ज्ञान, कर्म और उपासना (भक्ति) के इस मर्गत्रय का निर्देश करते हैं, जो आधिकारिक भेद से जुड़े हैं। वैदिक यज्ञ-यागादि, जिनके निदर्शक, मुख्यतः ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं, कर्म-मार्ग से सम्बद्ध हैं और जैमिनि का पूर्व मीमांसा दर्शन ईश्वर जैसी सत्ता को न मानते हुए श्रुति-सम्मत दर्श-पौर्णमासादि याग को ही निःश्रेयस की प्राप्ति का साधन मानता है – "स्वर्गकामो यजेत"। आरण्यक तथा उपनिषद् में कर्म-मार्ग की अपेक्षा ज्ञान-मार्ग का प्राधान्य दर्शाया गया है। याज्ञवल्क्य के औपनिषदिक चिंतन का प्रतिपाद्य आत्म-दर्शन ही है – "आत्मा वारे द्रष्टव्यः" इसी आत्म-दर्शन के अंग के रूप में वहाँ जीव, जगत् और ब्रह्म की चर्चा और इनका तत्त्व विश्लेषण उपलब्ध होता है, जो सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक और वेदान्त के तत्-तत् तत्त्वज्ञान सम्बन्धी विचारों में विस्तार से क्रमशः कपिल-पतंजलि, गौतम-कणाद और बादरायण के द्वारा मीमांसित किया गया है। उपनिषदों में सबसे पहले जगत् के उपादान कारणभूत पंचमहाभूतों की चर्चा है, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशों की परिकल्पना है तथा देह से भिन्न देही (शारीरिक-आत्मा) की स्थापना है। इतना ही नहीं व्यष्टि रूप आत्मा के साथ ही साथ समष्टि रूप चेतन तत्त्व (परमात्म, ब्रह्म) की भी परिकल्पना है, जिसे कहीं तो अंशांशि-भाव से और कहीं अभेद-भाव से जीव से संबद्ध घोषित किया गया है। इसी ब्रह्म को उपनिषद् समस्त जगत्-प्रपंच–जड़ और चेतन का उपादान कारण भी मानते हैं न कि मात्र निमित्त कारण।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च"

"आत्मन आकाशः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी"

इस प्रकार उपनिषदों में पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड के परस्पर संघर्ष की भी चर्चा है और आगे चलकर योगियों के यहाँ प्रचलित "यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे" वाले सिद्धान्त के बीज भी मौजूद हैं। जहाँ ब्राह्माण्ड ग्रन्थ और पूर्व मीमांसा प्रवृत्ति मार्ग से जुड़े हैं, वहाँ उपनिषद् तथा शेष दर्शन तत्त्व ज्ञान पर जोर देने के कारण प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति की ओर झुके जान पड़ते हैं। यद्यपि कपिल, गौतम और कणाद के विचारों में निवृत्ति मार्ग का प्राधान्य साफ तौर पर स्पष्ट नहीं है, फिर भी पतंजलि की अष्टांगयोग साधना में और बादरायण सूत्र के केवलाद्वैतवादी

भाष्यकार शंकर के यहाँ तो निवृत्तिमार्ग की प्रधानता स्पष्ट है ही।

मानव के आमुष्मिक श्रेय के लिए निर्दिष्ट उपासना या भक्ति का मार्ग श्रुत्यनुमोदित है या नहीं, इस विषय में काफी मतभेद देखा जाता है। कई विद्वान् इसे वेद विरुद्ध मानते हैं, द्रविड़ या द्रमिड़ संस्कृति के देन या सात्त्वतों का अनुदान या श्वेत-द्वीप से आयातित साधना-मार्ग। ग्रियर्सन जैसे विदेशी विद्वान् तो इसे ईसा की आरम्भिक सदियों में फिलस्तीन से दक्षिणी भारत (केरल) में आकर बसे उन ईसाई सन्तों की देन घोषित करते हैं। जिनमें बर्जिन, मेरी तथा यीशु की उपासना परक भक्ति पायी जाती थी। ग्रियर्सन का यह मत सर्वथा अविचारणीय तथा विरुद्ध तर्कप्रतिष्ठित है, अतः इस पर पूर्वपक्ष के रूप में भी विचार करना निरर्थक होगा ।

परात्पर सत्ता के प्रति समर्पण-भावनामूलक भक्ति या उपासना का मार्ग श्रुत्यनुमोदित है या नहीं, इस विषय में अत्यधिक ऊहापोह मिलता है। अद्वैत वेदान्त के प्रवर्त्तक शंकराचार्य उपासनापरक मार्ग को वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं मानते। ब्रह्मसूत्र संख्या २:२:४२-४५ के भाष्य में उन्होंने प्राचीन आगम परक पांचरात्र सिद्धान्त को वेद-विरुद्ध मानते हुए बताया है कि पांचरात्रों द्वारा सम्मत या कल्पित चतुर्व्यूह वाद, जिसमें वासुदेव से क्रमशः संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की उत्पत्ति की कल्पना की गयी है, सर्वथा वेद-विरुद्ध है, क्योंकि वैदिक सिद्धान्त के अनुसार जीव नित्य होने के कारण न तो उत्पन्न ही होता है और न नष्ट ही। साथ ही जीव को परात्पर सत्ता का जो अंश माना गया है, वह भी श्रुत्यनुमोदित नहीं है, क्योंकि जीव स्वयं अपने अज्ञान से माया परिच्छिन्न होने के कारण ब्रह्म से भिन्न उसी तरह प्रतीत होता है, जैसे शुक्ति में रजत की भ्रांति होती है। वस्तुतः वह ब्रह्म से अभिन्न है, उसका अंश नहीं। इसी तरह अन्य आधुनिक विद्वान् भी भक्ति को निगम परक न मानकर आगम परक ही मानते हैं। जबकि दूसरी ओर ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखते समय रामानुज, वल्लभ आदि वैष्णव आचार्यों ने यह सिद्ध किया है कि भक्ति का आगमिक सिद्धान्त, जिसका मूल स्रोत पांचरात्र संहिताओं और सारस्वत संहिताओं में उपलब्ध है, वैदिक परम्परा से पूरी तरह जुड़ा हुआ है और इसे अवैदिक कथमपि नहीं कहा जा सकता। अपने ब्रह्मसूत्र पर लिखे भाष्यों में ये आचार्य स्थान-स्थान पर वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् के प्रमाण देते हुए अपने सिद्धान्तों की स्थापना करते देखे जाते हैं। ऐसा लगता है कि भक्ति सिद्धान्त के मूलतः अवैदिक आगमिक परम्परा का होते हुए भी आगे चलकर इसके अनुयायियों ने इसे वेदानुमोदित बनाने का अथक प्रयास किया है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय और डा० मुंशीराम शर्मा ने भक्ति के बीज वैदिक संहिताओं में भी संकेतिक किए हैं और वहाँ जिस गौण देवता 'विष्णु' का कतिपय सूक्तों में स्तवन है, उसे पांचरात्र सिद्धान्त के वासुदेव और विष्णु से जोड़ते हुए पौराणिक विष्णु से अभिन्न माना है। वेदों में तीन क्रम में अंतरिक्ष को नापने वाले जिस विष्णु की चर्चा है, वह वस्तुतः प्रामाणिक देव शक्ति सूर्य है, न कि पांचरात्रों का वासुदेव या विष्णु। ऐसा जान पड़ता है कि वेद जो मूलतः कर्ममार्ग के प्रतिष्ठापक हैं, वैसी समर्पण भावनापरक उपासना का प्रतिपादन नहीं करते, जिसे, भक्ति नाम दिया गया है। वैदिक परम्परा से भक्ति को जोड़ने वाले विद्वानों की यह दलील है कि पांचरात्र सम्प्रदाय, जिसका एक नाम 'एकायन' भी है, मूलतः कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। कृष्ण यजुर्वेद की काण्व शाखा में औपगायन तथा कौशिक जैसे ऋषियों का मार्ग भक्ति या समर्पण भावना, जिसे पारिभाषिक पदावली में प्रपत्तिशास्त्र कहा गया है, रहा है। इनके साथ इसी शाखा के तीन और वैदिक ऋषि शांडिल्य, भरद्वाज और यौंज्यायन को भी प्रपत्ति मार्ग से जोड़कर पांचरात्र मार्ग के आदिम प्रवर्त्तक माना जाता है।

इनके अतिरिक्त वैदिक काल के ही वैखानस ऋषियों को भी भक्तिमार्गी माना जाता है, जो उत्तर वैदिक काल या उपनिषद् काल में भक्ति के प्रवर्त्तक रहे हैं। इन वैखानसों के भक्ति.सिद्धान्त परक ग्रन्थ भी मिलते हैं, जो पांचरात्र सिद्धान्त के ग्रन्थों या संहिताओं से भिन्न हैं। अप्पय दीक्षित ने वैखानस संहिता को तो वेदानुकूल माना है, क्योंकि उनके सिद्धान्त वेद-प्रतिपाद्य तत्त्वों के आधार पर हैं, किन्तु वे पांचरात्र मत को और उनकी संहिताओं को वेदानुकूल नहीं मानते। दक्षिण में रामानुजाचार्य के उदय के पूर्व वैखानस संहिताओं का और उनके अनुसार वैष्णव मन्दिरों के निर्माण, विष्णु की मूर्ति की स्थापना और तदनुसार पूजा-अर्चा का विधान था, जो धीरे-धीरे रामानुज द्वारा प्रचारित पांचरात्र उपासना पद्धति के कारण प्रचलन में कम हो गया। कहा जाता है कि तिरुपति के मन्दिरों में आज भी जो पूजा-अर्चा होती है, वह पांचरात्र परम्परा की न होकर वैखानस परम्परा की है । कुछ भी हो ऐसा लगता है कि पांचरात्र सात्वत मत को, जिसे भागवत-धर्म भी कहा जाता है, मूलतः वेदानुमोदित न होते हुए भी आगे चलकर वेदानुमोदित मान लिया गया।

इसके पूर्व कि हम भक्ति के उदय और विकास पर प्रकाश डालें, यह संकेत कर देना आवश्यक होगा कि भक्ति सम्प्रदाय की प्रायः तीन संज्ञाएं प्रचलित हैं, यथा भागवत सम्प्रदाय, पांचरात्र संप्रदाय एवं सात्वत सम्प्रदाय । इन तीन संज्ञाओं के अतिरिक्त एक पुरानी संज्ञा 'एकायन' भी मिलती है जिसका अर्थ है — एकमात्र मार्ग अर्थात् मोक्ष का एकमात्र तथा सर्वश्रेष्ठ साधन। इस एकायन को ही पांचरात्र या सात्वत भी कहा गया है, जिसका प्रवर्त्तन द्वापर युग के अन्त और कलियुग के आदि में स्वयं भगवान् संकर्षण ने जीव के कल्याण के लिए किया था। पांचरात्र शब्द का अर्थ पांच प्रकार के विषयों के ज्ञान से है। यहाँ 'रात्र' शब्द का अर्थ है — ज्ञान। ये पाँच विषय क्रमशः परमतत्त्व, मुक्ति, भुक्ति, योग तथा विषय (संसार) है। चूंकि पांचरात्र सिद्धान्त में इन पांचों प्रकार के तत्त्वों का ज्ञान है, इसलिए इसे पांचरात्र कहा जाता है। इसकी दूसरी संज्ञा 'सात्वत' इसलिए दी गई है कि सात्वत का अर्थ है — भगवान् से सम्बद्ध अर्थात् भागवत, किन्तु सात्वत शब्द के द्वारा इस सम्प्रदाय के ऐतिहासिक विकास का भी संकेत मिलता है कि यह मूलतः उन यादववंशी सात्वतों की उपासना पद्धति थी, जिनके मूल में कृष्ण का जन्म हुआ था। श्रीमद्भागवत के रचनाकार ने इस पुराण को 'सात्वत संहिता' कहा है। इन संज्ञाओं के अतिरिक्त भागवत धर्म, नारायण धर्म, वासुदेव धर्म, वैष्णव धर्म जैसे अन्य नाम भी प्रचलित हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह ज्ञात होता है कि वासुदेव या नारायण की भक्ति का विधान पाणिनि से भी अधिक पुराना है, क्योंकि पाणिनि ने वासुदेव की भक्ति करने वाले व्यक्ति के लिए 'वासुदेवक' संज्ञा का संकेत किया है, जो यहाँ वासुदेव का अर्थ वसुदेव के पुत्र 'कृष्ण' न होकर देवता विशेष है, जिनकी उपासना उस समय प्रचलित थी। भागवत धर्म की उपासना पद्धति का संकेत स्पष्ट रूप से सर्वप्रथम महाभारत के शांतिपर्व में मिलता है, जहाँ नारायणीय उपाख्यान में पांचरात्र उपासना का उल्लेख करते हुए इस सम्प्रदय के उपास्य देव नारायण का संकेत है। यहीं यह भी वर्णित है कि इस भक्ति पद्धति का अनुसरण मूलतः 'श्वेतद्वीप' में रहेन वाले जीवों द्वारा किया गया था और नारद ने स्वयं वहाँ जाकर साक्षात् नारायण से भक्ति धर्म का रहस्य प्राप्त किया था। यहीं नारायण और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध जैसे चतुर्व्यूह की कल्पना का उल्लेख मिलता है। महाभारत के अनुसार ये चारों व्यूह क्रमशः परमात्मा, जीव,महत्तत्त्व और अहंकार हैं। यहीं यह भी ज्ञात होता है कि दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से पांचरात्र या भागवत सम्प्रदाय कपिल के सांख्य के पच्चीस तत्त्वों के अतिरिक्त विकास-क्रम की दृष्टि से अन्य तत्त्वों की भी परिकल्पना की गयी है, जिसका संकेत हम यथावसर करेंगे।

डा० भंडारकर ने यह माना है कि वस्तुतः प्राक्-महाभारत काल में नारायण वासुदेव तथा हरि की अलग-अलग भक्ति-पद्धतियाँ प्रचलित थीं, किन्तु महाभारत काल में आकर इन तीनों को एक ही उपास्य का अभिन्न रूप मान लिया गया और ये सम्प्रदाय परस्पर सम्बद्ध हो गए। भागवत धर्म के आरम्भिक स्वरूप में वासुदेव और उनके बन्धु, पुत्र और पौत्र की पूजा का कोई विधान नहीं था। उस समय केवल हरि की उपासना का विधान था । गीता में श्रीकृष्ण ने जिस भागवत धर्म का उपदेश दिया है, उसके उपदेष्टा नारायण माने गए हैं और वहाँ चतुर्व्यूह की परिकल्पना सर्वथा नहीं है। चूंकि भागवत धर्म को प्रतिष्ठापित करने में उपदेष्टा के रूप में वासुदेव श्रीकृष्ण का महत्त्वपूर्ण योगदान था, इसलिए आगे चलकर उन्हीं के आधार पर भक्ति का एक स्वतंत्र सम्प्रदाय चल पड़ा और वासुदेव (कृष्ण) तथा उनके बड़े भाई संकर्षण, पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध उपास्य देवता (चतुर्व्यूह) बन गए और उन्हें प्रतीकात्मक मानकर उनकी व्याख्या या तो कभी जीव की चार स्थितियों (जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति और तुरीय) या परमात्म तत्त्व, जीवतत्त्व, महत्तत्त्व (बुद्धि) और अहंकार के रूप में प्रतीकात्मक रूप में की जाने लगी।

उत्तरी भारत की यह भक्ति परम्परा ईसा की दूसरी तीसरी शताब्दी के आसपास दक्षिण में, विशेषतः तमिल प्रदेश में, पल्लवित होने लगी थी, जिसका अत्यधिक विकसित रूप वहाँ छठीं शती से नवीं शती तक के उन भक्तों में मिलता है, जिन्हें आलवार कहा जाता है। इन बारह आलवार सन्तों में नवीं शती में उदित नम्मालवार या राठ कोपाचार्य ऋषि तथा आंडाल या गोदा विशेष प्रसिद्ध हैं। इन आलवार भक्त संतों के प्रबन्ध गीतों में वैष्णव भक्ति का विकसित रूप उपलब्ध मिलता है। नवीं शती के अन्त में दक्षिणी अकटि में उत्पन्न नाथमुनि ने, जो वस्तुतः उत्तर के भागवत अथवा पांचरात्र सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे, इन आलवार भक्तों के तमिल प्रबन्ध का संकलन किया और आगे चलकर इन नाथमुनि के पौत्र आलवन्दार ने पांचरात्रिक भक्ति को वेदान्त से जोड़कर उस दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना की, जिसे रामानुज ने विशिष्टाद्वैत के रूप में पल्लवित किया। दक्षिण में उदित यह भक्ति पद्धति जिन विशिष्ट तत्त्वों से समन्वित है, वह है (१) ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व (२) नाम महिमा (३) स्तुति या कीर्तन (४) प्रपत्ति या शरणागति (५) गुरु-महिमा (६) सत्संग और वैराग्य । ये तत्त्व प्रायः सभी वैष्णव भक्तों में समान रूप से उपलब्ध हैं। आलवारों की भक्ति में पांचरात्र के विष्णु तथा लक्ष्मी को क्रमशः तमिल परम्परा के अनुसार कन्नन तथा नाम्पिंन्ने के रूप में अवतारित माना जाता है, जिन्हें विद्वानों ने कृष्ण तथा कृष्ण की प्रेयसी गोपबाला से समीकृत किया है। विष्णु और लक्ष्मी की भक्ति के अतिरिक्त इन आलवार भक्तों के प्रबन्धों में कृष्ण की विविध लीलाओं का ही नहीं, अपितु राम का भी वर्णन मिलता है, किन्तु इनका मन कृष्णावतार के चित्रण में जितना रमा है, उतना रामावतार के वर्णन में नहीं।

वैष्णव भक्ति को ठोस दार्शनिक आधार देने का कार्य जिन चार आचार्यों ने किया है, वे सभी दक्षिण से सम्बद्ध रहे हैं। शंकर के केवलाद्वैत या मायावाद के विरोध में, जो हम इस समस्त जगत् को भ्रान्ति मानते हैं, और जीव को स्वयं ब्रह्म घोषित करते हैं, इन भक्त आचार्यों ने जगत् को प्रातिभासिक या मिथ्या न मानकर यथार्थ या पारमार्थिक स्वीकार किया है और जीव तथा जगत् दोनों को सगुण तत्त्व या परमात्म तत्त्व का अंगभूत माना है। यह अवश्य है कि इन आचार्यों में भी जीव, जगत् और ब्रह्म के परस्पर सम्बन्ध के विषय में मतभेद हैं। जिस आधार पर इनके सिद्धान्तों का नामकरण किया जाता है। वैष्णव भक्ति दर्शन की दृष्टि से ये दार्शनिक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :—

१. रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद २. माध्व का द्वैतवाद

३. निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, तथा ४. वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद।

इन चार दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त पाँचवां वैष्णव भक्तिपरक दार्शनिक सिद्धान्त चैतन्य का अचिन्त्य भेदाभेदवाद है, जो यद्यपि चैतन्य सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार माध्व सम्प्रदाय के द्वैतवादी दर्शन से जुड़ा माना जाता है, किन्तु तात्त्विक विश्लेषण की दृष्टि से निम्बार्क के द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्त के अधिक निकट जान पड़ता है।

उपर्युक्त चार सम्प्रदायों को क्रमशः श्रीसम्प्रदाय ब्रह्म (माध्व) सम्प्रदाय, सनकादि सम्प्रदाय तथा रुद्र सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इन सभी सम्प्रदायों में एक बात समान रूप में यह पाई जाती है कि ये ईश्वर के सगुण तथा निर्गण दोनों रूप स्वीकार करते हुए भी सगुण रूप पर अधिक जोर देते हैं, क्योंकि भक्ति का विषय वही हो सकता है, निर्गुण नहीं। रामानुज सम्प्रदाय में यह उपास्य विष्णु तथा उनकी शक्ति लक्ष्मी है। माध्व सम्प्रदाय के उपास्य भी विष्णु या हरि हैं, किन्तु यहाँ लक्ष्मी को उतना महत्त्व नहीं दिया गया है, जितना रामानुज सम्प्रदाय में। निम्बार्क के उपास्य कृष्ण हैं, जबकि वल्लभ सम्प्रदाय के उपास्य बालरूप कृष्ण हैं। इस निबन्ध में हम मुख्यतः रामानुज सम्प्रदाय और उसी के एक प्ररोह रामानन्द द्वारा प्रवर्तित रामावत सम्प्रदाय सिद्धान्त और साधनापरक तत्त्वों तक ही सीमित रहेंगे, तथापि संक्षेप में उपर्युक्त चारों सम्प्रदायों के परस्पर भेद के विषय में कुछ कह देना आवश्यक होगा।

रामानुज सिद्धान्त के अनुसार मूल तत्त्व या पदार्थ तीन हैं – (१) चित् अर्थात् भोक्ता जीव, (२) अचित् अर्थात् भोग्य जगत् तथा ईश्वर या सगुण ब्रह्म। चित् तथा अचित् अर्थात् जीव और जगत् ईश्वर के ही शरीर या प्रकार हैं और इसीलिए इस सिद्धान्त को विशिष्टाद्वैतवाद कहा जाता है, क्योंकि परात्पर सत्ता, जो सगुण ब्रह्म है, चिदचिद् विशिष्ट है। रामानुज के मत में निर्गुण ब्रह्म की कल्पना ही असंभव है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म ज्ञान का विषय हो ही नहीं सकता। ज्ञान मुख्यतः प्रत्यक्ष रूप तथा अनुमान रूप होता है और निर्गुण निर्विकल्पक वस्तु न तो प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय हो सकती है और न अनुमान का ही। ब्रह्मसूत्र के भाष्य में प्रथम सूत्र "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" की व्याख्या करते हुए रामानुज ने शंकर के मत का विस्तार से खण्डन करते हुए बताया है कि समस्त प्रमाण सविशेष वस्तु के ही प्रमापक होते हैं, निर्विशेष, निर्विकल्पक या निर्गुण के नहीं। अतः वह ब्रह्म, जिसकी जिज्ञासा अपेक्षित है, गुण विशेष ही हो सकता है, निर्गुण कदापि नहीं। साथ ही शंकराचार्य के मत में यह भी दोष है कि उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को ब्रह्म की सृष्टि, या भ्रान्ति द्वारा परिकल्पित जगत् माना है, जो कि ठीक नहीं है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म में सर्गादि कर्तृत्व (सृष्टि की रचना करने वाला) घटित नहीं हो सकता। इस दृष्टि से रामानुज ब्रह्म का अर्थ सगुण ब्रह्म या विष्णु लेते हैं, जिसके अंगभूत जीव तथा जगत् दोनों हैं। जीव और जगत् का सगुण ईश्वर के साथ सम्बन्ध अपृथक् सिद्ध है। वह वस्तुतः जीव और जगत् दोनों का आश्रय है और उनका नियमन करता है तथा उन्हें कार्य में प्रवृत्त करता है। यही ईश्वर समस्त जगत् प्रपंच का निमित्त कारण तथा उपादान कारण दोनों है। वह लीला के लिए इस संसार की सृष्टि करता है और लीला के लिए ही इसका संहार भी करता है। सगुण ईश्वर के पाँच स्वरूप हैं – (१) परब्रह्म रूप (२) व्यूहरूप (३) विभव रूप (४) अन्तर्यामी रूप और (५) अर्चावतार रूप।

चित् या जीव, जो मूलतः ईश्वर का ही शेष या अंश रूप है, देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि से युक्त अजड़, आनन्दरूप, नित्य, अणु, अव्यक्त, अचिन्त्य, निरवय, निर्विकार तथा ज्ञानाश्रय है, किन्तु वह ईश्वर की

भांति विभु नहीं है। वह जगत् सम्पर्क में आकर अविद्या के कारण कर्म बन्धन में बँधा रहता है, फलतः नाना प्रकार के क्लेश और जन्म-मरणादि सहता है। इस कार्म-बन्धन से उसे तभी मुक्ति मिल सकती है जब वह ईश्वर के प्रति प्रपन्न या शरणागत हो और उसकी कृपा प्राप्त कर मुक्ति का अधिकारी हो सके, जो शंकर की कैवल्यमुक्ति से भिन्न है। रामानुज के अनुसार यह मुक्ति सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य या सार्ष्टि मुक्ति हो सकती है। इस तरह रामानुज की मुक्ति कल्पना में पूर्णतः अद्वैत नहीं होता अर्थात् बूँद समुद्र में सर्वथा विलीन नहीं होती, अपितु उसका अपना अस्तित्व भी पृथक् से बना रहेगा।

रामानुज सम्प्रदाय की साधना पद्धति मुख्यतः दास्य भाव की है। इसके अनुसार जीव दास है और भगवान् स्वामी। आनन्य भाव से भगवान् की सेवा या भागवत् कैंकर्य से ही जीव का उद्धार हो सकता है। विष्णु के चरणारविन्दों में पूर्णतः आत्म समर्पण या प्रपत्ति से बढ़कर और कोई महनीय साधन नहीं है। प्रपत्ति के द्वारा ही भागवत कृपा की प्राप्ति हो सकती है। जीव को भगवान् के समीप ले जाने के लिए गुरु की सर्वथा आवश्यकता है और प्रायः सभी वैष्णव सम्प्रदायों ने गुरु और उनके द्वारा कृपापूर्वक दिए हुए उपदेश का महत्त्व स्वीकार किया है, जिसके बिना जीव भगवच्चरणों के प्रति उन्मुख नहीं हो सकता।

वैष्णव आचार्यों में रामानुज के बाद मध्वाचार्य आते हैं, जिनका सिद्धान्त द्वैतवाद है। मध्व अद्वैतवाद के कट्टर विरोधी हैं और वे ईश्वर तथा जीव, ईश्वर तथा जगत्, जीव तथा जगत्, एक जीव और दूसरे जींव तथा एक अचेतन पदार्थ से दूसरे अचेतन पदार्थ में तत्त्वों का भेद मानते हुए द्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। सभी भक्त आचार्यों की भांति ये भी जगत् को सत्य मानते हैं, शंकराचार्य की तरह कालजन्य अवास्तविक नहीं। इनके सिद्धान्त में सगुण विष्णु परात्पर तत्त्व हैं, जिनका स्वरूप सच्चिदानन्दात्मक है और जो सर्वज्ञ, अनन्त शक्तिमान् और अपरिमित गुणों से सम्पन्न है। जीव परात्पर तत्त्व हरि के अनुचर हैं और इन जीवों में भी अपनी कर्मभिन्नता के कारण उत्तम, मध्यम तथा अधम ये तीन कोटियाँ पायी जाती हैं। इनमें मध्यम तथा अधम कोटि के जीवों की कभी मुक्ति नहीं हो सकती। मध्वाचार्य के अनुसार मुक्ति का अर्थ वास्तव सुख की अनुभूति है, जो कर्मक्षय के कारण ही हो सकती है। उच्च कोटि की मुक्ति वह, जिसमें जीव भगवान् प्रवेश कर सायुज्य मुक्ति द्वारा आनन्द का भोग करता है। इस मुक्ति की प्राप्ति निर्मल (अमल) या अहैतुकी भक्ति द्वारा ही संभव है।

भक्ति सम्प्रदाय के तृतीय आचार्य निम्बार्क हैं, जिनका सिद्धान्त द्वैताद्वैत है। ये ब्रह्म तथा जीव के सम्बन्ध में द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद के प्रतिपादक हैं। इनकी सृष्टि में जीव अवस्था भेद के प्रतिपादक हैं। इनकी दृष्टि में जीव अवस्था भेद से ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी। यद्यपि चैतन्य सम्प्रदाय साम्प्रदायिक दृष्टि से अपने आपको माध्व सम्प्रदाय से जोड़ता है, किन्तु उसमें उपलब्ध अचिन्त्य भेदाभेद का सिद्धान्त लगभग वही है, जो निम्बार्क का द्वैतवादी सिद्धान्त। निम्बार्क के अनुसार द्वैत तत्त्व तीन हैं – (१) ईश्वर (२) जीव (चित्), तथा जगत् (अचित्)। जीव ज्ञान स्वरूप है, कर्त्ता है, अणु है तथा नाना है, पर इतना होते हुए भी वह अपने ज्ञान और योग की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्र न होकर ईश्वर पर आश्रित है। मुक्त दशा में भी वह ईश्वर पर आश्रित रहता है और शंकराचार्य की कैवल्य मुक्ति की तरह स्वयं ब्रह्मरूप नहीं बन जाता। ईश्वर सर्वशक्तिमान है, जो अंशी है और इसी का अंश रूप या शक्ति रूप जीव है। अचित् या जगत् चेतना हीन पदार्थ। निम्बार्क के अनुसार ब्रह्म या ईश्वर सगुण रूप है। वह समस्त ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि का विधान है। इस परमात्म तत्त्व को भी परब्रह्म नारायण पुरुषोत्तम कृष्ण की शक्ति राधा है, जिसे आह्लादिनी शक्ति कहा गया है। इस प्रकार निम्बार्क में कृष्ण के युगल रूप की उपासना भी पायी जाती है। जीव को मोक्ष के लिए भगवत् भक्ति या प्रपत्ति का

आश्रय लेना पड़ता है। यही मोक्ष अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति का साधन है। भक्ति पाँच भावों से की जा सकती है यथा शांत, दास, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति राधा गौड़ीय वैष्णवों की राधा की तरह परकीया न होकर स्वकीया मानी जाती है अर्थात् वह कृष्ण की विवाहिता पत्नी थी।

वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य चतुष्टय में अन्तिम वल्लभाचार्य हैं, जिनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत कहलाता है। शंकराचार्य के अद्वैतवाद से इस सिद्धान्त में यह भेद है कि वहाँ माया से लिप्त ब्रह्म को जगत् का कारण माना गया है, किन्तु यहाँ माया से अलिप्त ब्रह्म, जिसे शुद्ध ब्रह्म कहा गया है, जगत् और जीव दोनों का कारण है। वल्लभाचार्य ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों स्वरूप मानते हुए भी सगुण ब्रह्म अर्थात् पुरुषोत्तम कृष्ण को अधिक महत्त्व देते हैं, जो अपनी अनन्त शक्तियों से युक्त होकर अपने भक्तों के साथ वैकुण्ठ में नित्य लीला करते रहते हैं। ब्रह्म के तीन रूप हैं — (१) आधिभौतिक (अर्थात् जगत् जो ब्रह्म का बाह्य स्वरूप है) (२) आध्यात्मिक (अर्थात् अक्षर ब्रह्म, जिसकी प्राप्ति योगी लोग विशिष्ट ज्ञान से भी कर सकते हैं) (३) आधिदैविक या परब्रह्म या पुरुषोत्तम, जो केवल परम भक्ति से ही उपलब्ध है। इस प्रकार अक्षर ब्रह्म, परब्रह्म या पुरुषोत्तम से निम्न कोटि की सत्ता है। जब भगवान् लीला करने की इच्छा करते हैं, तो वे अपने ही अंश रूप जीवों की सृष्टि करते हैं, जिसमें सत् और चित् अंश रहता है, किन्तु उसका आनन्दांश तिरोहित रहता है। यह जीव अणु रूप तथा नित्य ज्ञाता स्वरूप है, किन्तु आनन्दांश के तिरोभाव के कारण वह कर्म बन्धन में फँसकर दुःख भोगता है। शुद्धाद्वैत के अनुसार जीव मुख्यतः तीन प्रकार के हैं, यथा (१) शुद्ध जीव (२) मुक्त जीव तथा सांसारिक जीव। जीव को जागृतिक कर्म बन्धन में मुक्ति तभी मिल जाती है, जब वह भक्ति के द्वारा भागवत का अनुग्रह या पुष्टि प्राप्त करता है। भक्ति भी दो प्रकार की होती है। यथा (१) प्रपत्ति भक्ति तथा (२) पुष्टि भक्ति। इनमें उच्च कोटि की भक्ति पुष्टि भक्ति है, जिसे रागात्मिका भक्ति कहा जाता है। इस भक्ति के आश्रय से पुरुषोत्तम कृष्ण की कृपा कर अनुग्रह प्राप्त कर भक्त उनके सान्निध्य में जाकर बैकुण्ठ या गोलोक में उनकी नित्य लीला में सहभागी बनता है और यही पुष्टि मार्ग के अनुसार जीव की मुक्त दशा है।

उपर्युक्त आचार्यों के सिद्धान्तों का मध्ययुगीन साहित्य में अत्यधिक प्रभाव मिलता है। हिन्दी साहित्य के मध्ययुगीन भक्त कवि इन आचार्यों की किसी न किसी भक्ति परम्परा में साक्षात् रूप में या प्रकारान्तर रूप में प्रभावित दिखायी पड़ते हैं। माध्व सम्प्रदाय के द्वैतवादी सिद्धान्त और उनकी भक्ति परम्परा का अनुगमन करने वाले भक्त कवि हिन्दी में प्रायः उपलब्ध नहीं हैं। ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों पर या तो निम्बार्क का या वल्लभ का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। चैतन्य के गौड़ीय सम्प्रदाय को भी मूलतः निम्बार्क से जोड़कर देखने पर उनके प्रभाव को भी यहीं समेटा जा सकता है। हित हरिवंश के राधा वल्लभी सम्प्रदाय और हरिदास स्वामी के सखी सम्प्रदाय को भी मूलतः निम्बार्क की उस भक्ति साधना का विकसित रूप कहा जा सकता है, जहाँ कृष्ण के अतिरिक्त राधा और अन्य गोपियों को भी परमतत्त्व की नित्य लीला की सहचरियाँ माना गया है। अष्टछाप के कवि वल्लभ के शुद्धाद्वैतवादी पुष्टि मार्ग से जुड़े हैं। इन कवियों के अतिरिक्त अन्य कवि या तो नागरीदास या घनानंद की तरह सीधे निम्बार्क सम्प्रदाय से या राधा वल्लभी सम्प्रदाय या सखी सम्प्रदाय या चैतन्य सम्प्रदाय की मान्यताओं का अनुगमन करते दिखायी पड़ते हैं।

हिन्दी साहित्य के मध्य युग में यद्यपि कृष्ण-भक्त कवियों की अधिक लम्बी परम्परा मिलती है तथापि रामभक्त कवियों का भी विशिष्ट महत्त्व है, जिनमें स्पष्टतः दो वर्ग दिखायी पड़ते हैं — एक वह जो राम के निर्गुण भक्त। दूसरे वे जो राम के सगुण स्वरूप अर्थात् दाशरथि राम के उपासक हैं, जिनमें गोस्वामी तुलसीदास

प्रमुख हैं। इस राम भक्ति की धारा को उत्तरी भारत में प्रवाहित करने का श्रेय आचार्य रामानन्द को जाता है, जिसके लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है, मूलतः भक्ति का जन्म दक्षिण प्रदेश में हुआ था, जहाँ से रामानन्द इसे उत्तरी भारत में लाए – "भक्ति द्रविड़ उपजी लाएं रामानन्द।" रामानन्द ने ही उत्तरी भारत में राम की भक्ति का प्रचार किया और उन्होंने राम के उभय रूप निर्गुण स्वरूप तथा सगुण स्वरूप की भक्ति का उपदेश दिया। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का मत है कि रामानन्द ने स्वतन्त्र सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था, जो कई बातों में रामानुज के ही सम्प्रदाय से सम्बद्ध होते हुए भी सैद्धान्तिक मान्यता की दृष्टि से उससे भिन्न है और इसलिए इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को 'श्री सम्प्रदाय' का अनुगामी न मानकर स्वतन्त्र सम्प्रदाय का अनुगामी मानना चाहिए, जिसे ये 'रामावत् सम्प्रदाय' कहते हैं। यद्यपि अनेक विद्वान् रामावत् सम्प्रदाय को स्वतन्त्र सम्प्रदाय नहीं मानते तथा इस सम्प्रदाय के पण्डितों ने यह सिद्ध किया है कि 'वैष्णवमताब्जभास्कर' में रामानन्द ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वे रामानुज के श्री सम्प्रदाय सिद्धान्तों से भिन्न है और इतना ही नहीं, रामानन्द के ही नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मसूत्र के भाष्य 'आनन्दभाष्य' में भी इस भेद को स्पष्ट संकेतिक किया गया है। वैष्णव भक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन रामानन्द की मान्यताओं के पर्यालोचन के बिना अधूरा होगा, अतः रामानन्द का मत जिस प्रकार विशिष्टाद्वैत की परम्परा से जुड़ा होने पर भी साधना की दृष्टि से कुछ भिन्नताओं को स्वीकार करता है, इसका विवेचन यहाँ किया जाना आवश्यक होगा।

नाभादास जी के अनुसार रामानन्द वस्तुतः रामानुज सम्प्रदाय के महात्मा राघवानन्द के शिष्य थे, जो दक्षिण भारत से उत्तर में आकर काशी में पंचगंगा घाट पर रहने लगे थे। उन्हीं राघवानन्द जी को मूलतः राम भक्ति का प्रचारक तथा राम मंत्र का उपदेशक माना जाता है, जिनकी भक्ति पद्धति को उत्तरी भारत में रामानन्द ने अधिक प्रचारित किया। राघवानन्द की भक्ति पद्धति में सगुणोपासना के साथ ही योग साधना का भी समन्वय मिलता है, और विद्वानों की धारणा है कि रामानन्द की हिन्दी रचनाओं में योगियों की जिस शब्दावली का प्रयोग और हठयोग की जिस प्रक्रिया का संकेत मिलता है वह मूलतः राघवानन्द जी की ही देन है। इस प्रकार रामानन्द को जो भक्ति परम्परा विशिष्टाद्वैत की मिली, उसमें वैष्णव भक्ति और हठयोग दोनों का सामंजस्य मिलता है। रामानन्द के भक्ति सिद्धान्त का मान्य ग्रन्थ उनकी प्रसिद्ध रचना 'वैष्णवमताब्जभास्कर' है, जिसमें रामानन्द ने अपने शिष्य सुरसुरानन्द के द्वारा किए गए दस प्रश्नों का उत्तर दिया है। तत्त्वज्ञान की दृष्टि से जीव, जगत् और परम तत्त्व के स्वरूप तथा परस्पर सम्बन्ध में रामानन्द का मत रामानुज के विशिष्टाद्वैत से भिन्न नहीं है। रामानन्द के नाम से रामावत सम्प्रदाय में प्रचलित आनन्द भाष्य के प्रथम सूत्र के भाष्य में यह स्पष्ट संकेत है कि वे ब्रह्म मीमांसा शास्त्र का विषय शंकराचार्य की भांति केवलाद्वैत नहीं मानते, अपितु विशिष्टाद्वैत स्वीकार करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि तत्त्वज्ञान की दृष्टि से रामावत सम्प्रदाय का कोई ऐसा विशिष्ट मौलिक अनुदान नहीं है, जो उसे श्री सम्प्रदाय से अलग सिद्ध कर सके। यदि कोई कहीं भेद है तो वह सगुण ब्रह्म के स्वरूप में है। रामानुज के अनुसार सगुण ब्रह्म विष्णु हैं और उनकी शक्ति लक्ष्मी, जबकि रामानन्द के रामावत सम्प्रदाय के अनुसार सगुण ब्रह्म श्रीराम तथा उनकी शक्ति सीता। आनन्द भाष्य में यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि श्रीरामतत्त्व ही ब्रह्मसूत्र में 'ब्रह्म' शब्द द्वारा संकेतित है और यही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, जगत् का कारण, निर्गुण तथा सगुण आदि पदों द्वारा वाच्य परम तत्त्व है। इसी सगुण ब्रह्म रूप श्रीराम के अनवच्छिन्न ध्यान करने वाले अनन्य भक्त को मुक्ति प्राप्त हो सकती है, जो वस्तुतः राम का संन्निध्य है। यह मुक्ति दास्य भक्ति से ही संभव है।

रामानन्द के अनुयायियों के यहाँ भक्तों द्वारा जपनीय परममंत्र रामानुज सम्प्रदाय के मंत्र से भिन्न है। वहाँ

श्री नारायण मंत्र का उपदेश भक्तों को दीक्षा के समय दिया जाता है, किन्तु इस सम्प्रदाय में मूल मंत्र (रां रामाय नमः) मंत्र है, जिसे तारक मंत्र भी कहा गया है।

उपर्युक्त सभी वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों का सैद्धान्तिक दृष्टि के साथ ही सामाजिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि इन आचार्यों ने मध्ययुगी सामाजिक क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जहाँ वैदिक परम्परा स्त्रियों और शूद्रों को मोक्ष का अधिकारी नहीं मानती, वहाँ ये सभी वैष्णव आचार्य शूद्रों और स्त्रियों को भक्ति साधना द्वारा मोक्ष का अधिकारी मानते हैं। इस दृष्टि से वे शंकराचार्य के उस सामाजिक दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं, जो मोक्ष का अधिकारी केवल द्विज और पुरुष को ही मानते हैं। इस दृष्टि से रामानुज ने भी भक्ति या प्रपत्ति का मार्ग शूद्रों और स्त्रियों के लिए स्वीकार किया है। किन्तु रामानन्द ने रामानुज की अपेक्षा अधिक सामाजिक क्रान्तिकारी मत की स्थापना की है। रामानुज व्यावहारिक जगत् में वर्णाश्रम व्यवस्था तथा जाति प्रथा को स्वीकार करते हैं और निम्न जाति में उत्पन्न लोगों को भक्ति का अधिकारी मानते हुए भी सामाजिक व्यवस्था में उन्हें ठीक वही स्थान नहीं देना चाहते जो ब्राह्मणों को, जबकि रामानन्द के यहाँ यह बन्धन नहीं है। उन्होंने निम्न जाति के कई शिष्यों को रामभक्ति का उपदेश दिया है, जिनमें उनके बारह शिष्य अत्यधिक प्रसिद्ध हैं यथा — (१) कबीर, (२) सेन भगत, (३) पीपा, (४) रैदास, (५) घना, (६) अनन्तानन्द, (७) सुखानन्द, (८) सुरसुरानन्द, (९) नरहर्यानन्द, (१०) भवानन्द, (११) पद्मावती एवं (१२) सुरसुरी। यद्यपि नाभादास ने शिष्यों की गणना बारह दी है, पर परम्परा के अनुसार रामानन्द के शिष्यों की गिनती साढे बारह मानी गई है, अर्थात् इनमें बारह पुरुष हैं और एक (पद्मावती) स्त्री इस तालिका में 'गालवानन्द' और 'योगानन्द' ये दो नाम और मिलते हैं, जबकि सुरसुरी (सुरसुरानन्द की पत्नी) का नाम नहीं मिलता। रामानन्द के समकालीन फकीर मौलाना रशीदुद्दीन ने अपने ग्रन्थ 'ताजमीर-त्तउल् फुकरा' में स्वामी जी ने बारह शिष्यों में कबीर को प्रधान शिष्य माना है। उपर्युक्त तालिका में कबीर जाति से मुसलमान, जुलाहे, सेन नाई, रैदास चमार थे, जो रामानन्द द्वारा प्रचारित भक्ति साधना का मार्ग सभी लोगों के लिए खुला होना सिद्ध करते हैं।

उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन को गति देने में इन सभी आचार्यों का अत्यधिक महत्त्व है। एक ओर तो इन आचार्यों ने नैतिक और सामाजिक दृष्टि से विश्रृंखल होते भारतीय समाज को निश्चित मानवीय जीवन मूल्यों की ओर अग्रसर किया, जो इस जगत् को वास्तविक मानकर प्रवृत्ति-निवृत्ति के आश्रय में ही संभव हो सकता था । दूसरी ओर मध्य युग में भारतीय संस्कृति से भिन्न संस्कृति के सम्पर्क में आने पर और उस संस्कृति के अनुयायियों के द्वारा राजनीतिक दृष्टि से यहाँ की जनता का उत्पीड़न करने से व्याप्त नौराश्य को दूर करने का कार्य भी किया। इनमें से कुछ आचार्यों ने संस्कृत के साथ लौकिक भाषा को भी महत्त्व प्रदान किया, फलतः मध्ययुगीन हिन्दी काव्य की सशक्त धारा को प्रवाहित करने में इन आचार्यों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव भक्ति संप्रदायों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिनके अभाव में सम्भवतः मध्ययुगीन हिन्दी काव्य की इतनी प्रगति नहीं हो पाती।

★★★

मुक्ति-साधन

— डा० जयमंगल सिंह

संसार के सभी प्राणी प्राप्त दुःखों की निवृत्ति तथा प्राप्त सुखों में अभिवृद्धि तथा शाश्वत् भाव चाहते हैं । इन दोनों ही प्रयोजनों की सिद्धि के लिए ही समस्त देहधारी प्रतिक्षण व्यग्र एवं चेष्टाशींल दृष्टिगोचर होते हैं । सुख की प्राप्ति होती है परन्तु सुख के क्षण अत्यन्त स्वल्प होते हैं । सुखानुभूति में स्थायित्व नहीं होता । सुख की अपेक्षा दुःख के क्षणों की ही अधिकता प्रत्येक प्राणी के जीवन में सुस्पष्ट है । तभी तो महर्षि पतंजलि ने विवेकियों की दृष्टि में सम्पूर्ण संसार को दुःखमय ही घोषित किया — "परिणामतापसंस्कारैः गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वंविवेकिनः ।" जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त शरीरधारी आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों तापों से झुलसता रहता है । जन्म एवं मृत्यु की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाले दुःख तो सहनशीलता की लक्षमण रेखा को पार करने वाले होते हैं । शास्त्रों में इन दुःखों का बहुत ही विस्तार से वर्णन किया गया है । वैसे तो इनके विकराल मुख से ही सभी को गुजरना पड़ता है । बीच-बीच में कल्पनातीत व्याधियों निर्मम झंझावात प्राणी को परम हताशासागर के तट पर खड़ा कर देता है । बुढ़ापा की तो दुःखदायिनी महायोजना में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका सभी सुखभोग-लोलुप इन्द्रियाँ जीर्ण-शीर्ण हो जाती हैं । चमकीली दंतावली कर जले पर नमक छिड़कते हैं । चमकीली दंतावली सड़कर गिर जाती है । आवशिष्ट दंत भी विपरीत होकर दुःख ही देने लगते हैं । आंखों की ज्योत्स्ना भी सिमट जाती है । परम चुस्त एवं आकर्षक त्वचा झूल जाती है । जो किसी समय गौरव का कारण थे, वही आज लज्जाजनक एवं परम विवशता का सर्वश्रेष्ठ विज्ञपक है । श्रवणेन्द्रियाँ सांसारिक शब्दों से नहीं अपितु ईश्वरीय शब्दों से भी विमुख हो जाते हैं । वृद्धावस्था का प्रत्येक क्षण दुःख-सागर सा लहराता रहता है । समुद्र के मध्य में तूफानों में फँसी जहाज पर सवार लोगों की जो दशा होती है, वही वृद्धावस्था में प्रत्येक प्राणी की होती है । भगवान् श्री कृष्ण के शब्दों में यही भाव गुम्फित है :— जन्ममृत्यु-जराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम । पूज्य शंकराचार्य ने वृद्धावस्था की दीनता का बड़ा ही अनोखा वर्णन किया है :— पश्चात् जर्जरभूते गेहे वार्ताकोऽपि पृच्छिति गेहे । बाहर के जिन लोगों ने युवावस्था में सम्मान प्राप्त करता था, वाह-वाही अर्जित करता था वे तो बुढ़ापा में छूट ही जाते हैं । सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि जिन परिवार वालों के लिए अपने एक-एक रक्त विन्दु का उपयोग किया,असत्य को सत्य के जैसे समझा, पत्नी को अर्धाङ्गिनी के रूप में विश्वास किया ये सभी सर्वश्रेष्ठ विश्वासघातीं की भूमिका निभाकर पुरस्कृत होना चाहते हैं । तभी तो इन्हें वृद्धावस्थापन्न व्यक्ति से बोलना भी भयावह लगता है । पुस्तकालयों को अपने मस्तिष्क में रखने वाला अपना नाम भी भूलने लगता है ।

प्रियों का वियोग एवं अप्रियों का मिलन तो परम कष्टदायक तो है ही । संसार की प्रत्येक वस्तु स्वल्प एवं अस्थिर है । खिसकने वाली है । गाड़ी पर सवार व्यक्ति को जैसे वृक्षादि भागते दिखाई पड़ते हैं वैसे ही संसार की प्रत्येक वस्तु मृत्यु की ओर भाग रही है । सुख के साधन के रूप में हम जिसका ही ग्रहण करते हैं, वह ही चल पड़ती है । तभी तो भगवती छान्दोग्य श्रुति की उद्घोषणा है कि — "यो वै भूमा तत्वसुखम्, नाल्पे

सुखमस्ति, भूमैव सुखम्, भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः ।" लोकमान्य तिलक साहब ने गीता की अपनी व्याख्या २१ कर्मयोगशास्त्र व गीतारहस्य में एक ऐसे सम्राट् की चर्चा की है जिसने संसार के सभी सम्राटों से अधिक काल तक अधिक भूभाग पर शासन किया। वह अपने सुख के क्षणों को अपनी डायरी में लिखता था। मृत्यु के पहले जब उन क्षणों गणना की गयी तो वे क्षण केवल १५ दिन ही बने। सुख साधनों के महासागर में रहने वालों की जब यह परिणाम है तब सामान्य जनों की क्या दशा होगी।

इन्हीं दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति (जिसके बाद लौटना नहीं हो) एवं निरतिशय शाश्वत् सुखों की प्राप्ति को ही मोक्ष, मुक्ति, परम पुरुषार्थ, अपवर्ग, कैवल्य आदि शब्दों से कहा गया। पुरुषों के द्वारा जो अभिलषित हो, पुरुष जिसे चाहते हों (पुरुषेण अर्थ्यमानः), उसे ही पुरुषार्थ कहते हैं। जो चार मार्गों में विभक्त है – अर्थ, काम, धर्म एवं मोक्ष। मोक्षातिरिक्त तीन तो सातिशय एवं अनित्य हैं। केवल मोक्ष ही निरतिशय एवं नित्य होता है। जिसके कारण उसे परमपुरुषार्थ अभिहित किया गया है। सभी दार्शनिकों के मन में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति प्रविष्ट नहीं है केवल समस्त दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष पद वाच्य है। इसके समर्थ गौतम, कणाद, कपिल आदि हैं। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य प्रभृति ने मोक्ष के स्वरूप में परमानन्द प्राप्ति को भी स्वीकार किया है।

मोक्ष प्राप्ति के साधन में दार्शनिकों में पर्याप्त मन-भेद प्राप्त होते हैं। संक्षिप्त रूप से सभी साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया है। जिसका प्रतिपादक श्रीमद्भागवत का निम्नांकित श्लोक है :– योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया। ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥ अर्थात् मनुष्यों की परम कल्याण की इच्छा से मैंने तीन योगों को कहा है जो ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा साधन कल्याण का नहीं है। इस श्लोक में आये हुए ज्ञानपद से मुक्ति साधन के रूप में तत्-तत् दार्शनिकों के द्वारा स्वीकृत ज्ञान के सभी प्रकार अपने-अपने साधन के साथ ग्रहण किये जाते हैं। न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान को मोक्ष का कारण मानते हैं। वैशेषिक दर्शनकार महर्षि कणाद ने द्रव्यगुणादि छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान को ही परम कल्याणप्रद माना है। महर्षि कपिल व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञान को दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति का कारण मानते हैं। महर्षि पतंजलि के योग दर्शन की मान्यता है कि योगलभ्य विवेक शरणागति द्वारा अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर अनादि अविद्याकृत पुरुष-प्रकृति-संयोग का अभाव होता है। यही दुःखों का आत्यन्तिक नाश है। यही पुरुष का कैवल्य कहलाता है। यहाँ भी साक्षात् मोक्ष कारणता विवेक ज्ञान को ही प्राप्त होती है। आचार्य प्रवर शंकराचार्य ने भी जीव एवं ब्रह्म की एकता के ज्ञान को मोक्ष का कारण स्वीकार किया है। मीमांसा दर्शन मोक्ष का कारण कर्म को प्रतिपादित करता है। भक्ति एवं ज्ञान तो कर्म के साधक हैं।

वैष्णवाचार्यों ने मोक्ष के सर्वश्रेष्ठ कारण के रूप में भक्ति को स्वीकारा है। कर्म एवं ज्ञान भक्ति-साधक के रूप में उन्हें मान्य हैं।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने भी मुक्ति का साक्षात् साधन भक्ति को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में कर्म (सन्ध्यावन्दन, दर्शपूर्णमासादि) ज्ञान एवं योगादि किसी भी प्रकार से मुक्ति के साक्षात् कारण नहीं हो सकते । क्योंकि भक्ति-ज्ञान कर्मादि का फल है। भक्ति को शास्त्रों में, ज्ञान तथा योग आदि के मध्य में सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। भगवान् श्री कृष्ण के शब्दों में ये ध्येय है। "तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि

मत्तोऽधिकः । कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ भाव यह है कि तपस्वियों, ज्ञानियों एवं कर्मियों से योगी श्रेष्ठ होता है। समस्त योगियों से भी मुझमें अपनी अन्तरात्मा को समर्पित कर श्रद्धा से जो मेरा भजन करता है वह श्रेष्ठ है। इन्हीं भाव को महर्षि नारद एवं महर्षि शाण्डिल्य ने भी अपने शब्दों में सूचित किया है। वे सूत्र क्रमशः इस प्रकार हैं "सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽधिकतरा" फलरूपत्वात् (नारद भक्ति सूत्र) "तदैव कर्मिज्ञानिभ्य आधिक्य-शब्दात् ॥

कर्म एवं ज्ञान में अधिकार द्विज मात्र का है। इसमें शूद्रों एवं स्त्रियों का अधिकार नहीं जबकि भक्ति के परम माङ्गलिक भव्य महल में बाल, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्री, ब्राह्मण से शूद्र पर्यन्त सभी प्रवेश के लिए अधिकृत हैं, अर्थात् सभी भक्ति कर सकते हैं परन्तु यज्ञादि एवं ब्रह्मजिज्ञासा नहीं कर सकते। इस भाव को ही प्रकाशित करता है। भगवान् श्री कृष्णांकित वचन "मां हि पार्थ व्यपाश्रित्ययेऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियों वैश्यास्तथाशूद्राः तेऽपि यान्ति परांगतिम्। केवलाद्वैत सिद्धान्त के अप्रतिम व्याख्या, भक्त शिरोमणि मधुसूदन सरस्वती ने भक्त एवं ब्रह्मविद्या के अधिकारी प्राणिमात्र में सुस्पष्ट कहा है कि भक्ति का अधिकारी प्राणिमात्र है (प्राणिमात्रस्य भक्तावधिकारः) ब्रह्मविद्या में तो साधन चतुष्टय सम्पन्न परमहंस परिव्राजक हो – (ब्रह्मद्यायान्तु साधनं चतुष्टयसम्पन्नस्य परमहंसपरिव्राजकस्य।

साधन चतुष्टय इस प्रकार है –

(१) नित्यानित्यवस्तु विवेक–ब्रह्म ही एक नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त सब अनित्य है, इस ज्ञान से विशिष्ट होना।

(२) इहामुत्रार्थफल भोगविराग–ब्रह्म जीव के अतिरिक्त सब अनित्य हैं, इस लोक की सम्पूर्ण भोग सामग्री और परलोक सम्बन्धी स्वर्गादि सुख भी अनित्य होंगे। यह विचार कर उनसे घृणा हो जाना।

(३) शम–अन्तरिन्द्रियों की (मन, बुद्धि, अहंकार) वृत्ति को रोकना। दम-बहिरिन्द्रियों (ज्ञान कर्मेन्द्रियों) की वृति को रोकना। उपरति-नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों का शस्त्रोक्त रीति से त्याग अर्थात् संन्यास ग्रहण करना, विविक्षा-सुख, दुःख, मानापमान अदि द्वन्द्वों को सहन करने की वृत्ति होना। समाधान-वशीभूत मन को श्रवण अदि में लगाकर निरभिमान हो गुरु-शुश्रुषा आदि करना। श्रद्धा-गुरु एवं वेदान्त वाक्यों पर विश्वास करना। यह शमादि षट्संपत्तिं कहलाती है।

(४) मुमुक्षा–मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा।

इन चारों ही साधनों से विशिष्ट परमहंस परिव्राजक ही ब्रह्मविद्या को श्रवण, मानव, निदिध्यासन के माध्यम से प्राप्त कर सकता है। सामान्य जन ही नहीं ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को भी विरक्त दीक्षा की प्राप्ति के पहले ब्रह्म जिज्ञासा का अधिकार नहीं है। विरक्त दीक्षा भी साधन चतुष्टयसम्पन्न द्विज को ही होगी। जैसे आजकल सभी एषणाओं से (पुत्रैषणा, वितैषणा, लोकैषणा) विशेष रूप से प्रभावित साधन चतुष्टय से सर्वथा शून्य लोग भी दीक्षा प्राप्त कर (संन्यासी बनकर) ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए श्रवणादि का सम्पादन करने लग जाते हैं तथा कुछ ही दिनों के बाद अपने को ब्रह्मज्ञानी मानते हुये उन सभी कृत्यों को ही करते हैं। जिन्हें सामान्य अज्ञजन, असंयमी व इन्द्रियलोलुपजन कहते हैं। वैसे लोगों की ब्रह्मचर्चा हमेशा ही ब्रह्मज्ञान के लिए वन्ध्या ही

रहती है। मैं लगभग दस वर्षों तक संन्यासी-समाज के विभिन्न सन्तों, महन्थों, महामण्डलेश्वरों तथा शंकराचार्यों से अभिन्न रूप से जुड़ा रहा। मुझे सभी से पर्याप्त स्नेह भी प्राप्त होते रहे। परन्तु उनके बीच में साधन चतुष्टय सम्पन्न संन्यासी के रूप में मुझे कोई नहीं प्राप्त हुआ। भक्ति मार्ग का पाथिक बनने के लिए किसी भी साधन से विशिष्ट होने की कोई आवश्यकता नहीं है चाहे कोई सभी कामनाओं वाला हो अथवा मोक्षाभिलाषी हो। इन सभी को परमेश्वर की भक्ति करनी चाहिए ऐसी आज्ञा श्री व्यास जी की है। अकामः सर्वकामो व मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥ भक्ति रसामृत इतना आकर्षक है कि आत्माराग, आत्मकाम, ब्रह्मनिष्ठ भी इसके पान के लिए तरसते हैं। शुकदेव नारद तथा सनत्कुमारादि इसके ज्वलंत दृष्टान्त हैं। तभी तो महर्षि व्यास ने कहा — आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिं इत्थंभूतो गुणो हरिः।

भगवती गीता ने भी ब्रह्मविद्या प्राप्ति की दुष्करता एवम् अधिकारी संकोच को सुस्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है :— (१) लेशोऽधिकतरस्तेषाम्। अव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

वेदों में प्रतिपादित कर्म भी दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं अक्षय सुख का साधन नहीं बन सकते हैं। "अपाम सोमममृता अभूम" इति श्रुति से सोमपानादि के द्वारा भी प्राप्त स्वयं भी शाश्वत् सुखप्रदायक नहीं है। "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति, इस गीतावाक्य के अनुसार भोग के द्वारा पुण्यों का नाश हो जाने पर स्वर्ग से लौटना पड़ता है तथा पुनः त्रिविध तापों से जलना पड़ता है। सांख्यकारिकाकार ईश्वर कृष्ण ने तो कर्म से प्राप्त फलों में दो और भी दोषों का वर्णन किया है — अविशुद्धि एवं सातिशयत्व का। उनका वाक्य है — दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः॥ कर्म फलों का क्षयित्व तो गीता के अनुसार वर्णित हो चुका है। अविशुद्धि एवं अतिशय युक्तत्व पर ध्यान दें। वैदिक कर्म ज्योतिष्टोमादि हिंसादि अविशुद्धि से युक्त हो जाते हैं। जिस हिंसा से जन्य दुःख से मिश्रित स्वर्गरूप सुख का ही सम्पादन ज्योतिष्टोमादि के द्वारा होता है। अर्थात् स्वर्ग में भी दुःखानुभूति होती है। वैदिक कर्मों में सातिशयत्व भी है। ज्योतिष्टोमादि स्वर्गमात्र के साधन हैं तथा वाजपेयादि स्वराज्य फल को प्रदान करते हैं इस प्रकार से न्यून फलों को दूसरों के अधिक फल की प्राप्ति दुःख देती है। अतएव कर्म से भी निरतिशय सुख नहीं प्राप्त कर सकता।

तभी तो भगवती श्रुति सुस्पष्ट शब्दों में अमृतत्त्व प्राप्ति के प्रति कर्म, प्रजा एवं धन की कारणता का निषेध करतीं हैं — "न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्त्वमानशुः" त्याग ही दूसरा अमृतत्त्व की प्राप्ति का मुख्य साधन है।

इन्हीं दोषों को ध्यान में रखते हुए परम मानवतावादी स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने भक्ति को ही मुक्ति के सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में स्वीकार किया। मुक्ति साधन का वर्णन करते हुए वैष्णवमताब्जभास्कर में स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने लिखा है —

१— एवं तेऽभिहितं ध्यानं श्रृणु तन्मुक्तिसाधनम्। मुमुक्षूणां परं वेद्यं विधेयं चाथ सर्वदा॥

२— तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेण तथोर्ध्वपुण्ड्रम्। श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः॥

३— परीक्ष्य शिष्यं समुपासकं गुरुं वर्षंसमभ्यर्च्य च वह्निदेवताम्। चापादिभिर्हेतिवरैः सुतापितैर्दिने सपुण्ये नियतः समङ्कयेत्॥

४– सहोर्ध्वपुण्ड्रं सुमृदाश्रिया तथा, रामादिदासान्त...। मन्त्रं तयैवोपदिशेद्विधानतो, मालां च दद्यात् तुलसी-समुद्भवाम्।

५– एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो, रामस्य भक्तिं परमं प्रकुर्यात् । महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः, श्रीजानकीलक्ष्मणसंयुतस्य वै।

इन श्लोकों में संस्कार के पाँच भेदों (मुद्रा, उर्ध्वपुण्ड्र, नाम, मन्त्र एवं माला) को बतलाकर उनमें परमार्थ की कारणता का प्रतिपादन किया गया है। तृतीय तथा चतुर्थ श्लोक में दीक्षा विधि का वर्णन है। विस्तार के भय से पंचसंस्कारों एवं दीक्षा विधि की चर्चा यहां नहीं की जा रही है। स्मारिका के दूरे निबन्धों में इनकी विस्तृत चर्चा की जायगी।

पाँचवें श्लोक का भाव इस प्रकार है – पंच संस्कारों से सुसंस्कृत होकर महाभागवत शिष्य श्रेष्ठनीलमणि के समान श्यामल, दयासमुद्र, श्री विदेहजा सीता तथा श्री लक्ष्मण से सर्वदा युक्त भगवान् श्री रामचन्द्र जी की परम भक्ति करनी चाहिए।

इस श्लोक से सुस्पष्ट है कि आचार्य प्रवर ने विदेहजा सीता तथा लक्ष्मण से युक्त कृपानिधि सौन्दर्य निधि श्रीराम की परमप्रेमरूपा भक्ति को ही मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में स्वीकार किया।

श्री राघव की अन्य भक्ति की प्राप्ति में प्राचार्य प्रवर दीक्षा को भी सहयोगी के रूप में स्वीकार करते हैं। दीक्षा के माध्यम के पंचसंस्कारों में संस्कृत शिष्य ही पराभक्ति को प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। पंच संस्कार मुक्ति के साक्षात् साधन नहीं हैं। वे तो मुक्ति के साक्षात् पराभक्ति का साधन है। फिर भी उन्हें मुक्ति के साधन के रूप में स्वीकार करने में कोई हानि नहीं तभी तो आचार्य प्रवर ने उन्हें "परमार्थहेतवः" के द्वारा मुक्ति साधन के रूप में प्रतिपादित किया है। जैसे नैयायिक लोग अनुमिति के प्रति साक्षात् कारण परामर्श को स्वीकार करते हैं तथापि परामर्श का कारण व्याप्ति ज्ञान को भी अनुमिति कारण के रूप में स्वीकार करते हैं। घट के प्रति जैसे कपाल, कुम्भकार दण्ड, चक्र चीवरादि की स्वतंत्र कारणता मानी जाती है। वैसी स्वतंत्र कारणता मुक्ति के प्रति पंचसंस्कार एवं पराभक्ति की नहीं स्वीकार की जा सकती। क्योंकि "एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं परमां प्रकुर्यात्" इस वाक्य के सुस्पष्ट प्रतीत होती है कि आचार्य प्रवर पंचसंस्कारों में मुक्ति निरूपित कर रहे हैं। अपितु श्री राघव की पराभक्ति निरूपित है। अनन्यथासिद्धनियतपूर्ववर्तित्व का संकेत कर रहे हैं जो पंचसंस्कार को पराभक्ति के प्रति ही कारण मानने के लिए विवश करता है। पराभक्ति के प्रति ही समान रूप से मुक्ति के प्रति स्वीकार करने में व्यासदेव की उस उद्घोषणा का विरोध भी अपरिहार्य होगा। जिसमें उन्होंने परम कल्याण तीन (ज्ञान, कर्म, भक्ति) ही साधनों की चर्चा किया है।

आचार्य प्रवर का सगुण साकार भक्ति का परम पक्षपाती होना ही इस प्रसंग से निर्णीत होता है क्योंकि उन्होंने सीता तथा लक्ष्मण से युक्त दयानिधि एवं सौन्दर्य निधि श्रीराम की पराभक्ति को परमविश्राम का कारण बतलाया। निर्गुण, निराकार, अव्यक्त, अचिन्त्य श्रीराम का लक्ष्मणादि से युक्त होना तथा नीलमणि के समान श्यामल होना सम्भव नहीं। वैसे तो आचार्य प्रवर ने वेदादिशास्त्रों में ईश्वर के लिए प्रयुक्त निर्गुण शब्द का अर्थ हेयगुणों से रहित किया है। दिंव्य गुणों के तो परमेश्वर आगार ही है। परमेश्वर का आकार भी दिव्य है। पंच भौतिक नहीं, षड्विकारों से युक्त नहीं जिसके कारण उसे निराकार शब्द से अभिहित किया गया है। गोस्वामी

तुलसीदास जी तथा गीता जी के वचन इस प्रसङ्ग में प्रकाशक हैं। "चिदानन्द मय देह तुम्हारी।" जन्मकर्म च मे दिव्यम् इत्यादि।

ऐसा संदेह किया जा सकता है कि सगुण साकार रामोपासना के परमपक्षपाती स्वामी रामानन्द जी ने अपने शिष्यों में से कबीर आदि के निर्गुण रामोपासना में प्रवृत्त किया। जैसे वेदादिशास्त्रों में परम कल्याण की सभी धाराओं का दर्शन होता है। क्योंकि अधिकारी भेद से सगुणोपासना तथा निर्गुणोपासना तथा निर्गुणोपासना का वितरण किया हो तो आश्चर्य की बात नहीं। परमपक्षपाती के साथ-साथ सामान्य पक्षपात का समानाधिकरण भी असंभव नहीं।

पराभक्ति का प्रतिपादन आचार्य प्रवर स्वामी रामानन्द जी ने निम्नांकित शब्दों में किया है :—

सा तैलधारासमनित्यसंस्मृतिसन्तानरूपेशि परानुरक्तिः।

भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गा॥ (वैष्णवमताब्ज-भास्कर)

अर्थात् :— जो विवेक आदि (विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद, अनुद्धर्ष) सात साधनों से उत्पन्न होता है तथा जिसके यम आदि (यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) आठ अच्छी तरह बोध कराने वाले अङ्ग हों, तैलधारा के समान अविरल स्मृति से उत्पन्न श्रीराम जी परम अनुरक्ति (प्रेम) को भक्ति कहते हैं।

जो अन्न दुष्ट-जाति, दुष्ट-आश्रय और दुष्ट-निमित्त नहीं है, उससे शरीर का संशोधन करना विवेक है। दुष्ट आहार से सात्त्विक आहार का विवेचन करना विवेक है। जैसे जाति-दुष्ट-अन्न, कलौंजी, गाजर, लहसुन, प्याज आदि; आश्रम-दुष्ट-अन्न, अभिशाप पाये हुये महापातक युक्त और चाण्डाल आदि का द्रव्य; निमित्त-दुष्ट-अन्न, जूठा, केशयुक्त आदि अन्न को समझना चाहिये।

काम के अनभिष्वङ्ग को विमोक कहते हैं। विषय की समीपता में, उसको भोगने से अपने को नहीं रोक सकने का जो चित में विकार होता है, उसे ही अभिष्वङ्ग कहते हैं। अतएव, अनभिष्वङ्ग कामिनी आदि विषयों से चित्त में विकार नहीं होने को समझना चाहिये; इसी को विमोक कहा जाता है।

आरम्भण—आलम्बन के पुनः-पुनः अनुशीलन को "अभ्यास" कहते हैं। परब्रह्म श्रीराम से जगत् का आरम्भ। उत्पत्ति, पालन एवं संहार होता है, अतएव श्रीराम जी ही आरम्भण कहे जाते हैं, उनके निरन्तर चिन्तन को अभ्यास कहते हैं।

शक्ति के अनुसार पंच महायज्ञादि के अनुष्ठान को क्रिया कहा जाता है। वेद पाठ को ब्रह्मयज्ञ, होम करने को देवयज्ञ, अतिथि सेवा को मनुष्य यज्ञ, तर्पण को पितृयज्ञ और बलिदान को भूतयज्ञ कहा जाता है। इन पाँचों का अनुष्ठान ही पंच महायज्ञादि का अनुष्ठान है। इस क्रिया के सम्पादन से प्रमा भक्ति का उदय होता है।

सत्य, आर्जव, दया, दान, अहिंसा एवं अनभिध्या को कल्याण कहते हैं। प्राणियों का हित सम्पादन सत्य, मन, वचन और शारीरिक व्यवहार की एकता को आर्जव, स्वार्थरहित होकर दूसरे के दुःख को दूर करने की इच्छा को दया, अपने अधीन धन को, यथा देश, काल और अवस्था के अनुसार यथापात्र को दे देना दान, मन,

वचन एवं शारीरिक क्रिया से भी दूसरों को पीड़ा नहीं पहुँचाने को अहिंसा और सामर्थ्य रहते हुये दूसरों के किये हुये अपकार की चिन्ता की शून्यता को अनभिध्या कहते हैं।

देश-काल की विषमता से और शोकप्रद वस्तु आदि की अनुस्मृति से उत्पन्न जो दीनता, उससे मन का प्रकाश नहीं होने को अवसाद कहते हैं, अतएव उपर्यक्त शोक और दीनता से रहित प्रकाशयुक्त मन को अनवसाद कहते हैं।

देश-काल की विषमता एवं शोकप्रद वस्तु आदि की अनुस्मृति की विपरीतता से अनुद्धर्ष होता है।

अपनी अभिलाषा के अनुकूल एवं मनोरम देश-काल, धन-धाम, पुत्र-कलत्र आदि प्रकृत पदार्थों का निरन्तर स्मरण करते हुये इसी की प्राप्ति में इस प्रकार परम निमग्न, अतितृप्त एवं महाप्रसन्न रहे, कि इससे भिन्न आप्राकृत (भगवत् चिन्तनादि) वस्तुओं की इच्छा के बोध एवं प्रवृत्ति से ही रहित हो जाय, इसी सांसारिक हर्ष को उद्धर्ष कहते हैं; किन्तु यह रामभक्ति विरोधी है, अतएव इसकी विपरीतता ही रामभक्ति साधिका हुई, इसे अनुद्धर्ष कहते हैं।

परमेश्वर के चरणों में परम प्रेम को ही देवर्षि-नारद तथा महर्षि शाण्डिल्य ने भक्ति कहा है । "सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा" (नारद भक्तिसूत्र २) स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने परानुरक्ति को मुक्ति के साक्षात् साधन के रूप में ही ग्रहण किया है, परम पुरुषार्थ के रूप में नहीं। देवर्षि नारद तथा शाण्डिल्य तो परमप्रेम स्वरूप भक्ति को परमपुत्र के रूप में स्वीकार करते हैं।

मधुसूदन सरस्वती ने परम प्रेमस्वरूप भक्ति को मोक्ष के समान ही परमपुरुषार्थ के रूप में प्रतिपादित किया है। जिसे उनके द्वारा विरचित भक्ति रसायन में विस्तार से देखा जा सकता है।

इस प्रकार से यह बात सुनिश्चित होती है कि ज़गद्गुरु रामानन्दाचार्य जी महाराज ने मोक्ष के सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में श्रीराम के परमस्वरूप भक्ति को ही स्वीकार किया है।

उदारकीर्त्तेः श्रवणं च कीर्त्तनं हरेर्मुदा संस्मरणं पदश्रितिः।

समर्चनं वन्दनदास्यसख्या न्यात्मार्पणं सा नवधेति गीयते।

—(वैष्णवमताब्जभास्कर)

इस श्लोक में आचार्यप्रवर ने साधन भक्ति के भेदों का निर्देश किया है। जो इस प्रकार है :—

श्री राघव की उदार कीर्ति का श्रवण, गान एवं स्मरण, उनके चरणों का पूजन तथा वन्दन, दास एवं सखा-भाव का ग्रहण तथा आत्मसमर्पण।

★★★

सम्प्रदाय खण्ड

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री कृष्णदास पयोहारी जी

पं० हृदय नारायण द्विवेदी

स्वामी अनन्तानन्द जी के शिष्यों में श्री कृष्णदास जी पयोहारी सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे। आपका जन्म चैत्र कृष्णपक्ष नवमी तिथि को हुआ था। कृष्णदास जी का नाम पयोहारी इसलिये पड़ा कि उन्होंने अन्न का परित्याग कर केवल दूध का ही सेवन किया। कलि में वैराग्य की ये सीमा थे। जिसके सिर पर अपना करकमल रखा उसे फिर कभी याचना नहीं करनी पड़ी। ये तेज के पुंज, श्री रामभजन के महाबल से युक्त महामुनि और ऊर्ध्वरेता थे। कनक-कामिनी से निर्लिप्त थे और केवल श्री रामचरण कमल के अनुराग रूपी मकरंद का पान कर तृप्त थे। सदाचार और नीतियुक्त पथ पर चलकर गलता (आमेर) में आपने अपनी गादी स्थापित की। गुफा पर आये सिंह को इन्होंने अतिथि मानकर उसे अपना मांस खिलाया। तभी भगवान् ने साक्षात् प्रकट हो करके इन्हें दर्शन दिया। इनके सम्बन्ध में एक और घटना सुनी जाती है। इन्होंने कुल्हू के राजा के पुत्र को बचाया था और पर्वत की कन्दरा में दर्शन देकर अपना (राम) भक्त बना लिया था।

पयोहारी जी ने सबसे बड़ा काम जो किया वह था आमेर से नाथपंथियों को हटाकर वहां "रामानन्द सम्प्रदाय" की दृढ़ स्थापना। उत्तर भारत में रामानन्दियों की यह पहली गादी थी। आगे चलकर इस गादी को महत्व मिला जो रामानुजीयों के लिये तोताद्रि का है। इसी से गलता को "उत्तर तोताद्रि" भी कहा गया है। इस सम्प्रदाय में एक कथा कह जाती है —

एक समय पयोहारी जी केवल रातभर रहने के लिये आमेर में योगियों के मठ में गये। कनफटे योगियों द्वारा उठ ज़ाने का आदेश पाकर इन्होंने अपने अंगोछा में धूनी (अग्नि) उठाकर दूसरे स्थान पर आसन जमाया। आग से कपड़े को न जलता देखकर योगियों का महन्त सिंह बन कर इन्हें खाने दौड़ा। पयोहारी जी ने उसे गदहा बना दिया। साथ ही योगियों के कान की मुद्रायें आप से आप गिर कर इनके सामने एकत्रित हो गईं। फिर योगियों के कहने पर आमेर के राजा ने पयोहारी जी की बड़ी प्रार्थना की। राजा की प्रार्थना से आप द्रवित होकर उस गदहा को पुनः महंत बना दिया और योगियों को मुद्रायें भी मिल गईं। तत्पश्चात् महन्त ने वह स्थान छोड़ दिया और उसी स्थान पर आपने गलता गादी की स्थापना किया। इन्होंने १२ वर्ष का कठोर अनुष्ठान किया। छठवें वर्ष इन्हें श्री सीतारामजी के युगल स्वरूप के दर्शन मिले। पहले ये पुष्कर क्षेत्र में रहते थे, बाद में गलता में रहने लगे। आपको सांख्य मीमांसादि दर्शन का गहरा ज्ञान था। भावना रहस्य के आप मर्मज्ञ थे। इनके दो प्रसिद्ध शिष्य थे। "कील्ह" और "अग्र"। गद्दी तो इन्होंने कील्ह को दी परन्तु भावना रहस्य के ज्ञान से इनको तृप्त कर दिया था। पयोहारी जी के तीन प्रमुख शिष्य थे। (१) कील्ह देव, (२) अग्रदेव, (३) टीला जी। ज्येष्ठ शिष्य कील्ह थे। आप स्वामी रामानन्दाचार्य के बाद "श्रीमठ" के तृतीय आचार्य थे।

★★★

श्री रामानन्द सम्प्रदाय में अग्रदेवाचार्य

– स्वामी राघवाचार्य वेदान्ती

भारत के मध्यकाल के इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ विदेशी युगल आततायियों की क्रूरता, बर्बरता एवं अत्याचारों से सना हुआ है। यवन-सत्ता की श्रृंखलाओं में जकड़ी भारत मां की आत्मा कराह रही थी, रक्त-रन्जित तलवार की धार पर बलात् धर्म-परिवर्तन का खेल खेला जा रहा था, इस पुण्य-भूमि की पवित्र ललनाओं का सतीत्व जबरन नष्ट किया जा रहा था, घण्टी, घड़ियांल एवं शंखनाद के मधुर-रव से गगन-मण्डल को गुंजायमान करने वाले मन्दिरों को तोड़कर तथा उसी स्थल पर मस्जिदों का निर्माण किया जा रहा था। हरि कीर्त्तन से संगीतमय वातावरण को 'अल्लाहो अकबर' की कर्ण-कटु आवाज से ध्वनित किया जा रहा था। भारत मां का कण कण अश्रुपूरित नेत्रों से परम पिता परमात्मा की ओर निहार रहा था। भारतीय भूमि पर बसे हिन्दू समाज पर 'जजिया' कर के माध्यम से अनेक अत्याचार किये जा रहे थे।

यवनों के अत्याचारों के अतिरिक्त भारत मां की धरती पर करोड़ों की संख्या में बसने वाले निम्न वर्ग के हिन्दू समाज पर अपने ही उच्च वर्ग के भाइयों द्वारा जुल्म ढाये जा रहे थे। अपने ही भाइयों की छाया मात्र से अपवित्र होने वाला उच्चवर्गीय हिन्दू समाज, निम्न वर्ग को अत्याचार की चक्की में पीसे जा रहा था। यह दलित वर्ग दो पाटों के बीच में फँसा जगन्नियन्ता से रक्षार्थ पुकार कर रहा था। दीनहीनों की आत्माओं की करुण चीत्कार से भारत का गगन गूंज रहा था। अवतारों की अवनि पर बसी प्रजा अखिलेश से पुनः अवतार के लिए पुकार कर रही थी। कहते हैं:–

'धरा जब विकल होती है, मुसीबत का समय आता। मुसीबत मेटने कोई, महामानव चला आता है ॥"

श्रीमद् भगवद् गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है :–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ! अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

गीता अध्याय ४, श्लोक ७ के अनुसार, अत्याचारियों के प्रबल प्रतिरोध के लिये धनुर्धारी राम एक बार पुनः 'श्री रामानन्दाचार्य' के रूप में अवतीर्ण हुये तथा भारत की राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखने हेतु जाति पांति की संकीर्णता को भुलाकर 'रामानन्द सम्प्रदाय' के रूप में एक नये प्रतिष्ठान की स्थापना की एवं 'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणोमताः' का उद्घोष किया।

वाचिक प्रवचन की सार्थकता को सिद्ध करने, जाति-पांति के बन्धन को तोड़कर भगवान् प्रेम के प्रवाह में बहने वाले प्रत्येक जिज्ञासु को उन्होंने अपना शिष्य बनाया। भक्तमाल के छप्पय ३६ में श्री रामानन्द जी के मुख्य शिष्यों का वर्णन इस प्रकार है :—

“अनन्तानन्द, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पद्मावती, नरहरि।

पीपा, भावानन्द, रैदास, धना, सेन, सुरसुर, श्रीधर हरि॥”

भगवद्धर्म के प्रवाह को प्रबल बनाने व हिन्दू एकता को सम्बल देने का प्रयास स्वामी जी के अधिकारी श्री अनन्ताचार्य जी महाराज द्वारा चलता रहा। तत्पश्चात् यह भार उनके सुयोग्य शिष्य श्री कृष्णदास जी पयोहारी जी, जिनका मुख्य पीठ श्रीगलताजी (जयपुर) में है, को सौंपा गया।

मुगलों के अत्याचार रूपी लौह-श्रृंखलायें श्री रामानन्दाचार्य जी के अथक् प्रयासों से झंकृत हो चुकी थी, किन्तु उनके अत्याचारों की चक्की अभी चल रही थी, जिसमें हिन्दू धर्म को पीसे जाने का असफल प्रयास चल रहा था। मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदों के निर्माण का क्रम अभी जारी था। सन्त महात्माओं के जप, तप, यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ आदि में बाधायें डालने का क्रम अभी अबाध गति से चल रहा था। सन्तजन निरापद स्थान की खोज में थे। राजपूताने में, जिसे हम आज राजस्थान के नाम से पुकारते हैं, राजपूत राजाओं का साम्राज्य था। यद्यपि उनमें से बहुतों ने अपने पूर्वजों की मान-मर्यादा, आन-बान व गौरव को छोड़कर मुगल शासकों के सामने घुटने टेक दिये थे, किन्तु हिन्दू धर्म एवं सन्त-महात्माओं के प्रति उनके हृदय में अभी भी निष्ठा बनी हुई थी। यह देख तत्कालीन आचार्यों ने राजपूताने को ही धर्म प्रचार की उपासना का निर्विघ्न स्थान चुना।

श्री कृष्णदास जी (पयोहारी जी) महाराज ने जयपुर में गलता पीठ की स्थापना की। साथ ही 'अनी अखाड़ों' के प्रतिष्ठाता श्री बालानन्दाचार्य जी ने भी जयपुर का ही चुनाव किया। उसी कड़ी में रैवासा भी श्री अग्रदेवाचार्य महाराज की तपस्थली बनी। श्री अग्रदेवाचार्य जी, श्री कृष्णदास जी (पयोहारी जी) के प्रमुख शिष्य थे।

श्री रामानन्द सम्प्रदाय रूपी गगन-मण्डल के देदीप्यमान नक्षत्र, संत-समाज रूपी माला के सुरेरु, भक्त शिरोमणि, रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री अग्रदास जी महाराज का अवतरण भी राजस्थान की धरती के ही किसी गांव में १६वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ था।

इनके जन्म समय के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। रूपकला जी द्वारा लिखित श्री अग्रस्वामी चरित के अनुसार :—

फागुन शुक्ला दूज सुहाई। नभ मुनि बाण चन्द्र सम आई।

यहां नभ का अर्थ शून्य, मुनिका सात, बाण का पाँच व चन्द्र का एक है। 'अङ्कानाम् वामतो गतिः' सिद्धान्त के अनुसार एक पांच सात शून्य अर्थात् १५७० विक्रम संवत् इनका जन्म संवत् सिद्ध होता है। 'त्रिमुनि व्याकरणम्' के आधार पर यदि 'मुनि' शब्द से तीन संख्या का अर्थ लिया जाये तो इनका जन्म संवत् १५३० निर्धारित होता है। किन्तु अधिकांश विद्वान् इनका जन्म सोलहवीं सदी का उत्तरार्द्ध ही मानते हैं।

"होनहार बिरवान के होत चिकने पात" के अनुरूप बाल्यावस्था से ही इनका मन सांसारिक सुखों की ओर न जाकर भगवद् भजन में अनुरक्त होने लगा। भक्ति मार्ग की दीक्षार्थ आप किसी सद्गुरु की खोज में लगे। भगवत् कृपा से आपका सम्पर्क तत्कालीन गलता पीठ के पीठाधीश्वर श्री कृष्णदास जी 'पयोहारी जी' महाराज से हो गया हौर आपने अपने आप को उन्हें ही समर्पित कर दिया। गुरु के शरणागत हो आप साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे। पूज्य गुरुपाद पयोहारी ज़ी के तीर्थयात्रा के अनन्तर आप घूमते हुये सीकर के नजदीक रैवासा नामक स्थान पर पहुँचे। यह ग्राम अरावती पहाड़ी क़ी तलहटी में बसा, प्रकृति की सुरम्य छटा से युक्त, एक छोटा सा गांव है। जिसके उत्तरपश्चिमांचल में घने वृक्षों का झुरमुट था। पूर्वोत्तर में लम्बा चौड़ा समतल मैदान तथा दक्षिण में हिलोरें लेता जीणमाता का सर। ऐसे रमणीक स्थल में ही रैवासा के उत्तरी भाग में एक पीपल के पावन पेड़ के नीचे आपने अपनी तपःस्थली बनाई। वह स्थान आज भी 'बड़ा मन्दिर' के पश्चिमी छोर पर स्थित है।

आश्रम की स्थापना कर देश काल परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये आपने देश व समाजोद्धार हेतु अनेक सुयोग्य शिष्य, प्रशिष्यों को दीक्षित किया, जिन्होंने देश के कोने-कोने में 'द्वारा गादियों' की (सम्प्रदाय-शाखाओं की) स्थापना कर गुरु के कार्य की समाजोत्थान की व भक्ति भावना के प्रचार-प्रसार की योजना को अपना लक्ष्य बनाया तथा सर्वतोभावेन इसमें जुट गये। श्री नाभादास, श्री देव मुरारि, पूर्ण वैराठी, दिवाकर और भगवन्नारायण प्रमुख शिष्य सन्त हुये हैं। इसी रामानन्द सम्प्रदाय में 'रसिक भक्तिपरम्परा' के संस्थापक श्री अग्रदेवाचार्य महाराज ने अपनी परम्परा को इतना विस्तृत किया कि वैष्णव सम्प्रदाय के ५२ द्वारों में ११ द्वारे रसिक-भक्ति परम्परा के ही हैं।

राजस्थानी भाषा के साथ-साथ आप संस्कृत व हिन्दी भाषा के भी ज्ञाता थे। इन भाषाओं में आपकी रचनाओं का प्रकाशन हमें देखने को मिलता है। जिनमें 'ध्यान मंजरी' और 'कुण्डलियाँ' दो हिन्दी रचनायें तथा "अष्टयाम" संस्कृत भाषा की रचना है। इन रचनाओं के अतिरिक्त 'श्रृंगाररससागर' अथवा 'अग्रसागर' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी इन्हीं की रचना बताई जाती है। इनकी रचनाओं में 'आग' 'अग्रदास' 'अग्रस्वामी' तथा 'अग्र अली' से छापें देखने को मिलती हैं।

युगल प्रियाजी ने इन्हें जनकनन्दिनी, रामवल्लभा सीताजी की प्रियसखि 'चन्द्रकला' का अवतार बताया है ।

देखियेः— 'चली अग्रकरि प्रिय सखि सोई।'

मानस बालकाण्ड पृ०१३४

अग्रस्वामी श्री अग्र सहचरी जनक लली की।
पुष्पवाटिका मिलन हेतु प्रियभांति भली की॥
चन्द्रकला प्रियनाम श्याम सिय बस करि राखी।
प्रगटि श्यामपद लही ध्यान रस मनचाखी॥

वनस्थली के किसी भी एकान्त कोने में खिले हुये पुष्प की सौरभ जिस प्रकार पावन पवन के सहयोग से सम्पूर्ण वन-प्रान्त को सुरभिमय बना देती है, ठीक उसी प्रकार सन्त शिरोमणि अ[illegible]स जी यद्यपि रैवासा की एकान्त स्थली में ही भजनानन्द का रसास्वाद ले रहे थे लेकिन उनकी दिव्य साधना की चर्चा भारत के कोने-

अग्रदेव पीठाचार्य
श्री स्वामी राघवाचार्यजी

कोने में व्याप्त हो गई। स्वामी जी के चमत्कारों की चर्चा जन-जन के मुखारविन्द से मुखरित होने लगी। भला भारतीय सन्त के गौरव को विदेशी युगल बादशाह कैसे सहन कर सकता था ? अतः दिल्लीपति मुगल सम्राट् स्वयं स्वामी जी के चमत्कारों की परीक्षार्थ रैवासा आ पहुँचे। स्वामी अग्रदास जी प्रातःकालीन दाँतुन कर रहे थे। बादशाह को पहचान कर उन्हें बैठने का संकेत किया। स्वर्ण को कसौटी पर कस कर जांच करने वाला बादशाह रूपी स्वर्णकार मुस्कुराया और किंचित् प्रतीक्षा किये बिना समीपस्थ कूप के मुँह पर एक कपड़ा बिछाकर तथा चारों कोनों पर चार सुपारी रख कर नवाज अदा करने लग गया –

पूँगी फल ते दाब पट्ट कूप आच्छादित कीन। तां ऊपर नृप मोद भर तां निवाज पढ़ तीन ॥

"अग्रस्वामी चरित"

भारतीय सन्तों की साधना व हिन्दू धर्म के प्रति सम्राट् की चुनौती भला भारतीय पवित्र साधना के पारंगत स्वामी जी कैसे सहन कर सकते थे। अतः उन्होंने बादशाह को उचित पाठ पढ़ाने का निश्चय किया तथा निराधार आकाश में बैठकर भगवद् ध्यान में निमग्न हो गये। हतप्रभ बादशाह स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा और आग्रह-पूर्वक आश्रम की गायों के चरने हेतु १६०० बीघा जमीन का पट्टा कर दिया :–

"निराधार बैठे श्री स्वामी, देख प्रभाव भयो अनुगामी।

भूमि चरण हित पट्टो दीन्हो, सो अहीर पशु पालन कीन्हो ॥"

"अग्रस्वामी चरित"

जहाँ वर्तमान में गोरियाँ गांव बसा है, वहाँ आश्रम की गायों की गौर थी। कालान्तर में गौर से ही गोरियाँ बन गया।

गलता की घाटियों में जन्मान्ध अनाथ बालक (नारायण दास) को नितान्त अनाथ समझकर, गुरुभाई कीलदेवाचार्य जी के साथ-साथ आपका हृदय भी दयार्द्र हो उठा। श्री कीलदेव जी ने तपोबल द्वारा जल के छींटों से बालक को नेत्रज्योति प्रदान कर उसे स्वाश्रय में रख लिया तथा उसके लालन-पालन का भार अग्रदास जी पर छोड़ दिया गया। अपने गुरुभाई स्वामी कीलदास जी की आज्ञा से बालक को मन्त्र दीक्षा प्रदान कर उसका नाम नारायणदास रखा। गलता से रैवासा आते समय बालक को भी भगवद् भजन में सहयोगार्थ साथ ही लेते आये।

बालक नारायण दास गुरु-सेवा में हर समय तत्पर रहता था। एक समय जब स्वामी जी भगवदुपासना में संलग्न थे, उसी समय किसी सेवक की जहाज समुद्र के तूफान के थपेड़ों में फँस गई। सेवक के सामने उपस्थित समस्या का कोई समाधान न था। चारों ओर से निराशा से हुए उसने एकमात्र सम्बल स्वामी जी का एकाग्रचित्त से स्मरण किया और हृदय से प्रार्थना की कि हे गुरुदेव ! आपका सेवक भंवर में फँसा है, उद्धार कीजिये। सेवक की आर्त पुकार से स्वामी जी (श्री अग्रदेवाचार्य जी) का ध्यान टूटा। शिष्य नारायण दास गुरु सेवा में खड़ा पंखा झल रहा था। स्वामी जी को हड़बड़ाई हुई अवस्था में देखकर हाथ जोड़कर निवेदन किया – "महाराज ! भगवान् जानकीनाथ की कृपा से आपके सेवक का जहाज संकट में जूझता हुआ पार हो गया है। अब चिन्ता की कोई बात नहीं है।" स्वामी जी के यह पूछने पर कि – 'तूने यह सब कैसे जाना ?" इस

पर बालक नारायण दास ने सहज भाव से कहा कि आप जैसे सद्‌गुरु की सेवा के प्रभाव से ही मैं यह सब जान पाया हूँ। इस प्रकार गुरु महाराज की नाभि की बात जान सकने के कारण गुरुजी ने उस बालक का नाम नारायण दास से 'नाभाजी' रख दिया, जिन्होंने आगे चलकर "भक्तमाल" जैसे अमूल्य ग्रन्थ की रचना की। इस विश्व-विख्यात ग्रन्थ के निर्माण हेतु गुरुजी ने ही आदेश दिया था :–

अग्रदेव आज्ञा दयी, भक्तन को यश गाव। भव-सागर के तरन को, नहिन अन्य उपाव॥

ऐसा अनुमान है कि इस ग्रन्थ की रचना सं० १६४० से १६८० के बीच रैवासा पीठ में ही की गई थी।

सदा सदा से ही वैष्णव सन्तों को अपने इष्टदेव भगवान् राम व जनज्जननी मां जानकी की पूजा हेतु पुष्प वाटिका लगाने का प्रेम रहा है। स्वामी जी भी इसके अपवाद नहीं थे। आपने भी अपने रैवासा आश्रम में 'जानकी-वाटिका' का निर्माण किया जिसमें भांति-भांति के सुगन्धित पुष्पों व फलों के पौधे लगाये गये। वाटिका से आपको विशेष स्नेह था। कहा जाता है कि इसी वाटिका में एकबार माता जानकी का दर्शन भी आपको हुआ था।

एक बार आमेर नरेश सवाई मानसिंह जी प्रथम दर्शनार्थ आपके पास आश्रम में रैवासा आये। उस समय आप वाटिका में ही पौधों की सम्भाल कर रहे थे। वाटिका के सूखे पत्तों को फेंकने ज्योंही आप वाटिका से बाहर निकले, (अपने सेवक सहयोगियों के साथ) त्योंही राजा मानसिंह ने वाटिका में प्रवेश किया। वाटिका के मुख्य द्वार पर स्वामी जी ने एक सन्त को द्वार-रक्षक के रूप में छोड़रखा था, ताकि अन्य कोई भी व्यक्ति अनाज्ञप्त प्रवेश न कर सके। किन्तु ज्योंही आपने वापस आने पर भीड़ को वाटिका में यत्र-तत्र घूमते देखा तो आप वहीं आम्रवृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान मग्न हो गये। परम शिष्य नाभाजी भी दण्डवत् प्रणाम करके खड़े हो गये। गुरुजी की निःसीम निरभिमानिता, सरलता व भगवत् प्रेम विह्वलता देख स्वयं भी ईश प्रेमाभिभूत हो गये तथा उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुधारा बहने लग गई। राजा भी महाराज की प्रतीक्षा में थककर ज्योंही तलाशता हुआ आम्र के पास आता है तो उन विलक्षणता को देखकर उसे ऐसा आभास हुआ कि "आज जगज्जननी जानकीवल्लभ भगवान् राम ही मुझ दीन पर दया करने हेतु स्वामी जी के रूप में प्रगटे हैं।"

स्वामी श्री अग्रदास जी महाराज ही रामभक्ति में 'रसिक-सम्प्रदाय' के प्रवर्तक माने जाते हैं। वस्तुतः रामानन्दीय श्री सम्प्रदाय के विशिष्ट स्थान – गालवाश्रम (गलता) और रैवासा पीठ ही हैं। रसिक भक्ति की भावनाओं से प्रभावित होकर उन्होंने अपने इष्टदेव की आराधना का जो स्वरूप विस्तृत किया है, उसे ही 'रसिक स्वरूप' कहा जाता है, उन्हीं की प्रेरणा, उपदेश एवं भक्ति के कारण ही रामभक्ति में 'रसिक-सम्प्रदाय' श्री सम्पन्न हुआ है। अनेक सन्तों, भक्त-कवियों एवं विचारकों ने इसमें अपना योगदान दिया है। परिणाम स्वरूप एक विशाल साहित्य का सृजन हुआ तथा विविध सिद्धान्त ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इन सबका मूल उद्‌गम स्थान रैवासा पीठ ही है।

स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य जी के कार्य-कलापों को देख-सुनकर हम उच्च्व स्वर से कह सकते हैं कि श्री 'रामानन्द सम्प्रदाय' के इतिहास में उनका नाम सदा सदा के लिये स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। ★★★

(विशेष :– लेख-विस्तार की आशंका से कई घटनाओं को छोड़ना पड़ा है।)

आचार्य-परम्परा के अप्रतीय पुरुषः स्वामी भगवदाचार्य

—पण्डितराज सारस्वत सार्वभौम परमपूज्य

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी भगवदाचार्य जी महाराज एक महान् विद्वान, महान् नेता, महान् कवि, क्रान्तिकारी, युगद्रष्टा, इतिहासकार, दार्शनिक, महर्षि एवं परमउदारता जैसे अनेक दिव्य गुणों के संगम थे। इनके जन्म-कर्म दिव्य थे। इनके जीवन-दर्शन दिव्य थे। इनकी शक्ति-बुद्धि आचार-विचार, लेख-लेखनी और स्वयं भी दिव्य थे।

ऐसे दिव्य महापुरुष के जीवनवृत्त पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा। इसमें वह मुझे कहाँ तक सफल करेंगे, यह वही जानें।

पूज्य स्वामी जी का जन्मस्थान 'स्यालकोट' (पंजाब) था। उनका आविर्भाव समय सन् १८८० कार्तिक मास, शुक्लपक्ष, लाभपंचमी तिथि, समय दोपहर १२ बजे है। पिताश्री का नाम गंगादत्त त्रिवेदी मातृश्री का नाम माराक्षी देवी था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मणवंशावतंश थे। गृहस्थाश्रम का नाम सर्वजित् था। आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत होकर आप विद्याध्ययन की ओर संलग्न हुये। स्वामी जी के बड़े भाई स्वयं संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। अतः बड़े भाई से ही संस्कृत का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिये। पिता जी अनन्य रामभक्त थे। वे स्वामी जी को रामायण तथा हनुमानचालीसा पढ़ाया करते थे। थोड़े दिनों में ही संपूर्ण हनुमानचालीसा एवं रामायण के बहुत से पद कण्ठस्थ हो गये। पूज्य स्वामी जी की दिनचर्या यह थी कि आप पूजा-पाठ किये बिना अन्न-जल नहीं ग्रहण करते थे। हनुमानचालीसा स्वामी जी को अत्यंत प्रिय था। इसलिये ग्राम के आस-पास के लोग स्वामी जी को हनुमानभक्त कहा करते थे। १३ वर्ष की अवस्था तक स्वामी जी ने हिन्दी, उर्दू, थोड़ी सी फारसी और थोड़ी अंग्रेजी का विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया था। लगभग १६ वर्ष की आयु में काशी आकर संस्कृत का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया। उसी समय आप हिन्दी में सुन्दर कविता भी करने लगे थे जो कि लखनऊ से निकलने वाली 'वसुंधरा' पत्रिका में प्रकाशित होती थी। बाद में स्वामी जी व्याकरण, न्याय, वेदान्तादि के प्रौढ़ ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। विद्यावाचस्पति पं० सरयूदास जी से व्याकरण का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया तथा कणादगौतमोपम पं० बालकृष्ण मिश्र जी से न्यायशास्त्र में निपुणता प्राप्त किया था। व्याकरण के टीका ग्रन्थों के अध्ययन के पूर्व स्वामी जी वेदों से आकृष्ट हुये। अतः वेदाध्ययन की ओर इनकी प्रवृत्ति हुई। उस समय परम पूज्यपाद पण्डित श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी वेद के अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे। उनसे वेद की शिक्षा प्राप्त करने स्वामी जी कलकत्ता पहुंचे। निरुक्त का अध्ययन करके उनसे ही यजुर्वेद का अध्ययन करने लगे। वेद की दो उपाधियां "वेदतीर्थ" और "वेदरत्न" को प्राप्त करके काशी आ गये। काशी पण्डित सभा ने भी आपके वैदुष्य से प्रभावित होकर आपको "पण्डितराज" एवं "सारस्वतसार्वभौम" की

उपाधियों से अलंकृत किया था। अध्ययन-अध्यापन के लिये कुछ दिन आपको आर्य-समाज में भी रहना पड़ा। संग का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। किन्तु पूर्व संस्कारों के कारण आप अधिक दिन आर्यसमाज में नहीं रह सके।

अध्ययन-अध्यापन के ही क्रम में आप हरिद्वार भी कुछ दिन रहे। तत्पश्चात् श्री अवध आ गये। यहीं आपने रामानन्द वेदान्त एवं व्याकरण का पाण्डित्य प्राप्त किया था।

अवध में सरयू किनारे एक दिन सौभाग्यवश स्वामी जी और पं० रघुवराचार्य जी की मुलाकात हो गई। दोनों विद्वान् थे। दोनों का हृदय मिला और मित्रता के प्रबल मधुर बन्धन में आबद्ध हो गये। स्वामी जी नवीन विचार वाले थे और पं० रघुवराचार्य जी प्राचीन विचार वाले थे। दोनों में इतना ही अंतर था। पं० रघुवराचार्य जी ने विचार किया कि स्वामी जी कुशाग्र बुद्धि वाले प्रखर तेजस्वी और ओंजस्वी हैं। यदि वे रामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित हो जायँ तो हम दोनों की मिंत्रता अटूट रहेगी।

श्री रघुवराचार्य जी ने बड़ास्थान के श्री महान्त श्रीराममनोहर प्रसादाचार्य जी से कहा कि यदि आप अनुमति दें तो आपके पूर्व परिचित सर्वजित् आपके शिष्य बनें। अनुमति क्या देना गुरुजी तो शायद ऐसे योग्य शिष्य की प्रतीक्षा में ही बैठे थे। अत्यंत हर्ष के साथ विन्दगाद्याचार्य ने कहा – 'ठीक हैं'। श्री महन्त जी की बात सुनकर सर्वजित् मौन रहें। सर्वजित् से सभी अयोध्यावासी पूर्व से ही परिचित थे। इसका कारण था, उनकी विद्वत्ता और तर्क-वितर्क बुद्धि का प्रभाव। गाद्याचार्य ने आज्ञा दी कि विद्वान् वैष्णवों को बुलाकर इस बालक को पंचसंस्कार से संस्कृत करो। स्थान के अधिकारी जी सुनते ही अयोध्या के विद्वान् वैष्णवों को बुला लाये। विद्वानों के साथ अनेक महान्त भी आने लगे। श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् वैष्णवों की उपस्थिति में सर्वजित् वैष्णवी दीक्षा से दीक्षित होकर भगवद्दास बने। भगवद्दास के दीक्षित होने से सम्पूर्ण अयोध्या के संतों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, क्योंकि उनके सम्प्रदाय में अद्वितीय मेधा वाले स्वामी जी दीक्षित हुये थे।

अयोध्या में ही महावैयाकरण विद्यावाचस्पति पं० सरयूदास जी से आपने महाभाष्य एवं लघुशब्देन्दुशेखर आदि ग्रन्थों का पूर्ण अध्ययन किया था। पं० सरयूदास जी स्वयं इनकी प्रशंसा करते हुये कहते थे "अरे हे ! भगवद्दास बड़ा अच्छा विरक्त वैष्णव है, अद्भुत विद्वान् तो हइये है"। आचार्यपाद बोधायन से लेकर आचार्यवर्य श्री रामानन्दाचार्य जी के बाद रामानन्द सम्प्रदाय में विद्वानों की कमी होने लगी। दाक्षिणात्य रामानुजी विद्या के प्रभाव से रामानन्द सम्प्रदाय पर आपना वर्चस्व जामने लगे और यहां तक अनुचित व्यवहार करने लगे कि भगवान राम के चरणामृत तक को हेय समझने लगे। श्री राममन्दिर में जाकर साष्टांग दंडवत् करने में लज्जा का अनुभव करने लगे। श्री राममन्त्र को क्षुद्रफलदाता कहते थे। दाक्षिणात्य रामानुजियों का कहना था कि रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामानन्द सम्प्रदाय है। वह स्वतंत्र सम्प्रदाय नहीं है। उक्त बात का समर्थन करने वाले कुछ गिने-चुने अर्धरामानन्दीय भी थे। (१) रामटहल दास, (२) बलभद्र दास, (३) शत्रुघ्न दास, (४) रामशोभा दास और (५) रामनारायण दास। ये मिलावडी अर्धरामानुजी और अर्धरामानन्दीय ५ व्यक्ति थे। इनके पक्ष में एकमात्र प्रयाग में तुलसीदास जी का बड़ा स्थान ही था। शेष सभी स्थान अपने को पूर्ण रामानन्दी कहने वाले और सम्प्रदाय के नाम पर सर्वस्व अर्पण करने वाले थे।

अर्धरामानन्दियों का अर्थ यह है कि राममंत्र को लेकर भी अपने को रामनुजीय मानना। इन पांच लोगों को छोड़कर बाकी सब लोगों का कहना था कि हम सभी राममंत्र वाले स्वतंत्र रामनन्द सम्प्रदाय के हैं। रामटहल

आदि पांचों पहलवान पूर्ण विद्वान् तो नहीं थे परन्तु रामानुजी पण्डितों के साथ रहने के कारण साम्प्रदायिक रहस्यों के कुछ ज्ञाता हो गये थे। ये पांच वादी थे। प्रतिवादी थे। (रामानन्द सम्प्रदाय की ओर से) स्वामी भगवदाचार्य और स्वामी रघुवराचार्य जी। ये दोनों पूर्ण विद्वान् थे। स्वामी भगवदाचार्य जी तो अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, बंगला, आदि विभिन्न भाषाओं के भी विद्वान् थे। इनके पक्ष में अनी अखाड़े थे। रामानन्द सम्प्रदाय के ये प्रतिभट विरोधियों को करारा उत्तर देने के लिये कटिबद्ध थे। सम्प्रदाय के सभी सन्तों-महन्तों का कहना था कि इन दोनों विद्वानों का जो मत होगा वह हम सभी को मान्य होगा।

वादियों का पक्ष ऐसा नहीं था। वे सब घर-घर के ठाकुर थे। शास्त्रार्थ का निश्चित समय आ गया। दोनों ही पक्ष के लोग एकत्रित होने लगे। शास्त्रार्थ का जो समय निश्चित किया गया था वह परीक्षा का समय था। अतः रघुवराचार्य जी "मुझे परीक्षा देने जाना है" यह कहकर मुजफ्फरपुर चले गये। अब इस पक्ष से शास्त्रार्थ करने वाले केवल भगवदाचार्य जी ही बचे। किन्तु विधि का विधान ऐसा था कि शास्त्रार्थ के डर से विपक्षी लोग समय पर गायब हो गये। शास्त्रार्थ का स्थान हनुमानगढ़ी विश्चित किया गया था। रामानन्दियों का दल गढ़ी में भर गया। सभी संत महान्त आतुर थे कि शास्त्रार्थ में क्या होगा ? विजय किसकी होगी ? सभी लोग देख रहे थे कि वादी पक्ष के रामटहल दास जी कहां गये ? इधर स्वामी भगवदाचार्य जी गर्जना पर गर्जना किये जा रहे थे कि आज "राममंत्र" निन्दकों को ऐसा पछाडूंगा कि छठी के दूध की याद आ जावेगी। आज रामानन्द सम्प्रदाय से सदा के लिये उनका बहिष्कार हो जायेगा। शास्त्रार्थ का निश्चित समय क्षण प्रतिक्षण खिसकता जा रहा था किन्तु वादी पक्ष से कोई दिखाई ही नहीं दे रहा था। अंत में वादियों की ओर से शास्त्रार्थ के लिये नियत विद्वान् नहीं आये, किन्तु बड़ास्थान को श्री महान्त स्वामी जी के गुरुदेव विपक्ष का प्रतिनिधित्व करने शास्त्रार्थ स्थल गढ़ी में आ पहुंचे। उनके देखते ही सभा में समुपस्थित लोग चित्रलिखित से हो गये। उस समय अयोध्या में विन्दुगाद्याचार्य की खूब धाक थी। सभा-मण्डप में एक ओर वनराज के समान गुरुदेव बैठ गये दूसरी ओर सिंह शावक के समान शिष्य स्वामी जी प्रथम से ही उपस्थित थे। सभा-मण्डप खचा-खच भरा हुआ था। विजय वैजयन्ती माल शिष्य के ही गले में पड़ने वाली थी। बड़ा स्थान के श्री महान्त जी के आगे किसी की बोलने कीं हिम्मत नहीं थी। शास्त्रार्थ के पूर्व ही स्वामी जी द्वारा "श्री रामानन्दीय वैष्णव महामण्डल एवं पुरातत्त्वानुसंधायिनी समिति" नाम की ये दो संस्थायें बन चुकी थीं। गुरु और शिष्य के मध्य शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

गुरुदेव ने कहा रामानन्द सम्प्रदाय और रामानुज सम्प्रदाय एक है। शिष्य ने कहा "नहीं गुरुदेव ये दो हैं"। अब तो गुरुदेव एकदम शिष्य पर लाल-पीले होने लगे। उसी समय गढ़ी के गद्दीनशीन महान्त जी उठे और बड़ास्थान के महान्त जी से बोले "श्रीमान् महान्त जी आपको जो भी पूँछना है शान्ति से पूछिये आप डाँट-डपट नहीं कर सकते। भगवद्दास इस समय आपके शिष्य नहीं अपितु सम्पूर्ण रामानन्द सम्प्रदाय के एकमात्र नेता हैं। गुरुदेव शान्त हुये और कहा कि सिद्ध करो कैसे रामानुज सम्प्रदाय और रामानन्द सम्प्रदाय पृथक् है। गुरुदेव के सामने शिष्य के यह तर्क थे :—

१. लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम्। अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

२. सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम्। अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

१. रामानुज सम्प्रदाय का आरम्भ लक्ष्मीनाथ से है और रामानन्द सम्प्रदाय का आरम्भ सीतानाथ से है।

२. श्री रामानंद सम्प्रदाय और श्री रामानुज सम्प्रदाय का प्रायः सब आचार-व्यवहार भिन्न है।

३. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में यथाकथंचित् श्री राम और नारायण में अभेद होने पर भी श्री राम का ही परत्त्व है और उनके यहां नारायण का परत्त्व है।

४. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में सम्पूर्ण भगवन्मंत्रों में सम प्रेम रहते हुये भी श्री राममन्त्र सर्वोत्कृष्ट है। उनके यहां श्री राममन्त्र - कृष्णमन्त्र इत्यादि व्यर्थ और तुच्छ है।

५. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में किसी मन्त्र की निन्दा नहीं है। उनके सम्प्रदाय श्री राममन्त्रादि अपराधी और निन्दनीय हैं।

६. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में ऋण, यजु, साम और अथर्वादि ही वेद माने जाते हैं और उनके यहां द्रविड़ प्रबन्ध भी।

७. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में तुलसी की कण्ठी परमावश्यक है, उसका सतत् धारण करना ही धर्म है उसके विना किसी का जल तक ग्राह्य नहीं है। परन्तु उनके सम्प्रदाय में यह सब कुछ नहीं।

८. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में प्रसादान्त और शरणान्त नाम का व्यवहार है उनके यहां प्रसादान्त और शरणान्त का व्यवहार नहीं है।

९. श्री रामानन्द सम्प्रदाय के वैष्णव श्री रामानुज सम्प्रदाय के ब्राह्मणों का पक्व अन्न ग्रहण करते थे किन्तु वह लोग हमारे सम्प्रदाय के ब्राह्मणों का अन्न नहीं ग्रहण करते हैं।

१०. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में किसी भी व्रत में रात-दिन उपवास करते हैं परन्तु उनके यहां रामनवमी, कृष्णाष्टमी इत्यादि पुण्यदिनों में जन्म के बाद पारणा का व्यवहार है।

११. हमारे यहां श्री सम्प्रदाय का दूसरा नाम श्री रामानन्द सम्प्रदाय है और उनके यहां नहीं।

१२. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में भक्ति के अधिकारी मनुष्यमात्र हैं परन्तु उनके यहां वेदादि पढ़ा हुआ द्विजमात्र ही।

१३. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में आरम्भ से रहस्यत्रय का उपदेश होता आया है और श्री रामानुज सम्प्रदाय में नहीं।

१४. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में भगवत्पूजा अर्चा में शंख का प्रयोग होता है परन्तु रामानुज सम्प्रदाय में वह अस्पृश्य माना जाता है।

१५. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में शालग्राम के साथ गोमती चक्र रखने का व्यवहार है; रामानुज सम्प्रदाय में नहीं।

१६. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में पंचसंस्कार अनादि काल से होता आ रहा है, परन्तु रामानुज सम्प्रदाय में नहीं।

१७. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में सर्वत्र सदा भोजन सम्बन्धी आचार का यथोचित विचार करता है।

१८. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में श्री हनुमान जी पूज्य देव माने जाते हैं। उनका प्रसाद ग्रहण किया जाता है। श्री रामानुज सम्प्रदाय में नहीं।

१९. श्री रामानन्द सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि श्रीराम जी ने श्री राममन्त्र का उपदेश श्री जानकी जी को दिया और उन्होंने अपने शिष्य प्राणियों में प्रचार किया। इसी बात का "त्वद्द्वारया तारकमन्त्रराजम्" इत्यादि श्लोकों में श्री रामप्रसाद जी महाराज ने निरुपण किया हैं यही बात श्री रघुनाथ प्रसाद जी महाराज मानते थे। यही बात श्रीचरण (अपने गुरुदेव को) भी आज से कुछ दिन पहले मानते थे। परन्तु श्री रामानुज सम्प्रदाय में इसकी गन्ध भी नहीं है।

२०. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में आरती के समय पूजा का जल अर्घे से बाहर फेंका जाता है, श्री रामानुज सम्प्रदाय में नहीं है।

२१. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में आरती की स्तुतियों के साथ उनकी स्तुतियों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

२२. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में रक्तश्री, शुक्लश्री, (लशकरी), गोलश्री (विन्दु), लुप्तश्री (चतुर्भुजी) इत्यादि भी अनेक भेद हैं श्री रामानुज सम्प्रदाय में यह सब भेद नहीं है।

२३. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में काठिया, मुंजिया, खाखी, तपस्वी, जटाधारी, पंचकेशी इत्यादि अनेक भेद हैं, श्री रामानुज सम्प्रदाय में नहीं।

२४. श्री रामानुज सम्प्रदाय के विरक्तों में ब्रह्मचर्य और संन्यास दो आश्रम पाले जाते हैं, परन्तु श्री रामानुज सम्प्रदाय के विरक्तों का पांचवा आश्रम है।

२५. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी की प्रतिमा मन्दिरों में पधराई जाती हैं और श्री रामानुज सम्प्रदाय में नारायण की प्रतिमा पधराई जाती है।

२६. श्री रामानन्द सम्प्रदाय में चतुर्वर्ग सम्प्रदाय के भगवन्मन्दिर में जाकर भगवान् को साष्टांग दण्डवत् करने की प्रथा है परन्तु रामानुज सम्प्रदाय में नहीं।

इस प्रकार अनेक भेदों के रहते हुये भी क्षणभङ्गुर हेतुओं से अभेद सिद्ध करना बड़े साहस का कार्य है।

श्री महाराज जी ! मैं यह भी पूंछ लेना चाहता हूँ कि आप जिस प्रकार से अनेक भेदों के रहते हुये भी यत्किंचिद्धर्म की समानता के कारण दोनों सम्प्रदायों में अभेद सिद्ध करते हैं। उसी प्रकार से अनेक धर्मों के भेद होने से दोनों में भेद ही क्यों नहीं स्वीकार कर लेते ? तथा आपकी रीति से तो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि का भी परस्पर अभेद सिद्ध हो जायेगा। क्योंकि – (१) माता-पिता से उत्पत्ति, (२) दुग्धपान, (३) नवमास पर्यन्त

गर्भवास, (४) मांसादि भक्षण, (५) मांसादि परित्याग, (६) दक्षिण में मामा की लड़की से विवाह, (७) सोलह संस्कार, (८) दोनों के वेदाधिकार, (९) दोनों की द्विजत्व, इत्यादि अनेक बातों में समता आगोपाल प्रसिद्ध हैं।

ऊर्ध्वपुण्ड्र चारों सम्प्रदायों में विहित होने के कारण चारों सम्प्रदायों का अभेद सिद्ध हो जायेगा। निम्बार्क सम्प्रदाय के ऊर्ध्वपुण्ड्र, गोपीचन्दन धारण के साथ समानता होने से समस्त बेंदीवाले श्री वैष्णवों का निम्बार्क सम्प्रदाय के साथ अभेद हो जायेगा अतः इस प्रकार की समानता से अभेद सिद्ध करने का प्रयास सर्वथा व्यर्थ है ।

इस प्रकार और भी युक्तियों से सिद्ध किया कि दोनों सम्प्रदाय सर्वथा भिन्न हैं। अब शिष्य ने प्रश्न किया कि "गुरुदेव हम सम्प्रदायी हैं या पन्थाई हैं ?" प्रश्न सुनकर गुरुदेव संकट में पड़ गये कि यदि मैं इनको सम्प्रदायी कहता हूँ तो रामानुजीय मानने को तैयार नहीं हैं, और यदि पन्थायी कहता हूँ तो वे रामानन्दियों का विशाल जनसमूह क्रुद्ध होकर मुझ पर टूट पड़ेगा। गुरुदेव से कुछ उत्तर देते नहीं बना। कुछ देर बाद सभा से उठकर चले गये।

इधर शिष्य के गले में विजयमाल पड़ी और विजयश्री ने चरण चूमा। यह उनकी साम्प्रदायिक विजय थी। मानव जब क्रोध में आता है तो कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक नष्ट हो जाता है। शिष्य से परास्त होने के बाद गुरुदेव ने शिष्य से बोलना बंद कर दिया। भोजन के समय गुरुदेव सर्व प्रथम स्वामी जी को ही बुलाते थे अब वह भी बन्द हो गया। स्वामी जी का अपमान हुआ। छावनी के महन्त जी के आग्रह से स्वामी गुरु-स्थान से छावनी आ गये।

इस प्रकार से अनेक दिशा में अनेक सिद्धान्त के विषय में पादरी, मौलवी और आर्यसमाजियों के साथ स्वामी जी ने कई बार शास्त्रार्थ किया और विशेषता यह कि सर्वत्र विजयी रहे। कभी-भी स्वामी जी किसी शास्त्रार्थ में पराजित नहीं हुये। कुछ लोग कहते हैं "श्री हनुमान् जी ने उनको वरदान दिया था कि तुमको शास्त्रार्थ में कोई पराजित नहीं कर सकता है। आप एक तरफ महाकवि थे तो दूसरी ओर महान् दार्शनिक। आपको साम्प्रदायिक महाकवि की मान्यता मिली है। "रामानन्ददिग्विजय" आपका प्रथम महाकाव्य है। यह काव्य माउन्ट बाबू से सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ है। जिस समय रामानन्द सम्प्रदाय में आचार्यप्रवर श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी के विषय में बहुत कम साहित्य उपलब्ध था उस समय पूज्य स्वामी जी ने "रामानन्द दिग्विजय" महाकाव्य की रचना करके अंधकार से आच्छादित रामानन्द सम्प्रदाय का उद्धार किया था। साम्प्रदायिक महाकवि के साथ-साथ आप राष्ट्रीय महाकवि भी हैं। आप राष्ट्र को सर्वोपरि मानते हैं। जब आप राष्ट्र के विषय में लिखते-बोलते हैं, उस समय आप सम्प्रदाय को भी भूल जाते हैं। आप का सिद्धान्त है कि यदि हमारा राष्ट्र उन्नत रहेगा तो हम भी उन्नत माने जायेंगे।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः" की उक्ति को चरितार्थ करना चाहते थे। राष्ट्रोन्नति को सम्प्रदायोन्नति मानते थे। इसीलिये आपने महात्मा गांधी को लक्ष्य करके (१) भारतपारिजातम्, (२) पारिजातापहारः, (३) पारिजातसौरभम्, संस्कृत महाकाव्यों की रचना किया। महाकवि होने के साथ-साथ आप अलौकिक वैदिक भाष्यकार हैं तथा हो चुके हैं। उन लोगों की एक ही शैली देखने को मिलती है। इनका वेदभाष्य लोकोत्तर भाष्य है। सभी भाष्यकारों ने गीता उपनिषद् तथा धर्मशास्त्रों के द्वारा भाष्य निर्माण किया है। किन्तु पूज्य स्वामी जी ने वेदमन्त्रों से ही भाष्य रचना किया है। इस कारण यह भाष्य लोकोत्तर भाष्य बन गया है। "ऋषयो

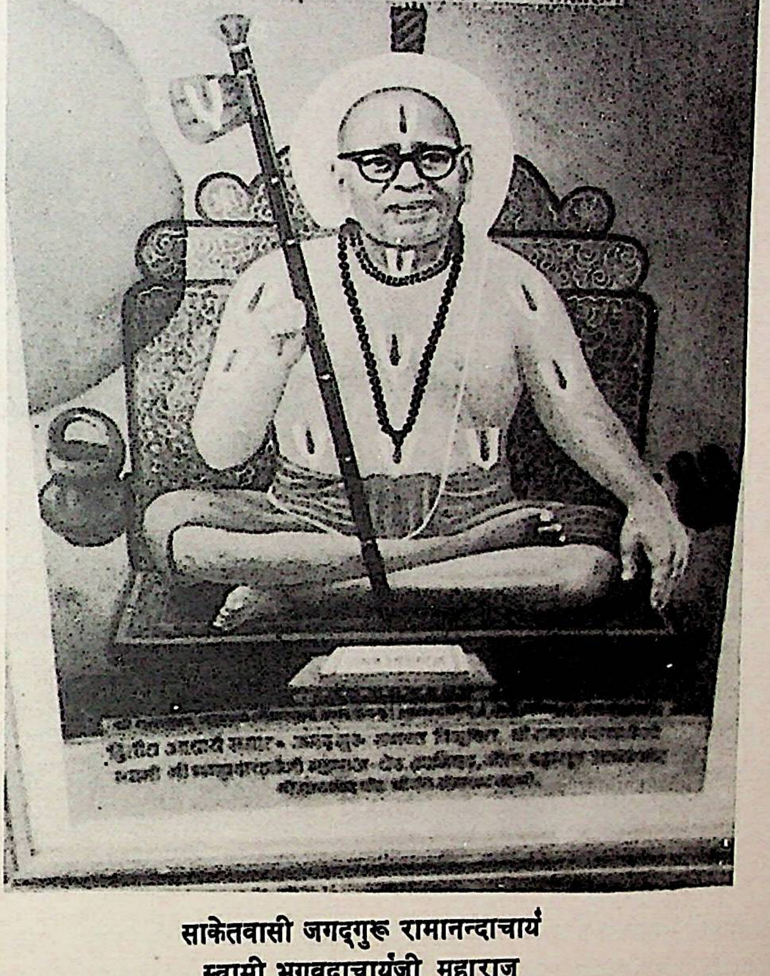

साकेतवासी जगद्गुरू रामानन्दाचार्य
स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज

मन्त्रद्रष्टारः" इस उक्ति को चरितार्थ करके आपने ऋषि समाज का जो महान् कल्याण किया है। उसको भारतवर्ष कभी नहीं भूल सकता है। अनेक प्रतिभाओं में से उनकी एक प्रतिभा यह भी थी कि एक साथ दोनों हाथ से भिन्न-भिन्न विषय और भाषाओं के खिल लेते थे।

जैसा कि न कभी सुना गया है और न देखा गया है ऐसी अनेक प्रतिभाओं के वे आकर थे। विरक्त समाज का कौन सा आश्रम माना जाय जब यह विवाद बहुत दिनों से चला आ रहा था। जब आपको यह मालूम हुआ कि यह विवाद प्रबल रूप धारण कर रहा है और आगे "आश्रमकष्टकोद्धार" नामक ग्रन्थ का निर्माण करके इस समस्या का समाधान किया। स्वामी जी ने सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद सर्वप्रथम स्तोत्र निर्माण का कार्य किया। "दिव्यस्तोत्रकलाप" नामक स्तोत्र ग्रन्थ में सभी स्तोत्रों का संग्रह है। इस स्तोत्र ग्रन्थ में रामस्तव, जनकीस्तव, मारुतिस्तव, यतिराजस्तव आदि हैं। श्री रामानन्द सम्प्रदाय का यह अनुपम स्तोत्र ग्रन्थ है। यह ग्रंथ करुण, विप्रलम्भ भक्ति और श्रृंगारादि रसों से परिपूर्ण है। यमक, अनुप्रासादि अलंकारों में अलंकृत है। ग्रन्थ में कवि का उदार भक्ति हृदय जगह-जगह छलक पड़ता है। इस ग्रन्थ में जगज्जननी जानकी जी का साक्षात्कार बड़े रोचक ढंग से वर्णित है। मारुतिस्तव में वात्सल्य भाव की पराकाष्ठा है। इसको रामस्तव तो खूब ही उपालम्भ युक्त है। भक्त हृदय कह रहा है—

"भगवान् आपने गीध का भी उद्धार किया है यदि यह सत्य है तो मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ?" यह दिव्यस्तोत्रकलाप वस्तुतः दिव्य के शताधिक ग्रन्थ देकर सम्प्रदाय की नींव को दृढ़ किया है। गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्रादि पर अनुपम भाष्य रचना करके सम्प्रदाय के अंधकारमय मार्ग में ज्ञान का जो सूर्य प्रकट किया वह अनंत काल तक भटके व्यक्तियों का पथ प्रदर्शन करता रहेगा। जीवन भर स्वामी जी सच्चे विरक्त के उदाहरण थे। अपने हाथ का कता हुआ खादी वस्त्र वह धारण करते रहे।

बात सन् १९२५–२६ की है। जोधपुर में एक आर्य समाजी विद्वान् मूर्तिपूजा का खण्डन कर रहा था। वैष्णव धर्म की निन्दा कर रहा था। साथ ही साथ शास्त्रार्थ के लिये चुनौती भी दे रहा था। किसी भी विद्वान् को वह आर्यसमाजी नगण्य समझ रहा था। प्रारम्भ से ही स्वामी जी का यह उद्घोष था कि भगवदाचार्य के रहते हुये कोई भी विरोधी श्री वैष्णव सम्प्रदाय की ओर उंगुली नहीं उठा सकता है। स्वामी जी के इस उद्घोष से सम्प्रदाय के लोग पूर्ण परिचित थे। स्वामी जी के पास तार किया गया। तार प्राप्त हुआ। उस समय स्वामी जी १०४ डिग्री बुखार की चपेट में थे, किन्तु उसकी जरा भी परवाह न करके आप सम्प्रदाय की करुण पुकार से विह्वल हो ज्वरग्रस्त अवस्था में ही जोधपुर के लिये चल पड़े। शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाजी पंडित के गर्व के पहाड़ ध्वस्त हुआ और उसने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। इसी प्रकार एक पादरी को भी शास्त्रार्थ में पराजित किया था। जब-जब सम्प्रदाय पर संकट आया तब-तब स्वामी जी अपनी प्रतिभा से उसे सर्वदा के लिये शान्त कर देते थे। आज भी स्वामी जी की प्रकाण्ड विद्वत्ता पर सम्प्रदाय को गर्व है।

ता० १४-१०-७१ को अहमदाबाद में स्वामी जी का शताब्दी महोत्सव मनाया गया। जिसमें कि देश के कोने-कोने से सम्प्रदाय के वरिष्ठ विद्वान् सन्त उपस्थित हुये थे। गुजरात राज्य के राज्यपाल श्रीमन्नारायण जी भी उस उत्सव में सपत्नीक सम्मिलित हुये थे। यद्यपि सम्प्रदाय के लोग पहले से ही अपररामानन्दाचार्य मानते थे परन्तु १९७७ प्रयाग कुम्भ के अवसर पर रामानन्द सम्प्रदाय के विद्वानों एवं संतों ने मिलकर स्वामी जी को जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के पद पर अभिषिक्त किया। आपके जगद्गुरु रामानन्दाचार्य बनते ही सम्पूर्ण सम्प्रदाय

में अपूर्व प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। स्वामी जी ने सम्प्रदाय के लिये इतना अधिक किया था कि सम्प्रदाय के लिये इतना अधिक किया था कि सम्प्रदाय उनके ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकता था। किन्तु सम्प्रदाय उन्हें कुछ देना चाहता था और वह शुभअवसर प्रयागकुम्भ पर आया। सम्प्रदाय के लोगों ने उन्हें इस गौरवशाली पद पर आसीन कर दिया। यद्यपि उन्हें इसकी तनिक भी इच्छा नहीं थी और न ही यह आभास था कि कुम्भ पर मुझे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य बनाया जायेगा अस्वीकृति में वह हाथ उठाये रहे परन्तु लोगों ने अपने लक्ष्य को पूर्ण करके शान्ति की सांस लिया। स्वामी जी अधिक दिनों तक उस पद पर नहीं रह सके। विधाता के लेख में कोई मेख नहीं मार सकता। जन्म और मृत्यु किसी की प्रतीक्षा नहीं करते।

कोटि-कोटि हृदयों के हृदयेश्वर सदा-सदा के लिये उन हृदयों को अपनी विरहाग्नि में तपता छोड़, गद्दी सूनी करके दिव्य साकेतलोक में श्री राघवेन्द्र सरकार की नित्य सेवा में पधार गये। जिस समय "आल इन्डिया रेडियो" से यह समाचार प्रसारित हुआ सारे समाज में मानों शोक का सागर उमड़ पड़ा। किसी का हृदय वश में नहीं था सभी के नेत्र गंगा और यमुना की धारा बन गये थे।

समाज में प्रायः देखा जाता है कि जो असाधारण विद्वान् होते हैं वे असाधारण लेखक एवं वक्ता नहीं हो पाते । जो दार्शनिक होते हैं वे सफल साहित्यिक नहीं हो पाते। स्वामी जी पर श्री रघुनाथ जी की ऐसी अनुकम्पा थी कि आप जैसे असाधारण विद्वान् थे वैसे ही असाधारण लेखक और वक्ता भी थे। साहित्यिक व दार्शनिक भी थे।

इतना ही नहीं आप हिन्दी, गुजराती, उर्दू, फारसी आदि अनेक भाषाओं के भी पण्डित थे। गांधी जी के साबरमती आश्रम में रहकर कुछ दिन संस्कृत फारसी और अंग्रेजी का अध्यापन भी किया था। शास्त्रार्थ कला में तो स्वामी जी अत्यंत ही निपुण थे। आपने अपने जीवनकाल में कितने ही शास्त्रार्थ किये और विजयी रहे। अपने यहां कोई व्यक्ति आवे तो शिष्टाचार के नाते हर छोटे-बड़े का स्वागत करना, कुशल समाचार पूंछना और जाने लगे तो उनके साथ ही अपने भी खड़े हो जाना द्वार तक उन्हें पहुंचाना। यह उनका सामान्य शिष्टाचार था। उनका कहना था कि "प्रिय को विदा करके द्वार पर तब तक खड़े रहना चाहिये, जब तक प्रिय आंखों से ओझल न हो जाये"। इतने बड़े ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध होते हुये भी स्वामी जी शिष्टाचार का यथावत् पालन करते थे।

स्वामी जी के नेतृत्व में श्री रामानन्द सम्प्रदाय के अंदर क्रांति की लोल लहर भारतवर्ष के कोने-कोने में जा पहुंची। इससे वैष्णव समाज को अनेक लाभ हुये हैं। "श्रीमठ" का जो यह स्वरूप आज दिखाई पड़ रहा है वह पूज्यपाद श्री स्वामी जी के ही सत्प्रयत्न का सुफल है। उनकी निरन्तर चेतावनी से ही समाज का इस ओर ध्यान गया और स्वामी जी के निर्देशन में यह अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ। आपके ही प्रयास से निज आचार्य निष्ठा, उपास्यदेव के प्रति अखिल श्रद्धा-भक्ति और अपने संस्कारों-संस्कृतियों में पूर्ण 'आस्था' उत्पन्न हुई। धर्मग्रन्थों का प्रचार, अनन्य धर्मनिष्ठा की भावना का उदय और परमुखापेक्षिता का दूरीकरण हुआ। विभिन्न स्थानों पर शिक्षण संस्थायें बनीं और सम्प्रदाय में अनेक विद्वान् पैदा हुये।

आपका तप, त्याग, उदारता एवं भक्ति योग की आधारशिला पर अवस्थित मूर्तिमय जीवन विश्व की सम्पूर्ण मानव जाति को अनंत काल तक परमदिव्य संदेश पहुंचाता रहेगा और तिमिराच्छादित हृदयों में आलोक का नवप्रकाश भरता रहेगा।

★★★

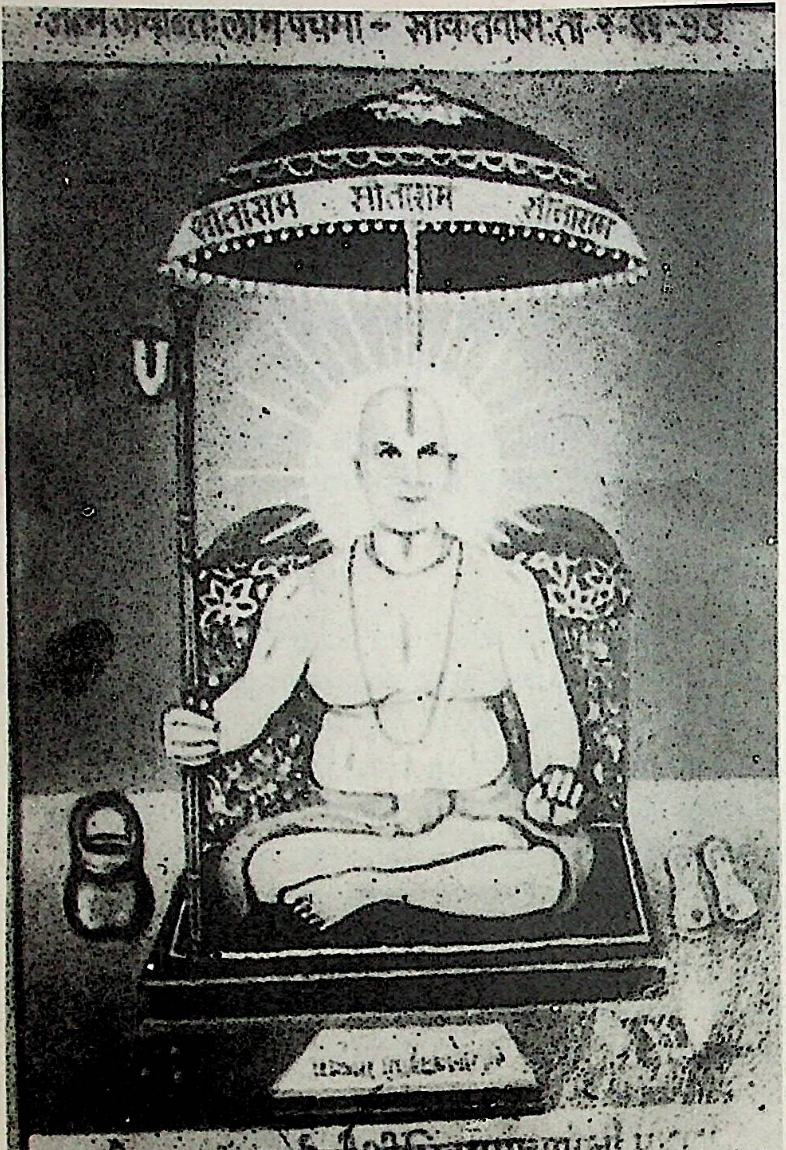
सीताराम
सीताराम
सीताराम

साकेतवासी जगद्गुरू रामानन्दाचार्य
स्वामी शिवारामाचार्यजी महाराज

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री शिवरामाचार्य जी महाराज

— श्रीमाधवाचार्य

जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्य पद प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यचरण चन्चरीक पूज्य आचार्य श्रीस्वामी शिवरामाचार्य जी महाराज श्री सम्प्रदाय की गौरवपूर्ण विभूतियों में एक थे। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के बहराइच मण्डलान्तर्गत परमपुर ग्रामवासी एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीनारायण जी मिश्र था। पिताश्री श्रीसम्प्रदायानुरूप पंचसंस्कारयुक्त ब्राह्मणोचित विद्या, तप एवं त्याग सम्पन्न थे। ये स्वयं संस्कृतानुरागी तथा संस्कृतज्ञ थे। अतः अपने पुत्र को भी संस्कृत सरस्वती की सेवा में विद्योपार्जनार्थ संलग्न करना चाहते थे। पितृपाद के निर्देशानुसार इनको सामान्य संस्कृत एवं मिड्ल कक्षा तक की हिन्दी शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् संस्कृत अध्ययन की ओर उन्मुख होने का संस्कार दिया जाने लगा।

इस सन्दर्भ में आपके पिताजी की दृष्टि अपने गुरुस्थान श्री अयोध्या जी की तरफ बड़ी छावनी की ओर गयी। उनके हृदय में यह विचार उठा कि श्री वैष्णव संस्कारयुक्त संस्कृत विद्या यदि इस बालक को मिले तो इसका तथा मेरे कुल का उद्धार हो जाएगा। अतः ऐसा विचार उठते ही आपने अपने सुपुत्र जो ब्रह्मचारी श्री शिवराम के नाम से संस्कृत थे, को साथ लेकर श्री अवध पधारे तथा अपने मानसिक भावों को आचार्य महान्त जी ईश्वरदास जी महाराज बड़ी छावनी, के चरणों में प्रस्तुत किया। महाराजश्री ने इनके भावों को सुना और प्रार्थनानुसार ब्रह्मचारी शिवराम जी को अपने चरणों में लगा लिया। इनके पिता जी इन्हें महन्थ श्री ईश्वरदास जी के चरणों पर अर्तिप कर घर चले आये। बड़ी छावनी में कुछ दिन निवास के बाद आप श्रीअवध धाम में श्री हनूमानगढ़ी से प्रख्यात स्थान के प्रसिद्ध सन्त श्री बाबा नारायणदास जी जो आपके ग्राम में प्रायः जाया करते थे, पुराने सम्बन्धों के कारण उनके चरणों में रहने लगे और आपने उन्हें से यथा विधि पंचसंस्कार युक्त श्री वैष्णवी विरक्त दीक्षा प्राप्त की। श्री गुरुदेव की आज पाकर संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन हेतु आप काशी पधारे और वहाँ श्री स्वामी भागवदाचार्य, श्रीस्वामी वराचार्य, श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य सार्वभौम से आपको संस्कृत अध्ययन में सहयोग तथा विशेष प्रेरणा मिली। आप श्री वैष्णव सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध तथा काशी की विद्वन्मण्डली में प्रख्यात सन्त-विद्वान् षद्दर्शन पोष्टाचारी श्री स्वामि रामलक्ष्मणाचार्य जी महाराज की वैष्णवता, वैराग्य, साधुता, विद्या तथा अध्यापन निष्ठा से प्रभावित हो उनकी शरण में रहकर विद्यार्जन करने लगे और उनकी कृपा से रामानन्द सम्प्रदाय में सन्त-विद्वान् तथा षड्दर्शनाचार्य के रूप में आपका नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाने लगा, जिसके फलस्वरूप जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी भगवदाचार्य जी महाराज के साकेत गमन के पश्चात् जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य के पद पर समस्त रामानन्द सम्प्रदाय की ओर से आपको प्रतिष्ठित किया गया। उक्त गौरवान्वित पद पर आप दस वर्षों तक विराजमान रहे। आपके आचार्यत्व काल में श्रीसम्प्रदाय साम्प्रदायिक अभ्युत्थान की दिशा में अग्रसर होता रहा है। आपने आचार्य पद से अवकाश लेने के कुछ ही माह बाद संवत् २०४५ कार्तिक कृष्ण दशमी शुक्रवार को बातचीत करते हुए अचानक ही श्रीअवध में अपनी मानवीय लीला का सम्वरण कर श्री साकेत पधारने का सौभाग्य प्राप्त किया।

★★★

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री रामनरेशाचार्य जी महाराज

— पं० शतंजीव मिश्र

श्रीमठ (रामानन्दाचार्य पीठ) के वर्तमान पीठासीन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी जी श्री रामनरेशाचार्य जी महाराज का जन्म बिहार प्रान्त के भोजपुर जिलान्तर्गत 'परसिया' नामक ग्राम में पवित्र अयाचक (भूमिहार) ब्राह्मण वंश में माघ शुक्ल पंचमी सम्वत् २००८ तद्नुसार गुरुवार ३१ जनवरी सन् १९५२ ई० में हुआ। आपके पिता पं० श्री 'जगन्नाथ शर्मा' जी हैं। माता-पिता के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण आप परिजनों को बहुत प्यारे थे। आपके बचपन का नाम 'श्रीकृष्ण शर्मा' था। अध्ययन के प्रति गहरी व सहज अभिरुचि के कारण घर पर ही प्रारम्भिक शिक्षा-प्राप्ति की क्रम में आपने इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र के कतिपय ग्रन्थों का अध्ययन किया। स्वभाव से विनोदी श्रीकृष्ण शर्मा का एक मात्र व्यसन नित्य नये आदर्श पुस्तकों का अध्ययन था। पुस्तकों में महापुरुषों के चरित्रों को पढ़कर, उनकी जीवन-गाथाओं से प्रेरणा लेकर सीमित न होकर सुविस्तृत सामाजिक धरातल पर कुछ अविस्मरणीय कर्म करने की अभिलाषा आपके अन्तःस्थल में घर कर गयी थी। कहते हैं कि लक्ष्य के प्रति व्यक्ति दृढ़ संकल्पित हो तो मार्ग अनायास ही खुल जाते हैं। सन्त निवासाध्यक्ष महन्थ रघुवर गोपालदास जी के व्याकरण, न्याय, वेदान्त व मीमांसा के प्रखर पाण्डित्य, ओजस्वी सदुपदेश, सदाचार व नैष्ठिक साधुता से प्रभावित होकर आप सोलह वर्ष की अवस्था में काशी आ गए।

महन्थ रघुवर गोपालदास से वैष्णवी दीक्षा प्राप्त कर पंच-संस्कारों से सम्पन्न श्रीकृष्ण शर्मा का नया जीवन नयी उमंग व अदम्य उत्साह के साथ 'रामनरेश दास' के रूप में १९ दिसम्बपर १९६८ ई० से प्रारम्भ होता है। अध्ययन के प्रति सतत् जागरूक रहते हुये आपने संस्कृत के प्रारम्भिक ग्रन्थ लघुसिद्धान्तकौमुदी व तर्कसंग्रह अपने दीक्षा गुरु से पढ़ा। गोरे, लम्बे और पतले शरीर पर घुटने के ऊपर अचला और उत्तरीय में आपकी साधुता, सौम्यता, व्यवहारशालीनता व अध्ययन के प्रति जागरूकता ने काशी के सभी लब्ध ख्याति विद्वान् व सन्त-महात्माओं का चित्त आकर्षित किया। साधारणतया यह देखा जाता है कि कम समय में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाने पर लोग कृतकृत्यता का अनुभव करते हुए लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते किन्तु आप सभी के स्नेह सौहार्द व सम्मान को आगे बढ़ाते हुये काशी विद्यामन्दिर के संस्थापक स्वामी रामलक्ष्मणाचार्य, पोव्टाचार्य से अर्थसंग्रह, सांख्यतत्त्वकौमुदी, योगदर्शन तथा तर्कसंग्रह की कतिपय गूढ़ टीकाओं का अध्ययन किया। मध्यमा व शास्त्री कक्षाओं की परीक्षाएँ आपने दक्षिणामूर्ति में रहकर उत्तीर्ण कीं। दक्षिणामूर्ति विद्यालय के व्याकरण प्राध्यापक श्री गयादीन मिश्र से आपने सिद्धान्त कौमुदी का बहुत-सा अंश पढ़ा। वहीं रहते हुए आपने आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल से न्याय के कुछ ग्रन्थों का तथा पं० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री से मीमांसा शाबर भाष्य का अध्ययन किया। आचार्य शुक्ल जी के आप प्रियतम छात्र रहे हैं। शुक्ल दम्पती के पुत्रवत् स्नेह की चर्चा अभी भी आप कभी-कभी रोमांचित होकर करते हैं। संस्कृत के अध्ययन के साथ ही आप नियमतः नागरी प्रचारिणी सभा में जाकर आधुनिक दार्शनिकों का चिन्तन तथा उच्च कोटि के साहित्य का अध्ययन किया करते थे। मध्यमा की

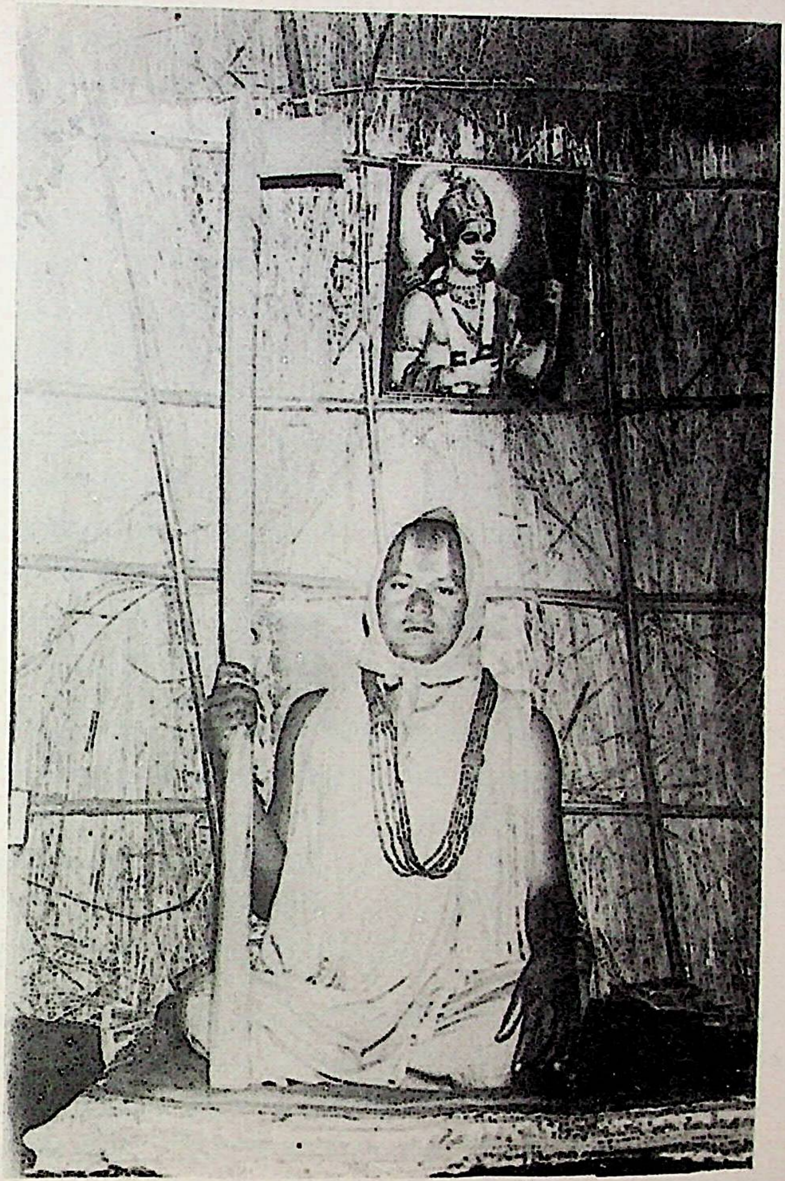

वर्तमान जगद्गुरू रामानन्दाचार्य
स्वामी रामनरेशाचार्यजी महाराज

परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने स्वतंत्र अध्ययन को अपने उत्कर्ष का साधन बनाया, दक्षिणामूर्ति मठ, जो मूलतः शांकरी परम्परा का गढ़ है, वहाँ रहकर आपने न्याय-शास्त्र की जिस धारा को गति दी वह आज भी अपना गौरवशाली अस्तित्व बनाये हुए हैं। आपके यहां बाहर से विभिन्न सम्प्रदाय व समाज के छात्र पढ़ने आया करते थे। निर्मल सन्त हो या उदासीन, गरीबदासी हो या कबीरपंथी, संन्यासी हो या वैरागी, वैष्णव सभी के साथ समान सौहार्दपूर्ण आपका व्यवहार होता रहा है। सार्वभौम स्नेहार्जन का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। आपके मधुर व्यवहारपूर्ण प्रशस्त-अध्यापन शैली से प्रभावित छात्र कक्षा की ओर जाने वाले मार्ग को आपके कक्ष की ओर मोड़ दिये थे। आश्रम व विद्यालयीय व्यवस्था आपसे प्रभावित थी। विद्या का उत्कर्ष, विद्यालयीय व आश्रम के प्रबन्ध-तन्त्र का सौन्दर्य व काशी की पाण्डित्य परम्परा के सहज झुकाव से दक्षिणामूर्ति के तत्कालीन प्राचार्य रामसम्मुख द्विवेदी, जो विद्या के क्षेत्र में वास्तविक निष्ठा, प्रवेश एवं प्रौढ़ता को नहीं प्राप्त कर सके थे, वे उस परमोदात्त स्वाध्याय-प्रवचन योजना में खलनायक की भूमिका निभाने लगे। इस क्रम में उनका सहयोग अन्य भी कई संन्यासियों तथा प्रबन्ध सहयोगियों ने किया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल पायी, क्योंकि आपके साथ स्वामी शारदानन्द जी महामन्त्री, अमरानन्द जी व तत्कालीन महामण्डलेश्वर स्वामी नृसिंह गिरिजी महाराज का गौरवपूर्ण स्नेह व सौहार्द था। महामण्डलेश्वर जी आपको संन्यासी शिष्य के रूप में देखना चाहते थे। कभी-कभी वे अपनी गरिमा को भूलकर खुले शब्दों में कहते थे – "भाई संन्यासी बन जाओ" पर आपकी अटूट वैष्णव निष्ठा ने उनके प्रति श्रद्धावनत होते हुए भी सम्प्रदाय परिवर्तन का आदेश न दिया। आचार्य श्री का दक्षिणामूर्ति के अध्ययन काल में किसी के साथ समानता या मित्रता का व्यवहार था, तो एकमात्र स्वामी शारदानन्द जी के साथ ही। आप दोनों एक दूसरे की "व्याप्ति" कहे जाते रहे हैं। प्रबन्धक होने पर भी यथा समय हर प्रकार की सेवा के लिए प्रस्तुत करते हुए स्वामी शारदानन्द जी ने आदर्श प्रबन्धक तथा समर्पित मित्रता का एकमात्र उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मध्यमा में पढ़ते हुए ही आपके नगर के विभिन्न विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय में समायोजित शास्त्र-परिचर्या गोष्ठियों में भाग लेते रहे। जिसमें साधुवेला महाविद्यालय में चिरसुखी के "अविद्यायां प्रामाण्य-विचारः" विषय पर शास्त्री द्वितीय वर्ष के अध्येता कमलेश झा के साथ शास्त्र परिचर्या विशेष स्मरणीय है, क्योंकि उस समय आप पूर्व मध्यमा द्वितीय वर्ष के ही छात्र थे। तथापि शास्त्रार्थ अनिर्णीत रहा था। दक्षिणामूर्ति में तथा अन्यत्र भी आप शास्त्रार्थ में भाग लिया करते थे किन्तु बाद में काशी की विद्वन्मण्डली के सौतेले व्यवहार के कारण शास्त्रार्थ में कभी सम्मिलित नहीं हुए।

शास्त्री की परीक्षा देने के बाद आप काशी विद्यामन्दिर में आ गये। वहाँ पोष्टाचार्य जी तथा पं० हृदय नारायण द्विवेदी जिस स्नेह और सम्मान का व्यवहार करते थे उससे यही प्रतीत होता है कि उन्होंने उसी समय अपने भावी जगद्गुरु की छाया को आप में परख लिया था। यहाँ आने के बाद आपके स्वाध्याय, प्रवचन की धारा में अधिक गति आ गयी। उस समय आप ही एक ऐसे आचार्य थे, जिसके सान्निध्य में ६० छात्रों की एक टोली प्रतिदिन सुबह-शाम पढ़ा करती थी। यहीं रहकर आपने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सन् १९८१ ई० में न्यायाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। न्यायाचार्य करते हुए आपने मात्र "शब्द-शक्ति प्रकाशिका" नामक ग्रन्थ पं० राम चन्द्र शास्त्री हुसमने से पढ़ा। शास्त्री-आचार्य के तमाम जटिल ग्रन्थों को स्वतः ही विचार कर अन्य छात्रों को पढ़ाया करते थे। कभी-कभी तो आपकी चिन्तन-धारा गुरु चिन्तन-धारा का भी अतिक्रमण कर जाती थी। आचार्य करने के बाद भी आप दो वर्षों तक काशी विद्यामन्दिर में रहकर अध्यापन करते हुए काशी की विद्वन्मण्डली में सुप्रतिष्ठित हो गये।

वाराणसी में ह्रासोन्मुख न्याय-शास्त्रीय चिन्तन-धारा को गति देने के बाद आपके साधु-जीवन का द्वितीय क्रम मार्च १९८३ से प्रारम्भ होता है जब आपने दशनाम संन्यासाश्रम में बीस वैष्णव-संन्यासी स्वतंत्र अध्येताओं को अध्यापन करना प्रारम्भ किया । कई दशकों से हरिद्वार के अध्ययन क्रम से न्याय की परिचर्चा लुप्त हो गयी थी, जिसे पुनरुज्जीवित करने का गौरवपूर्ण श्रेय आपको प्राप्त है । शाङ्करी व वैष्णवी परम्परा के परस्पर सहयोग से पंचपुरी क्षेत्र में स्वाध्याय-प्रवचन की धारा को जो गति मिली है, वह कई दशकों तक कदापि शिथिल नहीं हो सकती । सामान्य जनों की दृष्टि में वैष्णव व संन्यासियों के बीच जो एक दूसरे के प्रति उपेक्षा भाव, असौहार्द या असहिष्णुता की लम्बी दरार थी, गहरी खाई थी, उसे पाटने के लिए आपने वहाँ रहकर उनकी मुख्य धारा स्वाध्याय-प्रवचन के लिए स्वयं को समर्पित कर एक सुदृढ़ सेतु का काम किया, यह वैष्णव तथा संन्यासी दोनों ही समाज के इतिहास में एक अपूर्व घटना के रूप में याद किया जाएगा । क्योंकि जहाँ विद्या के क्षेत्र में संन्यासियों की ही एकमात्र पताका फहराती रही है, वहाँ आपने वैष्णव होकर स्वाध्याय-प्रवचन का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह वैष्णव तथा संन्यासियों के इतिहास में सदा जीवित रहेगा । इस अनोखी धारा की संस्थापना एवं सफलता में कैलास पीठाधीश्वर निखिलशास्त्र-निष्णात परिव्राजक-शिरोमणि स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज, परम विनयी, दशनाम संन्यासाश्रम के प्रबन्धक स्वामी शम्भु गिरिजी महाराज तथा कैलास-आश्रम के समस्त भक्तों एवं सन्तों की अनुकूल भूमिका को कभी-भी नहीं भुलाया जा सकता है ।

कैलास आश्रम के भक्तों के आग्रह पर कभी-कभी आप छात्र-मण्डली के साथ सामाना, फलौदी, अमृतसर, मद्रास, दिल्ली आदि नगरों में स्वाध्याय-प्रवचन शिविर भी लगाते रहे । आपके आध्यात्मिक मधुर-व्यवहारपूर्ण जीवन को आदर्श मानकर आपसे जुड़ने वाले भक्तों की संख्या विभिन्न नगरों में शताधिक है । जिनमें मद्रास के भागीरथ भैया, जयकिशन, भट्टड, यशोदा, लक्ष्मी गंगलानी, मायारानी, चांदनी रानी, विशनदास कनल, सत्यदेव कनल, उमा रानी, ललिता रानी आदि, फलौदी के रतनलाल थानवी, मोहन लाल टरू, चैनसुख टरू, विश्वम्भर दयाल टरू, रामचन्द्र टरू, आदि सामाना के सन्तराम ठीकेदार, रामधारी सिंघल, मंगतराम सिंघल, हेमराज गुप्ता, तपस्विनी यशोदा जी, साधु रामजी, विजय शर्मा आदि तथा पटियाला के भगवान देवी आदि प्रमुख हैं ।

एक ओर कैलास के भक्त ही नहीं, अधिकारी संन्यासी-सन्त भी भावी कैलाशपीठाधीश्वर के देखने व तदर्थ बहुशः आग्रह किया करते थे, तो दूसरी ओर पंचपुरी एवं अन्य नगरों के वैरागी-वैष्णव सन्तों के हृदय-पटल में यह बात शूल की तरह चूभती थी कि हमारी परम्परा की प्रतिभा का सदुपयोग अन्यत्र हो रहा है । यथावसर काशी, अयोध्या, पंचपुरी, गुजरात, राजस्थान आदि के प्रतिष्ठित वैष्णव सन्त अपनी परम्परा में स्वाध्याय-प्रवचन के लिए आग्रह करते रहे । सन् १९८७ में आपने वैष्णव-प्रवर श्री नारायण दासजी त्रिवेणी, जयपुर के यहाँ अपनी शिष्य-मण्डली के साथ तीन मास तक स्वाध्याय-प्रवचन का आयोजन किया । रामानन्दाचार्य पीठ के आचार्य हेतु सम्प्रदाय के वरिष्ठ सन्त-महान्तों के आग्रह को तीन वर्षों तक टालने के बाद आपने जुलाई १९८७ ई० में उक्त पीठ पर आचार्य रूप में पधारने का आश्वासन दे दिया । साम्प्रदायिक लोग तो जैसे इसी प्रतीक्षा में थे । वैरागी-वैष्णव-समाज में आपके अभिषेक की घोषणा वनाग्नि की तरह फैल गयी । ३ जनवरी १९८८ ई० को वैष्णव प्रवर महान्त नारायण दासजी के तत्त्वावधान में दशनाम आश्रम में आपकी विदाई का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें लगभग पाँच हजार संन्यासी, वैरागी, भक्तों वं सन्तों ने भाग लिया । विदाई के समय सभी के हृदय भाव-भरे व नेत्र अश्रुपूरित थे ।

अस्तु देश के कोने-कोने से साधु, सन्त व भक्त आचार्य पदाभिषेक-महोत्सव का दर्शन करने श्रीमठ में आने लगे । ११ जनवरी १९८८ ई० को रामानन्द जयन्ती के शुभ अवसर पर हर्षोल्लासपूर्ण वारावारण में रामानन्दाचार्य पीठ पर आपका पदाभिषेक किया गया । आचार्य पीठ पर आसीन होने के बाद भी आपका स्वाध्याय-प्रवचन यथावत् चल रहा है । आचार्यश्री के स्वध्याय-प्रवचन से पूर्णतः लाभान्वित होने वाले सैकड़ों वैष्णव, संन्यासी व सद्गृहस्थ जन हैं । जिनमें श्री राघवाचार्य जी, अग्रदेव पीठचार्य रैवासा, श्री रामेश्वर दास जी, महाप्रबन्धक, हरतीरथ, वाराणसी, अवधूत जी परमार्थ आश्रम हरिद्वार, वेंकटेश शर्मा "प्राचार्य" परांकुशाचार्य संस्कृत महाविद्यालय हुलासगंज गया, अनिल कुमार पाठक "प्रवक्ता" आदर्श संस्कृत विद्यापीठ बम्बई, भरत शर्मा न्यायाचार्य, एम० ए०, नरोत्तम सेनापति, "न्याय प्रवक्ता" के० सं० विद्यापीठ पुरी, सुबोध शर्मा 'व्याकरण-प्रवक्ता' आदर्श सं० म० वि० पटोरी (बिहार), चित्त नारायण पाठक 'प्रधानाचार्य' निर्मल सं० वि० वाराणसी, रामकिशोर दास, राजस्थान, स्वतंत्र अध्येता नारायणानन्द गिरि महाराष्ट्र, देवराम दास 'वेदान्ताचार्य' जानकी घाट, अयोध्या, महन्थ महेन्द्रानन्द पुरी, (म० प्र०) विज़य राघव प्रपन्न एम० ए०, वेदान्ताचार्य, फतेहपुर, अमरानन्द गिरि आदि प्रमुख हैं । मैं स्वयं भी आध्यात्मिक व शास्त्रीय क्षेत्र में आपका चिर ऋणी हूँ । आज भी आचार्यश्री के सान्निध्य में पच्चीस वैष्णव, संन्यासी व गृहस्थ छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं ।

पीठासीन होने के बाद आपकी तीन महत्त्वपूर्ण यात्राएं हुईं । पहली यात्रा श्रीराम-मन्दिर शिलान्यास के लिए बलिया के ग्रामीण क्षेत्र में हुई, दूसरी यात्रा राम-भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए हरियाणा, पंजाब व राजस्थान की हुई तथा तीसरी यात्रः रामायण मेला के उद्घाटन हेतु अयोध्या की हुई है । इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यश्री का सम्पूर्ण जीवन त्याग, तपस्या, विद्या व आध्यात्मिक शक्ति से समन्वित है । आचार्यश्री के जीवन क्रम को ध्यान से देखने पर उन सन्तों पर तरस आती है, जो वृत्ति के लोभ से अपनी आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास करते हैं । भारतीय संस्कृति व संस्कृत भाषा की रक्षा के लिए मैं मंगलमय-प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि प्रत्येक समाज व सम्प्रदाय में आप के सदृश एक आचार्य अवश्य हों ।

शतंजीव मिश्र "प्राचार्य"
चेतन ज्योति संस्कृत महाविद्यालय,
हरिद्वार।

★ ★ ★

रामानन्द पीठ में नये आचार्य की नयी चेतना

— डा० शुकदेव सिंह

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के बीच विद्यमान रहने वाले स्वामी रामानन्द गोरखनाथ के बाद दूसरे प्रसिद्ध नायक हैं। जोगी गाथाओं, गोष्ठी, बोधसागरस्रोत और ज्ञानतिलक नाम से लिखी जाने वाली तमाम साम्प्रदायिक पोथियों में गोरखनाथ सर्वत्र विद्यामन हैं। उन्हीं को जीतकर उनसे हारकर आठवीं से लेकर तेरहवीं शताब्दी के तमाम धर्म सम्प्रदाय खड़े होते रहते हैं। ऐसी साम्प्रदायिक पोथियों की संख्या हजारों हजारों हैं। इसके अतिरिक्त लोक गाथाओं, गोपीचन्द, भरथरी, सारंगा, सदावृज विहुला विसहरी जैसी गाथा गेय परम्पराओं में भी गौरवनाद उपस्थित होते हैं। .सूफियों और नाथों सिद्धों और सन्तों के बीच गोरखनाथ एक चुनौती हैं, एक संयोजक कड़ी हैं। ठीक गोरखनाथ के तरह ही स्वामी रामानन्द एक ऐसे सन्त महात्मा हैं, जो पारम्परिक साधना और श्रमजीवी सन्त साधना दोनों के विनियोजक जान पड़ते हैं। स्वामी रामानन्द वह सेतु हैं, जिनसे भक्त और सन्त जुड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं। श्रमजीवी गृहस्थ साधकों और विरक्त तितिक्षा प्राप्तकों को साधना, तितिक्षा, त्याग और तटस्थता के कारण सम्भवतः रामानन्द समान तरह की प्रतिष्ठा देते हैं। इसलिए नाभादास से लेकर दूसरे सन्तों द्वारा लिखित-सम्पादित भक्तमालों, अनन्त दास की परिचयियों, जनम -साखों, संवादों, गोष्ठियों, बोध सागर ग्रन्थों और स्रोत-रचनाओं में रामानन्द नियामक और कर्त्ता के रूप में उपस्थित हैं। उनका शंख सत्य की रक्षा के लिए बजता रहता है और वे उदारतापूर्वक चरित्रगत वैरागी को महत्त्व देते हुए गृहस्थ और गृहत्यागी दोनों प्रकार के अच्छे मनुष्यों को गौरवान्वित करते हैं। अनेक सन्तों की जन्मान्तर गाथाओं के नियामक के रूप में ही उनका बार-बार स्मरण किया गया। 'प्रबन्ध-पारिजात' नामक ग्रन्थ में हिन्दू, मुसलमान, सूफी, शूद्र, राजा, इत्यादि की अनुश्रुतियों को जिस तरह एकत्र किया गया है, उससे यह अंदाज लगाया जा सकता है कि स्वामी रामानन्द सन्तनायक ही नहीं, जन-नायक भी थे। वे जितने बड़े स्रष्टा थे, चमत्कारी थे, सिद्ध और प्रसिद्ध थे, उतने बड़े संतुलन विनायक भी थे। उन्होंने धर्मों और सम्प्रदायों को तरह-तरह से जोड़कर एक उदार मंच की स्थापना की थी, साधुता और कविता, उपदेश और शास्त्राचार को एक ही रागात्मक भूमिका में प्रत्यक्ष कराने का प्रयन्त किया था। कबीर, रैदास, पीपा, सेन नाई जैसे लोक-जीवन से जुड़ हुए सन्त छुटपन में पड़प्पन को विकसित करने वाले साधक उनके शिष्य-मण्डल के सदस्य के रूप में स्मरण किए गए हैं। यद्यपि इन सन्तों ने अपनी रचनाओं में अपने गुरु के रूप में उनका नाम नहीं लिया, लेकिन इन सन्तों से जुड़ी हुई तमाम लोकश्रुत गाथाओं में उन्हें रामानन्द से सम्बद्ध किया गया है। यदि वे दीक्षित शिष्य होते, गुरु के रूप में उनका स्मरण करते तब उन्हें रामानन्द का शिष्य कहा जाता, तो कोई बड़ी बात नहीं थी, लेकिन सन्तों के अन्तर्साक्ष्य के अभाव में जन साहित्य का साक्ष्य कबीर, रैदास प्रेम को यदि रामानन्द का शिष्य स्थापित कर देता है,.तो यह अन्दाज करना पड़ेगा कि स्वामी रामानन्द की ऊँचाई कितनी थी। साधारण गुरु का कोई महान् शिष्य हो सकता है, लेकिन कबीर और रैदास जैसे महान् सन्तों, कवियों और लोक उन्नायकों

को रामानन्द से भक्तमालों और प्राचीन ग्रन्थों जैसे साहित्य इतिहासों में जोड़ना , यह सिद्ध करता है कि रामानन्द का व्यक्तित्व इतना बड़ा था कि किसी भी महिमा मण्डित चरित्र को उनसे सम्बद्ध किया जा सकता था। उनसे कई सौ वर्षों बाद पैदा होने वाले तुलसीदास को भी रामानन्द से संबद्ध किया जाता रहा है। लेकिन आश्चर्य की बात है कि स्वामी रामानन्द का विशाल आनन्द मठ और श्रीमठ ऐतिहासिक रूप से प्रायः लुप्त हो गये। स्वामी रामानन्द का वह विशाल वन, जिसमें हजारों संन्यासी रहते थे, सैकड़ों सूफी, पचासों सन्त, फकीर, जंगम, जोगड़े, नाथ-पंथी रहा करते थे, वहाँ लोगों के घर हैं, मस्जिदें हैं, तरह-तरह के पड़ाव हैं, गलियाँ हैं, दुकानें हैं। पंच गंगा घाट पर श्रीमठ के रूप में बहुत जरा सी पुण्य-भूमि बची हुई है। अभी आठ-दस वर्ष पहले तक यह जगह इतनी नगण्य थी कि पुस्तकों में बार-बार उल्लिखित होने वाले रामानन्द के कर्मक्षेत्र श्रीमठ के स्वरूप को देखकर करुणा उत्पन्न होती थी, लज्जा आती थी। अब भी जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, उससे उस विराट् व्यक्तित्व की, जिसमें कबीर और रैदास भी समा जाते हैं, कल्पना भी नहीं की जा सकती। कबीर के नाम पर हजारों मठ हैं, लाखों साधु हैं। अरबों की सम्पत्ति है । कबीर को बाँटने के लिए ५ से लेकर १२८ तक छोटे-मोटे सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय बन चुके हैं। लेकिन इस कबीर के गुरु रामानन्द के मूल स्थान को देख कर यह पता ही नहीं चलता कि स्वामी रामानन्द का यह हस्र कैसे हुआ।

यह संयोग है कि इन दिनों श्रीमठ पर जिस तेजस्वी सन्त को पीठासीन किया गया है, वे युवक होते हुए भी रामानन्द की प्रतिमूर्ति जान पड़ते हैं। उनकी कल्पनाएं, उनका ज्ञान, उनकी वग्मिता और सबसे अच्छी उनकी उदारता और संयोजन चेतना ऐसी है कि यह विश्वास दिया जा सकता है कि स्वामी रामानन्द का व्यक्तित्व कैसा रहा होगा। स्वामी रामानन्द की पुस्तकों को देखकर प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता के पचड़े से अलग ऐसा नहीं कि लगता कि वे कोई विशिष्ट दार्शनिक स्रष्टा या बहुत बड़े ग्रन्थकार थे, वे भाष्यकार थे, लेकिन उनकी संयोजन क्षमता अद्भुत थी। वर्तमान आचार्य रामनरेशाचार्य १९५२ई० में जन्में, मूलतः बिहार निवासी हैं और कुंवर सिंह के इलाके के रहने वाले हैं। उनकी किशोरावस्था गांव में ही बीती है। लेकिन साधु मनोवृत्ति के कारण वे किशोरावस्था में दीक्षित हो गये। उन्होंने विधिवत् संस्कृत शिक्षा पायी। छः दर्शनों में उच्चतम उपाधियाँ अर्जित कीं और न्याय-शास्त्र के उद्भट विद्वान् के रूप में युवावस्था में ही प्रतिष्ठित हो गए। मुझे लगता है कि यह पाण्डित्य रामनरेशाचार्य का साधुकर्म मात्र है, उनके लिए सम्भवतः विद्वान् होना गौण बात है, क्योंकि विद्वान् तो विश्वविद्यालयों और साधना स्थलों में मिल ही जाते हैं। उन्होंने स्वामी रामानन्द की तरह संयोजन का संकल्प लिया है। भजन करने, भण्डारा खिलाने या साधुओं, गृहस्थों से पूजित होने के लिए वे श्रीमठ नहीं आये हैं। वे रामानन्द और वर्त्तमान काल के बीच एक सार्थक कड़ी के रूप में सक्रिय हैं। उन्होंने थोड़े ही दिनों में इतनी सूचनाएं संग्रहीत की हैं, जो बड़ी विस्मयकारी हैं। रामनरेशाचार्य जी का कहना है कि 'श्रीमठ सगुण-निर्गुण रामोपासकों का श्रद्धेय स्थान है और वैरागी सन्तों की मूल गादी है। इस मठ की इस देश में लाखों इकाइयाँ हैं। केवल बनारस में ही १०० से ज्यादा रामानन्दी मठ या आश्रम विद्यमान हैं। बिहार में प्रायः बीस हजार वैरागी आश्रम हैं, जो रामानन्द की परम्परा से जुड़े हुए हैं। यह सच है कि इस सारे वैरागी आश्रमों में उपास्य की एकता है। पंच संस्कारों में समानता है। सभी भगवान् राम को और राम-नाम को उपासना की वस्तु मानते हैं और मुद्रा, तिलक, नाम मंत्र और तुलसी की माला के द्वारा संस्कृत होते हैं। सिद्धान्त और सदाचार की दृष्टि से रामानन्द के अनुयायियों में एकता और एकरूपता है। कबीर पंथियों की तरह उनमें शाखाएं, उपशाखाएं नहीं हैं। सभी रामानन्दी वैरागियों में तीर्थ स्थलों के एक निश्चित समूह पर कृत श्रद्धा हैं। सामाजिक व्यावहारिक मान्यताओं में भी रामानन्दी वैरागी परस्पर अभिन्न हैं। व्यवस्था की दृष्टि से

रामानन्दी वैरागियों में आध्यात्मिक सम्बद्धता है। इस समय सारे आश्रमों के बीच व्यवस्था और प्रशासन सम्बन्धी नियंत्रण शिथिल हो चुका है। यद्यपि श्रीमठ की महिमा के प्रति सबके मन में आदर है, तथापि सबके ऊपर का श्रीमठ का आध्यात्मिक वर्चस्व रहते हुए भी व्यवस्था सम्बन्धी नियंत्रण नहीं है।

रामानन्दी वैरागियों का एक विशाल समाज है, पहले सभी वैरागी श्वेत वस्त्र धारण करते थे। घुटने तक अचला और बिना सिला हुआ वस्त्र उनके आच्छादन थे। क्रमशः अचला घुटने से नीचे आता चला गया और अब रामानन्दी वैरागी सिला हुआ वस्त्र भी पहनने लगे हैं। परिवर्तन के प्रक्रिया में यह अनुभव किया गया कि स्वामी रामानन्द गैरिक वस्त्रधारी थे। इसलिए अब वैरागियों में गौरिक वस्त्र का भी प्रचलन हो गया है। वैरागी त्रिदण्डी होते हैं और उनके तीनों दण्ड जीव और जगत् के प्रतीक होते हैं। स्वामी रामनरेशाचार्य ने बताया कि रामानन्द सम्प्रदाय में रामतापनी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र गीता और उपनिषदों का भाष्य ग्रन्थ "आनन्द-भाष्य' है। जो प्रमाणिक धर्मग्रन्थ माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त मंत्र-रामायण, अर्चा गुणगान, वैष्णवमताब्जभास्कर, रामार्चन पद्धति, विशिष्टाद्वैत-दर्शन, जानकी भाष्य और बाल्मीकि रामायण को आर्ष ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। स्वामी रामनरेशाचार्य की ग्रन्थसूची में हिन्दी ग्रन्थों के नाम नहीं आते, लेकिन कभी बातचीत में उन्होंने बताया था कि रामानन्दी वैरागियों में तुलसीकृत रामचरित मानस, बाल्मीकि रामायण से अधिक लोक प्रचलित और पाठन-वाचन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। ऐसा लगता है कि जब से अन्त्यज जातियों ने अपने को बाल्मीकि से जोड़ना शुरु किया रामानन्दी बैरागियों में बाल्मीकि की महत्ता में कुछ कमी आयी है। वैसे भी हमारा राष्ट्रीय तंत्र तुलसी की जयंती तो मनाता है, लेकिन आदि कवि बाल्मीकि की कोई जयन्ती नहीं मनायी जाती। वैरागियों में जाति-पांति को नहीं पूछी जाती, लेकिन गुप्त रूप से वैरागियों में ब्राह्मण बड़ा है। वर्तमान आचार्य इस स्थिति को निरापद और गतिशील नहीं मानते, वे बाल्मीकि का महत्त्व स्वीकार करते हैं और कबीर के साथ संत रैदास के महत्त्व को वैरागी सम्प्रदाय में स्थापित करने के लिए कृतसंकल्प जान पड़ते हैं। उन्होंने तय कर लिया है कि वे रामानन्दी वैरागियों के बीच एकसूत्रता और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करेंगे और संन्यासियों से वैरागियों की जो दूरी है, उसे समझने-समझाने का प्रयत्न करेंगे। त्रिदण्डधारी, शैव संन्यासी उर्ध्वपुण्ड्र नहीं धारण करते, श्मशान की विभूति रचते हैं लेकिन ब्राह्मण के सिवाय किसी को भण्डारे में प्रवेश करने नहीं देते। संन्यासी नियमतः अग्नि का स्पर्श नहीं करते, इसलिए साधारणतः मधुकरी जीवी होते हैं। वैरागी, परिश्रमी होते हैं, सामान्यतः शिक्षाजीवी नहीं होते। इसलिए रामनरेशाचार्य जी चाहते हैं कि रामानन्दी वैरागी समाज लौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए रामानन्द जी द्वारा निर्दिष्ट विचार सूत्रों का उदारता के साथ प्रचार करें अर्थात् हरिजन, आदिवासी, राम-नाम की महत्ता में विश्वास करने वाले मुसलमान को भी धर्मबन्धु मानें। जैसा स्वामी रामानन्द जी ने किया वे चाहते हैं कि संस्कृत शिक्षा का विकास हो जिससे प्राचीन विद्या और साधु ज्ञान सुरक्षित रहे। वे स्वामी रामानन्द के सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन चाहते हैं। स्वामी रामानन्द ने सिखाया था कि कर्म के प्रति उदासीनता नहीं होनी चाहिए इसे वर्तमान आचार्य भी चाहते हैं कि रामानन्द के अनुयायी भिक्षाजीवी न बनें समाज को परिवर्तित करने के लिए उदार अवश्य बनें।

स्त्रियों के सम्बन्ध में वर्तमान पीठासीन आचार्य जो कुछ कहते हैं, वह वैरागियों का पारम्परिक सोच जान पड़ता है। वे मानते हैं कि समाज के सभी लोगों को समान-स्तर नहीं दिलाया जा सकता। सबकी योग्यताएं भिन्न हैं। स्त्रियों की समानता को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। वे कहते हैं कि स्त्रियों को यदि समानता का दर्जा प्राप्त हो सके और उससे समाज की सार्वभौम प्रतिष्ठा बढ़े, तो मैं इस समानता का पक्षधर हूँ, लेकिन उन मूल्यों पर भी विचार करना चाहिए, जिसके कारण महिलाओं को समानता का दर्जा प्राप्त नहीं हुआ,

उन मूल्यों का विश्लेषण जरूरी है। समाज ने यथावसर महिलाओं को समानता ही नहीं, सर्वोच्चता भी दी है। मन्दिरों में राम के साथ सीता, श्रीकृष्ण के साथ राधा समान पूज्यता के साथ स्थापित हैं। इसी तरह दुर्गा, लक्ष्मी की स्वतंत्र पूज्यता इस धर्म में स्वीकृत है। स्वामी रामानन्द ने ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में स्त्रियों को समानता देने का द्वार मुक्त कर रखा था। उनके प्रधान शिष्यों में पद्मावती एवं सुरसरी इसी तथ्य की उद्भाषिका है।

स्वामी रामनरेशाचार्य में अपार उत्साह है। रामानन्दी वैरागी उत्साहों के साथ आधुनिक जीवन की तेजस्विता की पहचान भी उनमें है लेकिन साधुओं और समज के बीच अभी उनकी परीक्षा के लिए मंच बन रहा है। देखना होगा कि वे परम्पराओं और रूढ़ियों के किस सीमा तक स्वामी रामानन्द के मूल आदर्शों से जोड़ पाते हैं। यदि वे जोड़ पाए तो तमाम तरह की श्रुति-गाथाओं में बिना सम्प्रदाय में दीक्षित हुए अनेक महत्त्वपूर्ण लोग उनके नाम और काम से जोड़ दिए जाएंगे या जुड़ जाएंगे।

धर्म के सम्बन्ध में स्वामी रामनरेशाचार्य का दृष्टिकोण पारम्परिक और शास्त्रीय जान पड़ता है। क्योंकि अपनी बातचीत में वे मोक्ष, शोक ज्वर, दुःख की पहचान शान्ति इत्यादि का बार-बार उल्लेख करते हैं। वे इस बात से उदासीन जान पड़ते हैं कि धर्म का एक आक्रामक पक्ष भी है और धर्म एक स्तर पर आदमी या समाज के घटकों को अलग और अकेला भी करता है। वे इन विचारकों से तनिक भी प्रभावित और विचलित नहीं जान पड़ते, जो धर्म को नशा कहते हैं। युवक होते हुए भी रामनरेशाचार्य में एक प्रौढ़ साधु जैसी गम्भीरता है और अविषय को टाल जाने का साधु कौशल है। वे संवाद और वहस में न जाकर आस्था और विश्वास की डोर को पकड़ना-पकड़ाना चाहते हैं। वे मानते हैं कि धर्माचरण से चित्त को एकाग्रता की प्राप्ति होती है।

श्री रामनरेशाचार्य सम्यवाद और समाजवाद के सम्बन्ध में आधुनिक विचारकों से असहमत जान पड़ते हैं। वे मानते हैं कि बाहरी मूल्यों के आधार पर साम्यवाद की स्थापना नहीं हो सकती। धर्म और अध्यात्म के सूत्र में पिरोकर ही समाज को वास्तविक रूप से साम्यवादी धरातल पर खड़ा किया जा सकता है, ऐसा वर्त्तमान पीठासीन आचार्य का स्पष्ट मत है। वे इतिहास की ओर जाते हैं और कहते हैं कि धर्म की ऊँचाई और नीचाई के बावजूद पुराने जमाने में परस्पर प्रीति की धारा बहा करती थी। सब लोग परम शान्ति का अनुभव करते थे और श्रीराम के चरणों में परम प्रेम के कारण विषमताएं विघटन के बदले संगठन, अशान्ति के बदले शान्ति, संघर्ष के बदले सहयोग, शोषण के बदले पोषण प्रदान करती थीं। उन्होंने रामचरित मानस का उदाहरण दिया कि 'सब नर करहिं परस्पर प्रीति, निज निज कर्म निरत श्रुति नीति।'

देश के अछूतों और दलितों के विषय में स्वामी रामनरेशाचार्य का दृष्टिकोण भावात्मक है। वे कहते हैं कि देश के अछूत और दलित इन दोनों के प्रति उन सभी व्यवहारों का आदर करता हूँ, जिन्हें स्वामी रामानन्द ने अपनाया था। अछूतों के विषय में रामानन्दी वैरागियों ने अपने मूल आचार्य स्वामी रामानन्द की भावनाओं को विकृत कर दिया है। वे मानते हैं कि दलितों के सम्बन्ध में वैरागी सम्प्रदाय का वर्तमान दृष्टिकोण बदल जाना चाहिए, वे इसके लिए कृतसंकल्प हैं। लेकिन इसके साथ ही वे यह भी कहते हैं कि व्यावहारिक क्रम में अछूत भावना की जड़ें पातालस्पर्शी हैं, शाकाहारी ब्राह्मण मांस-मदिरा भक्षी सहोदर भाई से ही घृणा करता है, उसे अछूत समझने लगता है, आर्थिक रूप से सम्पन्न होने पर तथाकथित छोटी जातियों के लोग भी विद्वानों को भी अछूत समझने लगते हैं। अछूत भी दूसरी तरह के अछूतों को अपने से छोटा और अपनी तुलना में अछूत समझते हैं। उनका तो यहाँ तक कहना है कि हर आदमी अपनी तुलना में आर्थिक रूप से विपन्न, रूप-रंग में

साधारण व्यक्ति के प्रति अछूत भावना रखता है। दर असल हमें उस घृणा से मुक्त होना है, जो परम्पराओं से भारतीय चरित्र का लक्षण बन चुकी है। अन्ततः रामनरेशाचार्य एक सन्त की तरह यह भी कहते हैं कि ज्ञान और भक्ति की दिशा में उच्चता प्राप्त करके ही दलितों के प्रति हीन भावना को मिटाया जा सकता है, संविधान और कानून की सहायता से प्रजातीय चरित्र में निहित घृणा नहीं समाप्त हो सकती। उनका कहना है कि पुस्तक लिखने, विचार-प्रचार करने या आन्दोलन के स्तर पर चरित्रगत घृणा को समाप्त करने का आवाहन कितना भी हुआ, वह बहुतकम है। लोग दलितों के उद्धार के बजाय अपने महत्त्व की स्थापना में ही लग जाते हैं। वैचारिक रूप से प्राचीन काल में भी कुत्ते से लेकर चाण्डाल के प्रति समदर्शी होने का सिद्धान्त बताया गया था। स्वामी रामानन्द जी ने रामभक्ति रूपी गंगाजल से रविदास, कबीर और सेना नाई इत्यादि का अछूतपना धोकर परम मंगलमय बनाया था। रामभक्ति रूप गंगाजल की आज भी अछूतोद्धार प्रसंग में एवं दलितों के दलन निवारण प्रसंग में परम उपयोगिता सिद्ध हो सकती है, जिससे वर्तमान दलितोद्धारकामी सर्वथा दूर हैं।

★★★

वैष्णव अनी अखाड़े

— वेद प्रकाश गर्ग

कुंभ-पर्व के चारों क्षेत्रों (हरिद्वार, प्रयाग, नासिक, उज्जैन) में योगावसर पर कुंभ-योग शाही स्नान के रूप में अनेक शताब्दियों से चला आ रहा है, यह विश्वविदित है। किन्तु शाही स्नान में भाग लेने वाले इन अनी अखाड़ों के सम्बन्ध में तथ्य रूप विषय का ज्ञान अधिकांश को नहीं है। इन अनी अखाड़ों का असाधारण गौरव देखकर दर्शकों के हृदय में इनको जानने की उत्सुकता का जागृत सामग्री के अभाव में उन्हें निराश ही होना पड़ता है। चारों कुंभ क्षेत्रों के शाही पर्व स्नान के अवसर पर प्रधान रूप से "वैष्णव दल" तथा "शंभुदल" दोनों ही दल शाही महत्त्व रखते हैं। इस लेख में केवल वैष्णव दल के अनी अखाड़ों के लौकिक इतिहास पर ही कुछ प्रकाश डालने का प्रयास है।

अखाड़ों की रचना और संगठन

१८वीं शताब्दी में वैष्णव संप्रदायों को अनेक संकटों का सामना करना पड़ता था। यवन आक्रमणकारियों और विधर्मी शासकों से तो उनको अपार कष्ट था ही, वैष्णवेतर सम्प्रदायों की असहिष्णुता भी उनको त्रस्त कर रही थी। सुना जाता है कि वि० सं० १७२० के लगभग किसी-किसी कुंभ के अवसर पर नंगे होकर तीर्थों में स्नान करने वाले शैव तथा शाक्त सम्प्रदायियों को वैष्णवों ने रोका — "तुम ऐसा शास्त्र विरुद्ध आचरण मत करो। तीर्थ जलाशयों में नग्न होकर स्नान करना निषिद्ध है" इस पर वे चिढ़ बैठे। इस प्रकार का शास्त्रविरुद्ध कृत्य करना उन्होंने अपना धर्म समझ लिया और वैष्णवों पर अत्याचार करने लगे। कहा जाता है कि लक्ष्मी गिरि और भैरव गिरि (शांकर मतावलंबी) ने तो प्रतिदिन कम के कम पांच वैष्णवों का वध करके ही भोजन करने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

इस समय वैष्णवों के जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया था। मुसलमानों एवं उपद्रवी गुसाइयों से वैष्णवों की रक्षा के लिए समस्त वैष्णव संप्रदायों ने पारस्परिक मतभेद और साम्प्रदायिक संकीर्णता के विचारों को भुलाकर सामूहिक संगठन किया। उक्त संगठन के फलस्वरूप वैष्णवों की तीन अनी और उनके ५२ द्वारे निर्धारित किये गये। उन अनियों का नेतृत्व रामानन्द सम्प्रदायानुयायी वीर प्रतापी और उत्साह सम्पन्न श्री बालानन्द जी ने किया फिर इन तीन अनियों के सात अखाड़े बनाये गये। आगे चलकर इन सातों अखाड़ों के १८ प्रभेद हो गये। अखाड़ों का पूर्ण संगठन निम्न प्रकार है —

इन अखाड़ों की ये तीन अनियाँ प्रसिद्ध हैं। १- निर्मोही, २- दिगम्बर, ३- निर्वाणी। पहली अनी में निर्मोही महानिर्माणी और संतोषी अखाड़े सम्मिलित रहते हैं। निर्मोही अखाड़े में १- रामानन्दी निर्मोही, २- विष्णु स्वामी

निर्मोंही, ३- मालाधारी निर्मोंही मिले रहते हैं । महानिर्वाणी अखाड़े में १- रामानन्दी महानिर्वाणी साधुओं के साथ ही, २- हरिव्यासी महानिर्वाणी भी मिले रहते हैं । संतोषी अखाड़े में १- रामानन्दी संतोषी के साथ, २- हरिव्यासी संतोषी मिले रहते हैं । इस प्रकार निर्मोंही अनी में ९ अखाड़े हैं । इनमें श्रेष्ठता की दृष्टि से निर्मोंही अखाड़ा प्रधान है ।

दूसरी अनी में दो अखाड़े हैं । १- रामजी दिगम्बर और २-श्याम जी दिगम्बर ।

तीसरी अनी में निर्वाणी खाकी तथा निरावलंबी ये तीन अखाड़े में १-रामानन्दी निर्वाणी, २- हरिव्यासी निर्वाणी और ३- बलभद्री निर्वाणी सम्मिलित रहते हैं । खाकी अखाड़े में १- रामानन्दी खाकी के साथ ही, २- हरिव्यासी अखाड़ा भी मिला रहता है । निरावलम्बी अखाड़े में १- रामानन्दी निरावलम्बी के साथ, २- टाटंवरी अखाड़ा मिला रहता है । इस प्रकार निर्वाणी अनी में सात अखाड़े हैं । इन अखाड़ों में श्रेष्ठता की दृष्टि से सर्वप्रमुख निर्वाणी अखाड़ा हैं ।

इस प्रकार सभी वैष्णव सम्प्रदायों के अखाड़े के मिल जाने से कुल "नव कुलों" का निर्माण हो गया है । ऊखल अखाड़ा इन सब का सम्मिलित पंचायती अखाड़ा है ।

उपासना एवं सम्प्रदाय सम्बन्ध

यद्यपि वैष्णवों की तीन अनियों के सभी अखाड़ों में श्री रामकृष्ण की ही उपासना है इसी से पत्र व्यवहार में "श्री कृष्णाभ्यां नमः" शीर्षक रहता है । तथापि कुछ अखाड़ों में रामोपासकों की अधिकता है और कई एक अखाड़ों में कृष्णोपासकों की अधिकता है । इसलिए इन वर्तमान अठारह अखाड़ों में ७ अखाड़ों में है । निर्मोंही अनी में रामानन्दी निर्मोंही, रामानन्दी महानिर्वाणी और रामानन्दी संतोषी नामक अखाड़े श्री रामोपासना प्रधान है तथा विष्णुस्वामी निर्मोंही मालाधारी निर्मोंही राधावल्लभी निर्मोंही, आड़िया निर्मोंही, हरिव्यासी महानिर्वाणी और हरिव्यासी संतोषी नामक अखाड़े श्री कृष्णोपासना प्रधान है । ऐसे ही दिगम्बर अनी में एक अखाड़ा राम जी का दूसरा श्याम जी का प्रसिद्ध है । जो नाम से ही प्रकट है । निर्वाणी अनी में भी रामानन्दी निर्वाणी, रामानन्दी खाकी और रामानन्दी निरावलम्बी नामक अखाड़े रामजी के यथा हरिव्यासी निर्वाणी बलभद्री निर्वाणी हरिव्यासी खाकी और टाटंवरी नामक अखाड़े राम जी के हैं ।

श्री राम और श्रीकृष्ण इन द्वयोपासना सम्बन्ध के कारण ही भागवत धर्म सिद्धान्त प्रधान "श्री, ब्रह्म, रुद्र, सनक ये चार वैष्णव सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं । इन संप्रदायों के अतिरिक्त कुछ और स्वतंत्र वैष्णव सम्प्रदाय भी हैं । किन्तु उनको भी इन वैष्णव सम्प्रदायों में ही अन्तर्भुक्त मान लिया जाता है । आचार्य नाम भेद से भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में मंत्र, इष्ट, उपास्य क्षेत्र, शाखा, मुक्ति तथा धर्मादि भेद हैं । जैसे –

श्री सम्प्रदाय

श्री सम्प्रदाय के नाम से दो सम्प्रदाय अभिप्रेत हैं । १- रामानुज सम्प्रदाय और २- रामानन्द सम्प्रदाय । इन दोनों का दार्शनिक सिद्धान्त एक ही है । वह है "विशिष्टाद्वैत" किन्तु उपासना स्वरूप में कुछ भेद है । रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य रामानुज हैं । इन सम्प्रदाय में लक्ष्मी नारायण स्वरूप भगवान् की उपासना और अष्टाक्षर नारायण मंत्र श्रीरंगधामादि प्रधान है । वैष्णवों के नाम, माला, मंत्र, तिलक और मुद्रा इन पांच संस्कारों में से

तुलसी की कंठी (माला) सेवा, भाव, भजन के अतिरिक्त हर समय कंठ में नहीं रखते हैं। इन अनी अखाड़ों में इस सम्प्रदाय का कोई अखाड़ा नहीं है। भगवत् उत्सव समयादि के अवसर पर अनी अखाड़ों के साथ इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध अवश्य रहता है।

रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्य 'श्री रामानन्द" हैं। इस सम्प्रदाय में सीता राम स्वरूप भगवान् की उपासना, षडाक्षर राममंत्र, अयोध्याधाम, अंतशाखा, राघवानन्द महाप्रसाद, श्रवणद्वार और सायुज्य मुक्ति है। पंच संस्कार वैष्णव सदा धारण किये रहते हैं तीनों अनी अखाड़ों में इस सम्प्रदाय के वैष्णव भी हैं और रामानन्दी नाम से स्वतंत्र अखाड़े भी हैं।

ब्रह्म सम्प्रदाय :– ब्रह्म सम्प्रदाय के नाम से तीन सम्प्रदाय अभिप्रेत हैं। १- माध्व सम्प्रदाय, २- हित संप्रदाय और गौड़िया सम्प्रदाय।[१]

मध्व सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री मध्व होने से यह "मध्व सम्प्रदाय" के नाम से प्रसिद्ध है। दार्शनिक सिद्धान्त द्वैत है। श्री कृष्ण भगवान् की उपासना और विष्णु हंस मंत्र है। सावित्री इष्ट बाद्रिकाश्रम धाम, अंक क्षेत्र सालोक्य मुक्ति और मुख द्वार है। इस सम्प्रदाय का तीनों अनियां अखाड़ों में कोई अखाड़ा नहीं है।

हित सम्प्रदाय का ही नाम राधावल्लभ सम्प्रदाय है। इसके प्रवर्तकाचार्य श्री हित हरिवंश जी हैं। इनका दार्शनिक सिद्धान्त "सिद्धाद्वैत" है। नित्य युगल किशोर स्वरूप राधावल्लभ भगवान् की उपासना और द्वादशाक्षर युगल मंत्र हैं। राधा इष्ट है। वृंदावन धाम यमुना क्षेत्र, महाप्रसाद निष्ठा, चक्षुद्वार और युगल कृपा द्वारा सामीप्य मुक्ति है। तीनों अनी अखाड़ों में इस सम्प्रदाय के वैष्णव भी हैं और निर्मोही अनी के अन्तर्गत स्वतंत्र "राधावल्लभ निर्मोही" अखाड़ा भी है।

चैतन्य सम्प्रदाय का नाम गौड़िया सम्प्रदाय भी है। उसके आचार्य श्री चैतन्यमहाप्रभु हैं। दार्शनिक मत अचिन्त्य भेदाभेद है। गोपेन्द्रनन्दन स्वरूप भगवान् की उपासना, व्रजवृन्दावन धाम, नित्यानन्द शाखा, सायुज्य मुक्ति प्रधान तीनों अनी अखाड़ों में इस सम्प्रदाय के वैष्णव भी हैं और निर्वाणी अनी में बलभद्री निर्वाणी के नाम से अखाड़ा भी है।

"दादू" सम्प्रदाय का नाम भी ब्रह्म सम्प्रदाय में है। इसके प्रवर्त्तकाचार्य दादू दयाल जी हैं। दादू जी ज्ञानी, विरक्त और भक्ति रस में रत थे। यह उनकी वाणी से भी विदित है। ये तिलक छाप के आग्रही नहीं इनका अन्तर्मुखी योग से प्यारे प्रियतम में लय रहना ही साधन है और निरंजन निराकार रूप ब्रह्म की सत्ता सर्वत्र अनुभव करना लक्ष्य है। स्वतंत्र दूधाधारी निर्मोही अखाड़ा है। इनका प्रधान केन्द्र नरेणा (राजस्थान) में है। यह दूधाधारी निर्मोही अखाड़ा निर्मोही अनी में सम्मिलित होकर कुंभ-पर्व पर शाही स्नान करता है। इसी से निर्मोही अनी में ९ की जगह साढ़े नौ अखाड़े भी माने जाते हैं।

रुद्र सम्प्रदाय :– रुद्र सम्प्रदाय के नाम से दो सम्प्रदाय इष्ट हैं। १- विष्णु स्वामी सम्प्रदाय और वल्लभ सम्प्रदाय। इन दोनों सम्प्रदायों का दार्शनिक मत "शुद्धाद्वैत" है। विष्णु स्वामी सम्प्रदाय में राधाकृष्ण स्वरूप

---

[१] गौड़िया सम्प्रदायी अपने को मध्व-सम्प्रदाय के अन्तर्गत मानते हैं। पृथक नहीं। तथा इसीलिए सम्प्रदाय को वे मध्व गौड़िया सम्प्रदाय कहते हैं– संपादक

भगवान् की उपासना, श्री तुलसी मंत्र, लक्ष्मी इष्ट, पुरुषोत्तम धाम, त्रिपुरारि शाखा, नेत्र द्वारा सायुज्य मुक्ति प्रधान है। तीनों अनी अखाड़ों में इस सम्प्रदाय के वैष्णव भी हैं और निर्मोही अनी में स्वतंत्र "विष्णु स्वामी निर्मोही" अखाड़ा भी है।

वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तकाचार्य वल्लभाचार्य हैं। इस सम्प्रदाय में बालस्वरूप नंदनंदन भगवान् की वात्सल्यभावमयी उपासना है और श्री कृष्ण शरण मन्त्र प्रधान है। संस्कार में तिलक कंठी, मंत्र ये तीन हैं। तीनों अनी अखाड़ों में इस सम्प्रदाय का कोई अखाड़ा नहीं है।

सनक सम्प्रदाय – सनक सम्प्रदाय का नाम निम्बार्क सम्प्रदाय भी हैं। इस सम्प्रदाय के आचार्य निम्बार्काचार्य हैं। दार्शनिक मत में द्वैताद्वैत है। श्री गोपाल स्वरूप भगवान् की उपासना और अष्टादशाक्षर गोपाल मंत्र है। रुक्मिणी इष्ट, द्वारावती धाम, हंस शाखा, गोमती क्षेत्र, श्री भट्ट महाप्रसद, नासिका द्वार सारूप्य मुक्ति प्रधान है। इस सम्प्रदाय में "हरिव्यास देव जी" प्रधान रूप से प्रचारक होने के कारण इसका दूसरा नाम "हरिव्यासी" सम्प्रदाय भी है। इस सम्प्रदाय के हरिव्यासी वैष्णव तीनों अनी अखाड़ों में भी है और हरिव्यासी के नाम से निर्मोही तथा निर्वाणी अनी में स्वतंत्र अखाड़े भी हैं। एक और अखाड़ा झाड़िया निर्मोही नाम से निर्मोही के अन्तर्गत है। अब यह अखाड़ा "रामानन्दी झाड़िया" बन रहा है।

इस प्रकार इन तीनों अनी अखाड़ों में सभी वैष्णव सम्प्रदायों के अनुयायी न्युनाधिक रूप में सम्मिलित हैं। उसमें न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। सभी वीर वैष्णव बांधव हैं। सभी महावीर ध्वजधारी हैं और सभी अपने-अपने अखाड़े की रेख-टेक पालन करने में कुशल हैं। अतः इन अखाड़ों के वैष्णवों में साम्प्रदायिक संकीर्णता को स्थान नहीं दिया गया। अपितु सम्प्रदाय को गौण रखकर अखाड़ों की रेख-टेक (मर्यादा पालन) को ही मुख्य माना गया। सभी अखाड़ों में उदारता का भाव है। वैष्णवों में परस्पर प्रेम है। सभी सम्प्रदायों का समादर है। सभी अपने-अपने अखाड़ों की जय के साथ चारों सम्प्रदाय, बावन द्वारे, अनन्त कोटि वैष्णव, अपने-अपने गुरु गोविन्द, हनुमान, गरुड़देव, रामकृष्णदेव तथा महाप्रसाद की समान रूप से जय बोलते हैं।

उक्त सम्प्रदाय में से किसी भी सम्प्रदाय का वैष्णव अनुयायी हो वह किसी भी अखाड़े का "रकमी" (रेख, टेक, पालने वाला) बन सकता है। जो अखाड़े की रकम उठाता है प्रतिज्ञा पालन करता है। उसके लिए कहीं रोक-टोक नहीं रहती। इसी प्रकार किसी भी द्वारे वाला व्यक्ति किसी भी अखाड़े का नागा बन सकता है।

अखाड़े में साधुओं की श्रेणियाँ – अपने गुरु-स्थान को छोड़कर चतुःसम्प्रदाय की सेवा करने की भावना वाला साधु इन अखाड़ों में सम्मिलित होकर "अखाड़ा मल्ल" के नाम से पुकारा जाता है। वह रकमी निम्नलिखित श्रेणियों को क्रमशः मर्यादानुसार प्राप्त करता है। जिस नागा की सेवा में वह साधु नियोजित होता है उसका वह "सादिक" कहलाता है उन साधुओं की ये श्रेणियां हैं।

१- यात्री :– ये साधु अपने से बड़ी श्रेणी वालों के लिए दातुअन आदि का प्रबन्ध करते हैं तथा इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं।

२- छोरा :– अपने से बड़े वंदगीदार से लेकर अतीत तक की सेवा के लिए प्रभावी लाना, जल लाना, स्नान कराना, पत्ता दौना लाना, झाड़ू देना, चौका लगाना और अतिरिक्त समय में अपने पठन-पाठन में तत्पर रहना इनका काम है। इसका व्यवहारी नाम "रकमी" होता है।

३- वंदगीदार :– कोठार की वस्तु संभालना, भोजन तैयार करना, मन्दिर में थाल पहुचाना, हनुमान जी का पट लेकर चलना, घड़ी उठाना तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा प्राप्त करना ही इनका काम है।

४- हुरदंगा :– भगवत् सेवा पूजा आरती करना, भोग लगाना, पंगत (पंक्ति) करना, निशान उठाना, पंच की गोलक संभालना तथा शास्त्र-शस्त्र विद्या में निपुणता प्राप्त करना इनका काम है।

५- मुदाठिया :– भगवत भागवत सेवा पूजा करना, हिसाब संभालना, टहलव, आदि से टहल करना सबकी देख-रेख रखना एवं शास्त्र-शस्त्र विद्या में विशेषता प्राप्त करना ही इनका प्रमुख कर्त्तव्य है।

६- नागा :– सेवकों को चेतावनी देना भगवत भातवत की पूजा का प्रबन्ध करना, सम्प्रदाय के मठ मन्दिरों एवं अनुयायियों की रक्षा करना, जमात बनाकर देश में भ्रमण करना, वैष्णव धर्म का प्रचार करना, नृसिंहा बाजा बजाना, कुंभ का प्रबन्ध करना आदि इनके प्रमुख कर्त्तव्य हैं।

७- अतीत :– सम्प्रदाय की प्रमुख समस्याओं पर विचार करना, उनका हल प्रस्तुत करना, भगवत भागवत भजन भाव निष्ठा तथा नागादि के प्रति हितप्रद आदेश देते रहना आदि इन नागा अतीतों का काम है। सिद्ध नागाओं को ही नागा अतीत के नाम से अभिहित किया गया है।

उपर्युक्त श्रेणियों के अतिरिक्त दो श्रेणियां और मानी जाती हैं।

१- सदर नागा :– पंच मिलकर सदर नागा का चुनाव करते हैं। अखाड़ों की पंच की ओर से चुने हुए सदर नागा को इनाम (कोई विशेष वस्तु) कंठी, कटोरी और कोतवाल मिलता है। तत्पश्चात् वह जमात बांधकर देश में १२ वर्ष तक विचरण करता है और प्राप्त आय से अखाड़े का नक्शा (वस्तु) बनाना भगवद् भक्तिवर्धक सुन्दर उपदेश देकर सेवक वैष्णव वर्ग बढ़ाना। उनके द्वारा परोपकारी कार्य करना आदि इसके प्रधान कर्त्तव्य हैं। इनके अतिरिक्त अन्य श्रेणी के साधकों को शस्त्र-शास्त्र वैष्णव रहनी रीति से धर्म-कर्म सम्बन्धी शिक्षा देना दोनों समय अभ्यास कराना प्रत्येक कार्य में निरालस्य तत्पर रहना तथा अन्य सभी को उद्यत रखना इसके कार्य हैं।

२- महा अतीत :– पंच पंचायत तथा राज दरबार का जो कुछ भी योग्य कार्य होता है उन सब कार्यों के लिए नियत रखना है। वैसे महा अतीत का मुख्य कार्य भगवद् भजन करना ही है।

एक-एक श्रेणी की तीन-तीन वर्ष पर्यन्त अवधि रहती है। जिसमें सुन्दर नागा की अवधि १२ वर्ष तक रहती है। अतीत की अवधि देहावसान तक मानी जाती है। सदर नागा का निर्वाचन अखाड़े के पंच द्वारा किया जाता है। वह स्वतंत्र जमात लेकर देशाटन करता है। उक्त काल में जिन स्थानों में जमात जाया करती है उस प्रकार समप्रदायों की उन्नति और उनके प्रभाव क्षेत्र का विस्तार होता रहता था।

अधिकार :– ५२ महान्तों के ऊपर एक सदर और ५२ नागाओं के ऊपर एक अतीत का अधिकार होता है।

साधुओं के कर्त्तव्य :– अखाड़ों के साधुओं का हिन्दू धर्म-रक्षा, हिन्दुओं के मन्दिर की रक्षा करना, वैष्णव धर्म के विद्रोहियों का दमन करना, कुंभ के अवसर पर वैष्णव सम्प्रदाय की मर्यादा की रक्षा करना,

अखाड़ों के नियमों का पालन करना, परम्परा की रक्षा करना, कार्यकारिणी की आज्ञा का अनुगमन करना आदि कर्त्तव्य है। सभी रकमियों का अपने निश्चित कर्त्तव्य का पालन करते हुए शास्त्र तथा शस्त्र विद्या में निपुणता प्राप्त करना प्रमुख कर्त्तव्य है। इसी कारण इन साधुओं का अधिकांश समय सैनिक शिक्षा प्राप्त करने में व्यतीत होता है।

विशिष्ट शब्दावली :– रकम-एक प्रकार की प्रतिज्ञा है। इसके नियत दिन के शुभ अवसर पर दूध पाक, पाक, मालपुआं, कच्ची पक्की विशेष सामग्री भगवान् को भोग लगाया जाता है। तत्पश्चात् रकमी रकम उठाता है। यह अखाड़े की प्रधान वस्तु मानी जाती है। वह सिखलाई जाती है। पूछी जाती है।

सेली :– नागाओं की ये चार सेली मानी जाती है। १- सागरिया, २- उज्जैनिया, ३- वसंतिया और ४ हरिद्वारिया। इनके नाम रंग दिशादि अंतरंग भेद पृथक-पृथक हैं।

***

स्वामी रामानन्द जी पर लोकमत

— डॉ० अयोध्या प्रसाद श्रीवास्तव

१- (उन्होंने) श्री "रामानन्द दिग्विजय" और "वैष्णवमताब्जभास्कर" से दो श्लोक अपनी पुस्तक में उद्धृत किये हैं और इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि इस मत को शुक्ल जी ने इन्हीं दो पुस्तकों के आधार पर स्थापित किया होगा। मुझे ये दो पुस्तकें देखने को नहीं मिलीं, पर कुछ पण्डितों का दावा है कि रामानन्दी और चाहे जिस दृष्टि से रामानुज के मतावलम्बी क्यों न रहें हों किन्तु तत्त्व दृष्टि से वे उनके मतावलम्बी ही नहीं थे। इसमें कोई संकेत नहीं कि सारी परम्परायें रामानन्द का रामानुज से सम्बन्ध बताती हैं। पर साथ ही कुछ ऐसी दलीलें भी उपस्थित की गई हैं, जिससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि दोनों आचार्यों का सम्बन्ध दूर का ही था। कहा गया है कि रामानन्द से प्रवर्तित सम्प्रदाय में राम और सीता को जिस प्रकार एकमात्र परमाराध्य माना जाता है उस प्रकार रामानुज कं द्वारा प्रवर्तित श्री वैष्णव सम्प्रदाय में नहीं। श्री वैष्णव लोग सभी अवतारों की उपासना करते हैं, यह भी रामानुज सम्प्रदाय के मत से भिन्न हैं। उनका तिलक भी यद्यपि रामानुजी मत के तिलक से मिलता जुलता है फिर भी हू-ब-हू वही नहीं है, थोड़ा भिन्न है। फिर और भी एक विचारणीय बात है। रामानन्दी सम्प्रदाय का नाम हू-ब-हू वही नहीं है जो रामानुजीय सम्प्रदाय का। इस प्रकार नीचे लिखी तालिका से स्पष्ट हो जायेगा कि दोनों सम्प्रदायों में सभी महत्त्वपूर्ण बातों में भेद है।

	रामानुजीय	रामानन्दीय
सम्प्रदाय	श्री वैष्णव सम्प्रदाय	श्री सम्प्रदाय
मन्त्र	ॐ नमो नारायणाय	ॐ रामाय नमः
भाष्य	श्री भाष्य	आनन्दभाष्य

(कबीर पृ० १०७, लेखक - हजारी प्रसाद द्विवेदी)

२- ऐसी हालत में यह प्रश्न बहुत कुछ गौण हो जाता है कि कबीर ने जो कुछ रामानन्द से चेता था वह रामानन्द के चेते हुये ज्ञान का कौन सा रूप है ? रामानन्द के प्रधान उपदेश अनन्य भक्ति को कबीर ने शिरसा स्वीकार कर लिया था। बाकी तत्त्वज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों, रुचि और शिक्षा के अनुसार एकदम नवीन रूप दे दिया था। अब तक हम उनके संस्कारों की चर्चा करते आये हैं जिनका प्रभाव उनके पदों और साखियों में है और खूब सम्भव है कि जिसका ज्ञान उन्हें रामानन्द जी के सत्संग से प्राप्त हुआ था।

यह स्मरण रखना चाहिये जब हम शंकर, रामानुज और रामानन्द के वेदान्त की चर्चा करते हैं तो हमारा मतलब एक पूरे तत्त्ववाद से होता है। किन्तु कबीर की वाणियाँ वह चीज नहीं हैं।

(कबीर-पृष्ठ १०८, लेखक - हजारी प्रसाद द्विवेदी)

३- पाठकों ने अब तक जान लिया होगा कि कबीर तात्त्विक दृष्टि से **अद्वैतवादी** नहीं थे और उनके निर्गुण राम में और वेदान्तियों के पारिभाषिक निर्गुण ब्रह्म में मौलिक भेद है।

(कबीर-पृष्ठ १५२, हजारी प्रसाद द्विवेदी)

४- घायल, जो राम प्रेम का दिवाना था, जो स्वयं भगवद् विरह की चोट खा चुका था। इस प्रकार के कराल द्वन्द्व, संशय और दुविधा से छुड़ा सकने वाले युगगुरु रामानन्द ही थे। इस विषय में उन लोनों को भले ही संदेह हो जो कबीर दास के नाम उल्टा-सीधा मत-मतांतर चलाना चाहते हों किन्तु स्वयं कबीर दास जी को कोई संशय नहीं था –

सद्‌गुरु के परताप ते मिटि गयौ सब दुख दंद।
कह्न कबीर दुविधा मिटि गुरु मिलिया रामानन्द॥

(कबीर-पृष्ठ १४९, हजारी प्रसाद द्विवेदी)

५- रामानन्द के भीतर प्राचीनता एवं नवीनता के बीच संघर्ष था। शास्त्रों का भाष्य करते समय वे वर्णाश्रम के प्रतिबन्धों का खण्डन नहीं कर सकते थे। किन्तु उनके लिये यह भी कठिन था कि किसी भक्त का निरादर सिर्फ इसलिये करें कि उसका जन्म ब्राह्मण या द्विज वंश में नहीं हुआ है। विचार से वे कठोर वर्णाश्रमी किन्तु आचार से वे दयालु संत थे। - - - - - इस प्रकार रामानन्द एक ओर तो वर्णाश्रम में विश्वास करते तथा उन्होंने **"आनन्दभाष्य"** में शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं दिया है। परन्तु दूसरी ओर वे प्रथम संत थे जिन्होंने मुसलमान शिष्यों को अपना शिष्य बनाया तथा स्त्रियों एवं शूद्रों को भी अपने सम्प्रदाय में स्थान दिया। कबीर और रैदास उनके प्रमुख शिष्यों में से थे।

(मध्यकालीन भारतीय इतिहास - पृष्ठ १९०, राष्ट्रकवि दिनकर)

६- कतिपय विद्वानों के अनुसार नाम की महत्ता महाराष्ट्र के विट्ठल सम्प्रदाय से आई। - - - मूल प्रेरणा जो भी हो किन्तु अत्तर भारत में रामानन्द ने इस सिद्धान्त का पर्याप्त प्रचार और प्रसार किया था। कुछ विद्वानों के मतानुसार सम्पूर्ण संत-चिन्तन एक अकेले रामानन्द का जितना ऋणी है, अन्य किसी एक विचारक का नहीं है।

(हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा - पृष्ठ १९९, डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल)

७- स्वामी रामानन्द का नाम उत्तर भारत के संतों में अत्यंत प्रसिद्ध है और यह माना जाता है कि उत्तर भारत में संत मत के व्यापक प्रचार में इनका बहुत बड़ा हाथ था। - - - - - इनकी ख्याति और इनके सम्बन्ध में उल्लेखों से यह अवश्य विदित होता है कि ये एक बड़े विद्वान् तथा भक्तियोग के सफल साधक एवं अत्यंत उदार विचार वाले आचार्य थे। भक्तिपथ में यद्यपि तत्त्वतः कहीं भी किसी प्रकार का भेदभाव विहित नहीं है तथापि भक्ति के प्रायः सभी पूर्ववर्ती आचार्य किसी न किसी रूप में

रूप में बहुत कुछ सामाजिक रूढ़ियों और लोकवेद की मर्यादा के पोषक थे जिससे कि भक्तों के बीच से भी भेदभाव दूर न हो सका था। स्वामी रामानन्द ने इस विषय में पूर्व आचार्यों से अपने विचार कुछ भिन्न रखते हुये भक्ति सिद्धान्तों का सच्चाई और दृढ़ता से पालन किया।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास ४ भाग - सम्पादक पं० परशुराम चतुर्वेदी)

८- स्वामी रामानन्द अपने युग के सर्वाधिक यशस्वी साधक एवं प्रगतिशील विचारक थे। सन्त मत के प्रचार-प्रसार का श्रेय उन्हीं को है। रामानन्द की साधना पद्धति में नाम स्मरण का बहुत अधिक महत्त्व है। रामानन्द से ही प्रेरणा पाकर कबीर ने साधना एवं भक्ति को सभी वर्गों के लिये सुलभ कर दिया था। - - - - - रामानन्द बड़े उदार मनस्वी थे। उन्होंने सामाजिक हीनता और असमर्थता की भावना समूल नष्ट कर साधना का ऐसा भव्य एवं विशाल मन्दिर निर्मित किया, जिसके द्वार सब के लिये उन्मुक्त थे। रामानन्द की हिन्दी रचनाओं में उनका प्रगतिशील आध्यात्मिक एवं साधनात्मक दृष्टिकोण उपलब्ध होता है - - - - - उनकी रचनाओं में ब्रह्म की प्रेमाभक्ति का उपदेश है तथा उनकी काव्य-भाषा पर्याप्त स्वच्छ है। अपने गुरु राघवानन्द से प्राप्त भक्ति और ज्ञान की पृष्ठभूमि में उन्होंने रामावत सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके बाद सोलहवीं शताब्दी में इस सम्प्रदाय का सम्पर्क श्री वैष्णव सम्प्रदाय के साथ इतना बढ़ गया कि दोनों में जो भेद था वह भावुक जनता के समक्ष अदृश्य हो गया। परन्तु वस्तुतः दोनों में भेद विद्यमान था। रामानुज (श्री वैष्णव) सम्प्रदाय के आराध्यदेव लक्ष्मीनारायण हैं और रामावत सम्प्रदाय के राम। रामावत सम्प्रदाय में साधनात्मक प्रक्रियाओं के साथ ही व्यावहारिक जीवन की उदारता सहृदयता तथा सहिष्णुता की भावनायें प्रचुर थीं।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ १४२, सम्पादक - नगेन्द्र)

९- अपने जीवन का अधिकांश काल इन्होंने (स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने) काशी में बिताया और वहीं इनकी मुख्य साधना भूमि के रूप में प्रसिद्ध हुई। इस पुरी में पंचगंगा घाट पर अब तक इनके मठ के अवशेष विद्यमान बताये जाते हैं। स्वामी राघवानन्द और रामानन्द की तपोभूमि तथा रामतारक मन्त्र के प्रधान आचार्य विश्वनाथ की पुरी होने से ही कालांतर में काशी की भी गणना रामतीर्थों में होने लगी।

(हिन्दी साहित्य का वृहत्-इतिहास - पृष्ठ ३२२, लेखक-नगेन्द्र)

१०- स्वामी रामानन्द अपने युग के सर्वाधिक यशस्वी साधक एवं प्रगतिशील विचारक थे। सन्त मत के प्रचार-प्रसार का श्रेय इन्हीं को है - - - - - रामानन्द की साधना पद्धति में नाम-स्मरण का बहुत अधिक महत्त्व है।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ १४२, लेखक डा०-नगेन्द्र)

Benares Hindu University Library,

Religion section book No.230/17/1

Essays and lecture chiefly on the religion of the Hindus Vol. 1 by H.H. Wilson. M.A. F.R.S. page 48, 1862.

The residence of Ramanand was at Benares at the Panch Ganga Ghat where a math or monestory of his followers is said to have existed, but to have been destroyed by some of the Musalman princes. At present there is a merely stone platform in the vicinity bearing the supposed impression of his feet. But there are many maths of his followers of celebrity at Benares, whose Panchayat or council is the chief authority amongst the Ramavats in upper India.

Page 55. The twelve chief desciples of Ramanand are named as follows :—

1. Anantnand Asanand, 2. Kabir, 3. Raidas, 4. Pipa, 5. Sursuranand, 6. Sukhanand, 7. Bhavanand, 8. Dhanna, 9. Sena, 10. Mahanand, 11. Parmanand.

(प्रसिद्ध योरोप के लेखक का नाम तथा किताब का नाम नीचे लिखा जाता है । यह किताब जिसका विवरण यहाँ किया जाता है बनारस की हिन्दू यूनिवर्सिटी में उपस्थित है।)

रेलिजन सेक्शन बुक नं० २३०।१७।१

एसेस एन्ड लेक्चर चीफली आन रेलिजन आफ दि हिन्दूज बाई यच०, यच० विल्सन० एम० ए०, एफ० आर० यस०, पेज ४८; सन् १८६२।

लेखक श्री विल्सन साहब अपने प्रसिद्ध इतिहास में लिखते हैं कि श्री सम्प्रदाय के आचार्य श्री स्वामी रामानन्दाचार्य के रहने का स्थान पंच गंगा घाट काशी में था। वहाँ उनके अनुयायियों का एक मठ (या मनस्टरी) था अर्थात् समस्त भारत के रामानन्दीय रामोपासकों का पूजनीय केन्द्र (मूल आदि गादी) था। कहा जाता है कि वह विशाल मठ मुसलमान बादशाहों ने विनाश कर दिया। आगे लेखक लिखते हैं कि अब वहाँ ठीक उसी मठ के समीप एक पत्थर का चबूतरा है और उसके ऊपर यह निश्चय किया हुआ है कि श्री रामानन्दाचार्य ज़ी के चरण -चिन्ह बने हुए हैं। वहाँ काशी में उनके यशस्वी शिष्यों के और भी बहुत से मत बने हुए हैं। उनकी वहाँ एक बहुत बड़ीी कोशल या पंचायत है जो कि समस्त इण्डिया (भारत) के अन्दर "रामवत" सम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) के बीच में शक्तिशाली मानी जाती है।

५५ पेज पर लिखते हैं कि श्री रामानन्दाचार्य जी के प्रसिद्ध द्वादश शिष्य थे।

श्री अनन्तानन्द जी, आशानन्द जी, कबीर जी, रविदास जी, पीपा जी, सुरसुरानन्द जी, सुखानन्द जी, भावानन्द जी, धना भक्त, सेनाभक्त, महानन्द जी, परमानन्द जी।

इस प्रमाण के सामने दुनिया का कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि भगवान् श्री रामानन्द ने अपना कोई भी स्मारक धाम अपने अनुयाइयों के लिए नहीं बनाया था।

Benares Hindu University, Library.

Religion section book no. 230/16.

Modern Hinduism by W.J. Wilkince published-1887, Pages 62.

Here in this extract the writer writes about shri Ramanandacharya.

"He (Shri Ramanandacharya) lived chiefly at Benares at the Panchgangaghat where it is believed his math continued until it was destroyed by the Musalmans. At present there is a stone platform which is said to retain the impression of his feet.

There are said to be twelve chief descripleso of Ramanandis Pipa, Kabir etc."

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी की पुस्तक। किताब का नाम रेलिजन सेक्शन बुक नम्बर २३०।१६ मॉर्डन हिन्दूइजम वाई. डब्ल्यू. जे. विल्किंस, पब्लिश्ड १८८७ ई०,

इस खंड के अन्दर लेखक श्री रामानन्दाचार्य जी के बारे में लिखते हैं, "श्री स्वामी जी प्रधान रूप से पंच गंगा घाट काशी में निवास करते थे। यह विश्वासपूर्वक कहा जाता है कि वहाँ एक उनका मठ था जो कि मुसलमान बादशाहों ने तुड़वा डाला। अब वहाँ एक पत्थर का प्लेटफार्म है जिसके ऊपर उनके चरण -चिन्ह स्थापित किये हुये हैं।

वहाँ पर कहा जाता है कि उनके प्रधानं द्वादश शिष्य थे। श्री पीपाजी, श्री कबीर जी इत्यादि।

3. Library Babu Shive Prashad Gupta Nagawa Benares.

Book No.915179/6807

The Holy city (Benares)

By

Rajani Ranjan Sen B.A., B.L. Pleader and Law Lecturer Chitagange College, published, 1912 pages 224 last paragraph.

As you step down stairs of the Panchgangaghat on your return you find a small house on the right containing among a number of images and emblems, upon a stone platform what is reported to be the Gharn-paduka of Ramanand the great Vashnavite teacher who lived about the fourteenth century and set up the worship of Rama as the divine Vishnu. His residence was at Benares at the Panchgangaghat where existed a math or monastery of his followers said to have been destroyed by some of the Musalman princes.

लाइब्रेरी बाबू शिव प्रसाद गुप्ता, नगवा बनारस बुक नम्बर ९१५१७९।६८०७ नाम – (दि होली सिटी बनारस) १९१२ में बनी पेज २२४ अन्तिम पेराग्राफ।

कहा जाता है कि यह किताब महाराजा रामनगर ने बड़े प्रामाणिक रूप से बनवाई है, इसमें बनारस के प्राचीन चिन्हों का और धार्मिक विषयों का वर्णन है।

लेखक लिखते हैं कि जब आप पंच गंगा से घूम कर नीचे की सीढ़ियों से बढ़ेंगे तो आपको एक छोटा सा मकान मिलेगा। दाहिनी तरफ आप बहुत सी मूर्तियों को देखेंगे और एक पत्थर के चबूतरे के ऊपर एक चिन्ह देखेंगे जो कि श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी की चरणपादुका है। श्री स्वामी रामानन्द प्रसिद्ध वैष्णव धर्म के महान् गुरु थे। वे करीब चौदहवीं शताब्दी में हुए थे। उन्होंने भगवान् राम की उपासना का प्रचार किया था। भगवान् राम साक्षात् परमेश्वर विष्णु हैं। स्वामी श्री रामानन्दाचार्य जी के रहने का स्थान बनारस था वहाँ पंच गंगा घाट पर उनका एक बड़ा मठ था जिसे मनस्टरी कहते हैं। वह मठ उनके समस्त अनुयायी शिष्यों का एकमात्र सेन्टर था (जिसे सम्प्रदाय वाले मूल गादी कहते हैं)। कहा जाता है कि वह मनस्टरी (श्री रामानन्द मठ) मुसलमान बादशाहों ने तुड़वा डाला।

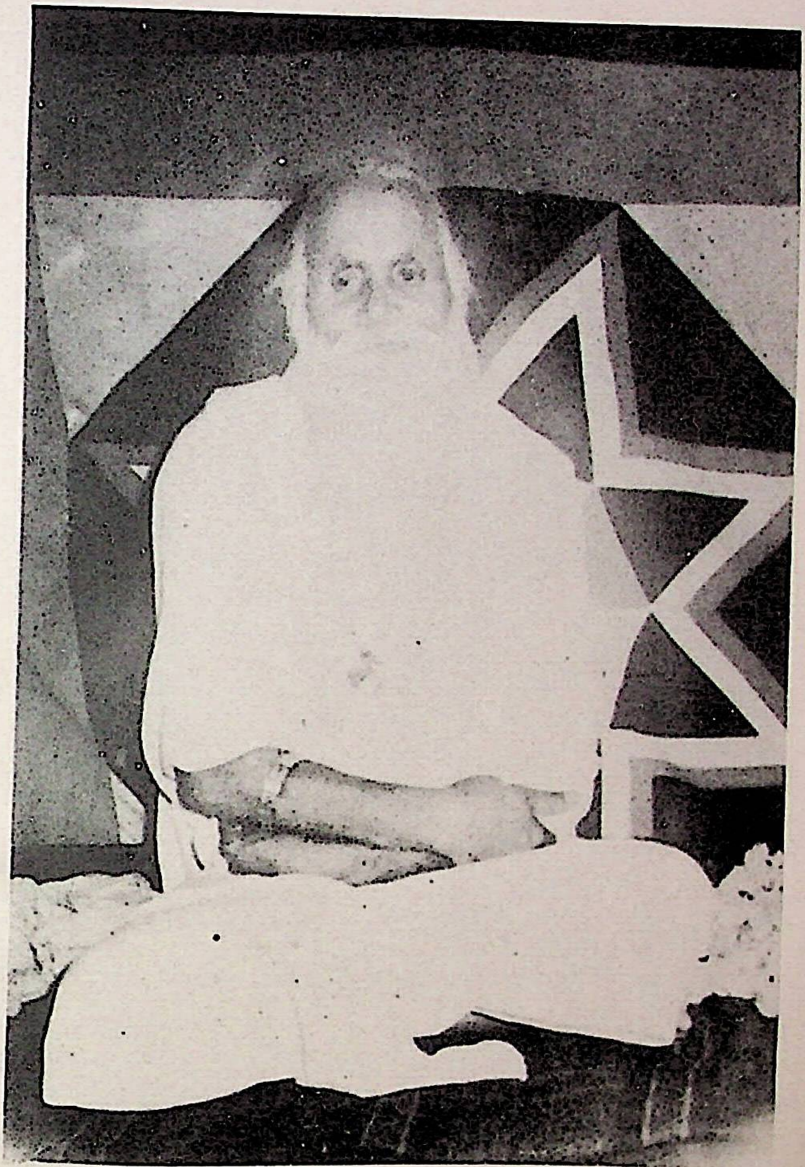

श्री वैष्णवभूषण स्वामी नारायणदासजी महाराज
त्रिवेणीधाम, जयपुर (राजस्थान)